हिंदी के कवि और काव्य

(भाग १)

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

हिंदुस्तानी एकेडेमी,

संयुक्त प्रांत इलाहाबाद

१९३७

प्रकाशक:—
हिंदुस्तानी एकेडेमी संयुक्तप्रांत
इलाहाबाद

पहला संस्करण

मूल्य { कपड़े की जिल्द ५)
सादी जिल्द ४||)

मुद्रक:—
गुरुप्रसाद मैनेजर
कायस्थ पाठशाला प्रेस, इलाहाबाद

भूमिका

स्थापित होने के कुछ दिन बाद ही हिंदुस्तानी एकेडेमी की कार्यकारिणी समिति ने हिंदी और उर्दू काव्य के दो विशद और सुसंपादित संग्रह ग्रंथ प्रकाशित करने का निश्चय किया था। तदनुसार तत्कालीन हिंदी की साहित्यिक उपसमिति ने इस संग्रह की एक योजना तैयार की और श्रीयुत सत्यजीवन वर्मा एम० ए० ने इस योजना के अनुसार कार्यारंभ भी कर दिया था। इसके कार्यारंभ के कुछ दिन बाद ही एकेडेमी का कार्य बहुत बढ़ जाने से प्रबंध का कार्यभार वर्मा जी के सुपुर्द करना पड़ा और केवल साहित्यिक कार्य के लिये मेरी नियुक्ति हुई।

अन्य साधारण साहित्यिक कार्यों के साथ मेरा मुख्य कार्य उक्त योजना के अनुसार इस संग्रह को तैयार करना हुआ।

यह योजना पूरी तो इस भूमिका में नहीं दी जा सकती पर संक्षेप से इतना बता देना आवश्यक होगा कि यह संग्रह कवियों के रचनाकाल के अनुसार न हो कर कविता के विषय और विचारधारा के अनुसार वर्गीकृत हुआ है।

साधारणरीति से प्राचीन हिंदी काव्य में हम तीन मुख्य विषय देखते हैं— वीरगाथा, भक्ति और रीति तथा शृंगार। संसार के सभी प्राचीन काव्यों की भाँति हिंदी के भी प्रारंभिक काव्य का विषय वीरों का यशगान ही रहा है। तदनुसार पहली अर्थात् वर्तमान जिल्द में हिंदी के प्रमुख वीरगाथा अथवा वीर रस के कवियों का समावेश हुआ है। आदि काल से लेकर आधुनिक काल के प्रारंभ तक के इस विषय के प्रधान तथा प्रतिनिधि माने जानेवाले कवि ही इसमें आ सके हैं। वर्तमान कवियों का समावेश उचित नहीं समझा गया।

प्रस्तुत संग्रह मेरे लगभग तीन वर्ष के अनवरत परिश्रम का फल है। समिति की राय के अनुसार मैंने पूरी पांडुलिपि एकेडेमी के उपसभापति राव राजा रायबहादुर श्री पं० श्यामविहारी मिश्र की देख रेख में दुहराई, तथा आपकी अमूल्य सम्मतियों के अनुसार उचित परिवर्तन किए।

संग्रह, संकलन तथा संपादन में इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि केवल उन्हीं कवियों का समावेश किया जाय जो अपने अपने समय के साहित्य की उत्पत्ति तथा विकास के लिये मुख्य रूप से उत्तरदायी थे। इनकी कविता के संग्रह के संबंध में इन बातों का ध्यान सदा रक्खा गया है—

(क) संगृहीत कविता साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि की हो।

(ख) वह ऐसी हो जिस से कवि की वास्तविक प्रतिभा स्पष्ट हो जाय।

(ग) परिमाण में संगृहीत कविता इतनी हो जिससे कवि का अच्छा अध्ययन हो सके और पाठक उसके संबंध में कोई भ्रांत धारणा न कर सकें।

कवि के समग्र साहित्य को यथाशक्ति अध्ययन कर तथा विषयानुसार जो सब से उपयुक्त समझे गए वही अंश संगृहीत हुए हैं। संग्रहों की उत्तमता के संबंध में मतभेद स्वाभाविक है, पर यथासंभव प्रमुख आलोचकों तथा साहित्य के इतिहास लेखकों के लोकमान्य निर्णयों का भी बराबर ध्यान रक्खा गया है।

पाठों की शुद्धि के संबंध में केवल इतना ही कहूंगा कि लभ्य, प्रकाशित, अप्रकाशित तथा प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों को एक साथ सामने रख, सब के पाठ को मिलान कर जो सब से शुद्ध समझा गया उसी की प्रतिलिपि की गई।

संग्रहों के सिवा आरंभ में, यथाक्रम प्रत्येक कवि की संक्षिप्त जीवनी, उसका कालनिर्णय तथा उसके काव्य की उचित समीक्षा तथा आलोचना की गई है।

अंत में मैं श्रद्धेय रावराजा, रायबहादुर श्री पं० श्यामविहारी मिश्र के प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रगट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने, अनेकानेक आवश्यक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी, कृपया इस काफ़ी बड़ी पांडुलिपि को आद्योपांत दुहराने का समय निकाला मुझे बहुत सी उपयोगी बातें सुझाईं जिनसे इसके बहुत से दोष निस्संदेह दूर हो गए। अभी इसकी कई जिल्दें छपने को हैं। अगली जिल्द संत काव्य तथा कबीर आदि संत कवियों के संबंध में होगी। मैं विद्वत्समुदाय से आशा रखता हूँ कि अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान से मेरी सहायता करेंगे और मैं कृतज्ञता सहित उनकी सम्मतियों को ध्यान में रखता हुआ अगली जिल्दों को यथासंभव त्रुटि रहित बनाने की चेष्टा करूँगा।

प्रयाग,
श्रावण सुदी, नाग पंचमी
सन् १९३७

गणेशप्रसाद द्विवेदी

विषय सूची

नरपति नल्ह

प्रायः सभी भाषाओं के प्रारंभिक साहित्य में वीर गाथाओं का ही प्राधान्य रहता है। पर हिंदी काव्य के आदि युग में वीर काव्य की प्रधानता होने के कुछ और कारण भी थे। हिंदी साहित्य का प्रारंभ मोटी तौर से ईसा की दसवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है और यह समय भारत के राजनीतिक क्षेत्र में भीषण उथलपुथल का था। मुसलमानों के हमले पर हमले तो हो ही रहे थे साथ ही देशी राजाओं में आपस में भी सर्वत्र फूट और कलह का साम्राज्य था। उत्तर भारत और विशेषतः राजस्थान में यह अशांति सब से अधिक रुद्र रूप धारण किए हुए थी।

यह सहज ही अनुमेय है कि इस प्रकार के युद्ध कलरव-पूर्ण वातावरण में सिवा वीरकाव्य के अन्य साहित्य की सृष्टि असंभव थी। भक्ति और शृंगार रस की कविता के नमूने भी इस समय के मिलते हैं पर उन की गणना अपवादों में ही हो सकती है।

यह वह समय था जब कि आर्यावर्त में मुसलमानों के आक्रमण, राज्य-स्थापन और लूट दोनों ही मतलब से हुआ करते थे और देश की मान-मार्यादा और धन संपत्ति की रक्षा का भार राजपूतों के बाहुबल पर आ पड़ा था। ऐसे समय प्रायः प्रत्येक राजपूत राजा या सामंत के दरबार में कोई न कोई 'कड़खैत', 'भाट', 'चारण' या 'कवीश्वर' रहा करता था जो समय-समय पर योद्धाओं को वीर रस के तत्काल उद्रेक करने में समर्थ पदों को सुना कर उन का उत्साह बढ़ाया करता था। बीच-बीच में शांति के समय वे शृंगार-रस प्रधान तथा वर्णनात्मक रचना भी किया करते थे। प्रस्तुत 'बीसलदेव रासो' उन में से एक है। तात्पर्य यह कि नल्ह भी कोई राजा नहीं बल्कि इसी श्रेणी के काव्यकारों में से था और बीसलदेव रासो के संपादक बाबू सत्यजीवन वर्मा का भी यही मत है, परंतु बाबू श्यामसुंदरदास के अनुसार यह 'संभवतः' राजकवि था। मिश्रबंधु तथा उन के आधार पर लाला सीताराम जी भी इसे राजकवि मानते हैं परंतु किसी प्रमाण का उल्लेख इन विद्वानों ने नहीं किया है। पं० रामचंद्र शुक्ल इस विषय में संदिग्ध हैं।

नल्ह के वंश के संबंध में अभी कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है और न इस के माता पिता का नाम का ही किसी को पता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि नल्ह का विवाह हुआ था या नहीं और न इस के किसी वंशधर का ही अब तक कुछ पता चल सका है। किसी भी अन्य ग्रंथ में इस का कहीं उल्लेख अभी तक हमारे देखने में नहीं आया है।

नल्ह किस संवत में पैदा हुआ और कब मरा यह जानने का अभी तक कोई साधन नहीं मिल सका है। इस ने अपने ग्रंथ के आरंभ करने की तिथि भाग्य-वश दे दी है जिस से इस के रचना काल का पता लग जाता है। वह वीसलदेव रासो का निर्माण काल यों लिखता है—

बारह सै बहोतरांहाँ मझारि।
जेठ बदी नवमी बुधवार॥
नाल्ह रसायण आरंभई।
सारदा तुठी ब्रह्म कुमारि॥

इस छंद में आए हुए "बारह सै बहोतरांहाँ" का अर्थ भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूप से किए हैं। मिश्रबंधु के अनुसार 'बहोत्तराहाँ' का अर्थ 'बीस' है, क्योंकि वे 'विनोद' के प्रथम भाग पृ० २०६ में लिखते हैं—"नरपति नल्ह ने इस का (वीसलदेव रासो का) समय १२२० लिखा है, पर जो तिथि उन्होंने बुधवार को ग्रंथ निर्माण की लिखी है वह १२२० संवत् में बुधवार को नहीं पड़ती, परंतु १२२० शाके बुधवार को पड़ती है। इस से सिद्ध होता है कि यह रासो १२२० शाके में बना जिस का संवत् १३५४ पड़ता है।" इस विशेष प्रकार के तर्क के आधार पर मिश्रबंधु 'बारह सै बहोत्तरांहाँ' का अर्थ सं० १३५४ निकालते हैं। बाबू श्यामसुंदर दास जी ने भी सन् १९०० की हिंदी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट में बारह सै बहोत्तरांहाँ को १२२० शक संवत् माना है। वे लिखते हैं "The author of this chronicle is Narpati Nalha and he gives the date of the composition of the book as Samvat 1220. This is not Vikram Samvat." अर्थात् "इस गाथा का रचयिता नरपति नल्ह है और उस ने अपने ग्रंथ का रचना-काल संवत् १२२० दिया है। यह विक्रम संवत् नहीं है।" परंतु अब आप का विचार बदल गया है।[१] इसी कथन को हो कदाचित् मिश्रबंधुओं ने अपने तर्क का आधार माना है। लाला सीताराम जी बारह सै बहोत्तरांहाँ का अर्थ सं० १२७२ करते हैं जो सत्य के अधिक निकट है। वे कहते हैं—"The date is clearly 1272 and not 1220 as the Misra Brothers say, and their calculation showing that the date is inaccurate is therefore based on wrong data. 1272 V. F. will correspond to 1216

[१] 'हिंदी भाषा और साहित्य', पृ० २११

A. P. and we have reason to belive that Nalha was contemporary of Visaldeva.[1] अर्थात् तिथि स्पष्टतः १२७२ है, न कि १२२० जैसा कि मिश्रबंधु कहते हैं और इस कारण से उस गणना का आधार जिस से कि वह दी हुई तिथि को अन्यथा सिद्ध करते हैं—भ्रांत है। १२७२ संवत् बराबर होगा सन् १२१६ के और यह विश्वास करने के हमारे पास प्रमाण हैं कि नल्ह वीसलदेव का समकालीन था। यह तर्क युक्तिपूर्ण अवश्य है, परंतु इस में यह नहीं सोचा गया कि नल्ह को वीसलदेव के समकालीन मानने पर यह भी मानना स्वाभाविक है कि सं० १२७२ में नल्ह और वीसलदेव दोनों उपस्थित थे। हमें वीसलदेव की मरण तिथि का ठीक पता नहीं है। डा० ईश्वरीप्रसाद इन का राज्यकाल सन् ११५३—६४ तक, अर्थात् सं० १२१०—२१ तक मानते हैं। इन के शिला-लेख भी स० १२२०—१२२१ तक के ही मिलते हैं। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि सं० १२७२ तक वह जीते थे। शिला-लेखों के आधार पर यही अनुमान करना युक्तिसंगत और स्वाभाविक प्रतीत होता है कि सं० १२२१ के बाद वह कदाचित ही जिए होंगे क्योंकि यदि ऐसा न होता तो इस पचास वर्ष के दीर्घ काल के बीच के उन के कुछ और शिला-लेख मिलते या उन के जीते रहने का कोई अन्य प्रमाण प्राप्त होता। उन का लिखा हुआ एक हरकेलि नाटक भी सं० १२१० की माघ शुक्ला पंचमी को समाप्त हो गया था। परंतु नल्ह के ग्रंथ से यही धारणा पुष्ट होती है कि वह वीसलदेव का समकालीन था। उस में सब जगह वर्तमान कालिक क्रियाओं का ही उपयोग किया गया है और घटनाओं का वर्णन सर्वत्र इस प्रकार का है जिन से यह धारणा दृढ़ हो जाती है कि कवि घटनास्थलों पर उपस्थित था और सब बातें उसने अपनी आँखों देखी थीं। इन्हीं सब बातों को देखते हुए "बारह सै बहोत्तरांहाँ" का अर्थ १२७२ मानने में कई कठिनाइयां पड़ती हैं। यदि वीसलदेव की मृत्यु सं० १२२० के लगभग मानें और रासो का आरंभकाल सं० १२७२ तो यह मानने पर विवश होना पड़ता है कि वीसलदेव की मृत्यु के पचास वर्ष बाद ग्रंथ की रचना आरंभ हुई, परंतु ऐसी स्थिति में ग्रंथ में सर्वत्र वर्तमानकालिक क्रियाओं का प्रयोग और घटनाओं का आँखों देखा सा वर्णन कदापि नहीं हो सकता था। यद्यपि इस बात का हमारे पास दृढ़ प्रमाण नहीं है कि वीसलदेव सं० १२२१ के बाद जीवित नहीं थे परंतु एक बात निश्चय है। इस ग्रंथ की मुख्य और सब से अधिक महत्त्व पूर्ण ऐतिहासिक घटना—वीसलदेव की उड़ीसा यात्रा (जो कि वास्तव में उस की विंध्यपर्वत से लेकर हिमालय तक के देशों के दिग्विजय की यात्रा थी, और जिस का उल्लेख सं० १२२० के दिल्ली के फीरोजशाह वाली लोहे की लाट पर लिखे हुए लेख में हुआ है) सं० १२२१ के पहले हो चुकी थी और वह अपनी राजधानी में लौट चुके थे।

---

[1] 'सिलेक्शन्स फ्राम हिंदी लिटरेचर', प्रथम भाग, पृ० ३८

साथ ही यह भी निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि सं० १२२४ के पहले वीसलदेव मर चुके थे, क्योंकि इन के उत्तराधिकारी पृथ्वी भट्ट (इन के भाई जगदेव का पुत्र) का पहला शिला-लेख सं० १२२४ का हाँसी में मिला है।[१] ऐसी अवस्था में मानने को यह भी माना जा सकता है कि नल्ह वीसलदेव के मृत्यु-दिवस पर्यंत उन के साथ रहा, पर कथा उस ने प्रायः ५० वर्ष के बाद सोच-सोच कर कही। पर यह एक प्रकार असंभव ही प्रतीत होता है। कदाचित् ही किसी मनुष्य की स्मरण शक्ति इतनी प्रखर हो कि वह पचास या साठ वर्ष की पुरानी घटनाओं का आँखों देखा सा वर्णन कर सके। वर्तमान क्रियाओं का प्रयोग भी इस के विरुद्ध है।

वीसलदेव रासो के संपादक बाबू सत्यजीवन ने बारह सै बहोत्तरांहाँ का अर्थ सं० १२१२ किया है, और सब बातों को देखते हुए यही निर्णय ठीक जान पड़ता है। पहले तो इस के हिसाब से वीसलदेव और नल्ह के समकालीन मानने में कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। गणना से भी उस साल की जेठ बदी नवमी को बुधवार पड़ता है। 'बहोत्तराँ' का शुद्ध रूप 'द्वादशोत्तर' है। और इस प्रकार द्वादशोत्तर बारह सै १२१२ के बराबर हुआ। इस प्रकार के शब्दों का यही तात्पर्य होता है इस के प्रमाण अन्यत्र भी मिलते हैं। दामो ने 'लक्ष्मण सेन पद्मावती की कथा' का समय संवत् 'पंद्रह सौ सोलोत्तराँ मझारि' दिया है जो सं० १५१६ के बराबर माना गया है।[२] 'हरराज कृत ढोलामारू की कथा' का समय भी 'संवत् सोलह सतोतरइ' दिया गया है जिस का अर्थ उपर्युक्त नियमानुसार सं० १६०७ लगाया गया है।[३] बाबू श्यामसुंदर दास और पं० रामचंद्र शुक्ल भी अब इसी तिथि को ठीक मानते हैं।[४]

ऊपर के विचार से हम को यह निश्चय हो जाता है कि कवि ने सं० १२१२ में अपनी रचना आरंभ की, पर इस के अतिरिक्त कवि के जीवन के संबंध की और किसी तिथि का पता नहीं है। ऐसी अवस्था में केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कवि नल्ह का समय विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी का आदि काल था।

नल्ह के जीवन और वंशधरों आदि के संबंध में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हो सका है।

---

१ 'इंडियन ऐंटिक्वेरी', जिल्द १४, पृ० २१८

२ 'हिंदी सर्च रिपोर्ट',—१९०० पृ० ७६

३ 'हिंदी सर्च रिपोर्ट',—१९०० पृ० ८४

४ बाबू श्यामसुंदरदास का 'हिंदी भाषा और साहित्य', पृ० २९१ और पं० रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (शब्दसागर की भूमिका) पृ० ९०

यद्यपि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वीसलदेव का, जिन का वास्तविक नाम विग्रहराज चतुर्थ था, नल्ह के आश्रयदाता थे, तो भी उन का कुछ संक्षिप्त विवरण यहाँ दे देना इसलिए आवश्यक है कि इस काव्य (वीसलदेव रासो) के नायक वही हैं। प्रामाणिक इतिहासों में इन का जो वृत्तांत मिलता है वह वीसलदेव रासो की कथा से अधिकांश में से भिन्न है इस लिए पहले ऐतिहासिक विवरण से सूक्ष्म रूप से अवगत होना उचित होगा।

वीसलदेव

राजपुताने के साँभर प्रांत के चौहान (चहुमाण) राजपूत बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। कर्नल टाड इन्हें राजपूतों की सब से अधिक वीर जाति समझते हैं। अजमेर साँभर का ही एक भाग था। यहां के पहले नरपति—जिस के संबंध के कुछ प्रामाणिक वृत्तांत मिलते हैं—विग्रहराज चतुर्थ थे। इन का अधिक प्रसिद्ध नाम 'वीसलदेव' चौहान था। इन के पिता का नाम अर्णोराज या अनंत देव था जिन के तीन पुत्र थे—जगदेव, वीसलदेव, और सोमेश्वर। जगदेव ने अपने पिता की हत्या कर के अजमेर की गद्दी पर अधिकार किया था। परंतु इस के छोटे भाई वीसलदेव ने बलात् इसे सिंहासनच्युत कर अपने को राज्य का अधीश्वर घोषित कर दिया। यह बड़े वीर योद्धा थे और दिग्विजय का नशा इन्हें सदा सवार रहता था। इस के साथ ही यह बड़े विद्वान् और कवि भी थे। इन्हों ने युद्ध में तुर्कों को परास्त किया था और परिहारों से दिल्ली का राज्य छीन लिया था और इन के राज्य का विस्तार हिमालय से लेकर दक्खिन में विंध्याचल तक हो गया था। सं० १२२० के वीसलदेव के प्रसिद्ध लौहस्तंभ के लेख में लिखा है कि उन्होंने देश को मुसलमानों से रिक्त कर आर्य भूमि को फिर से आर्यों का देश बना दिया था। इन्हों ने नदोल, जालोर, और पाली पर विजय प्राप्त की थी तथा सं० १२१०—२० तक में इन्होंने दिल्ली का अवरोध कर उस पर विजय प्राप्त की थी।[1] वीसलदेव ने युद्ध और दिग्विजय के अतिरिक्त समाज और देश की उन्नति के लिए बहुत से प्रशंसनीय कार्य किए थे। इन्होंने शिक्षा की उन्नति के लिए बड़े प्रयत्न से अजमेर में एक बहुत बड़ी पाठशाला बनवाई थी। यह विद्वानों और विशेष कर कवियों का बड़ा आदर करते थे। इन्होंने अपने दरबारी कवि सोमेश्वर से दो नाटक—'ललिता विग्रह राज' और 'हरिकेलि' लिखवा कर उन्हें शिलाओं पर खुदवा कर सुरक्षित रूप से रखवा दिया था। कहा जाता है कि 'हरिकेलि' नाटक की रचना स्वयं वीसलदेव ने ही की थी। यह दोनों नाटक अजमेर के राजपूताना म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं। 'इंडियन एंटिक्वेरी' की २० वीं जिल्द के पृ० २०१ में 'हरिकेलि' नाटक का विवरण दिया

अजमेर

---

[1] कारस्टिफ़ेन्, 'आर्केलाजी आव् डेल्ही', पृ० ११८; 'इंडियन एंटिक्वेरी', २० पृ० २०१

हुआ है । वीसलदेव ऐसे साहित्य-सेवी राजाओं के संबंध में डा० कील्होर्न (Dr. Keilhorn) कहते हैं—"Actual and undoubted proof is here afforded to us of the fact that powerful Hindu rulers of the past were eager to compete with Kali Dasa and Bhava Bhuti for poetical fame." अर्थात् यहां पर हमें इस बात के प्रकृत और निर्भ्रांत प्रमाण मिलते हैं कि अतीत काल के शक्तिमान् हिंदू राजा गण साहित्यिक सुख्याति में कालिदास और भवभूति से प्रतियोगिता करने के लिए उत्सुक थे। वीसलदेव की पाठशाला के प्रकांड भवन को सं० १२५० (सन् ११९३) में मुहम्मद गोरी के बर्बर सिपाहियों ने पूर्ण रूप से ध्वंस कर दिया था, और उस के स्थान पर उसी के ईंट मसाले से एक मसजिद बनवाकर अपना धार्मिक जोश ठंढा किया था । इस घटना पर दुख प्रगट करते हुए प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध ऐतिहासिक डा० ईश्वरीप्रसाद कहते हैं—"Acts of such vandalism were not uncommon in the early history of Islam, and neither shrines of learning nor abodes of worship, venerated for centuries, were suffered to exist by the fanatical adventurers, who looked upon the destruction of such places as a matter of pious obligation." अर्थात् इस्लाम के पुराने इतिहास में इस प्रकार के अत्याचारपूर्ण कार्य असाधारण नहीं थे, क्या विद्या के मंदिर और क्या शताब्दियों से पूजे जानेवाले देवालय, सभी इन धर्मांध आक्रमणकारियों के मारे रहने नहीं पाते थे। ये इस प्रकार के विनाशकारी कृत्यों को अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे। इन की मृत्यु के बाद, जो संभवतः सं० १२२१ में हुई थी, इन का पुत्र अमर गांगेय गद्दी पर बैठा, परंतु अवस्था कम होने के कारण इन के भाई जगदेव का लड़का पृथ्वी भट्ट (पृथीराज १) इन का प्रतिनिधि होकर राजकाज सँभालने लगा, पर थोड़े ही दिनों बाद स्वयं राजा बन बैठा । इस की मृत्यु के बाद, जो कि संभवतः सं० १२२६ में हुई थी, वीसलदेव के छोटे भाई सोमेश्वर को राज्य मिला । इन्हीं सोमेश्वर के पुत्र, हिंदू वीरता के अंतिम पुत्र, महाराज पृथ्वीराज चौहान थे जो सोमेश्वर के बाद दिल्ली और अजमेर के सिंहासन पर विराजमान हुए ।[१]

'पृथ्वीराज विजय' नामक एक काव्यग्रंथ में, जिस की रचना सं० १२३५ के बाद और सं० १२५७ के पहले हुई थी और जो डा० बुहलर को काश्मीर में मिली

---

[१] वीसलदेव के संबंध का यह प्रामाणिक वृत्तांत डा० ईश्वरीप्रसाद की प्रसिद्ध पुस्तक History of Medieval India (मध्यकालीन भारत का इतिहास पृ० ७-६) से उद्धृत किया गया है ; स्मिथ आदि अन्य अग्रगण्य ऐतिहासिकों का मंतव्य भी इस उद्धरण के विपरीत नहीं है

थी, अंतिम चौहान वीर पृथ्वीराज की वीरता का वर्णन है। इस ग्रंथ में चौहानों की एक वंशावली भी दी गई है जिस की प्रामाणिकता की पुष्टि शिला-लेखों से होती है। वह इस प्रकार है :—

अर्णोराज (सं० ११९६)

नाम नहीं दिया है (परंतु हम्मीर महाकाव्य तथा ग्वालियर और कमायूँ की इन वंशावलियों से जिन की जाँच जेनरल कलिंग्हम ने की है, पता चलता है कि इन का नाम जगदेव था।)
 — पृथ्वीभट्ट या पृथ्वीराज (प्रथम) (सं० १२२४—२६)

विग्रहराज चतुर्थ (वीसलदेव) (सं० १२१०—१२२१)
 — अपर गांगेय या अमर गांगेय

सोमेश्वर-कर्पूर देवी (सं० १२४१—१२३४)
 — पृथ्वीराज (द्वितीय) या राय पिथौरा (मृत्यु का सं० १२४९)
 — हरिराज (स० १२४०—४२)
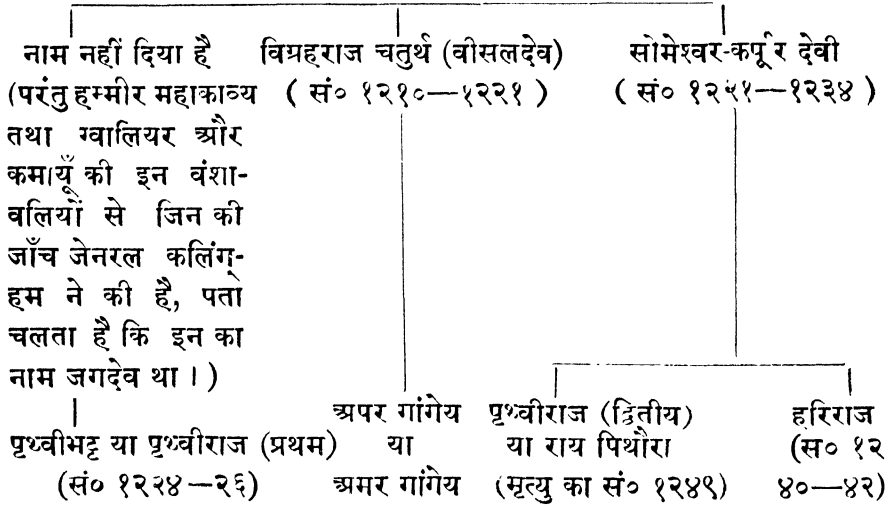
प्रामाणिक इतिहासों से वीसलदेव के संबंध में जो कुछ जाना जा सकता है उस का सारांश ऊपर दिया जा चुका, अब नीचे वीसलदेव रासो का विवरण दिया जाता है।

वीसलदेव रासो

वीसलदेव रासो चार खंडों में समाप्त हो जाता है। इस में पहले खंड में ८५, दूसरे में ८६, तीसरे में १०२, चौथे में ४२, तथा पूरे ग्रंथ में सब मिलाकर २१५ छंद हैं।

कथा भाग प्रथम खंड.

कवि सरस्वती और गणेश की वंदना कर के सं० १२१२ जेष्ठ बदी नवमी बुध वार को ग्रंथ आरंभ करता है। धार का परमार राजा भोज अपनी लड़की राजमती के योग्य वर खोजने के लिए एक पुरोहित भिन्न-भिन्न प्रांतों में भेजता है, परंतु बहुत स्थानों में भटक कर निराश होकर अंत में वह अजमेर पहुँचता है और एक मात्र वीसलदेव ही उसे राजकुमारी के योग्य वर जँचता है। राजा-भोज भी तैयार हो जाता है और अंत में बड़े धूम-धाम से वीसलदेव की वर-यात्रा चित्तौरगढ़ आदि प्रसिद्ध स्थानों से होती धारानगरी में पहुँचती है और महान् उत्सव और समारोह के साथ विवाह होता है। सब बातें कुशलपूर्वक हो जाती हैं। यहां पर एक बात आश्चर्य की यह है कि कवि ने बिना रक्तपात के यह विवाह संबंध हो जाने दिया। क्योंकि उसी समय के आस-पास के महाकवि चंद और जगनिक आदि कवियों ने अपने ग्रंथों में प्रत्येक विवाह-

संबंध के पूर्व वर और कन्यापक्ष के लोगों में भीषण रक्त-पात का दृश्य उपस्थित किया है। टाड आदि प्रामाणिक इतिहास-लेखकों तथा पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा आदि प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ताओं की भी यह धारणा है कि उन दिनों वरपक्ष वाले जब तक अपनी वीरता का परिचय कन्यापक्ष वालों को युद्ध में हरा कर न दे लेते थे तब तक व्याह वा वधू की विदाई असंभव थी। इस बात का सब से बड़ा प्रमाण पृथ्वीराज और जयचंद का भयानक द्वेष है। इस द्वेष ने इतना विकराल रूप धारण किया कि अंत में इस ने हिंदू राज्य का अस्तित्व ही भारत से लुप्त कर दिया। इस का मूल कारण पृथ्वीराज द्वारा विवाह के लिए जयचंद की लड़की संयोगिता का अपहरण था। वीसलदेव इन्हीं पृथ्वीराज के चाचा थे। परंतु इन के विवाह में दोनों पक्ष में युद्ध की कौन कहे, कवि ने परस्पर के प्रेम और सौहार्द की इयत्ता दिखा दी है। प्रत्येक फेरी में भोज वीसलदेव को कोई न कोई देश तथा उन के साथ हाथी घोड़े आदि और भी बहुत सी वस्तुएं देता है। दिये हुए देशों में मडोवर, सौराष्ट्र, गुजरात, साँभर, तोड़ा, टोंक और चित्तोड़ तक के नाम हैं! हो सकता है कवि की स्वाभाविक शांति-प्रियता ही इस का कारण हो। क्योंकि कई बातों पर विचार करने से यह धारणा पुष्ट हो जाती है कि कवि ने जान बूझ कर युद्ध वर्णन से अपने को दूर रक्खा है। इस का सब से बड़ा प्रमाण यही है कि वीसलदेव की दस वर्ष व्यापी दिग्विजय-यात्रा को कवि जगन्नाथ की तीर्थ-यात्रा कहता है। शिला लेखों से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गया है कि वीसलदेव ने सं० १२१० से लेकर १२२० तक में आर्यावर्त को मुसलमनों से रहित करने में लगाया और हिमालय से लेकर विंध्याचल तक अपना राज्य विस्तार किया।

द्वितीय खंड

पर कवि इस महान् रक्त-पात के वर्णन को बचाने के लिए कुछ और ही किस्सा गढ़ता है! विवाह से लौटने के बाद राजा बड़े आनंद से कुछ दिन अपने राज्य में काटता है और रानी को सुना कर कहता है कि अब मेरे सदृश संसार में कोई राजा नहीं है। पर रानी उसे चेतावनी देती हुई इस उड़ीसा के राजा की याद दिलाती है जिस के यहां हीरे की खान थी (?) और साथ ही कहती है कि, "महाराज घमंड न करो इसी प्रकार बहुत से राजा तुम से बड़े हैं।" राजा को यह बात लग जाती है और उसी समय वह प्रतिज्ञा करता है, "मैं भूला था तूने मुझे चेता दिया; या तो मेरे हीरे की खान होगी या मैं प्राण दे दूँगा।" हो सकता है वीसलदेव रानी के इन्हीं शब्दों से उत्तेजित होकर दिग्विजय यात्रा करने को उद्यत हुआ हो और ऐसा होना अस्वाभाविक भी नहीं है। इतिहास हमें बताता है कि उत्साही हृदय को कठिन से कठिन कार्य के लिए प्रस्तुत करने में प्रायः स्त्रियों के चुभते हुए वचन ही समर्थ हुए हैं। यहां तक तो ठीक है पर यहीं से कवि कथा का रुख दूसरी ओर मोड़ता है। राजा को गंभीर भाव से इस संकट-पूर्ण यात्रा के लिए तैयारी करते देख रानी विलाप करती हुई उन्हें यात्रा स्थगित करने का

आग्रह करता है पर वीसलदेव संकल्प कर चुके थे, उस से हटाना किसी की भी सामर्थ्य के बाहर था। रानी को बहुत खिन्न होते देख कर राजा कहता है, "राजकुमारी तू दुखित मत हो, मैं तेरे लिए उड़ीसा जाकर लाख टका का हार लेकर जगन्नाथ की पूजा कर आऊँगा।" अंत मे राज-काज अपने भतीजे को सौंप कर वीसलदेव शुभ मुहूर्त देख उड़ीसा की ओर प्रस्थान करता है। देखते-देखते राजा की यात्रा का उद्देश्य हीरे की खान जीतने के स्थान पर रानी के लिए कीमती हार बना और जगन्नाथ जी पूजा करना हो जाता है। कारण स्पष्ट है, कवि दिग्विजय वर्णन करना नहीं चाहता था।

राजा के वियोग में राजमती बहुत दुखित होती है और नित्य ही उन के आने की प्रतीक्षा करती है। इसी प्रकार दस वर्ष बीत जाते हैं। ग्यारहवें वर्ष रानी पंडित के हाथ एक पत्र भेज कर वीसलदेव से घर लौटने की प्रार्थना करती है। इस पत्र का राजा के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है और वह तुरंत लौटने की तैयारी करता है। इधर उड़ीसा के राजा और रानी दोनो ही वीसलदेव को इतना चाहने लगे थे कि उन्हें इन को लौटने की तैयारी करते देख बड़ा दुख होने लगा। उन्हों ने हर तरह से राजा को रोकना चाहा यहां तक की रानी ने (उड़ीसा की रानी) उस के दो सुंदरी स्त्रियों से विवाह करा देने तक का प्रलोभन दिया पर वीसलदेव का मन उचट चुका था और वह घर लौटने के लिए उत्कंठित हो रहा था। यह देख कर उड़ीसा नरेश ने भी बड़े आदर सत्कार से बहुत कुछ धन द्रव्य आदि दे कर और रानी ने करोड़ टके का हार देकर राजा को विदा किया।

तृतीय खंड

उड़ीसा से चल कर राजा सकुशल अपने राज्य में पहुंच कर बहुत दिनों के बिछुड़े हुए अपने आत्मीयों और बंधु-बांधवों से मिलता है। राज्य में सब बड़े प्रसन्न होते हैं, और चारों ओर मंगलाचार, उत्सव और आनंद की धूम मच जाती है। राजा का ससुर भी इस आनंदोत्सव में सम्मिलित होता है और कुछ दिन रह कर राजमती को साथ लेकर अपने राज्य को लौटता है। तीन महीने बाद वीसलदेव घर जाकर राजमती को फिर अजमेर लिवा जाता है और आनंद से राज्य करता है। इस के बाद नरपति नल्ह सब को आशीर्वाद देता हुआ ग्रंथ समाप्त करता है।

चतुर्थ खंड

ऊपर की कथा में दिए हुए वृत्तांत के साथ प्रामाणिक इतिहास तथा शिलालेखों से प्राप्त वीसलदेव के विवरण की तुलना करने पर दोनों में आकाश पाताल का अंतर देख पड़ता है। कुछ बातें तो ऐसी हैं जिन से यह संदेह उत्पन्न हो जाता है कि नल्ह का कथा-नायक कोई दूसरा वीसलदेव तो नहीं है। इस ग्रंथ के अनुसार धार के राजा भोज और वीसलदेव को समकालीन मानना पड़ता है। क्योंकि इस में

कथा का ऐतिहासिक महत्त्व

भोज की लड़की से उस से विवाह कराया गया है। डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार भोज सं० १०६७ में[1] और स्मिथ के अनुसार प्रायः १०७५ में वह सिंहासन पर बैठे और मृत्यु स्मिथ के अनुसार डा० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार सं १११ से सं० ११११७ में हुई[2] दोनों ही ऐतिहासिक भोज की इन तिथियों के संबंध में निर्भ्रांत तो नहीं जान पड़ते, परंतु इस में कोई संदेह नहीं कि यह तिथियां यथार्थ समय से अधिक दूर नहीं हैं। क्योंकि भोज के शिलालेख सं० १०७६ और १०७९ के मिले हैं। उस के उत्तराधिकारी जयसिंह (प्रथम) का दान-पत्र सं० १११२ का प्राप्त है। इन से यह सिद्ध होता है कि भोज का राज्यकाल विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के अंतिम और बारहवीं के आदिम भाग में था। ऐसी अवस्था में भोज और बीसलदेव का साक्षात्कार होना असंभव था। बाबू सत्यजीवन वर्मा का अनुमान है कि नल्ह का तात्पर्य परमार वंशीय किसी दूसरे प्रतापी राजा—संभवतः भोज द्वितीय से है जिस ने मैत्री बढ़ाने के लिए बीसलदेव को अपनी लड़की ब्याह दी हो। इस की पुष्टि में उन्होंने दो प्रमाण दिए हैं। उन में से एक का आधार पृथ्वीराज-विजय नामक ग्रंथ का वह उल्लेख जिस में विग्रहराज द्वारा मालवा के राजा उदयादित्य के उन्नति पाने का प्रसंग है। ऐसी दशा में यह अनुमान करने को तो किया जा सकता है कि मैत्री बढ़ाने के लिए भोज-वंशीय किसी राजा ने अपनी लड़की का कूटनैतिक विवाह बीसलदेव से कर दिया होगा। परंतु इस से यह मानना कि उसी को नल्ह ने भोज कहा होगा यह कुछ अस्वाभाविक सा जान पड़ता है, क्योंकि ऐसा करते किसी अन्य कवि को हम ने नहीं देखा। दूसरा प्रमाण है हम्मीर-काव्य का भोज द्वितीय के संबंध का यह वाक्य 'भोजो भोज इवापरः।' परंतु इस से अधिक से अधिक यही तात्पर्य निकाला जा सकता है कि नल्ह का तात्पर्य भोज द्वितीय से था, और न कि यह भोज वंशीय किसी दूसरे राजा के लिए नल्ह ने 'भोज' शब्द का व्यवहार किया है। भोज द्वितीय नाम का एक राजा हो अवश्य गया है पर वह धार के परमार वंशीय राजाओं का वंशधर नहीं बल्कि कन्नौज के प्रतिहार (पड़िहार) वंशीय क्षत्रियों के कुल का था, और वह दो ही वर्ष तक (प्रायः सं० ९६७-६९) तक राज्य भोग कर सका था[3]। इसी भोज द्वितीय के संबंध में 'भोजो भोज इवापरः' शायद ही हम्मीर काव्य के रचयिता ने कहा हो। भोज नाम का कन्नौज का एक और पड़िहार राजा हो गया है जिस का पूरा नाम 'मिहिर भोज' था। यह भोज द्वितीय का पितामह, और कवि राजशेखर के शिष्य महेंद्रपाल का पिता था। यह अवश्य एक बड़ा प्रतापी राजा हो गया है, यहां तक कि इस ने 'आदि बाराह' की पदवी धारण कर अपने को विष्णु का अवतार

---

[1] ईश्वरीप्रसाद, 'हिस्ट्री आफ़ मेडीवल इंडिया', पृ० १४ और १७

[2] स्मिथ, 'अर्ली हिस्ट्री आफ़ इंडिया', पृ० ३६५

[3] स्मिथ, 'अर्ली हिस्ट्री आफ़ इंडिया', पृ० ३८१

घोषित कर दिया था। परंतु भोज नाम के—प्रथम या द्वितीय, धार के या कन्नौज के, परमार या पड़िहार किसी भी राजा का समय वीसलदेव से नहीं मिलता।

इस संबंध में दूसरी वस्तु ध्यान देने योग्य यह है कि कहीं भी इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि भोज के या अन्य परमार राजाओं के 'राजमती' नाम की कोई राजकुमारी थी। पृथ्वीराज रासो से इस बात का प्रमाण तो मिलता है कि वीसलदेव के परमार वंशीय एक रानी थी[1]। परंतु यह पता नहीं कि किस परमार राजा की लड़की वीसलदेव को व्याही थी। वीजोंलियाँ के शिला-लेख में वीसलदेव को एक किसी 'राजदेवी' का पति कहा गया है—

ततोपि वीसलनृपः श्री राजदेवी प्रियः,
पृथ्वीराज नृपोथ तत्तनुभवो रासल्लदेवी विभुः।

संभव है कवि ने इसी 'राजदेवी' को ही 'राजमती' कर लिया हो। परंतु जो कुछ भी हो इतना निश्चय है कि इस 'राजदेवी' या 'राजमती' का पिता धार का राजा भोज नहीं था। इतिहास से पता लगता है कि भोज के बाद ही परमारों की शक्ति बहुत क्षीण हो गई और मालवा का विशाल राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। यहाँ तक कि वीसलदेव के समय में इस के स्थान पर एक छोटी सी रियासत ही रह गई थी और इस का भी अलाउद्दीन खिलजी ने सं० १३६७ में लोप कर दिया। सारांश यह कि किसी भी इतिहास से इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि वीसलदेव के समय में धार में 'भोजो भोज इवापरः' की भाँति कोई प्रतापी राजा था जो अपने जामाता को दहेज में हर फेरी में चित्तौड़ और गुजरात ऐसे एक-एक राज्य दे सकता हो।

इसी प्रकार इसी ग्रंथ में आने वाली प्रायः सभी घटनायें प्रामाणिक इतिहास की कसौटी पर कसने पर काल्पनिक सी जान पड़ने लगती हैं। उन सभों पर विचार करने का न तो यहां स्थान है और न ऐसी अवस्था में यह आवश्यक ही कहा जा सकता है। केवल एक घटना में—जो कि कदाचित् इस ग्रंथ में बड़ी महत्व-पूर्ण घटना कही जा सकती है—ऐतिहासिक सत्यता बहुत कुछ पाई जाती है। यह घटना है वीसलदेव की बारह वर्ष की उड़ीसा और जगन्नाथ यात्रा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शिलालेखों से हमें निश्चय रूप से ज्ञात होता है कि इस ने तीर्थ यात्रा के प्रसंग से विंध्याचल से हिमालय तक के देशों को जीत उन से कर वसूल किया। यह समय संभवतः सं० १२१०-२० तक के अंदर का था। नल्ह इस यात्रा को कोरी तीर्थ यात्रा का ही रूप देता है और दिग्विजय का नाम तक उस में नहीं आने देता। जिस मनोवृत्ति के प्रभाव से उस ने ऐसा किया होगा उस पर भी ऊपर कुछ विचार प्रकट किए गए हैं। कथा में इस बात का भी

---

[1] भूमिका 'हिंदी सर्च रिपोर्ट'—१६००

उल्लेख है कि उड़ीसा जाते समय यह राज्य अपने भतीजे को सौंप गए थे। इतिहास से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वीसलदेव की मृत्यु के समय उस का पुत्र अमरगांगेय बहुत कम अवस्था का (Minor) था और उस के प्रतिनिधि स्वरूप उस का चचेरा भाई पृथ्वीभट्ट (पृथ्वीराज प्रथम) राजकाज सँभालने लगा।[१] इस से यह स्पष्ट है कि जो अमरगांगेय पिता की मृत्यु के समय भी 'बालिग़' नहीं हुआ था वह तीर्थ यात्रा के समय या तो उत्पन्न ही नहीं हुआ था और यदि हुआ भी था तो उस की अवस्था उस समय बहुत ही कम रही होगी। इस से कवि का उक्त कथन भी सत्य सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विषयों पर ध्यान देते हुए हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि इस पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य उतना नहीं है जितना कि साहित्यिक। साहित्य से भी अधिक इस पुस्तक का मूल्य भाषातत्व की दृष्टि से है, और अब हमें इन्हीं विषयों पर संक्षेप से कुछ विचार करने हैं।

ग्रंथ की भाषा

वीसलदेव रासो की एक हस्त-लिखित प्रति नागरी-प्रचारिणी सभा के संग्रहालय में है और सब से पहले संभवतः उसी के एक सर्ग (चतुर्थ) को प्रतिलिपि करा कर लाला सीताराम जी ने अपने चारण-काव्य-(Bardic Selection) संग्रह में प्रकाशित किया था। परंतु इस का पाठ बहुत जगह अशुद्ध जान पड़ता है। बाबू सत्यजीवन जी ने बड़े परिश्रम से सं० १५५९ की लिखी हुई एक दूसरी प्रति के आधार पर इस के पाठ को यथासंभव शुद्ध कर पूरे ग्रंथ का सपादन किया और इसे सं० १९८२ में सभा ने प्रकाशित किया। प्रस्तुत संग्रह में उक्त ग्रंथ का प्रथम सर्ग इसी संस्करण से लिया गया है पढ़ते समय इस सस्करण में भी बहुधा, भाषा और छंद दोनों ही के संबंध के कुछ व्यतिक्रम मिलते हैं पर उन में अपनी बुद्धि के अनुसार यहां कुछ परिवर्तन करना अभीष्ट नहीं समझा गया। इस प्रकार की पाठ की गड़बड़ी प्रायः सभी प्राचीन ग्रंथों में पाई जाती है और मूल पाठ क्या था यह जानने का कोई उपाय भी नहीं है। परंतु इन सब बातों के होते हुए भी संपादकों के लिए यह कदापि उचित नहीं हो सकता कि वे अपनी बुद्धि के अनुसार जहाँ जैसा ठीक समझें वहाँ वैसा परिवर्त्तन कर दिया करें, क्योंकि ऐसा करने से कुछ संस्करणों के बाद मौलिक पाठ के बिलकुल ही बदल जाने की संभावना है। परंतु बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि अधिकतर प्राचीन ग्रंथों का यही हाल हुआ है। आल्हा, पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो, राजबिलास तथा हम्मीर रासो आदि ग्रंथो के पाठ का मौलिक रूप बहुत कुछ विकृत हो गया है। इस का संपादकों की स्वेच्छाचारिता के अति-

[१] ईश्वरीप्रसाद, 'हिस्ट्री आफ़ मेडीवल इंडिया', पृ० ६

रिक्त एक और प्रधान कारण है। उक्त श्रेणी के अधिकांश ग्रंथ प्राय: शताब्दियों तक मौखिक रहने के बाद तब लिपिबद्ध हुए हैं। परंपरा से चारण और भाट लोग ऐसी गाथाओं को कंठस्थ रखते थे और राजदरबारों में गा कर सुनाया करते थे। परंतु ऐसी अवस्था में एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी के गायकों का उच्चारण आदि की सुविधा के अनुसार मनमाना परिवर्तन कर लेना अनिवार्य था, पर यह तो हो चुका, अब जो उपलब्ध पाठ है उस को तो भ्रष्ट तथा और भी विकृत होने से हम बचा सकते हैं। इस का एक मात्र उपाय है प्रचलित और यथासंभव प्राचीन और प्रामाणिक पाठ से चिपक जाना और भूल कर भी उस में मनमाना सुधार करने की चेष्टा न करना। यदि किसी प्रतिभावान संपादक को कोई उपयुक्त पाठांतर मिले या सूझ पड़े तो उस का फुटनोट में उल्लेख या संकेत करना चाहिए जैसा कि बाबू श्यामसुंदर दास जी ने पृथ्वीराज रासो के संपादन में किया है। अस्तु—

वीसलदेव रासो की भाषा भी इसी प्रकार काल के चक्कर में पड़ कर बहुत कुछ विकृत हो चुकी है, पर जो भाषा हमारे सामने है उसी पर विचार करने के सिवा और दूसरा उपाय ही क्या है?

भाषा की प्राचीनता

यद्यपि विविध कारणों से वीसलदेव रासो की भाषा आज जिस रूप में हमारे सामने है वह उस के मौलिक रूप से बहुत कुछ भिन्न है, तो भी इस में कोई संदेह नहीं कि इस में प्राचीनता के चिन्ह इतनी मात्रा में मिलते हैं कि जिन के आधार पर हम इस भाषा को निस्संकोच सं० १२१२ के आस-पास की हिंदी का नमूना मान सकते हैं। यह तो हम जानते ही हैं कि आधुनिक आर्य-भाषाओं की निकटतक जन्म दात्री अपभ्रंश-भाषाएं हैं। परंतु प्राचीनतम हिंदी और बाद की अपभ्रंश-भाषाएं बहुत कुछ एकसी हैं, यहां तक कि व्याकरण और शब्द भंडार दोनों ही दृष्टि से उन के बीच के पार्थक्य को स्पष्ट करना एक प्रकार से असंभव है। उस समय के आस पास तथा उस के एक शताब्दी पहले से अपभ्रंश साहित्यिक सिंहासन पर आरूढ़ हो चुकी थी और फलतः कुछ दिन बाद सर्व-साधारण के बोल-चाल की भाषा धीरे-धीरे उस से अलग हो चली। बारहवीं शताब्दी तक भाषा-विपर्यय का वह समय आ गया था जो कि पहले भी कई बार आ चुका था। बुद्ध के समय में जिस प्रकार पाली या पुरानी प्राकृत ने संस्कृत को क्रमशः साहित्यिक सिंहासन से च्युत किया था उसी प्रकार पुरानी हिंदी ने धीरे-धीरे प्राकृत और अपभ्रंश को साहित्यिक पीठ से खिसका कर उन का स्थान ग्रहण करना आरंभ किया। परंतु इस प्रकार के भाषा-विपर्यय के आरंभ के कुछ दिनों तक दोनों पुरानी और नई भाषाओं में कुछ विशेष और स्पष्ट पार्थक्य नहीं दिखता। धीरे-धीरे यह पार्थक्य स्पष्ट होने लगता है और

कुछ दिन बाद नई भाषा का कलेवर इतना बदल जाता है कि उस में और पुरानी भाषा में बहुत थोड़ी समता रह जाती है।

अभी कुछ दिन पहले पृथ्वीराज रासो की ही भाषा प्राचीनतम हिंदी भाषा का नमूना समझी जाती थी। अब जब से वीसलदेव रासो का रचना काल सं० १२१२ निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गया है तब से इस की भाषा पृथ्वीराज रासो की भाषा से प्रायः पचास वर्ष पहले की और फलतः सब से पुरानी हिंदी मानी जाने लगी थी। परंतु अभी हाल ही में रायबहादुर हीरालाल जी की खोज में बरार प्रांत में करंजा के जैन मंदिरों में जैनी साधुओं के लिखे हुए कुछ ग्रंथ मिले हैं। इन का रचना काल दशवीं शताब्दी का है। इन साधुओं में पुष्पदंत, श्री चंद्र, तथा देवसेन सूरि के ग्रंथों की भाषा कुछ अंशों में अपभ्रंश और कुछ में पुरानी हिंदी दोनों ही कही जा सकती है। संभव है किसी खोज करने वाले को भविष्य में इस से भी पुरानी हिंदी के नमूने मिलें। परंतु जो हो वीसलदेव रासो के संपादक का यह दावा कि वीसललदेव रासो की भाषा ही प्राचीनतम हिंदी का नमूना है, अब अन्यथा सिद्ध हो गया है परंतु ऐसा होने पर भी वीसलदेव रासो की भाषा में अपभ्रंश और पुरानी हिंदी दोनों ही के लक्षण बराबर-बराबर स्पष्ट देखने में आते हैं। दूसरे शब्दों में इस की भाषा संयोगात्मक और वियोगात्मक दोनों ही अवस्था में है। हिंदी का प्रधान लक्षण—भाषा की वियोगात्मक अवस्था—वीसलदेव रासो में पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाई है। यह कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा। इस की भाषा में कारक संयोगावस्था की विधि अनुसार (अर्थात् शब्द को ही रूपांतरित कर के) तथा दूसरे शब्दों को जोड़ कर दोनों ही भाँति से बनाए हुए मिलते हैं:—

संयोगात्मक अवस्था — प्रथमा—बानराँ, ऊटाँ, तृतीया—इंद्रनी (इंद्रेण) षष्ठी—घरह (गृहस्थ) इत्यादि।

वियोगात्मक अवस्था — आधुनिक हिंदी में को, ने, का, की, के, से, में आदि जिन शब्दों के टुकड़ों को मूल शब्द में जोड़ कर तथा बिना उस के मौलिक रूप के विकृत किए हुए ही कारक बनाए जाते हैं। प्रायः उन्हीं के योग से बने हुए कारक इस ग्रंथ में भी बराबर मिलते हैं। भिन्नता केवल यही है कि कुछ कारक चिन्हों के रूप प्राचीन से जान पड़ते हैं, जैसे—'ने' की जगह 'नी' या 'नइ'; 'में' की जगह 'मँह', 'महि', 'माँह, 'मँझारि' इत्यादि; 'का' 'की' 'के' स्थान पर 'तणा', 'तणी', 'तणौ', 'कई', 'कै', इत्यादि; तथा 'से' की जगह 'सुं' 'सों', 'सू' तथा 'ते' इत्यादि।

क्रियाओं के रूप इसी प्रकार दोनों प्रकार से बने हुए मिलते हैं। एक तो आधुनिक भाषा की भाँति 'है', का प्राचीन रूप 'छइ' या 'हइ' आदि लगा कर, जैसे—करूँ हूँ, तिरूँ हूँ, इत्यादि; दूसरा संस्कृत की भाँति मूल क्रिया में परिवर्तन कर के, जैसे—बोलज्यँ, आणज्यो, होइ, आवस्याँ प्रणमूं, तथा भेटस्याँ इत्यादि।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस ग्रंथ की भाषा अभी त्रिशंकु अवस्था में है, न तो इस का रुख़ अभी निश्चित रूप से वियोगावस्था की ओर मुड़ा है, और न अभी यह प्राकृत और अपभ्रंश की वियोगावस्था से ही अपना पिंड छुड़ा सकी है। अधिकतर शब्दों में प्राकृतपना या अपभ्रंशपना मिला हुआ है। इन भाषाओं की प्रधान विशेषता—'न' के स्थान पर 'ण' का प्राधान्य, ("रषाभ्यां नो णः" के नियम का अंधाधुंध पालन) इस की भाषा में भी ज्यों की त्यों पाई जाती है, जैसे—मसाण, हंस-बाहिणि, गिणइ, रसायण, इत्यादि। बाद की प्राकृत तथा अपभ्रंश में संज्ञाओं के अत में प्रायः 'ड़' 'डी' या 'ड' लगा देने की प्रथा थी। यहां भी इस प्रकार की बहुत सी संज्ञाएँ मिलती हैं, जैसे—गोरड़ी, मोचड़ी, बइहनड़ी, आँखड़ी इत्यादि।

इस ग्रंथ में आए हुए संज्ञा शब्द अधिकतर प्राकृत तथा अपभ्रंश के तद्भव शब्द और कुछ देशज तथा संस्कृत के तत्सम शब्द भी हैं। कुछ थोड़े से विदेशी शब्द भी हैं जैसे—इनाम, ताजी, खुरासान, महल, किस्मत इत्यादि। यह शब्द फारसी तथा अरबी या तुर्की भाषाओं से आए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय तक मुसलमानों का संसर्ग भारतवर्ष में हो चला था और इस-लिए इस ग्रंथ में उन की भाषा के कुछ शब्दों की उपस्थिति अस्वाभाविक नहीं है।

वीसलदेव की भाषा के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह हो सकता है कि क्या इस की भाषा उस समय की साहित्यिक भाषा है, या सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा, अथवा इन दोनों में से एक भी नहीं है।

यह तो स्पष्ट ही है कि जिस समय का यह ग्रंथ है उस समय की साहित्यिक भाषा कुछ और थी, उसे हम अपभ्रंश या बाद की प्राकृत कह सकते हैं। क्योंकि किसी एक भाषा के साहित्यिक सिंहासन से उतरने और उस के स्थान में एक दूसरी भाषा के साहित्यिक पद पर आरूढ़ होने में समय लगता है और प्रायः दो तीन शताब्दियां बीत जाने के बाद पुरानी भाषा का पुट दूर हो कर नई भाषा अपनी पूरी छटा में विकसित होती है। और ज्यों-ज्यों नई भाषा का साहित्यिक विकास बढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह सर्वसाधारण तथा अल्पशिक्षितों के नित्य के व्याहार की भाषा से दूर होती जाती है। इसी प्रकार होते-होते एक समय ऐसा आता है कि साहि-त्यिक भाषा नित्य के व्यवहार की भाषा से बहुत दूर हो जाती है और लेखकों के ग्रंथ को समझनेवाले कुछ इने-गिने विद्वान् ही रह जाते हैं, और फलतः उन के ग्रंथ-लेखन के मुख्य उद्देश्य की ही हत्या हो जाती है। यही सोच कर बुद्ध ने अपने धार्मिक सिद्धांतों का लोगों की बोल-चाल की भाषा में हो प्रचार किया। संस्कृत के विद्वानों को बौद्धों का यह प्रयास उपहासास्पद और हेय जान पड़ा, पर उन्हों ने इस की कुछ परवाह न की, जनता उन के साथ थी। कालांतर में यह किस्सा प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी के पक्ष में भी दोहराया गया। प्राकृत के विद्वानों को देवसेन

सूरि (जिन की भाषा पुरानी हिंदी और अपभ्रंश दोनों ही कही जा सकती है) का प्रयास बड़ा उपहासास्पद प्रतीत हुआ। पर उन्हों ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। क्रमशः उन के दिखाए हुए रास्ते पर और लेखक भी चले। नल्ह को भी हम उन्हीं में से एक मान सकते हैं। परिवर्तनकालिक भाषा के लक्षण इन के ग्रंथ में स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। उस समय कुछ इने-गिने ही लोग परंपरागत साहित्यिक भाषा को छोड़ इस नई भाषा में रचना कर सर्वसाधारण की भाषा को साहित्यिक सिंहासन पर बैठाने का साहस कर सकते होंगे। कारण और कुछ नहीं केवल पुराने खुर्राटों द्वारा उपहास का भय। परंतु नल्ह ने कदाचित् इस की चिंता नहीं की।

उपर्युक्त विचारों के आधार पर हम यह मान सकते हैं कि नल्ह की भाषा उस के समय की बोलचाल की भाषा से बहुत-कुछ मिलती-जुलती हुई रही होगी। परंतु इस निष्कर्ष पर पहुँचने के पहिले हमें एक बात पर और विचार कर लेना चाहिए। यह हम ऊपर देख चुके हैं कि नल्ह ने स्वयं इस ग्रंथ को लिपिबद्ध नहीं किया था। यह बहुत दिनों तक (कब तक इस का ठीक पता नहीं) मौखिक रहने के बाद तब लिपिबद्ध किया गया। इस के संबंध में केवल यही कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ की भाषा-शैली, वर्णन-शैली, पद-विन्यास तथा शब्दों और क्रियाओं के रूप की परीक्षा करने पर यही धारणा पुष्ट होती है कि इस की भाषा सं० १२१२ के बहुत बाद की नहीं होगी। क्योंकि इस समय के पहले की हिंदी कविता के जो कुछ फुटकर पुराने दोहे आदि मिलते हैं उन की भाषा और इस ग्रंथ की भाषा में प्रांतिक भेद के सिवा कोई विशेष भेद नहीं प्रतीत होते। जो भेद मिलते भी हैं उन्हें ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कथा सुनानेवाले भाटों द्वारा उच्चारण की सुगमता आदि के विचार से बनाए गए हैं। क्रियाओं और संज्ञा शब्दों के रूप पर भी विचार करने से उन की प्राचीनता में कोई संदेह नहीं होता।

नल्ह कोई बहुत उच्च कोटि का कवि नहीं था। उस के ग्रंथ का जो कुछ भी मूल्य है वह भाषा-विज्ञान और भाषा के इतिहास की दृष्टि से। भाषा विज्ञान और

ग्रंथ का साहित्यिक मूल्य

प्राचीन हिंदी के विद्यार्थियों के लिए तो यह बड़ी ही उपयोगी पुस्तक है। परंतु विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से इस का मूल्य बहुत थोड़ा है। कविता के कोई भी मुख्य गुण इस में इतने स्पष्ट रूप से नहीं दिखते कि उन पर कुछ विशेष विचार किया जा सके। छंदों में शैथिल्य बहुत है। वर्णन-शैली भी कई प्रकार से दूषित जान पड़ती है। इस ग्रंथ में यात्राओं के वर्णन कई जगह आए हैं और प्रायः सभी जगह आल्हा की भाँति एक ही प्रकार के बंधे वर्णन मिलते हैं। कहीं-कहीं तो वही छंद ज्यों के त्यों रख दिए गए हैं। यदि इस को ही काव्य की आत्मा मानें तो कहना पड़ेगा इस ग्रंथ में ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं जहां पढ़ने वाला अनिर्वचनीय लोकोत्तर आनंद में अपने को निमग्न कर सके। रह गया कविता का बाह्य शृंगार, अर्थात् अलंकारों

और ललित तथा कोमलकांत पदावली आदि की बहार, पर इस का भी यहां वैसा ही अभाव है। यह कवि की एक मात्र रचना है और इस में प्रौढ़ता के चिन्ह बहुत कम हैं, पर तो भी एक बात कहनी पड़ेगी। कवि ने यथासाध्य अपनी रचना को श्रुति-मधुर और भाव-मधुर बनाने की चेष्टा की है। डिंगल काव्यों की वह कर्कशता जो उस समय के आस-पास के रचित अन्य ग्रंथों में पाई जाती है, इस में अपेक्षाकृत बहुत कम है। इस का एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है—कवि ने आद्योपांत युद्ध और युद्ध की तैयारियों के वर्णन से अपने को दूर रखा है। उस काल के प्रायः सभी कवि ऐसे हुए हैं जिन की रचना में युद्ध वर्णन का ही प्राधान्य होता था और बीहड़ भाषा तथा बीहड़ छंदों में राजपूतों के वर्णन से ही वे अपनी वृत्ति कमाते थे। एक मात्र उस समय की कविता का नियम ही यही हो चला था, पर इस दृष्टि से एक मात्र नल्ह ही उक्त नियम के अपवाद कहे जा सकते हैं। इन्हों ने यथासाध्य कोमल भावों के निरूपण में ही अपनी कवित्वशक्ति का उपयोग किया है, उग्रभावों का वर्णन शायद यह अपनी प्रवृत्ति या प्रवृत्त के प्रतिकूल पाते थे। दो-एक जगह राजमती के विरह वर्णन के समय इन की रचना में कुछ उच्च कोटि की सी कविता की झलक भी दिखाई पड़ जाती है।

बीसलदेव रासो

प्रथम सर्ग

हंस-गाहणि मिगलोचनि नारि । सीस समारइ[१] दिन गिणइ ॥
जिण सिरजइ[२] उलिगणा[३] घर नारि । जाइ दिहाड़ाउ[४] झूरिताँ[५] ॥१॥

गौरी-नंदन त्रिभुवन-सार । नाद वेदाँ थारे[६] उदर भँडार ॥
कर जोड़े 'नरपति' कहइ । मूषा[७] बाहन तिलक सेंदुर ॥
एक दंतउ मुख झलमलइ । जाणिक[८] रोहणीउ तप्पई[९] सूर ॥२॥

नाल्ह रसायण[१०] रस भरि गाई । तुठी[११] सारदा त्रिभुवन-माई ॥
उलिगणाँ गुण वरणताँ । कुकठ[१२] कुमाण[१३]साँ जिण कहई रास[१४] ॥
अस्त्री-चरित-गति को लहइ ? एकइँ आखर रस सबइ विणास[१५] ॥३॥

तुठी सारदा त्रिभुवन-माई । देव विनायक[१६] लागू हूँ पाय ॥
तोहिं लँबोदर बीनसूँ । चउसठि जोगिनि का अगिवाँण[१७] ॥
चउथ जोहारूँ खोपरा[१८] । भूलेउ अक्खर आणजे[१९] ठाइँ ॥४॥

सरसति सामणी करउ हउ पसाउ[२०]। रास प्रगासउँ बीसल-दे-राउ ॥
खेलाँ पइसइ[२१] माँडली । आखर आखर आणजे जोड़ि ॥
करजोड़ि 'नरपति' कहइ । 'नाल्ह' कहइ जिण लावइ खोड़ि ॥५॥

बारह से बहत्तरां हाँ मँझारि । जेठ बदी नवमी बुधवारि ॥
'नाल्ह' रसायण आरंभइ । सारदा तुठि ब्रह्म-कुमारि ॥
कासमीराँ मुख मण्डली । रास प्रगासों बीसल-दे राइ ॥६॥

---

[१] सिर के बाल सँवारती हुई । [२] उत्पन्न करती है (सं० 'सृज')। [३] बाहर गए हुए (सं० उद्गताः) । [४] दिन (जैसे दिन 'दहाड़े')। [५] विरह के दुख से दिन दिन सूखती हुई । [६] तुम्हारे । [७] चूहा । [८] जानो, मानो । [९] तप रहा है (सं० तप्यते) । [१०] रसज्ञ । [११] संतुष्ट (सं० तुष्ट) । [१२] कुकथ्य, जो कहने योग्य न हो । [१३] कुमनुष्य, बुरे लोग । [१४] गीत, गाथा । [१५] विनाश । [१६] गणेश । [१७] अगुआ, अग्रगामी । [१८] खोपड़ी, नारियल । [१९] लाना (सं० आनयेत्, प्रा० आणिजर; अ० आणाजे) । [२०] प्रसाद । [२१] प्रवेश करती है (सं० प्रविशति)

गायो हो रास सुणै सब कोइ । साँभल्यों[1] रास गंगा.फल होइ ॥
कर जोड़े 'नरपति' कहइ । रास रसायण सुणै सब कोइ ॥७॥

गावण हार माँडइ[2] (अ)र गाई । रस कइ (सम) यइ वँसली[3] वाई[4] ॥
तालकई समचइ घुँघरी[5] । माँहिली[6] माँडली छीदा[7] होइ ॥
बारली[8] माँड़ली सांघणा[9] । रास प्रगास ईणी विधि होइ ॥८॥

नाल्ह वषाणइ छइ नारी जू धार । जिहां बसइ राजा भोज पँवार ॥
असीय सइहस सजे करि मैमत्ता । पञ्चा त्तोहण जे कइ मिलइ नरिंद ॥
कर जोड़े नरपति कहई । विमुन पुरी जामे वसइही गोव्यंद ॥६॥

धार नगरी राजा भोज नरेस । चउरास्या[10] जैकै वसइ असेस ॥
राज बेलाबल[11] अति घणइँ । राजकुवंरि अति रूप असेस ॥१०॥

बेटी राजा भोज की । उनंत-पयोहल-वाली वेस ॥
राजा भोज कइ मिल्यो दिवाण । मील्या सुर नर इंद्र विमान ॥
राई राणा चहु देसी का । राणी पूछइँ सुणि राइ नरयंद ॥
बारह बहतई आपणइ[12] । कुँवर परणावो सोझउ[13] बीद[14] ॥११॥

पांड्या तौहि बोलावइ हो राय । ले पतड़ो जोसी बेगो तुं आई ॥
सूँदिन कहे रूड़ा[15] जोवसी[16] । चतुर नागर ईसउ[17] आण ज्यों चंद ॥
सुर नर मोहई देवता । जिम गोवल मांहि सोहइ गोव्यंद ॥१२॥

राजा भोज बोलइ तिणी ठाई । चिहुँ षंड जोवज्यो[18] भूपती राय ॥
तेड़उ[19] पुरोहित राव कउ । महूरत लगन गिणे तिणि ठाई ॥
कर जोड़ राजा कहई । राजमती को करउ विवाह ॥१३॥

ले महुरत चाल्योऊ तिणि ठाई । चिहुं षंड जोवज्यो भूपति राय ॥
प्रोहित राजा भोज कउ । हियड़इ हरिष मनि रंग अपार ॥
चंद-वदन कइ कारणइ । कुण वर वरसी भोज कुँवार ? ॥१४॥
जोयो छै तोड़उ जेसलमेर[20] । जउआं छइ नयर[21] अयोध्या को देश ॥
ढीली मंडल[22] पुणि जोईयउ । जउयो छइ मथुरां मंडण राय ॥
एको चित्त न मांनीयौ । नयणे[23] दीठो[24] तब बीसल राय ॥१५॥

---

[1] सनने से । [2] मंडन करै, बनावै । [3] बाँसुरी । [4] बजती है । [5] घुँघरू । [6] मझली । [7] क्षीण । [8] बाहरणी । [9] घनी । [10] मुसाहिब, सभासद (सं० चतुरास्या—चारों ओर बैठने वाले) [11] राजा की प्यारी स्त्रियाँ (राजवल्लभा) [12] बहते हुए, बीतते हुए । [13] खोजो । [14] वर । [15] अनुभवी, चतुर (रूद) । [16] ज्योतिषी । [17] ऐसा (सं० ईदृक्) [18] जोहना, राह देखना, खोजना । [19] हेरा, बुलाया । [20] जैपुर राज्य के एक नगर का नाम । [21] नगर । [22] दिल्ली मंडल । [23] आँखों से । [24] देखा (सं० दृष्टः) ।

पांड्यौ तोहि बोलावइ राय । लगन सोपारी लेकरि जाहि ॥
गढ़ अजमेरां गम करउ । चउरी बइसी पषालज्यो[१] पाव ॥
बेटी राजा भोज की । राजमती बर बीसल राव ॥१६॥

पांड्यो-प्रधान चल्यौ तिणी ठाइ । गढ़ अजमेर पहूँता जाइ ॥
बाई करी राय जुहारीयउ[२] । माणिक मोती चउक पुराय ॥
पाव पषाल्या राव का । राजमती दीई बीसलराव ॥१७॥

हुई सोपारी मनि हरष्यो छइ राव । वाजित्र[३] वाजइ नीसांणो घाव ॥
गढ़ माँहि गूडी[४] उछली[५] । घरि घरि मंगल तोरण च्यारि ॥
चहुआंण वंस उधरउ । जो घरि आवी जाति पंमार ॥१८॥

ब्राह्मण समदइ छइ बीसल राय । हांसलउ[६] घोड़उ कुलह[७] कवाई[८] ॥
दीन्हउ सोनउ सोलहउ[९] । पाट पटोला[१०] बीड़ा पान ॥
कर जोड़े 'नरपति' कहइ । पाड्यां थोड़उ म्हाँको राषज्यौ[११] मान ॥१६॥

देइ कुंवर चाल्यो तिणि ठाई । राजा भोज जूहारय्यउ जाई ॥
सुणि हरष्यौ मनि अति घणइं । वावै जवारा[१२] राजकुमार ॥
चिहुँदिसि नौतां मोकल्या[१३] । षंड षंड रा आवीया राई ॥२०॥

फिरइ वीनउला राजकुमार । षंड षंड का मिल्या खंधार ॥
नयरी नइँ मांढ़े बीचंइ । हस्ती पायक[१४] अंत न पार ॥
भोज तणई[१५] नउँतइ मील्यौ । जाणो उदयाचल उगइ छइ भाँण[१६] ॥२१॥

फिरइ विनउला[१७] वीसल राय । बाजिव बाजइ निसाणो घाई ॥
जीमणवार साजत हुइ । कुँ कुँ[१८] चन्दन पाका पान ॥
कर जोड़े राजा कहइ । चालउ चउरासी राव की जान ॥२२॥

परणवाँ[१९] चाल्यौ बीसल राय । चउरास्या सहु[२०] लिया बोलाई ॥
जान तणी[२१] साजति[२२] करउ । जीरह[२३] रंगावली पइहरज्यो टोप ॥

---

[१] धोना, पखारना । [२] प्रणाम किया । [३] बाजा । [४] गुड्डी । [५] उड़ी (जान पड़ता है उन दिनों उत्सव के समयों में गुड्डी उछालने (उड़ाने) की चाल थी; मान कवि ने भी 'राज विलास' में एक ऐसे ही अवसर पर गुड्डी उछाली है । [६] हँसुली, गले में पहनने का एक आभूषण । [७] कुलही, ऊँची टोपी । [८] क़बा, लंबा अचकन । [९] सोलहवाँ अर्थात् उत्तम श्रेणी का । [१०] रेशमी तथा अन्य प्रकार के उत्तमोत्तम कपड़े । [११] रखना । [१२] जो बोता है । [१३] भेजा । [१४] पैदल । [१५] कन्या, तनया । [१६] भानु, सूर्य । [१७] भँवरी फिरता है । [१८] कुमकुमा, केसर । [१९] शादी करने (परिणयार्थ) [२०] सब । [२१] 'की' ('तरता' 'तरणी' ये सब राजस्थानी में संबंध के चिन्ह हैं) [२२] सजाओ (सजत) [२३] जिरा बख्तर ।

घोड़ा बैसज्यो[1] हाँसला । कडि[2] सोनहरी, हाथे जोड़ी ॥२३॥
जान सजाई बीसलराव । खेह[3] उड़ी रवि गयो लुकाई ॥
कोतिग[4] आव्या देवता । कोतिग आव्या इन्द्र विमान ॥
लूण[5], उतारे अपछरा । धनि धनि हों बीसल चहुवाण ॥२४॥
पूजी विनायक चाल्यो छइ जान । चौरास्या बहू दीधउ[6] छइ मान ॥
आठ सेहस नेजा-धणी । पालखी वइठा सहस पँचास ॥
हाथी चाल्या दोढ़सो । असीय सेहस चाल्या केकाण[7] ॥
रथ ऊपरि धज फर हरई । खेहाडमर[8] नवि[9] सूझइ भाण ॥२५॥
परणवाँ, चाल्यो बीसलराव । पंच सखी मिलि कलस वन्दावि ॥
मोती का आषा[10] किया । कूँ कूँ चंदन पाका पान ॥
अमली समली[11] आरती । जाइ बघेरइ[12] दियो मिलांण ॥२६॥
जाइ बघेरइ दियो मिलाण । बचउ ब्राह्मण वेद पुराण ॥
मङ्गल गाव कांमनी । पंच सवद तणतु[13] झुणकार ॥
मेघाडंमर जत्र सिर दियउ । आज सफल राजा जनम संसार ॥२७॥
पाई कंकण सिर बंधियो मोड़[14] । प्रथम पयाणउ दूरग चितोड़ ॥
राता[15] फूदाँ[16] पाटका । ब्राह्मण उचरइ वेद पुराण ॥
मंगल गावइ कांमनी । उठीय षेह नवि सूझै भांण ॥२८॥
परणवा चाल्यो बीसलराव । बाज्या ढोल नीसांणे घाव ॥
डोरउ बांध्यउ पाटको । पालीय[17] परगह[18] अंत न पार ॥
पालखी (की) चाली सात सइ । नाल्ह कहइ राव पूरज्यो आस ॥२९॥
टाटर पाषर[19] संजति कियो राव । धार नगरी राजा परणवा जाइ ॥
एक बासउँ[20] और बाटइ[21] बसउँ । उठी प्रभाते सौंण[22] वदाई ॥
मेघाडंमर सिर छत्र ठयो । देश मालगिर चालियो राई ॥३०॥
पुर पाटण थी चाल्यो राव । बीसलपुर जाई दियो मीलाण ॥
कोट कोटी कोठी सामधी । पाली परिगह अंत न पार ॥
बाजा बाजइ डुबडुभी । परणवा चाल्यौ बीसल राव ॥३१॥
सांमजि करि उभा[23] रजपूत । हरषि नरायण दीधो सूत ॥

---

[1] सवार हुआ । [2] कड़ा । [3] धूल । [4] कौतुक । [5] नमक उतारा (एक रिवाज) [6] दिया । [7] केकय देश के घोड़े । [8] धूलराशि । [9] नहीं । [10] अक्षत । [11] उलटी सीधी । [12] एक स्थान का नाम । [13] तंत्र, तार के बाजे । [14] मुरेठा, पाग । [15] रात (रक्त) । [16] फुलरा । [17] पालकी । [18] परिजन, नौकर चाकर (परिग्रह) । [19] हाहर पारवर घोड़ के साज और झूल को कहते हैं । [20] बासा पड़ाव । [21] बाटमें, राह में । [22] शकुन । [23] खड़ा हुआ ।

कड़ी सोनहरी झलमले। बाजा हो[१] पलेटा[२] लावी झूल ॥
पग मचकंती मोजड़ी[3] । असंष[४] सार हर्ला।[५] बाजइ ढूल ॥३२॥

गढ़ अजमेरां को चाल्यो राव । परणवा चाल्यो भोज कुमार ॥
देश मालागिर गम कियो । राजकुली साथइं तिणि ठाई ॥
धार नगरी नीडा गया । डेरा दीवाड्या वीसल-राव ॥३३॥

देस मालागिर हुवउ हो उछाव[६] । राजमती कउ रचउ वीवाह ॥
च्यारि खंड जीव नउतीया[७] । मिल्या हो चउरासीया अंत न पार ॥
भांट चारण कुण अंत जिणइं । विप्र वेदां करे[८] आठ हजार ॥३४॥

गलइ......उभउ छइ देव । लावण लड्डू परुसज्यो सेव ॥
घृत सत्यासी[९] को मूंकिज्यो । राय भोग मंडोवरा[१०] मूँग ॥
उभय राजा सीष दइ । जीमई चउरासिया तुर्गे[११] तुंग ॥
माघ पंडित बोलइ तिणी ठाई । चउघड़्यउ बाजइ[१२] सीह दुवारि[१३] ॥
सांमेला की बेला हुई । राजी का राजपूत माटो तुषार ॥
मनमानैं जो पलाणजई[१४] । हिव[१५] चालो ठुकराला संमहा जानि ॥३५॥

हुऔ सँमेलौ जुहार जुहार । पान अटागर काथ श्रीकार ॥
उतरेव लाड— लवाजीवा । जांन को कटक असीय हजार ॥
जांणे उदयाचल ऊलट्यो । परदेसी जाइ लोपी छइ धार ॥३६॥

कूँवर चढ़ावति बोलै बोल । अगर चंदन कीजइ षोल (र) ॥
भला भला ताजी चढै । आचरै बीड़ा पाका पान ॥
ऊटां लीजइ आकरा । चालौय चतुरास्या सँमहा जान ॥३७॥

धार नगरी आव्यौ बीसलराय । पंचसषी मिली देषिवा जाय ॥
मोती थाल भराविया । माँहि बीजउरउ[१६] तिलक सिंदूर ॥
अमली समली आरती । जाणी प्रतच्छ उगीयो सूर ॥३८॥

बीसल आव्यौ धार मँझार । मन हरषी घन राजकुमार ॥
चाल्यौ सषी करौ आरती । सकल दिसो जीसो पुनिम चंद ॥
सुर नर मोहै देवता । जिम गोवल माँहि सोहइ गोव्यंद ॥३९॥

---

[१] घोड़ों का (सं० वाजी-घोड़ा) [२] फेरना। [3] जूती। [४] असंख्य। [५] साँडनी, ऊँटनी। [६] उत्सव। [७] निमंत्रित। [८] वेदों का पाठ करते हैं। [९] साचोर (यहाँ का घी प्रसिद्ध है। [१०] एक जगह जहाँ का मूंग अच्छा होता है। [११] झुंड के झुंड। [१२] चौथी घड़ी का घड़ियाल बजते ही। [१३] सिंहद्वार। [१४] पलानी या जीन कसना। [१५] अभी। [१६] बीजौरा नींबू की जाति का एक वृक्ष जिस के फूल सफेद और फल बड़ी नारंगी के इतने बड़े होते हैं।

धार नगरी आयो बीसलराव । जानीवासउ[1] दीयौ तिणि ठाव ॥
चउरास्या सहु उतरथा । बाजइ ढोल निसाणे घाव ॥
आड़ि बिनउला[2] संचरथउ । तोरण आवीयो बीसलराव ॥४०॥

देस मालागिरि भोज छइ राव । राजमती को रच्यो हो विवाह ॥
जान माहइ नौता[3] फिरइ । चउथ ब्रहसपतिवार आदीत ॥
नावी[4] फीरइ उतावला । स्वाति नपत्र आठमी परणेत ॥४१॥

तोरण आव्यो बीसलराव । पंच सखी मिली कलस वंदावि ॥
मोती का आपा किया । कुँकुँ चंदन तिलक सिंदूर ॥
अमली समली आरति । जाणिक तोरण उगीयो सूर ॥४२॥

तोरण आवीयो बीसलराव । वर-बेहड़ा बंदावइ नारि ॥
जूसल मूसल[5] वंदीया । कुँकुँ चंदन अंग बिलास ॥
माथै मुकुट सोना तणौ । (राजा) इन्द्र सभा मोहै कविलास ॥४३॥

माघ पंडित बोलइ तिणि ठाय । हथलेवो[6] वेगो मँगाय ॥
माघ पंडित ईम उच्चरई । ब्रह्मण वेदतणां झुलकार[7] ॥
मंगल गावई कामनी । राज-कुंवर घाली वर माल ॥४४॥

माश्रम[8] जोसी देश्रम व्यास । माघ-आचारज कवि कालिदास ॥
ए च्यारइ वेद उच्चरइ । चउरी दीसउ मांडहा मांहि ॥
राजमती[9] राही (या) जी सी । इस कुंवरि नहीं त्रिभुवन मांहि ॥४५॥

माह मास सीय[10] पड़े अतिसार[11] । राजमती घन अखय-कुमारि ॥
देही कण इंगार जू तपै । रजर मांथ भयउ उगतउ भाण ॥
माघ पंडित ईम उच्चरई । चउरी कुंवर वैसाड़ी छई आंणी ॥४६॥

पंच सखी मिलि बइठी आई । राजा है माय पूजावण[12] जाई ॥
मोती का आखा किया । काथ सोपारी पाका पान ॥
हइ हथलेवउ जोड़ीयउ । जाणिक रुकमिणी मिलीयो कान्ह ॥४७॥

पांटै बइठा दुई राजकुमार । पहिरी वस्त्र जादर-सार ॥
कान्हे कुंडल आड़ीया[13] । सरब सोनारो मुकुट लीलाट ॥
रूप देखि राजा हंसई । त्रिभुवन मांहइ छइ जाति पमार ॥४८॥

---

[1] जनवासा । [2] एक रस्म । [3] न्योता ; निमंत्रण । [4] नाई । [5] विवाह के समय की एक रस्म जिस में वर की मूसल और सूप आदि से आरती की जाती है । [6] हाथ में हाथ देने की रस्म ; पाणिग्रहण ; देखो—दियो हियो सँग हाथ के, हँथलेवा ही हाथ (बिहारी) । [7] ध्वनि । [8] एक नाम । [9] राधिका । [10] सीत, शीत, ठंढ । [11] अधिक [12] मातृका पूजन । [13] लटकते हैं ।

चउंरी मांहि बइठउ छइ राई । पंच सखी मिलि मंगल गाई ॥
मोती चउक पुरवीया । बाजीत्र बाजै घुरइ निसांणा ॥
चहुवांण बंश उधरयो । जइ घरि आवी जाति पमार ॥४६॥

देस मालागिर डूबउ हो उछाह । राज कुंवर को हूवउ विवाह ॥
चंदन काठ को मांडहो[१] । सोना की चौरी मोती की माल ॥
पइहलइ फेरइ राय दौड़ाइचौ[२] । आलीसर[३] सों देइ कुडाल[४] ॥५०॥

दूजइ फेरो जब फेरइ छै राय । सहु अंतेवर[५] लियो बोलाइ ॥
राजमती·········· दाडाइचौ । दीया साधन अरथ भंडार ॥
दीयो देस मंडोवरो । समंद सोरठ सारी गुजरात ॥५१॥

तीजो फेरो जब फेरयो छइ राय । पाट महादे[६] राणी लीई छइ बुलाई ॥
राजकुंवर दाड़ाइचौ । दीघा सेंभर नागर चाल ॥
तोडा[७] टोक[८] विछाली[९] छो । मांडल गढ से ऊपर माल ॥५२॥

चउथइ फेरइ जबि दीज्यो छइ थोल[१०] । नीरवाड़ी का जांचत डोल ॥
हस्यारथ[११] करे चेल की[१२] । भोज घरणां देसी[१३] तेइ बहोड़ ॥
कहइ समझाई, कर पेलवी[१४] । राजा की सीव तुं मांणी चितोड़ ॥५३॥

कुंवर अवधारइ[१५] । सूणि संभारयाराव ॥
बीनती म्हांकि चितह सुहाई । भोज मया कर बीसलराव ॥५४॥

रहि रहि कुंवर न बोली अयपांण । धार सूं लछउ मांगी उजेणी ॥
मांगी चंदेरी, षेडलै । मागी अजोध्या देवता मोड़ ॥
इन्द्रनी (उ) पायो आपहइ । सरग का देवता अलंभ चितोड़ ॥५५॥

धी को बोलनूं मानीयो बाप । कांई न मारी[१६] राजा पाई बचन ॥
कांई कहैसी सासरई । गांव न उतरयौ हीया[१७] थी एक ॥
लंका कउ माल परणते लीयउ । थारउ कांई होसी ईणी चीतोड़ बिसेष ॥५६॥

उचितयो राजा बचन दीयो भोज । सूणि बाई बचन तै कह्या चौज़[१८] ॥
ज्यान की लिय पटंतरइ[१९] । धीय तणइ सिर सोवन मौड़ ॥
धीय थी सग[२०] राजा हुवो, धीय । इवइ धीह है धमि आपीयो[२१] चीतोड़ ॥५७॥

परणइ, राजा, बीसलराय । माघ पंडित है हुवउ पसाव ॥
बंभण भाट तेड़ावीया । दीघा ताजी उतिम ठाई ॥

---

[१] मंडप । [२] दहेज । [३], [४] जगह के नाम । [५] अंतःपुर । [६] पट्टमहादेवी । [७], [८] जगह के नाम । [९] विशाल । [१०] थोड़ा । [११] हँसी, मज़ाक । [१२] चेरी, दासी । [१३] देगा (सं० दास्यति) । [१४] प्रणाम, प्रार्थना । [१५] सोच समझ कर (सं० अवधार्य) । [१६] मेरी । [१७] हृदय । [१८] सुंदर ; चोज़ [१९] बराबरी । [२०] सगा । [२१] दिया ।

दीधो सोनो सोलहो । दीधी सुरह सबछी[१] गाई ॥५८॥
हुई पहिरावणी हरषीउ राई । अंचल बंधी राजकुमार ॥
चौरी चढीयो भोज की । बाजइ बरगूं भूगल भेर ॥
हुवउ षंधारउ[२] रावलइ । धार कउ द्विज चाल्यो अजमेर ॥५६॥

राजा भोज आयो तिणी ठाई । गउरोउ जीमाड्यो[3] छै बीसलराय ॥
चउरास्या सहुको मील्यो । पालो परिघउ सयल असेस ॥
पहिरावणी राजा करइ । दे वर-दषीणां लागइ छइ पाय ॥६०॥

सासू जूहारवा[४] चाल्यों छइ राई । बाजिय बाजै निसांणे घाई ॥
कुलीय छत्तीसइ साथ छई । माणिक मोती भरया नारेल ॥
भाणमती आसीस दइ । अविचल राज कीज्यो अजमेर ॥६१॥

मोकलावी[५] छइ भोज कुंवार । दीधी दासी सहस दुई चारि ॥
दीधी वाला[६] पालषी । दीधा हाथी उतम ठाई ॥
कुंवर बलावे बाहुड़्या[७] । राजमती मूकलावी सुभाई ॥६२॥

राजमती मुकलावी सुभावी । सारी जान माहइ हुओ हो उछाह ॥
सुणी प्रधान राजा कहई । मोहि तुठो छइ सिरजणहार ॥
आषर लिखाया वेहका[८] । जाइ सुखासण बैइठो छइ राय ॥६२॥
अयरापति[९] चढ़ि चाल्यो राय । लो अस्त्री अरधंग वइसाय ॥
ज्यूं ईश्वर संग गोरज्या[१०] । चहुबाण बंस हुव (उ) उछाह ॥
राजा कहइ परधान सुं । गढ़ि अजमेर पहुँचा जाई ॥६३॥

दीठउ आनसागर[११] समंद तणी बहार । हंस-गवणी मृग लोचणी-नारि ॥
एक भरइ बीजी[१२] कलिख करइ । तीजी घरी[१३] पीवजे[१४] ठंडा नीर ॥
चौथी घन सगर जूं घूलई[१५] । ईसो हो समंद अजमेर को बीर ॥६५॥

हुवउ पइसारोउ[१६] बीसलराव । आली सयल अंतेवरी राव ॥
रूप अपूरब पेषीयइ । इसी अस्थी नहीं सयल संसार ॥
ईसीय न देवल-पुत्तली । जइ घरि आवी भोज-कुंवार ॥६६॥

जाइ सिंघासण बइठो छइ राय । डोरो[१७] छोरी, जुहारी छइ मास ॥

---

[१] बछड़े के साथ। [२] एक रस्म। [3] भात खिलाया। [४] प्रणाम करने के लिए। [५] बिदा करते हैं। [६] ज़नानी। [७] बहुर आया, लौट आया। [८] विधि, ब्रह्मा। [९] ऐरावत हाथी। [१०] गौरी, पार्वती। [११] यह एक झील का नाम है जो अना' या 'अनावंग' देवी के नाम से प्रसिद्ध है। [१२] द्वितीय; दूसरी। [१३] खड़ी। [१४] पीती है। [१५] घोलती है, अर्थात् जलक्रीड़ा करती है। [१६] पइसार-प्रवेश-प्राढार-(विवाह करके लौटे हुए वर का घर में प्रवेश) [१७] कंकण छोड़ा।

सेज पधारी राव की । अतिरंग स्वामी सुं मीली राति ॥
बेटी राजा भोज की । राजमती रंग बीसलराव ॥६७॥

परणी आयउ बीसलराव । बाजइ गुहिर नीसांणी घाव ॥
गढ़ मांहि गुड़ी उछली । गण गोत्रज जुहारि माई ॥
चउरास्या सहू वाहूड्या । राजा सेज पहुँतो जाई ॥६८॥

धन धन पिता, धन तोरी माय । जीणी प्रणामुँ राजा बीसलराव ॥
भोज-तणी चउरी चड़्यो । राजमती परणी रंग मांहि ॥
व्यास बचन ईम उचरई । दिन दिन प्रतिपे[1] बीसलराई ॥६९॥

तोही आँणू भइरव[2] चांपा काफूल । चोवा चन्दन अंग कपूर ॥
पाका पान घउंटहुली[3] । जाई सेवती नीखाली का फूल[3] ॥
सांझ समइ राय बोलसी । हँसि हँसि बोल (ई) अबला मूंध[5] ॥७०॥

भयो हो सवारौ[6] बीसलराय । भोज कुँवर हइं चित्त लगाया ॥
अंतेउर महूँ बीसर्‍यो[7] । दुईकूउ हँस[8] भयो इक ठाई ॥
अहिनिसि[9] चित न वीसरई । राजमती रंग बीसलराय ॥७१॥

ईणि अंतर बीसल-दे-राय । सवा लाख पाईगह केकांण ॥
हाथी घूमइ जे सात-सइ । गढ मढ मंदिर उत्तिम ठाई ॥
देषे राई मन हरषियौ । गरब करि बोल्यो छइ चहुवांण ॥७२॥

साठ अंतेवर राजकुमार । साघलां ऊपरि[10] जाति पमांर ॥
बीसल-दे तीणी रंजीयौ । च्यार पौहर[11] नीतु वीलसइ भोग ॥
सैज सूखासण कूंवरी[12] । राजमती बीसल-दे जोग ॥७३॥

'नरपति' व्यास कहइ करि जोड़ । तो तूठा तैंतिसौ कोड़ि ॥
रास स्वयंबर नीपजइ[13] । राजमती बीसल चहुवाण ॥
बहु संवादइ[14] चालीयउ । तास रसायण करूँ बखाण ॥७४॥

॥ इति प्रथम खंड ॥

---

[1] प्रताप बढ़े । [2] भैरव देवता । [3] नागरवेल । [4] निवारी का फूल । [5] मुग्धा ; भोली भाली । [6] सवेरे । [7] भूल गया । [8] जान ; प्राण । [9] रात दिन । [10] सब के ऊपर । [11] पहर । [12] कोमलांगी । [13] हो चुका (सं० निष्पादित) । [14] समाचार ।

जगनिक (जगनायक)

कहा जाता है कि आज कल आल्ह-खंड नाम से जो वीरगाथा प्रसिद्ध है, उस का रचयिता जगनिक या जगनायक नाम का भाट था। विद्वानों को इन के ऐतिहासिक पुरुष होने से संदेह है। इन का वर्णन पृथ्वीराज रासो के जिस खंड (महोबा खंड) में है उसे वह लोग प्रक्षिप्त मानते हैं। परंतु यह धारणा बहुत युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। यह निश्चय है कि महोबे के सिंहासन पर सन् ११६५ ई० में परमाल या परमार्दि देव नाम के एक राजा आरूढ़ हुए थे। यह भी विश्वास करने के हमारे पास पर्याप्त कारण हैं कि वह समय ऐसा था जब कि सभी राजाओं के दरबार में वीरगाथाओं की रचना करने वाले तथा अपने अपने आश्रयदाताओं के युद्ध तथा विवाहादिक के वृत्तांतों को लिपिबद्ध करने के लिये एक योग्य भाट, चारण या कवीश्वर का रखना अनिवार्य समझा जाता था। यह भाट कवि होने के साथ ही साथ बहुधा उच्चकोटि के शूर, वीर और योद्धा भी होते थे। प्रायः सभी समय यह अपने आश्रयदाताओं के साथ रहते थे और जीवन की अनेक मुख्य मुख्य घटनाओं को पद्यमय रचना में लिपिबद्ध करते जाते थे। प्रकृत युद्धस्थल में भी यह सामंतों के साथ रह कर वीररस का उद्रेक करने वाले चुभते हुए छंदों को सुना सुना कर योधाओं का जोश तो बढ़ाते ही रहते थे पर समय समय पर स्वयं भी तलवार लेकर पिल पड़ते थे। इन कामों के सिवा ये बहुधा मंत्री, राजदूत, भेदिया तथा कूटनीतिज्ञ आदि का काम भी करते थे। महाकवि चंद इसी ढंग का कवि था। जगनिक को भी हम परमाल के यहां का चंद कह सकते हैं। प्रस्तुत आल्हखंड के आभ्यंतरिक प्रमाणों के अनुसार यह परमाल का भांजा था। महोबे के संकटकाल में इस ने कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे। जब पृथ्वीराज ने महोबा को घेर लिया था और वहां के दोनों मुख्य वीर आल्हा और ऊदल माहिल के कुचक्र से महोबे से निकाले जाकर कन्नौजनरेश जयचंद के आश्रय में रहने लगे थे तब इसी जगनिक को कन्नौज भेजकर इन दोनों भाइयों को मनाकर बुलाने के लिए भेजा गया था। इस गुरुतर कार्य का भार जगनिक ने परमाल की रानी मल्हना के आग्रह से अपने ऊपर लिया था। आल्ह-खंड में यों लिखा है :—

कवि-परिचय

आल्ह-खंड का प्रमाण

"आधी राति के तब समया में, मल्हना पलकी लई मँगाय।
दुइ हलकारा लिये साथ में, अपनों कूँच दियो करवाय।
गै हरकारा जगनायक पै, औ जगनिक से कही सुनाय।
मल्हना आई दरवाजे पर, जल्दी चलो हमारे साथ।
जगनिक आए दरवाजे पर, मल्हना धाती लियो लगाय।
रोय के महल्ना बोलन लागी, हमपर बीर चढ़े चौहान।
बिपति हमारी तुम मिटवावौ, आल्है खबरि सुनावौ जाय।
बोले जगनिक तब मल्हना ते, तुम सुनि लेउ धर्म की बात।
तीन तलाकें दइ राजा ने, औ भादों में दियो निकार।
हम जो जै हैं उन आल्हा पै, हम को मरिहैं तुरत बंधाय।

इत्यादि, इत्यादि

इसी प्रकार बहुत अनुनय विनय के बाद जगनिक जयचंद के नाम परमाल की सहायता भिक्षा-संबंधी चिट्ठी लेकर कन्नौज जाता है। उसने बड़ी बुद्धिमानी से आल्हा को लौटने पर तैयार किया पर जयचंद किसी तरह उन को आने नहीं देना चाहता था और संभव था कि वहीं आल्हा और जयचंद के बीच तलवार खिंच जाती पर एक बार फिर जगनिक की बुद्धिमानी और सभाचातुरी काम दे गई। उसने जयचंद से आल्हा और ऊदल को लिवा जाने की आज्ञा ही भर नहीं पर महोबे की रक्षा के लिए जयचंद के भतीजे लाखन की अधीनता में पचास हज़ार की सेना भी माँग ली। अंत में इसी लड़ाई के अंतिम काल में जगनिक के अपूर्व साहस के साथ लड़ मरने का भी वृत्तांत है।

पृथ्वीराज रासो का प्रमाण

पृथ्वीराज रासो के 'महोबा समय' में भी जगनिक के संबंध का कुछ वृत्तांत मिलता है। सारांश दोनों ही वृत्तांतों का प्रायः एक सा है पर कुछ विशेष बातों में थोड़ी विभिन्नता है। सब से विचारणीय बात तो यह है कि रासो में जगनिक को भाट कहा है पर अल्हा के अनुसार उसे राजपूत मानना पड़ता है, क्योंकि वह परमाल की बहिन का लड़का कहा गया है और राजमहिषी मल्हना उस से पुत्रवत् स्नेह रखती हुई उसे छाती से लगाती है—

'जगनिक आये दरवाजे पर, मल्हना छाती लियो लगाय"

पर रासो में परमाल स्वयं कहता है—

बुल्लि सुनत परिमाल। बुल्लि काइथ कल्यानह ॥
बुल्लि बैस नारैन। गौर सारंग मलिनह ॥
गहर वार गोयंद। भाट जगनक ढिग बुल्लिय ॥
प्रोहित केशव समुझि। राज बनिय बर खुल्लिय ॥

फिर आल्हा के अनुसार मल्हना ने पृथ्वीराज से केवल पंद्रह दिन युद्ध स्थगित करने की 'मोहलत' माँगी थी—

"मोहिलति देयँ पंद्रह दिन की, सोरहें देहों डाँड़ भराय।"

परंतु रासो के अनुसार दो महीने की 'मोहलत' मांगी गई थी—

"रानी मलहन दे यह भाषिय। राजा जूझ माँस दोय राखिय॥"

और शेष वृत्तांत जगनिक के संबंध का दोनों गाथाओं में प्रायः एक सा है। दो एक उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जायगा—

"गय जगनक कनवज्ज। दीन आल्हा कर पत्रिय॥
ऊदल ईदल जोग। दई देवल दे मंत्रिय॥

+ + ×

सुनि जगनक किय बत्त। आल्ह बुल्यौ करि वानिय॥
लुस्यो महोबौ नगर। कुट्ट चंदेल गुमानिय॥

+ + +

जब जगनक कह विरद विसालह। दीनी अरज लिषी परिमालह॥
करैं चाकरी सेवा ठाइय। पिथ्थज पर सुइ कुमक पठाइय॥

इत्यादि, इत्यादि

भाट और राजदूत के सिवा रासो के अनुसार जगनिक को बड़ा पराक्रमी योद्धा भी मानना पड़ता है—

"रूपि जगनक रन माही। हथ्थ वाहै वर हथ्थिय॥
कियौ कान्ह मूरछाह। वियौ कयमास समथ्थिय॥
हनियौ सैन हजार। रुंड नाच्यौ विन सीसह॥
मानि जोर पृथिराज। पील मारयौ करि रीसह॥
कीनौ कहाव रन साझ कढ़ि। लोह लहरि खँड मार झरि॥
जंपी सुचंद बानी बरनि। भाट ठाट कीनौ कहर॥

आल्हा और रासो दोनों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि परमाल के दरबार में जगनिक नाम का एक मनुष्य उपस्थित था और यदि रासो को आल्हा से अधिक प्रामाणिक ग्रंथ मानें तो यह भी कह सकते हैं कि वह जगनिक एक भाट था जो कि कवि होने के साथ ही एक सुचतुर दरबारी, राजदौत्य कर्म में निपुण, तथा युद्ध में कन्ह और कैमास (पृथ्वीराज के प्रधान सेनानायक और सामंत) सरीखे वीरों के छक्के छुड़ाने वाला एक असाधारण योद्धा भी था।

इन्हीं उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि वह महाकवि चंद का समसामयिक था, अर्थात् सं० १२००-३० के आस पास वह वर्तमान था। इस से अधिक उस के समय के संबंध में और कुछ नहीं कहा जा सकता। न तो उस के वास्तविक किसी ग्रंथ की कोई प्रति या प्रतिलिपि ही कहीं मिलती है और न आधुनिक आल्हा या अन्य किसो ग्रंथ से ही उस के जीवन या समय पर कोई प्रकाश पड़ता है।

जगनिक का समय

यह तो निर्विवाद है कि वर्तमान रचना जगनिक या तत्कालीन किसी अन्य कवि की रचना नहीं हो सकती। भाषा पर एक दृष्टि डालते ही यह स्पष्ट हो जाता है। इन का कोई अन्य ग्रंथ भी नहीं मिलता। पर लोक में यह प्रसिद्धि बहुत दिनों से चली आ रही है कि आल्हखंड के रचयिता जगनिक ही हैं। परंतु इस बात का कोई दृढ़ प्रमाण कहीं से नहीं मिलता। आल्हा से या रासो के महोबा-समय से केवल यही सिद्ध होता है—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—कि जगनिक नाम का एक मनुष्य परमाल के दरबार में था। इन से यह धारणा किसो भी प्रकार निर्भ्रांत रूप से नहीं होती कि यही जगनिक आल्ह-खंड का रचयिता भी था। हां इस के विपरीत कुछ दूसरे ही प्रकार की धारणा अवश्य होने लगती है। आल्हा और महोबा-समय दोनों ही में जिस ढंग से जगनिक के प्रसंग जहाँ-जहाँ आए हैं उन से स्वभावतः यही अनुमान होता है कि गाथा के अन्य पात्रों की भांति जगनिक भी एक पात्र रहा होगा। साधारणतः कोई भी ग्रंथकार अपने को ग्रंथ के अन्य पात्रों के साथ इस रूप में नहीं रखता जिस रूप में हम जगनिक को आल्हा में देखते हैं। और फिर भी ग्रंथ भर में 'जगनिक' या किसी और ही प्रकार से ऐसा अपने नाम से प्रथम पुरुष में कुछ नहीं कहता कि जिस से वह स्पष्ट हो जाय कि यह ग्रंथ उसी का लिखा हुआ है। उस के समसामयिक चंद ने तथा उस से कुछ पहले के नल्ह के ग्रंथ में ऐसी उक्तियां बार-बार आई हैं जिन से उन के रचयिता का पता स्पष्ट लग जाता है। उदाहरणार्थ नल्ह की उक्तियां देखिए—

जगनिक का ग्रंथ

"'नाल्ह' रसायण आरंभइ, सारदा तुठि ब्रह्म कुमारि"

\+ + +

"कर जोड़ि नरपति कहइ, नाल्ह कहइ जिण लावइ खेड़ि"

× + ×

"नाल्ह रसायण नर भणइ, हियडइ हरषि गायण कइ भाइ"

इत्यादि, इत्यादि

अब रासो में देखिए—

"कहै 'चंद' सुनि राज। आल्ह अवतार सल्ल भय"

\+ + +

"तहाँ देखि रूद्र रूद्रह हंस्यौ, हय हय हय नंदी कह्यौ
'कविचंद' शैल पुत्री चकित, पिष्यि वीर भारथ नयौ।

इत्यादि।

परंतु रासो में चंद को हम बहुत जगह साधारण पात्र की भाँति भी देखते हैं। उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। इस का कारण यह है कि चंद ने रासो की रचना ही भर नहीं की है वरन् सदा पृथ्वीराज के साथ रहते हुए उस ने बहुत से कार्य ऐसे किए हैं जिन का गाथा में उल्लेख करना आवश्यक था। आल्ह-खंड के संबंध में भी यह माना जा सकता है कि इसी प्रकार जगनिक को भी जहां अपने निज के किए हुए महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख आवश्यक जान पड़ा तहां तहां उस ने अपने को गाथा के अन्य पात्र के रूप में रख दिया है। बहुत ठीक, परंतु साथ ही इस के 'नाल्ह रसायण आरंभइ,' तथा 'कहै चंद' आदि के ढंग की उक्तियां भी तो होनी चाहिए।

जो हो, इन्हीं कारणों से जगनिक का प्रस्तुत आल्हखंड का रचयिता होना संदिग्ध तो है ही, पर बात केवल इतनी ही है कि बहुधा लोक-प्रसिद्ध बातें बिलकुल निराधार नहीं हुआ करतीं। और फिर हम उस समय के भाटों की प्रथा के अनुसार यह भी मान सकते हैं कि जगनिक ने यदि आल्हा की रचना की भी होगी तो स्वयं उसे लिपिबद्ध तो कदापि न किया होगा। नल्ह और चंद ने अपने ग्रंथों को स्वयं लिपिबद्ध नहीं किया था। अब यह सिद्ध हो गया है कि पृथ्वीराज रासो बहुत दिन तक मौखिक रहने के बाद लिपिबद्ध हुआ और इस के वर्तमान रूप में प्रक्षिप्त कविता इतनी अधिक है कि इस में से चंद की वास्तविक कविता को ढूँढ़ निकालना एक प्रकार से असंभव है। और नहीं पृथ्वीराज रासो के संपादक, तथा उस के विशेषज्ञ बाबू श्यामसुंदर दास जी भी अब इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। परंतु संभव है भाषा की सरलता तथा विषय की अधिक रोचकता आदि के कारणों से आल्हखंड आरंभ ही से रासो से अधिक लोकप्रिय ग्रंथ निकला हो और गाथा गाने वालों ने अधिक से अधिक संख्या में इसे अपनाना आरंभ किया हो। यह तो स्पष्ट ही है कि इस समय लोकप्रियता की दृष्टि से पश्चिमोत्तर भारत से रामायण के बाद कदाचित इसी ग्रंथ का नंबर है। कन्नौज, प्रतापगढ़ तथा सुलतानपुर के ज़िलों में इस के पेशेवर गानेवाले बहुत मिलते हैं। यह लोग साधारणतः अल्पशिक्षित और बहुधा निरक्षर भी होते हैं। न जाने कितने दिनों से यह गाथा इन्हीं के हाथों तोड़ी मरोड़ी जा रही है। ऐसी अवस्था में मौलिक ग्रंथ का एक प्रकार से पूर्णरूप से रूपांतरित हो जाना कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। यह भी संभव है कि कुछ दंभी गायकों ने जान-बूझ कर ग्रंथ से जगनिक की मुहर उड़ा दी हो परंतु लोकभय से अपना नाम घुसेड़ने का साहस न कर सके हों। क्योंकि आरंभ में मंगलाचरण आदि में प्रथम पुरुष का प्रयोग तो हुआ है पर

किसी का नामोल्लेख ग्रंथकार की हैसियत से नहीं हुआ है। उदाहरणार्थ आल्हा के आरंभ का ही छंद देखिए :—

> ''श्री गणेश गुरुपद सुमिरि, इष्ट देव मन लाय।
> आल्हखंड वर्णन करत, आल्हा छंद बनाय॥

यहां पर 'वर्णन करत' का कर्ता कौन है—जगनिक या कोई आल्हैत, या और ही कोई, इस के जानने का कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार के अधिकतर ग्रंथों में ग्रंथकार अपना नाम किसी न किसी ढंग से घुसेड़ देता है, पर आश्चर्य है प्रस्तुत आल्हखंड के इतने लंबे चौड़े मंगलाचरण में ग्रंथकार की हैसियत से हम किसी का नाम नहीं पाते। इस से मन में यह संदेह उत्पन्न होना कि इन्हीं अल्हैतों ने इसे अपनी संपत्ति बनाने के लिए ही जान बूझकर जगनिक का नाम आल्हा से न निकाल दिया हो—अस्वाभाविक नहीं है। साथ ही इस के किसी भी एक अल्हैत ने अपना नाम लगाना कुछ तो लोकलाज से और कुछ यह सोच कर ठीक न समझा होगा कि किसी का नाम न होने से सभी आल्हा गाने वालों को इसे अपना बना सकने का अवसर मिलेगा। परंतु यह केवल संदेह मात्र है।

जो कुछ भी हो इस ग्रंथ में आभ्यंतरिक कोई भी प्रमाण ऐसा हम को प्राप्त नहीं है जिस से जगनिक का आल्हखंड का रचयिता होना सिद्ध हो सके। बाह्य प्रमाणों में भी कोई ऐसा अभी तक हम को नहीं मिला जिस को आधार माना जा सके। जगनिक को आल्हखंड का रचियता मानने का एकमात्र कारण है जनश्रुति। यह लोक में बहुत दिन से प्रसिद्ध है कि जगनिक नामक, राजा परमाल के दरबार के एक भाट ने आल्हखंड की रचना की थी। और इस समय हम जो हिचकते हुए जगनिक को आल्हखंड का रचयिता मानने पर तैयार होते हैं उस का एक मात्र कारण यही है कि ऐसी जनश्रुतियां कभी भी निराधार नहीं हुआ करतीं।

आल्हखंड और महोबाखंड

इस समय आल्हखंड का जो सब से प्रामाणिक संस्करण माना जाता है उसे पहले पहल लिपिबद्ध कराने का श्रेय फरुक्काबाद के भूतपूर्व कलक्टर स्वर्गीय सर चार्ल्स ईलियट साहब को प्राप्त है। उन्हों ने तीन या चार सर्वप्रसिद्ध अल्हैतों को बुलाकर उन की स्मरणशक्ति की सहायता से इसे सन् १८६५ के लगभग लिखवाया था। फरुक्काबाद कन्नौज से बहुत दूर नहीं है। और इसी कन्नौज से ही आल्हखंड के बहुत से वीरों का घनिष्ठ संबंध रहा है, इसलिए इस संग्रह को हम कनौजी संग्रह कह सकते हैं। इन्हीं ईलियट साहब के आग्रह से बंगाल सिविल सर्विस के वाटर-फ़ील्ड नामक एक सज्जन ने आल्हखंड के कुछ चुने हुए अंशों का अंग्रेज़ी में पद्यमय

(बैलेड मीटर में) अनुवाद भी किया है। इस अनुवाद का कुछ अंश १८७५-६ की कलकत्ता रिव्यू नामक पत्रिका में 'नौलखाहार' या 'माड़ो की लड़ाई' The Nine Lakh chain or the Maro Fevd) के शीर्षक से निकल भी चुका है। वाटर-फील्ड साहब ने भूमिका के रूप में कुछ विवरण भी दिया है। इस विवरण में इन्हों ने निभ्रांत रूप से मौलिक आल्हखंड का कोई स्वतत्र ग्रंथ नहीं वरन् पृथ्वीराज रासो का ही एक खंड माना है। उन का तात्पर्य 'महोबाखंड' या 'महोबा समय' से है। वह कहते हैं—

"The original Alhkhand was, no doubt, as appears from its name, a single book of Chand's great Hindi epic of the twelvth century upon the exploits of his master, King Pirthi of Delhi. Whether it was the same with the Mehoba khand, or whether these form the groundwork of the two parts of the Kanauj collection, I must leave to the students of the ancient poems to determine."

अर्थात्—इस में कोई संदेह नहीं, कि जैसा कि नाम ही से प्रगट है, मौलिक आल्हखंड बारहवीं शताब्दी के अपने आश्रयदाता राजा पिरथी (पृथ्वीराज) के शौर्य वर्णनार्थ लिखे हुए चद के महाकाव्य का ही एक भाग था। आया यह और महोबाखड एक थे, या यह (महोबाखंड) कनौजी संग्रह के दोनों भागों का आधार था, इस के निर्णय का भार मुझे इन प्राचीन काव्यों के विद्यार्थियों ही पर छोड़ना पड़ेगा।

इसी प्रकार का संदेह आल्हखंड के संबंध में अधिकांश विद्वानों को है, पर वाटरफील्ड साहब तो निभ्रांत हैं, कदाचित् इसी कारण से महोबाखंड की प्रतिलिपि अथवा उस के आधार पर रचित वर्तमान आल्हखंड का कोई रचयिता भी था या वह अपने आप प्रगट हो गया, इस प्रश्न की चर्चा तक करना उन्होंने व्यर्थ समझा। प्रसिद्ध भाषातत्वज्ञ सर जार्ज ग्रियर्सन साहब तो इतना कहते भी हैं कि "The very name of its author is unknown except for a tradition of little value that it was compileed by Jagnik, sister's son of Parmal." अर्थात् इस ग्रंथ के रचयिता के नाम तक का पता नहीं है, केवल एक जनश्रुति ऐसी है कि परमाल के भांजे जगनिक ने इस की रचना की थी, और वह जनश्रुति भी ऐसी नहीं जिस का कुछ अधिक मूल्य हो सके। परंतु इस के साथ ही ग्रियर्सन साहब इस को बारहवीं शताब्दी में रचित एक स्वतंत्र ग्रंथ मानते हैं और साथ ही यह भी मानते हैं कि निरक्षर आल्हा गाने वालों के हाथ में शताब्दियों तक रहने के

कारण इस का मौलिक रूप बिलकुल बदल कर आधुनिक सा हो गया है[1]। आजकल अधिकतर विद्वानों की धारणा कुछ ऐसी हो हो रही है और सब यही कह कर संतोष किए जा रहे हैं कि इस ग्रंथ की मौलिक और रासो से स्वतंत्र रचना तो अवश्य १२वीं शताब्दी में हुई थी पर लिपिबद्ध न होने तथा अपढ़ अल्हैतों के हाथ में बहुत दिनों तक रहने के कारण आज यह बिलकुल बदल गया है।

कुछ विद्वान ऐसा भी कहते हैं कि जगनिक के मौलिक आल्हखंड के आधार पर नये आल्हा की फिर से रचना हुई। ऐसी धारणा रखनेवालों में मुख्य पं० रामनरेश त्रिपाठी हैं। वह अपने 'आल्हा रहस्य' की भूमिका में लिखते हैं—

"राजा परमाल के दरबार में एक जगनिक भाट था। उस ने ही पहले पहल आल्हा, ऊदल के चरित्रों को वीर छंद में बनाया। उस आल्हा का अब कहीं पता नहीं चलता। उसी के आधार पर नये आल्हा की रचना हुई है। जहाँ तक जिस अल्हैत की युक्ति चली वह वहाँ तक बढ़ाता गया। इस से असली बात तो बहुत थोड़ी रह गई, और कूड़ा करकट खूब भर उठा।"

खेद है कि त्रिपाठी जी ने कहने को तो कह दिया कि जगनिक ने ही पहले पहल आल्हा ऊदल के चरित्रों को वीर छंद में बनाया, पर इस कथन के आधार या प्रमाणों की कहीं चर्चा तक न की। और फिर इस से भी अधिक चिंत्य उन का निराधार यह कथन है कि जगनिक के आल्हा के आधार पर नए आल्हा की रचना हुई। यह रचना कब और किस ने की, इस के संबंध में भी त्रिपाठी जी को कुछ नहीं कहना है। आल्ह खंड और पृथ्वीराज रासो के महोबाखंड के परस्पर संबंध के विषय में वह स्पष्ट तो कुछ नहीं कहते पर उन की भूमिका को पूर्ण पढ़ जाने से उन का अभिप्राय यही जान पड़ता है कि वह आल्हखंड को एक बिलकुल

---

1 No old Manuscripts of it have ever been discovered. Parmal whom it celebrates, disappeared from history in ignominry, and Mehoba, his capital, ceased to exist as a royal town only eleven years after the death of Chand and Prithiraj. It is the property not of educated men but of illiterate minstres who are found scattered over northern India from Delhi to Bihar. These 'Alha Ganewalas' as they are called make it their profession to receite the 'Alhakhand', or Lay of Alha hancded down to them from generation to generation by their predecessors. Under such circumstances the text varies from place to place, and the language has chanced as time elapsed. It now presents the singular appearence of a peon composed in the twelveth century yet containing such English words as 'pistols', 'bomb', and 'Sappers and Miners.'

—Introduction to The lay of Altra.

स्वतंत्र ग्रंथ मानते हैं। कुछ बातें दोनों में साधारण अवश्य हैं पर आल्हखंड के अधिकतर वृतांतों को वह कपोल कल्पित तथा आल्हा ऊदल आदि के महत्व को बढ़ाने के अभिप्राय से ही कहे हुए मानते हैं। और इस में किसी को संदेह भी न होना चाहिए। महोबाखंड में परमाल और पृथ्वीराज के बीच केवल दो लड़ाइयों का वर्णन है। इन में से एक सिरसा की लड़ाई कही जाती है। सिरसा दिल्ली से महोबे के रास्ते में पड़ता था और यहां का थानेदार आल्हा का प्रसिद्ध वीर मलखान था जो बड़ी वीरता से लड़ कर काम आया था। दूसरी लड़ाई खास महोबे की थी और उस में ऊदल आदि महोबे के सभी योद्धाओं को वीर गति मिली। परंतु आल्हा में पृथ्वीराज और परमाल के बीच कई लड़ाइयां वर्णित हैं और मुख्य झगड़े का कारण भी कुछ दूसरे प्रकार का बताया गया है। दोनों कथाओं के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। पृथ्वीराज रासो दिल्ली और पृथ्वीराज के, और आल्हखंड महोबा और आल्हा आदि वीरों के दृष्टि-कोण से लिखा गया है। यह विषय कुछ थोड़े से शब्दों में दोनों कथाओं का सारांश दे देने से स्पष्ट हो जायगा।

महोबाखंड

किसी लड़ाई के बाद पृथ्वीराज के कुछ सामंत और सैनिक घायल हो कर लौट रहे थे, महोबे में उन्हें शाम हो गई और उन्हों ने परमाल के एक बाग़ में रात बितानी चाही पर उस बाग़ में राजा की आज्ञा के बिना कोई जाने नहीं पाता था। फलतः मालियों ने उन्हें रोका पर इस धृष्टता को वे झुँझलाए हुए वीर सामंत सहन न कर सके। उन्हों ने उन्हें मार पीट कर भगा दिया और एक को मार भी डाला। उन का यह अत्याचार सुन परमाल के क्रोध का ठिकाना न रहा और कुछ सैनिकों के साथ उस ने सामंत हरिदास बघेल को उन्हें पकड़ लाने को भेजा, पर उन पृथ्वीराज के वीरों ने इन्हें भी मार पीट कर भगा दिया और वह बघेल सामंत जान से मारा गया। इस पर परमाल की क्रोधाग्नि और भी भभक उठी। उस ने ऊदल को बुला कर उन सभों को मार डालने की आज्ञा दी पर ऊदल ने बहुत समझाया कि इस प्रकार प्रतापी पृथ्वीराज से लड़ाई मोल लेना ठीक नहीं और इस का फल कदापि अच्छा नहीं हो सकता। पर उस ने एक न सुनी अंत में ऊदल वहां गए। उन वीर सिपाहियों ने ऊदल को बहुत समझाया कि इस का फल परमाल और महोबे के लिए बहुत बुरा होगा पर ऊदल ने कहा कि मैं केवल राजा की आज्ञा पालन करने को वाध्य हूँ। अंत में वे सिपाही पहले तो खूब जी खोल कर लड़े पर अंत में सब के सब मारे गए। यह समाचार पृथ्वीराज ने सुना और सब सामंतों की सलाह से तुरत महोबा पर चढ़ाई कर देने का निश्चय हुआ। इसी बीच महोबे में एक बात और हुई। उरई का ठाकुर माहिल पड़िहार था तो परमाल का साला, पर भीतर ही भीतर वह परमाल और महोबा का सर्वनाश करना चाहता था। कुछ पुश्तैनी शत्रुता थी। इधर तो उस ने पृथ्वीराज को महोबा पर चढ़ाई करने के लिए उसकाया और

उधर आल्हा और ऊदल के विरुद्ध परमाल का कान भरना शुरू किया। वह जानता था कि इन दोनों भाइयों के रहते हुए पृथ्वीराज महोबा आसानी से जीत सकेंगे। आल्हा के पास कुछ बहुत अच्छे घोड़े थे। माहिल ने परमाल को उन घोड़ों को माँग लेने की सलाह दी, माँगने पर आल्हा ने अपनी सवारी के उन विचित्र घोड़ों को देने से साफ़ इनकार कर दिया। इस पर परमाल ने उन्हें राज्य से निकाल दिया। इस प्रकार अपमानित हो कर वे दोनों भाई कन्नौजनरेश जयचंद के यहां चले गए और उस ने भी इन्हें सादर रख लिया। इधर कन्ह, कैमास, चामुंड तथा पुंडीर आदि महारथियों के साथ पृथ्वीराज महोबे के लिए कूच कर चुके थे। सिरसा रास्ते में पड़ता था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि मलखान परमाल के साहसी पुत्र ब्रह्मा और अपने मुट्ठी भर सिपाहियों के साथ बड़ी बहादुरी से पृथ्वीराज की प्रबल सैन्य को रोका पर अंत में वीर गति को प्राप्त हुआ। जो कुछ थोड़े से लोग बचे उन्हों ने जा कर परमाल से यह सब वृत्तांत कहा। अब परमाल की आँखें खुलीं। उस के सलाहकारों में मुख्य उस की रानी मल्हना, कल्याण दास नाम एक वृद्ध कायस्थ, राज-पुरोहित केशव राम तथा जगनिक भाट था। इन सभों की राय हुई कि दो महीने के लिए युद्ध स्थागित करने की प्रार्थना की जाय और जगनिक भाट को कन्नौज भेज कर आल्हा और ऊदल बुला लिए जायं और जयचंद से भी सहायता ली जाय। अंत में यही हुआ भी। आल्हा आना तो नहीं चाहता था पर जगनिक और अपनी माता के आग्रह से आने पर तैयार हुआ और जयचंद ने भी अपने भतीजे लाखनसी के साथ अपनी एक लाख सैन्य साथ कर दी। इन लोगों के आने पर फिर एक बार महायुद्ध आरंभ हुआ। इस में परमाल और आल्हा को छोड़ कर महोबे के सभी वीर मारे गए। जयचंद के भतीजे लाखनसी को कन्ह ने और ऊदल को कैमास और चामुंड राय ने मिल कर मार गिराया। ब्रह्माजित (परमाल का पुत्र) और जगनिक भी अमानुषिक पराक्रम दिखाकर काम आगए। ऊदल के मरने पर आल्हा ने पहले तो अपने शौर्य और माया से सब के छक्के छुड़ा दिए। उस ने मंत्र बल से कई बार सारी चौहान सैन्य को निद्रा के वशीभूत कर दिया था पर कवि चंद भी समय समय पर शंकर की आराधना और सजीवन मंत्र के बल से अपनी ओर के अचेत सिपाहियों को चैतन्य कर दिया करता था। पर तो भी आल्हा इस समय किसी के रोके नहीं रुकता था। जो सामने आता था उसी को नीचा देखना पड़ता था। वह स्वयं चंद को अचेत कर स्वयं पृथ्वीराज पर एक सांघातिक अस्त्र चला चुका था परंतु गुरुराम नाम के एक वीर ने ठीक समय पर किसी तरह पृथ्वीराज को बचा लिया। इस से आल्हा को प्रबल नैराश्य हुआ और उस ने देखा कि उसे छोड़कर प्रायः सभी महोबे वाले या तो मर चुके या भाग गए थे। यह देख उस ने घबरा कर अपने गुरु गोरखनाथ का स्मरण किया और उन्हों ने आ कर उस का हाथ पकड़ कर युद्ध बंद करने को कहा। आल्हा ने यह सुन तलवार तोड़ कर फेंक दी और उदासीन हो कर जंगल की ओर चला गया। इधर पृथ्वीराज एक ओर अचेत पड़ा था और उस के पास ही

संजय राय घायल होकर गिरा हुआ था। वह था तो सचेत पर उस के उठने की सामर्थ्य नहीं थी। इसी समय एक गृद्ध पृथ्वीराज की आँखें निकालने वाला ही था कि स्वामिभक्त संजय राय अपना मांस काट-काट कर उस गीध के सामने फेंकने लगा। इसी तरह कुछ देर बीतने के बाद चंद आदि पृथ्वीराज को खोजते हुए वहां पहुँचे और तब पृथ्वीराज की रक्षा हुई पर संजय राय तो मर ही गया। इस प्रकार इस युद्ध का अंत हुआ।

आल्ह-खंड

यह तो हुई महोबाखंड की कथा। आल्ह-खंड को एक प्रकार से आल्हा आदि वीरों की जीवनी कहना चाहिए क्योंकि इन में जन्म से ले कर मरण तक के सभी मुख्य वृत्तांतों का वर्णन है। पृथ्वीराज रासो में आल्ह-खंड को केवल दो अंतिम लड़ाइयों का वर्णन है। इन दोनों लड़ाइयों की घटनाएं भी दोनों ग्रंथों में भिन्न भिन्न हैं। सिरसा की लड़ाई और मलखान की मृत्यु तो दोनों में एक सी मिलती है, और आल्हा ऊदल के कन्नौज से लौटने की कथा आल्हा में भी है परंतु इस ग्रंथ में महोबे के पतन की कथा बहुत अंशों में रासो की कथा से भिन्न है। आल्ह-खंड का संक्षिप्त सारांश देने से यह विषय स्पष्ट हो जायगा।

आल्ह-खंड का संबंध बारहवीं शताब्दी की तीन प्रधान राजधानियों से है—दिल्ली, कन्नौज, और महोबा। इन के शासक क्रम से, पृथ्वीराज चौहान, जयचंद राठौर[1], और परमाल चंदेल थे। इन में से सब से शक्तिशाली कन्नौज का जयचंद ही था। ऐतिहासिकों का कहना है कि पूरब में उस के राज्य का विस्तार बनारस ही तक था पर इस पुस्तक के अनुसार बिहार, बंगाल, आसाम और उड़ीसा तक इस का राज्य फैला हुआ था, और महोबा उस के करद राज्यों में से था। उस समय के प्रायः सभी राजा उस के सामने सिर झुकाते थे। दिल्ली का अंतिम चौहान राजा पृथ्वीराज ही ऐसा था जिस ने उस की अधीनता स्वीकार करना तो दूर रहा उल्टे उस का प्रतिद्वंदी बन बैठा। इस से इन दोनों घरानों में घोर शत्रुता हो गई। जयचंद ने अपनी लड़की संयोगिता के स्वयंवर के समय अपने अधीनस्थ सभी राजाओं को निमंत्रित किया था और उन में पृथ्वीराज भी एक था पर उस ने अधीनस्थ राजा की भांति सभा में उपस्थित न हो कर संयोगिता का बलात् अपहरण कर ले जाना ही ठीक समझा। संयोगिता भी मन ही मन पृथ्वीराज को ही प्यार करती थी। फल यह हुआ कि कन्नौज से ले कर दिल्ली तक रास्ते में लड़ाई होती रही पर पृथ्वीराज इसे ले कर निकल ही आए। इस गाथा के पहले अध्याय में इसी संयोगिता-हरण का ही वर्णन है। इस का फल

---

[1]प्रामाणिक इतिहास के आधार पर जयचंद का गहरवार क्षत्रिय होना निश्चित हो चुका है पर आल्ह-खंड में उसे राठौर ही कहा गया है।

यह हुआ कि दिल्ली और कन्नौज की शत्रुता और भी दृढ़ हो गई और अंत में यह भारतवर्ष से हिंदूराज के अस्तित्व को ही मिटा कर शांत हुई।

कन्नौज दिल्ली से प्रायः दो सौ मील दक्षिण-पूर्व गंगा के किनारे बसा हुआ था और कन्नौज के प्रायः सवासौ मील दक्खिन बुंदेल खंड में जमुना और बेतवा नदी के उस पार महोबा नगर बसा हुआ था। यही दोनों नदियाँ इसे कन्नौज की सीमा से अलग करती थीं। यहां का राज्य पहले पड़िहारों के हाथ में था पर बाद में यहां चंदेलों ने अपना आधिपत्य जमा लिया था। इस के बाद से पड़िहारों ने चंदेलों की अधीनता स्वीकार करली थी और उन्हें कुछ छोटी-छोटी जागीरें मिल गई थीं। चंदेल राजा परमाल या परमार्दि देव सन् ११८५ के लग-भग महोबे के सिंहासन पर बैठा था और इस समय बेतवा के उस पार उरई का जागीरदार माहिल पड़िहार था और इसी माहिल की बहन मल्हना से परमाल ने ब्याह किया था। माहिल यों तो परमाल का साला था और ऊपर से मित्रता का व्यवहार भी करता था पर उसे यह बात भूली न थी कि इन्हीं चंदेलों ने उस के पूर्वज पड़िहारों को हटा कर महोबे पर अधिकार किया था। वह भीतर ही भीतर चंदेल वंश के सर्वनाश का षड्यंत्र रच रहा था।

परमाल ने जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, जयचंद की अधीनता स्वीकार करली थी, और इस गाथा से यह भी विदित होता है कि वह महोबे में एक प्रकार से जयचंद के प्रतिनिधि की हैसियत से राज्य करता था और उस की ओर से उसे शासक के सब कार्य करने के अधिकार प्राप्त थे। पर इस ग्रंथ के अनुसार वह एक बड़ा कायर और दुर्बल हृदय का शासक सिद्ध होता है, यथार्थ में महोबे का शासन उस की महिषी मल्हना किया करती थी। वह भी अधिकतर अपने सभी कामों में अपने धोकेबाज़ भाई माहिल की सलाह लिया करती थी पर महोबे के कुछ बनाफर सरदार सदा उस के (माहिल के) मार्ग में रोड़े अटकाया करते थे और इस लिए वे उसे बहुत खटकते थे।

इन बनाफरों की उत्पत्ति के संबंध में कई किंवदंतियां हैं। इस गाथा के अनुसार इस शाखा के प्रवर्तक बक्सर के चार सरदार दसराज, बछराज, रहमल और टोडर थे और यह चारो उस समय महोबे में उपस्थित थे जब माड़ो के राजा जंभी (जम्बै) के पुत्र करिंघा (कड़िया) ने महोबे पर आक्रमण किया था। उन्हों ने बड़ी वीरता से महोबे की रक्षा करते हुए करिंघा को मार भगाया था। उन की वीरता पर मुग्ध हो परमाल ने उन्हें अपने यहां रख दिया था। मल्हना ने उन लोगों के ब्याह कभी करा दिए और दसराज के आल्हा और ऊदल (ऊदलि) बछराज के मलखान और सुलखान नाम के पुत्र हुए। इन लड़कों की उत्पत्ति के संबंध में कुछ मतभेद है। एक कथा के अनुसार दसराज की स्त्री ग्वालियर के राजा दलपति की लड़की देवी या देवल, और वत्सराज की स्त्री उसी को बहन बिरम्हा

थी। दूसरी जनश्रुति के अनुसार यह दोनों अहीर की लड़कियाँ थीं। कथा है कि एक समय जब कि यह दोनों भाई दसराज और बछराज किसी जंगल से शिकार खेल कर लौट रहे थे तो रास्ते में इन्हें दो भीमकाय जंगली भैंसे लड़ते हुए मिले। संयोग से उस समय वहां पर इसी समय दो अहीरों की लड़कियां सर पर दूध के मटके लिए हुए आ निकलीं। यह देख कर कि इन दोनों भैंसों की वजह से इन सरदारों का रास्ता रुका हुआ है। उन में से एक-एक ने बिना मटकों को जमीन पर उतारे ही एक-एक भैंस की सींग पकड़ कर रास्ते से घसीट कर दूर हटा दिया। दोनों भाई उन का यह अपूर्व बल और साहस देख कर दंग रह गए। उन्हों ने सोचा कि अवश्य ही इन से होने वाली संतान अमानुषिक बलवीर्य-संपन्न होगी। यह समझ कर उन्हों ने वहीं उन से विवाह कर लिया। कहा जाता है इन्हीं लड़कियों से आल्हा आदि की उत्पत्ति हुई थी। यह कथा सच हो या झूठ पर इतना तो बहुत दिनों से प्रसिद्ध है कि बनाफर सच्चे राजपूत नहीं हैं और इसी धारणा के कारण से ही आल्ह-खंड में वर्णित बहुत सी लड़ाइयां हुई थीं। यह दोनों लड़कियां चाहे जिस जाति की रही हों पर इतना हम जानते हैं कि मल्हना इन से बहन का सा बर्ताव करती थी और इन के लड़कों को अपना ही लड़का समझती थी। इन्हीं के साथ रहमत और तोडर के भी डेबा और तोमर नाम के दो लड़के और परमाल के ब्रह्माजित नाम का एक पुत्र हुआ था। इन सातों लड़कों का पालन-पोषण समान रूप से रानी मल्हना के पर्यवेक्षण में होता था। इन के युद्धविद्या के आचार्य तालन सैयद थे। इन सातों में परस्पर निष्कपट और आदर्श भ्रातृप्रेम था। आल्हा को सब बड़ा मानते थे। यह सब वृतांत द्वितीय अध्याय में है।

तीसरे अध्याय में करिंघा के दसराज आदि से बदला लेने की कथा है। महोबे के पास दस पुरवा नाम के गाँव में यह बनाफर सरदार रहा करते थे। तब तक ऊदल और सुलखान का जन्म नहीं हुआ था। रात में एका-एक करिंघा ने सोते समय इन दोनों बनाफर वीरों (दसराज और बछराज) पर आक्रमण कर इन की हत्या कर डाली और इन के कटे हुए सिर के साथ इन की बहुत सी बहु-मूल्य संपत्ति भी उठा ले गया। इन में विशेष उल्लेख योग्य रानी मल्हना का नौ-लखा हार था जो उस ने आल्हा के विवाह के समय देवी को पहना दिया था। सब से पहले माहिल ने कानपुर के पास जाजमऊ के मेले में करिंघा को इस हार को छीन लेने की सलाह दी थी। करिंघा अपनी बहन से प्रतिज्ञा कर आया था कि मेले से तेरे लिए कोई अनमोल पदार्थ लाऊँगा। वह इसी तलाश में मेले में इधर-उधर घूम रहा था कि माहिल ने उसे चिंतित सा देख कर पूछा किस चिंता में घूम रहे हो। उस ने कहा कि मैं अपनी बहिन बिजैसिन के लिए किसी अनमोल पदार्थ की खोज में हूँ। माहिल ने तुरंत देखा कि यह मौक़ा परमाल और करिंघा से लड़ा देने का अच्छा है। उस ने कहा परमाल की रानी मल्हना के पास एक नौ-

लखा हार है। इस समय परमाल बहुत निर्बल हो रहा है और उन्हें रोकने वाला कोई वहां है भी नहीं। पर संयोग से उस समय यह चारों बनाफर वीर और तालन सैयद किसी आपस की फरियाद सुनाने महोबे में ठहरे हुए थे। जो तो रहे थे कन्नौज पर उन्हें यह मालूम होने पर कि जयचंद के स्थान पर परमाल भी उन की फरियाद सुन कर यथोचित निर्णय कर सकता है, वह वहीं रुक गए थे। उन्हें महोबे चार ही दिन रुके हुए थे कि इसी बीच में करिंघा महोबे पर चढ़ दौड़ा। इन बनाफरों ने सोचा कि हम चार दिन से महोबे का अन्न जल ग्रहण कर रहे हैं और यहां अपना झगड़ा निबटाने आए हैं। ऐसी अवस्था में हमारा कर्तव्य है कि महोबे के संकट काल में उस की सहायता करें। तालन सैयद भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे। फल यह हुआ इन दोनों वीर प्रतिवादियों ने मिल कर करिंघा की अच्छी खबर ली और उसे बुरी तरह मार पीट कर भगा दिया। इसी घटना के बाद तालन सैयद और चारों बनाफर बंधुओं को परमाल ने बड़े आग्रह से अपने दरबार में रख लिया था। तालन सैयद प्रधान सेनापति बना दिए गए थे।

करिंघा इसी हार का बदला लेने की धुन में बहुत दिन से था। अंत में उस ने इन भाइयों की हत्या कर के ही दम लिया। इस घटना से महोबे में हाहाकार मच गया पर डरपोक परमाल में करिंघा से इस का बदला लेने का साहस नहीं था। क्रमशः यह सातों लड़के बढ़ चले। ऊदल केवल बारह वर्ष का था जब उस ने पहले पहल अपने पिता के अंत का यह दारुण वृतांत सुना पर उसी समय सब भाइयों ने बदला लेने का निश्चय कर लिया और परमाल की सेना की सहायता से माड़ौ पर चढ़ाई कर, करिंघा तथा जंभी (जम्बै) को सपरिवार मार, उस के सारे राज्य को तहस-नहस कर डाला और देवो के नौलखा हार के साथ ही साथ वहां के सभी बहुमूल्य पदार्थों को भी अपने यहां उठा लाए। इस युद्ध से इन बनाफर बालकों की वीरता की देश भर में बड़ी सुख्याति हो गई।

इस के बाद चौथे से पाँचवें तक आल्हा, मलखान, ब्रह्मा और ऊदल के विवाह की कथाएं वर्णित हैं। नवें और दसवें अध्याय में कुछ फुटकर कथाएं हैं जिन का मुख्य कथानक से विशेष संबंध नहीं है। नवें अध्याय से यह पता चलता है कि माहिल किस प्रकार सदा ऊदल आदि को मरवा डालने के अवसर की ताक में रहा करता था। ऊदल परमाल की विवाहिता लड़की चंद्रावलि को महोबे लिवा लाने के लिए बौरीगढ़ गए हुए थे। इस बीच माहिल ने वहां पहुँच कर बौरीगढ़ के राजा को यह समाचार सुनाया कि ऊदल तो महोबे से निकाल दिया गया है, यह चंद्रावलि को ले जाकर अपनी दासी बनावेगा और इस प्रकार परमाल से अपने अपमान का बदला लेगा। राजा ने यह सुन कर ऊदल को विष खिलाने की व्यवस्था की पर रसोइए की असावधानी से भेद खुल गया और ऊदल ने पहले तो बहुतों को तलवार के घाट उतारा पर अंत में वे क़ैद कर लिए गए।

चंद्रावलि के प्रयत्न से यह समाचार आल्हा को मिला और वह ससैन्य आकर ऊदल को छुड़ा ले गया।

दसवें अध्याय में आल्हा के पुत्र इंदल के बुखारे की जादूगर राजकुमारी द्वारा तोता बनाए जाने का वृत्तांत है। वह उसे तोता बनाकर ले गई थी। इस अध्याय में यही कथा है कि किस प्रकार आल्हा आदि वीर बुखारे जा कर उसे छुड़ा लाए और उस राजकुमारी से इंदल से विवाह भी करा दिया गया। यहां गाथा का पहला भाग समाप्त होता है।

दसवें अध्याय के बाद माहिल के कुचक्र से आल्हा के महोबे से निकाले जाने की कथा आरंभ होती है। माहिल समझ गया था कि आल्हा आदि के रहते परमाल का सर्वनाश करना कठिन है। उस ने किसी प्रकार परमाल और आल्हा में वैमनस्य करा देना चाहा, और उसे सफलता भी मिली। बात यों हुई। आल्हा के पास कुछ बहुत अच्छे घोड़े थे, कहा जाता है उन में कुछ उड़ने वाले भी थे और माहिल जानता था कि आल्हा किसी दूसरे को उन्हें छूने भी नहीं देता। यही सोच कर माहिल ने परमाल से कहा कि यह घोड़े तो आप की अपनी सवारी के योग्य हैं; आप इन्हें आल्हा से माँग लीजिए। परमाल ने मांगा पर आल्हा ने साफ़ इन्कार कर दिया। इस पर परमाल ने रुष्ट होकर उन्हें महोबे से चले जाने की आज्ञा दे दी। आल्हा भी इस अपमान से क्षुब्ध हो कर जयचंद के दरबार में चला गया और उस के भाई ऊदल ने भी उस का साथ दिया। जयचंद पहले तो उन्हें अपने यहां आश्रय देने से हिचका पर बाद में यह सोच कर कि वह अकारण ही उस के अधीनस्थ राजा परमाल द्वारा निकाला गया है, उस ने उन्हें यथोचित सम्मान के साथ रख लिया। इधर पृथ्वीराज और जयचंद का पुराना झगड़ा चल ही रहा था कि माहिल की सलाह से पृथ्वीराज ने जयचंद के करद राज्य महोबा को अपने अंतर्गत घोषित कर परमाल से दंड माँगा। बहाना यह निकाला कि परमाल के एक थानेदार (मलखाना) ने पृथ्वीराज की सीमा के अंदर किला बनाया था। सिरसा गाँव पृथ्वीराज की राज्य सीमा से मिला हुआ था और यहां का थानेदार उन दिनों मलखान था। उस ने उसे सुदृढ़ करने के लिए किला अवश्य बनवाया था पर वह परमाल की सीमा के ही अंदर था। पर पृथ्वीराज को तो लड़ना था। वह राजनैतिक कारणों से अपने किसी पड़ोसी राजा को शक्तिशाली नहीं होने देना चाहते थे। अंत में उन्होंने लड़ाई छेड़ दी और पहले मलखान ने दिल्ली की सेना को मार भगाया पर बाद में माहिल की सलाह से पृथ्वीराज ने अधर्म युद्ध कर मलखान के प्राण लिए। आल्हखंड के अनुसार पृथ्वीराज और परमाल में शत्रुता इस उपयुक्त प्रकार से हुई और पृथ्वीराज रासो में लड़ाई का जो कारण दिया गया है उस का वर्णन ही हो चुका है।

उधर आल्हा और ऊदल जयचंद के दरबार में अपनी वीरता का परिचय दे रहे थे। जयचंद के भतीजे के ब्याह के संबंध में उन्होंने बूँदी के राजा को परास्त

किया। इस के बाद के अध्याय में ऊदल और लाखन को बिहार, बंगाल, आसाम, और उड़ीसा के बाग़ी राजाओं को वशीभूत कर उन से कर लेने के लिए भेजे जाने की कथा है। ऊदल ने सफलता पूर्वक यह महान् कार्य किया भी परंतु इस यात्रा से इस से भी महत्तर कार्य हुआ ऊदल और लाखन में शपथपूर्वक सच्चे भ्रातृस्नेह का स्थापित होना।

इसी बीच पृथ्वीराज सिरसा-गढ़ विध्वंस और मलखान को मार कर महोबे पहुँच चुके थे, और कीर्तिसागर तथा मदनताल नाम के एक बड़े तालाब के किनारे ससैन्य पड़े हुए थे। परमाल ने उन के भय से शहर का फाटक बंद करवा दिया था, बाहर निकल कर लड़ने की हिम्मत नहीं थी। संभव था कि दो ही एक दिन में परमाल को और तालन सैयद को आत्म-समर्पण कर देना पड़ता पर संयोग से लाखन के साथ ऊदल वहां आ निकले। यह लोग शिकार खेलने के बहाने लाखन को गुप्तवेश में महोबे की सैर कराने आए थे। पर निकट आने पर उन्हों ने मलखान की मृत्यु और महोबे के फाटक बंद होने का समाचार सुना। संन्यासी के वेश में यह लोग किसी तरह शहर में घुस गए और सब से मिले भी पर कोई इन को पहचान न सका। उसी दिन परमाल की लड़की चंद्रावली तीज का स्नान करने मदनताल जाना चाहती थी और ऊदल की याद कर-कर के रो रही थी। सिवा ऊदल के और कौन था जो महोबे का फाटक खोलवाता और शत्रुओं से बचाता हुआ उसे स्नान करा लाता। पर उन छद्मवेशी संन्यासियों ने उस की रक्षा करने का वचन दे कर फाटक खुलवा दिया। तालाब के किनारे बड़ा भयानक युद्ध हुआ और इन चारों साधुओं की सहायता से महोबे वालों ने पृथ्वीराज की सेना को मार भगाया। पृथ्वीराज ने चंद्रावलि की पालकी उठवा ली थी पर ऊदल और लाखन ने चौंड़ा आदि इन के सब सामंतों को मार भगाया। अंत में लोग इन को पहचान भी गए और परमाल ने ऊदल से माफी मांगी। और लाखन से महोबे का आतिथ्य स्वीकार करने की प्रार्थना की पर यह लोग बिना आल्हा और जयचंद की अनुमति के ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रगट करते हुए कन्नौज लौट गए। यह कथा १३ वें और १४ वें अध्याय में है।

ऊदल आदि के कन्नौज पहुँचते ही माहिल के इशारे से पृथ्वीराज फिर महोबे पर चढ़ दौड़े। अब फिर परमाल बड़े संकट में पड़ा। अंत में मल्हना की सम्मति से यह निश्चय हुआ कि पृथ्वीराज से पंद्रह दिन के लिए युद्ध स्थगित करने की प्रार्थना की जाय और राजा परमाल का भांजा जगनिक आल्हा को बुलाने कन्नौज भेजा जाय और यदि संभव हो तो जयचंद से भी सहायता ली जाय। जैसा कि आगे कहा जा चुका है। जगनिक अपने इस कार्य में भली-भाँति सफल हुआ और आल्हा आदि के साथ लाखन की अधीनता में जयचंद की एक लाख सैन्य भी लाया। पर माहिल की मंत्रणा से इन को महोबे पहुँचने के पहले ही बेतवा के किनारे पृथ्वीराज

ने लाखन को रोका, बड़ी घमासान लड़ाई हुई और एक बार फिर पृथ्वीराज के निपुण सामंतों को लाखन और ऊदल के सामने मुँह की खानी पड़ी और एक बार फिर पृथ्वीराज को दिल्ली की राह पकड़नी पड़ी। यहां गाथा का दूसरा भाग समाप्त होता है। इस के बाद १८ वें अध्याय में एक स्थानभ्रष्ट कथानक घुसेड़ दिया गया है। इस में भी इंदल की भाँति ऊदल के एक जादूगरनी द्वारा तोता बनाए जाने और भाइयों की सहायता से उस के उद्धार की कथा वर्णित है। यहां यह कथानक न होना चाहिए क्योंकि मलखान को जो कि पहले ही सिरसा की लड़ाई में मर चुका है, इस लड़ाई में हम प्रमुख भाग लेते देखते हैं।

अट्ठारहवें से लेकर तेइसवें अध्याय तक इस गाथा का तीसरा तथा अंतिम भाग है। इस में महोबा के अंतिम पतन की कथा वर्णित है। छठवें अध्याय में परमाल के पुत्र ब्रह्मा की पृथ्वीराज की पुत्री बेला के साथ विवाह की कथा कही गई है। यह विवाह सिरसा की लड़ाई के बहुत पहले हो हो चुका था और उस समय प्रगट रूप से परमाल और पृथ्वीराज में कोई वैमनस्य भी नहीं था। विवाह के समय पृथ्वीराज ने यह शर्त कर ली थी कि अपने कुल की प्रथा के अनुसार विवाह के बाद एक वर्ष तक लड़की को हम अपने हो यहां रक्खेंगे और महोबे वालों को इस में कोई आपत्ति भी नहीं थी। परंतु कई साल बीत जाने पर भी पृथ्वीराज बेला को बिदा करने पर तैयार नहीं हुए। अंत में परमाल ने सैन्य भेज कर बलात् बेला को मँगवा लेने का निश्चय किया और ऊदल सेना नायक बनाए गए, पर ब्रह्मा ने आग्रह कर स्वयं नेतृत्व ग्रहण किया। इस लड़ाई में पहले तो पृथ्वीराज की हार हुई पर माहिल की सलाह से पृथ्वीराज ने गुप्तरीति से ब्रह्मा का बध करने के लिए अपनें पुत्र ताहर और सामंत चौंड़ा (चामुंड राय) को भेजा। यह लोग उस समय ब्रह्मा को जान से तो नहीं मार सके पर उसे बहुत बुरी तरह घायल कर दिया। इस समाचार के महोबे पहुँचने पर ऊदल और लाखन एक बड़ी सेना ले कर दिल्ली पर चढ़ दौड़े और किसी तरह बेला के महलों में घुस कर उस की सम्मति से उसे अपने खेमों में उठा लाए। यहां पहुँच कर उस ने अपने पति ब्रह्मा को म्रियमाण अवस्था में पाया। उस ने उसी समय बदला लेने का निश्चय कर मर्दाने भेस में पृथ्वीराज की सेना पर आक्रमण कर दिया। उस ने अपने भाई ताहर को अकेले मार गिराया और उस का कटा हुआ सिर ला कर अपने पति के सामने रख दिया। ब्रह्मा ने भी कहा अब मेरी मृत्यु शांति से होगी और इस के कुछ ही क्षण बाद वह संसार से बिदा हो गया। बेला ने अपने पति की चिता पर सती होने का निश्चय किया परंतु उस ने प्रण किया कि वह चिता पृथ्वीराज के बाग़ की चंदन की लकड़ी से रची जाय। उस का ऐसा हठ देखकर ऊदल आदि को उस बाग़ में जाना पड़ा, बड़ी भयानक मार काट हुई, पर अंत में महोबे के मुट्ठी भर वीरों ने पृथ्वीराज की एक पूरी सेना को भगा कर चंदन की लकड़ी काट लाए पर, लकड़ी ताज़ी और हरी थी इस लिए जलती न थी। इस कारण ऊदल आदि को पृथ्वीराज के सिंहासन वाले

कमरे में लगे हुए चंदन के खंभों के लिए जाना पड़ा। यहां फिर भीषण रक्त पात के बाद ऊदल आदि अंत में वह लकड़ी लाए ही। इस लकड़ी से दूसरी चिता रची गई और ऊदल इस में आग देने ही वाले थे कि इसी समय पृथ्वीराज एक बड़ी भारी सेना ले कर वहां आ धमके और उन्होंने यह कह कर ऊदल को चिता जलाने से रोक दिया कि एक अज्ञातकुलशील बनाफर को एक राजपूत की चिता जलाने का अधिकार नहीं है, और कहा कि परमाल के परिवार के ही किसी मनुष्य को हम चिता जलाने देंगे। ऊदल ऐसा अपमान कब सहन कर सकता था। उस ने पृथ्वीराज की इन बातों से अपना और अपने कुल का घोर अपमान समझा और तुरंत महोबे और कन्नौज के बचे खुचे वीरों के साथ अंतिम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया और पृथ्वीराज तो इसी लिए आए ही थे। इधर लड़ाई छिड़ गई और उधर कहा जाता है कि बेला के केशों से स्वयं अग्नि प्रगट हुई और वह अप नेपति के सिर को अपनी गोद में रख कर भस्म हो गई। यह घटना विश्वास योग्य कदापि नहीं हो सकती पर जन-श्रुति ऐसी ही होने के कारण ही इस का उल्लेख यहां किया गया। इस बार का युद्ध बड़ा ही भयानक हुआ और दोनों ओर के वीर अंत तक लड़ते हुए लड़ मरने या शत्रु को मार कर ही लौटने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। पर जो हो पृथ्वीराज की सेना बहुत ही बड़ी थी और उन के सामंत अधिक अनुभवी और रण-पटु थे। वे इस से कहीं बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में काम कर चुके थे। और इधर कुछ थोड़े से अपेक्षाकृत अल्पवयस्क और कम अनुभवी पर अधिक दुस्साहसी लड़के ही भर थे। कन्ह, चंड, पुंडीर, कैमास, चामुंडराय, पज्जूनराय और तंत्र मंत्र जानने वाले कवि चंद आदि रणदिग्गजों के सामने आल्हा, ऊदल, और लाखन आदि लड़के नहीं तो क्या थे। पर तो भी इन लोगों ने अपने अद्भुद साहस और रणकौशल से कई बार पृथ्वीराज के बड़े से बड़े सामंतों तक को नीचा दिखाया और स्वयं पृथ्वीराज मरते-मरते बचे। पर अंत में एक-एक कर के महोबे के मुख्य-मुख्य वीर धराशायी होने लगे। लाखन और ऊदल की भी पारी आई। ऊदल ने उस दिन अमानुषिक साहस और रण कौशल दिखाया। मतवाले कन्ह की आँखों की पट्टी उस दिन खोल दी गई थी, जिस को उस का एक हाथ पड़ जाता था वह फिर उठने का नाम नहीं लेता था। कहते हैं ऊदल ने कई बार उस के पैर उखाड़ दिए थे और एक बार तो उसे बेहोश भी कर दिया था और चाहता तो उस अवस्था में उस के प्राण भी ले सकता था पर ऊदल वीर था, और इस प्रकार की कापुरुषता वह नहीं कर सकता था। अंत में वह धोके से ब्राह्मण-वीर चौंड़ा (चामुंडराय) के हाथ से मारा गया। यह दिल्ली सैन्य के द्रोणाचार्य थे। कहते हैं सिर कट जाने पर ऊदल का कबंध मस्त होकर कई हजार शत्रुओं को काट कर तब शांत हुआ। लाखन को पृथ्वीराज ने स्वयं मारा। मलखान आदि पहले ही मर चुके थे। इन लोगों के आचार्य सैयद मीरा तालन ने भी उस दिन गजब ढा दिया। यह तलवार चलाने में अपना सानी नहीं रखते थे। अपने अद्भुत रण-कौशल से पृथ्वीराज के प्रायः सभी

सामंतों को एक एक कर के नीचा दिखाकर अंत में इन की शामत आई कि यह हाथ धोकर कन्ह से उलझ पड़े और दो एक बार उसे झेंपाया भी, पर कुछ देर बाद खीझ कर उस ने एक ऐसा हाथ मारा कि वह वीर सैयद उसे खाली न दे सका और इस के शरीर के दो टुकड़े हो गये। अब एक आल्हा और बच रहा था। आल्हा बहुत गंभीर था, उसे जल्दी क्रोध न आता था परंतु एक बार उस की क्रोधाग्नि भभकने पर वह साक्षात् रुद्र रूप हो जाता था और फिर उस के सामने कोई न टिक सकता था। अस्त्र विद्या विशारद होने के अतिरिक्त वह बड़ा भारी तांत्रिक भी था और मंत्र बल से सैनिकों को अचेत कर सकता था। इस विद्या के उस के गुरु श्री गोरखनाथ जी थे। इस युद्ध में अपने प्यारे भाई ऊदल के मरने के बाद उस ने रुद्र रूप धारण किया और फिर क्या कंध क्या कैमास जो उस के सामने पड़ा उसी ने नीचा देखा। इस समय उसे छोड़ कर महोबे के प्रायः सभी वीर या तो काम आ चुके थे या भाग खड़े हुए थे। यह देख कर उसे बड़ा नैराश्य हुआ पर उस ने हिम्मत न हारी और एक बार सब को मंत्र बल से अचेत कर पृथ्वीराज को अपने वश में कर लिया था और उस के ऊपर एक अचूक हाथ चला चुका था पर एक स्वामिभक्त सरदार ने बीच में पड़, अपनी जान देकर पृथ्वीराज को बचाया। इसी प्रकार कवि चंद ने भी आल्हा से उस की दो एक बार रक्षा की। चंद भी तांत्रिक था और वह समय-समय पर अपनी मंत्र विद्या से आल्हा के मंत्रों को निरर्थक कर दिया करता था। यह सब देख कर आल्हा का असीम उत्साह भी शीघ्रता से लुप्त हो चला और वह युद्ध से निवृत हो एक ओर चल पड़ा और फिर उस का कहीं पता नहीं चला।

इस प्रकार यह लोमहर्षण समर समाप्त हुआ। इस का समाचार जब महोबे पहुँचा तो वहां आल्हा की स्त्री सोनवा और ऊदल की रानी फुलवा आदि मृत वीरों की विधवाओं के साथ रणभूमि में आ कर सती होने के लिए अपने-अपने पतियों की लाश ढूँढने लगीं। सोनवा को उस का पुत्र इंदल मिला और उस ने घबराहट में आल्हा का नाम ले इंदल से पूछा कि आल्हा कहां है। पति का नाम लेना स्त्री के लिए बड़ा गर्ह्य माना गया है। संयोग से आल्हा उस समय उधर ही से आ रहा था, और उस ने सोनवा के इस प्रश्न को सुन लिया। वह संसार से विरक्त तो हो ही चुका था, उस ने अपनी स्त्री की यह धृष्टता अक्षम्य समझी और वहीं उस से सदा के लिए बिदा हो कर कजरी बन का रास्ता पकड़ा। कहा जाता है आल्हा अमर हो गए हैं और अब भी महोबे का बदला लेने के सुयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अंत में सब स्त्रियाँ ब्रह्मा और बेला की चिता की आँच में कूद कर भस्म हो गईं।

इधर महोबे में अब मल्हना और परमाल के सिवा और कोई नहीं बचा था। मल्हना ने सभी बहुमूल्य पदार्थों को उठा कर झील में डाल दिया और परमाल ने शोक से अभिभूत हो अनशन व्रत कर के अपने प्राण दे डाले। इन सब

झगड़ों की जड़ माहिल भी बच गया था और मालूम नहीं अंत में उस की द्वेष-वृत्ति को शांति मिली या नहीं।

यही संक्षेप से आल्ह-खंड की कथा है। इसे और रासो के महोबा-खंड के सारांश को मिला कर देखने से दोनों का स्वतंत्र दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है और यह निश्चय हो जाता है कि दोनों दो भिन्न ग्रंथ हैं।

ग्रंथ का साहित्यिक मूल्य

आल्ह-खंड जिस रूप में इस समय हमारे सामने है, उस रूप में उस का साहित्यिक मूल्य बहुत कम है। यह स्पष्ट है कि इस की भाषा अब बारहवीं शताब्दी की नहीं वरन् एक प्रकार से आधुनिक कन्नौजी बोली के ढंग की सी होगई है और ऐसी अवस्था में भाषातत्व की दृष्टि से जो कुछ उस का मूल्य हो सकता था वह भी लुप्त हो गया। वीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो तथा उस काल की अन्य सभी रचनाएं भाषातत्व के विद्यार्थियों तथा अन्वेषकों के लिए बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इस का कारण यह है कि उस समय की भाषा परिवर्तनकालिक भाषा थी। एक ओर अपभ्रंश और पिछली प्राकृत से तथा दूसरी ओर उस का संबंध पुरानी हिंदी से था और इस लिए उस का गंभीर अध्ययन प्रत्येक हिंदी के भाषा मर्मज्ञ के लिए अनिवार्य नहीं तो अभीष्ट अवश्य होना चाहिए। परंतु खेद है कि वर्तमान आल्ह-खंड के अध्ययन से यह अभीष्ट सिद्ध होने की संभावता नहीं रह गई है। अब उस में जो कुछ भी आकर्षण रह गया है वह उस के अलौकिक वीररस से ओत-प्रोत कथानकों में ही है। इस के युद्ध वर्णन सब प्रायः एक से हैं और बहुत जगह तो वही वही छंद ज्यों के त्यों रख दिए गए हैं, पर तो भी उन में कहीं कहीं अच्छी कविता की झलक भी आ जाती है।

ऐतिहासिक महत्त्व

कथा का ऐतिहासिक महत्व भी कुछ विशेष नहीं है। इस में तो कोई संदेह नहीं कि कथा के बहुत से पात्र ऐतिहासिक पुरुष हैं परंतु उन के साथ ही इस के अधिकांश पात्र ऐसे हैं जिन का उल्लेख इस समय उपलब्ध प्रामाणिक इतिहासों में नहीं है। आल्हा और ऊदल जो कथा के मुख्यपात्र हैं उन का भी उल्लेख पृथ्वीराज रासो के महोबा-खंड को छोड़ कर अन्यत्र हम ने अभी तक नहीं देखा। परंतु इन बातों के होते हुए भी इन को हम काल्पनिक पात्र मानने के लिए तैयार नहीं हैं। यह तो इतिहास हमें बतलाता ही है कि सन् ११६५ ई० में महोबे के सिंहासन पर राजा परमार्दि देव या परमाल आरूढ़ हुए थे। बुंदेल खंड के कुछ आधुनिक पुरातत्त्वज्ञों का मत है कि यह आल्हा और ऊदल इन्हीं परमाल के भतीजे थे। यह लोग दसराज (दत्तराज) और बसराज (वत्सराज) को परमाल के भाई मानते हैं। परंतु अभी इस मत को सर्वमान्य होने के लिए यथेष्ठ प्रमाणों तथा युक्तियों की आवश्यकता है जो कि अभी तक हमें नहीं मिल सके हैं, अतः हम इसे

अधिक महत्त्व देने में असमर्थ हैं। इस का एक कारण यह भी है कि स्वयं आल्ह-खंड में भी दूसराज और बसराज परमाल के भाई नहीं वरन् केवल वेतनभोगी सेनापति ही कहे गए हैं। हां इतना अवश्य है परमाल और उस की महिषी मल्हना इन लोगों को भाई और आल्हा ऊदल आदि को अपने पुत्र ब्रह्मा से भिन्न नहीं मानती थी। मल्हना की लड़की चंद्रावलि बराबर ऊदल को 'ऊदल भैया' कहती है और ब्रह्मा के रहते हुए भी ऊदल ही चंद्रावलि को ससुराल से लिवा लेने के लिए भेजे जाते हैं। फिर ब्रह्मा के मरने पर ब्रह्मा और बेला की चिता में अग्नि देने के लिए ऊदल ही अग्रसर होते हैं। इन बातों से कम से कम इतनी धारणा तो अवश्य होती है कि आल्हा और ऊदल ऐतिहासिक पुरुष अवश्य रहे होंगे। पृथ्वीराज के ताहर नाम का कोई पुत्र और बेला नाम की कोई पुत्री थी कि नहीं इस में भी संदेह है। क्योंकि आल्हा के अनुसार पृथ्वीराज और परमाल के बैर का मूल कारण बेला के साथ ब्रह्मा का व्याह ही था और इसी से फिर लड़ाई के और और तात्कालिक कारणों की उत्पत्ति होती गई और प्राय: आधा आल्ह-खंड इन्हीं के वर्णन से भरा है। पर जहाँ तक हमने पृथ्वीराज संबंधी प्रामाणिक इतिहासों को देखा है, इस व्याह की चर्चा नहीं मिली। इस संबंध में इतिहास और पुरातत्व के प्रेमियों को अभी बहुत कुछ अनुसंधान करना चाहिए।

आल्हखंड में चरित्रचित्रण

साहित्यिक दृष्टि से आल्ह-खंड में एक बात हम बड़े मार्के की देखते हैं। इस के रचयिता को चरित्र चित्रण में अवश्य पर्याप्त सफलता मिली है। मेरी धारणा तो ऐसी है कि कम से कम चरित्र-चित्रण में आल्ह-खंड के रचयिता को चंद से भी अधिक सफलता मिली है। इस के प्रत्येक पात्र सजीव हैं और बड़ी सुंदरता से एक दूसरे के मुकाबिले में रखे गए हैं। दोनों भाई आल्हा और ऊदल को ही लीजिए। दोनों ही बड़े वीर उत्साही, निर्भीक और उच्च विचारों के हैं। पर एक बड़ा धीर गंभीर और सोच विचार कर काम करने वाला है तो दूसरा जल्दबाज़ और ज़रा ज़रा सी बात में जान पर खेल जाता है। एक को जल्दी क्रोध नहीं आता पर एक बार बिगड़ने पर साक्षात् काल स्वरूप ही हो जाता है। पर ऊदल बड़ा भावप्रबल, स्त्रियों से प्रेम कर दुख भोगने वाला, क्षण भर की दोस्ती से प्रेमपाश में बंध कर बिना आगा पीछा सोचे बड़ी से बड़ी बात हार जाने वाला और मर कर भी उसे पूरा करने वाला है। पर आल्हा को, हम इन सब दुर्बलताओं के परे देखते हैं। सब बातों के देखते हुए हमारे लिए यह कहना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है कि हम आल्हा को अधिक चाहते हैं या ऊदल को, और हमारी यही दुविधा ही ग्रंथकार की चरित्रचित्रण कुशलता का सब से अच्छा प्रमाण है। इसी प्रकार परमाल और माहिल को मिलाइए, दोनों कायर हैं पर तो भी दोनों में कितना अंतर है। एक को केवल अपने को बचाने ही भर की चिंता है पर दूसरे को इस के साथ ही स्वयं सुरक्षित रहते हुए औरों के द्वारा परमाल का सर्वनाश भी करा देना है और इस गुरुतर कार्य में वह

सफल भी होता है। पृथ्वीराज को जैसा हम रासो तथा अन्य ग्रंथों में देखते हैं वैसा आल्ह-खंड में नहीं। यहां हम उसे उस के पूरे महत्त्व में नहीं देखते। संभव है आल्हा के उत्कर्ष को बढ़ाने के लिए ही ग्रंथकार ने ऐसा किया हो। इसी प्रकार मलखान, लाखन और ब्रह्मा का चरित्र भी बड़ी खूबी से चित्रित किया गया है। वीरता, प्रभुभक्ति, स्त्रियों की मान रक्षा, अपने देश और जाति के गौरव के नाम पर बड़े से बड़े शत्रु से भी लड़ मरना—आदि सभी उच्चतम वीरों के गुण हम इन में देखते हैं। परंतु इन से भी अधिक रोचक पात्र सैयद मीरा तालन हैं। यह थे तो मुसलमान किंतु परमाल के प्रधान सेनापति थे और आल्हा ऊदल आदि सभी नवयुवकों के युद्ध विद्या के आचार्य थे। यह वयोवृद्ध होते हुए भी लड़ने के समय इन नौजवानों से भी ज्यादा जोश और परम अनुभवी गंभीर से गंभीर सेनापति का रण कौशल दिखलाते थे। बात बात में मुरझाए हुए डरपोक सैनिकों को भी अपने आचरण तथा प्रोत्साहन से मरने मारने पर आमादा कर देते थे। उधर पृथ्वीराज के सेनापति चौंड़ा (चामुंड राय) को लीजिए। यह थे तो बड़े ज़बरदस्त लड़ने वाले पर साथ ही सुयोग पाकर अधर्म युद्ध और गुप्तघात से भी शत्रु को मारने में कोई हर्ज नहीं समझते थे।

स्त्री पात्रों का भी चित्रण वैसी ही कुशलता के साथ हुआ है। इन में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण मल्हना और देवी (आल्हा की मां) का चरित्र है। अपने दुर्बल हृदय और कापुरुष पति की राजनैतिक भूलों को प्रायः मल्हना अपनी दूरदर्शिता राजनीतिकुशलता और मधुर स्वभाव के प्रभाव से सुधार लिया करती थी। वह आदर्श माता की भाँति रूठे हुए लड़कों को मनाना भी खूब जानती थी। देवी को हम एक आदर्श वीरपत्नी और उस से भी अधिक आदर्श वीर माता के रूप में देखते हैं। निर्वासित आल्हा को जब मना लाने के लिए जगनिक गया था और आल्हा अपना अपमान स्मरण कर किसी तरह जाना नहीं चाहता था तब देवी ने जिन बातों से आल्हा को संकटकाल में जन्म-भूमि की मान रक्षार्थ मानापमान का विचार न कर जाने पर उद्यत किया है उन्हें देवी ही कह सकती है। इधर ब्रह्मा की वधू और पृथ्वीराज की पुत्री बेला का चरित्र भी बड़ा ही रोचक है। वह यथार्थ में खून की प्यासी है जैसा कि आल्हा में कहा गया है। उसी के ब्याह ने महोबे और दिल्ली दोनों पक्ष के असंख्य सैनिकों और चुने हुए सामंतों और सेनापतियों को सुरलोक का रास्ता बता दिया और महोबा का तो अस्तित्व ही उठ गया। वह स्वयं भी लड़ने में एक थी। अपने पति की मृत्यु का बदला उस ने ही अपने हाथों गुप्तघाती भाई ताहर का सिर काट कर मरते हुए अपने पति के सामने रख कर दिया। ज़िद्द भी वह एक ही थी। उस के सती होने के लिए लकड़ी पृथ्वीराज के ही बाग से आनी चाहिए, कुछ परवाह नहीं चाहे सब लड़ मरें। पतिप्रेम उस का इतना प्रगाढ़ था कि उस के लिए उस ने अपने भाई या माता पिता आदि से घोर शत्रुता का व्यवहार किया और उस के असाधारण

सतीत्व का प्रमाण यही है कि जब ऊदल उस की चिता में आग नहीं दे पाया तो सतीत्व के प्रताप से अपने आप उस के बालों से अग्नि प्रगट हुई और वीर दर्प से भरी हुई वह शीघ्रातिशीघ्र देवलोक में अपने पति से जा मिली। यह यों तो एक अनहोनी बात मालूम होती है, पर जो हो ग्रंथकार ने इस से उस के असाधारण तेज और सतीत्व के प्रताप का परिचय देने की चेष्टा की है।

आल्हा के समय की विवाहप्रथा

यहां पर उन दिनों राजपूतों में प्रचलित विवाह प्रथा के संबंध में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। उस समय राजाओं के केवल दोही मुख्य कार्य थे—विवाह और आपस में युद्ध; और यह युद्ध अधिकतर इन विवाहों से ही संबंध रखते थे। इन दोनों शुभ कार्यों से जो समय बचता था वह शिकार या काव्य-चर्चा में लगाया जाता था। विवाह अधिकतर दो प्रकार से हुआ करते थे। बड़े राजा प्रायः स्वयंवर करते थे जैसे जयचंद ने संयोगित के लिए किया था। स्वयंवर में आमंत्रित राजाओं को अपने बाहुबल का परिचय देना अनिवार्य होता था। जिस भाग्यवान को लड़की जयमाल पहिनाती थी उस के प्रायः सभी अन्य निमंत्रित राजागण शत्रु बन जाते थे और सभामंडप में ही तलवारें खिंच जाती थीं। कोई अपने को किसी से कम तो समझता न था पर सभों को तो वह कन्या वर नहीं सकती थी। किसी एक को छोड़ कर शेष सभों के सामने 'तजहु आस निज-निज गृह जाहू' की समस्या उपस्थित हो जाती थी। पर ऐसी अवस्था में वे समझ से काम न ले कर अपना अपमान समझ कर उस लड़की के भावी पति से तो ईर्ष्या वश और लड़की के पिता से इस कारण युद्ध ठान लेते थे। इस ने केवल हम लोगों का अपमान करने के लिए अपने यहां बुलाया था। पिता की खैरियत उसी हालत में होती थी जब वह भी लड़का के मनोनीत वर के विरुद्ध अस्त्रग्रहण करने पर उद्यत हो जाता था। ऐसा प्रायः उस समय होता था जब कि वह लड़की का भावी पति पिता का शत्रु या उस से नीच कुल-शील का या किसी विशेष कारण से बिना बुलाए सभामंडप में घुस कर लड़की को बलात् उड़ा ले जाने का दुस्साहस करता था। ऐसा प्रायः वे ही करते थे जिन्हें लड़की की चित्तवृति पहले ही से अपने अनुकूल मालूम रहा करती थी। जयचंद की लड़की संयोगिता और पृथ्वीराज के संबंध में ऐसा ही हुआ था और इस की कथा आल्ह-खंड में भी है। इस के बाद फिर दोनों पक्ष वाले सदा के लिए एक दूसरे के घोर शत्रु हो जाते थे और प्रायः एक दूसरे का सर्वनाश कर के तभी साँस लेता था। बहुधा दोनों ही इस द्वेषाग्नि में जल मरते थे और उन के साथ ही असंख्य सैनिक चुने हुए वीर और उन के राज्य सभी नष्ट हो जाते थे। जयचंद और पृथ्वीराज के वैमनस्य ने तो हिंदूराज्य के अस्तित्व को ही भारत से मिटा दिया।

साधारण स्थिति के राजागण योग्य वर के अन्वेषण के लिए नारियल ले कर पुरोहित को भेजते थे। वह सब बातें देख कर जहाँ एक बार नारियल रख

देता था वहीं संबंध स्थापित हो जाता था। जो राजा विरोधी या किसी अन्य कारण से अवांछनीय समझे जाते थे उन के यहां पुरोहित को जाने की आज्ञा नहीं रहती थी। पर कभी कभी लोग पुरोहित को पकड़ कर जबरदस्ती नारियल रखवा लिया करते थे और विवाह करने बारात के दल से पूरी सेना लेकर जाते थे वहाँ पहले तो द्वार-पूजा के ही समय खूब डट कर लड़ाई होती थी। इस के बाद फेरी देते समय फिर आँगन में भी तलवारें चल जाती थीं। इस में लड़की का भाई प्रायः प्रमुख भाग लिया करता था। फिर आंगन में छाया हुआ मंडप जब विध्वंस हो जाता था तो लोग अपने भाले गाड़ कर उन पर ढालों को रख कर मंडप तैयार कर लेते थे। किसी तरह विवाह समाप्त हो जाने के बाद भी वर की ख़ैरियत नहीं रहती थी। बहुधा उसे कोहबर में या अन्य किसी जगह गुप्त रूप से भी मार डालने का आयोजन हुआ करता था। पर वर प्रायः चौकन्ना रहा करता था और कभी-कभी उसे अकेले बहुत से गुप्तघातकों का सामना करना पड़ जाता था और या तो वह मर ही जाता था और यदि असाधारण वीर हुआ तो बहुतों को तलवार के घाट उतार निकल भी जाता था। परंतु यहां पर सब से मार्के की बात यह होती थी कि वधू की सहानुभूति आरंभ से ही वर पक्ष वालों के साथ हो जाया करती थी और गुप्तरीति से अपने भावी पति और उस के आत्मीय स्वजनों की रक्षा के लिए कोई बात उठा नहीं रखती थी। ऐसा करने के लिए वह अपने भाई या पिता तक के प्राण लेने में नहीं हिचिकती थी। पृथ्वीराज की लड़की बेला और परमाल के लड़के ब्रह्मा के विवाह में प्रायः इसी ढंग की घटनाएं हुई थीं। पर कहीं-कहीं ऐसा भी हुआ करता था। पहले तो लोग विवाह और विदाई की रस्मों के पूरी होने तक खूब जी खोल कर लड़ लेते थे पर एक बार बिदाई हो जाने के बाद फिर दोनों दलों में बड़ी मैत्री स्थापित हो जाती थी और फिर वह किसी तीसरे के विरुद्ध एक हो कर लड़ने का सुयोग ढूँढने लगते थे। इसी प्रकार विवाह संबंधी झगड़ों के कारण से ही उस समय के अधिकांश रजवाड़े गृहयुद्ध और परस्पर के युद्ध में लड़ कर नष्ट हो गए। एक आधुनिक लेखक ने कदाचित् ठीक ही कहा है कि जिस जाति में ऐसी भयानक प्रथाएं हों उस का नष्ट हो जाना ही अच्छा।

अंत में वर्तमान आल्ह-खंड में जो बहुत सी खटकने वाली बातें हैं उन पर कुछ विशेष प्रकाश डालना हम यहां व्यर्थ समझते हैं। एक तो यह कि ऐसी बातों से यह ग्रंथ भरा पड़ा है और दूसरे यह कि उस का अभी तक किसी विद्वान् साहित्य-मर्मज्ञ की देख-रेख में उस का संपादन भी नहीं हुआ है। यह केवल कुछ नामी अल्हैतों के स्मृति-क्षेत्र की उपज मात्र है। इस में बहुत से कथानकों का उलट फेर होना, बहुतों का प्रक्षिप्त सा जान पड़ना और बहुतों का अनुचित क्रम में उल्लेख होना अस्वाभाविक या कुछ आश्चर्य जनक नहीं है। बहुत कुछ खोज और अनुसंधान, के बाद एक परिशोधित और यथासंभव प्रामाणिक आल्हा के संस्करण की बहुत बड़ी आवश्यकता है और विद्वानों को शीघ्रातिशीघ्र इस काम को हाथ में

लेना चाहिए। इस में जगनिक और आल्हा के प्रणयन के संबंध में गंभीर विचार होना चाहिए। यह तो स्पष्ट है ही कि वर्तमान आल्ह-खंड में जगनिक की रचना नाम मात्र को भी नहीं रह गई है पर फिर भी संग्रह मे इसे सम्मिलित कर लेने का कारण यही है कि केवल वीर काव्य की दृष्टि से इस की उपेक्षा नहीं की जा सकती और फिर अब भी जगनिक और वर्तमान आल्हा के संबंध में भविष्य में विशेष प्रकाश पड़ने की आशा पूर्ण रूप से नहीं छोड़ी जाती।

प्रस्तुत संग्रह में महोबे और माड़ो की लड़ाई तथा बेला के सती होने की कथा दी गई है।

आल्ह-खंड का सब से पहला हिंदी संस्करण इस के प्रथम संग्रह कर्त्ता स्वर्गीय इलियट साहब की अनुमति से मुंशी रामस्वरूप नाम के सज्जन ने छपवाया था पर बहुत ढूँढने पर भी इस की कोई प्रति मुझे न मिली। इस को लोग 'असली' आल्हा कहते हैं। इस के आधार पर उस समय के एक प्रसिद्ध अल्हैत पं० भोलानाथ जी ने आल्ह-खंड 'बड़ा' नाम से इस का एक स्वतंत्र संस्करण प्रकाशित किया। यह महोबा प्रांत के अल्हैत थे और स्वभावतः इन के संस्करण की भाषा में महोबे की बोली का प्राधान्य स्पष्ट देख पड़ता है। इसी से प्रस्तुत संग्रह लिया गया है।

———

महोबे[1] की लड़ाई

सुमिरन ।

सुमिरन करिकै नारायण को । अरु गणपति के चरण मनाय ।
देवी गैये आदि भवानी । भूले अक्षर देहु बताय ।।
कोट काँगड़े की देवी को । सुमिरौं बार बार शिर नाय ।
जिह्वा बैठौ मातु सारदा । जाते काम सिद्ध ह्वइजाय ।।
धौलागिरि पर्वत की देवी । निशिदिन पूजौं चरण तुम्हार ।
मोती लैके बीच बीच में । गूँधौं मौरसिरी कौ हार ।।
सो पहिरावौं जगदम्बे को । होउ सहाय राज दरबार ।
देवी ललिता नौमिषार की । मुम्बादेवी मुंबई क्यार ।।
विन्ध्याचल की विन्ध्यवासनी । हिरदै करैं ज्ञान उजियार ।
देश कामरू की कामच्छा । सुमिरन करत जाहि संसार ।।
मातु संकटा हैं लखीमपुर । मंदिर मातु शीतला क्यार ।
सिंह सवारी देवी गरजैं । औ बैरी को करैं संहार ।।
दर्शन कीन्हे श्री देवी के । जरि जरि पाप होत सब छार ।
पुनि मैं सुमिरौं श्री गंगे जी । भागीरथी नाम संसार ।।
जो अस्नान करै नित प्रातहि । ताको तुरत होत निस्तार ।
छोड़ि सुमिरनी अब आगे मैं । कहिहैं हाल महोबे क्यार ।।

---

[1] यह नगर पहले राजा पृथ्वीराज चौहान के समय में परमाल की राजधानी था, और कन्नौज के प्रायः १२० मील दक्खिन बुंदेलखंड प्रांत में जमुना और बेतवा नदी के उस पार बसा हुआ था । यही दोनों नदियां महोबे को कन्नौज राज्य से अलग करती थीं । यह पहले पड़िहारों की अधीनता में था परंतु कालांतर में इस पर चंदेल राजपूतों का अधिकार हुआ और अंतिम चंदेल राजा परमाल या परमार्दि देव सन् ११८९ में यहां के सिंहासन पर बैठा था, परंतु, इस गाथा के अनुसार, माहिल पड़िहार के कुचक्र और ऊदल आदि वीरों की असीम युद्ध और कलह-प्रियता के कारण परमाल के साथ ही महोबा का ऐतिहासिक अस्तित्व मिट गया ।

सवैया

श्री गिरिजापति को बिनवौं पुनि, मैं बिनवौं गिरिजेश दुलारो।
अंजनि पुत्र बली हनुमान, तुहीं सब भाँतिन सों रखवारो॥
हर्षि हिये बिनवौं सब देवन, भक्तन कष्ट सदा निरवारो।
मैं मतिमंद यथा मतिसों, सब के हित गावत वीर पँवारो॥

जेठ दशहरा की परबी परि। गंगा जाजमऊ के घाट।
देश देश से मेला चलिभौ। बुड़की[1] हेत गंगा की धार॥
कड़िया बोला गढ़ माड़ौ में। जो जम्बै[2] के राजकुमार।
एक बात तुमसे कहियत हौं। ददुआ बार बार बलिजाउँ॥
जेठ दशहरा की पर्बी है। बुड़की लेउँ गंग की धार।
है अभिलाषा यह मेरे मन। ददुआ हुकुम देउ फरमाय॥
देश देश के राजा अइहैं। गंगा जाजमऊ के घाट।
हमहूँ जैहैं जाजमऊ में। करिहैं जाय गंग अस्नान॥
हम भी दान करैं विप्रन को। जासों पाप दूर ह्वइजाय।
इतनी सुनिकै जम्बै बोले। बेटा चुप्प रहौ यहि काल॥
काम तुम्हारों ना जैबे को। मानो बात कन्हैया लाल।
बारह बर्ष को पैसा बाक़ी। कनउज दई न एक छदाम॥
जो सुनि पैहैं राजा जैचँद। तुमको कैद लिहैं करवाय।
वहाँ राज है नृप जैचँद को। भारी राज कनौजी राय॥
सीख हमारी मान कन्हैया। घर में बैठि रहौ अरगाय[3]।
हाथ जोरिकै कड़िया बोलो। दादा सुनो हमारी बात॥
बैर तो तूम्हीं से जैचँद[4] को। हे ददुआ हे मेरे तात।
तौ तो बेटा मैं तुम्हरो हूं। बाकी माफ लऊँ करवाय॥

---

[1] ग़ोता।

[2] माड़ौ का बघेल राजा। इस की रानी का नाम कुसला और कुमारों के नाम करिंघा या कड़िया, अनूपा, टोडरमल और सूरज थे। इस की कुमारी का नाम बिजैसिन या बिजमा था। इसे आल्हा ने पकड़ लिया था और ढेबा ने चक्की में पिसवा कर मार डाला था।

[3] अलग होकर।

[4] कन्नौज का अंतिम राठौर राजा (कुछ लोग इसे गहरवार क्षत्रिय कहते हैं) यह अजयपाल का पुत्र, रतिभान का भाई, और लाखन का चाचा था। महोबे में परमाल इस का प्रतिनिधि था।

इतनी बात सुनी जम्बै ने । तुरते हुक्म दियो फरमाय ।
करी तयारी तब कड़िया[1] ने । फ़ौज कटीली लई सजाय ॥
आयो कड़िया रंगमहल को । जहँपर हती बिजैसिनि रानि[2] ।
बोली बिजैसिनि तहँ कड़िया से । भैया सुनो हमारी बात ॥
जो तुम जैयो जाजमऊ को । लैयो कछू निसानी मोहिं ।
वहाँ से कड़िया बदलत आवै । अपने लश्कर पहुँचो आय ॥
बजे नगाड़ा दुइसै जोड़ी । बाजै तुरही औ सहनाय ।
कूच कराय दियो माड़ा से । पहुँचो जाजमऊ के घाट ॥
बहुत दान दीन्हो विप्रन को । कीन्हो गंगा में अस्नान ।
बात याद आई बहिनी की । तब उठि चला कड़िंगाराय ॥
तुरतै पहुचो सो बजार मैं । ढूंढत फिरै नौलखा हार[3] ।
तुम्हें हँसी को डर नाहीं है । ओ जम्बै के राजकुमार ॥
यह सुन कड़िया बोलन लागो । तुम सुन लेउ महिलपरिहार ।
सब बजार में हम फिर आये । कहुँना मिलो नौलखा हार ॥
लौट जवाब दियो माहिल ने । ओ महराज कड़िंगा राय ।
बात हमारी जो तुम मानो । हम बतलावैं नौलखाहार ॥
नगर महोबा एक बस्ती है । जहँपर बसै चँदेलेराय ।
तिन घर रानी इक मल्हना है । सो वह बहिनी लगै हमारि ॥
हार नौ लखा वह पहिरे है । चलिकै लूटि लेउ कहवाय ।
टूटे फूटे पड़े चँदेला । कोई फेंट बँधैया नाहिं ॥
यह मन भाय गई कड़िया के । औ महुबे की पकरी राह ।
यहां कि बातैं तो यहं छोड़ो । अब आगे के सुनो हवाल ॥

---

[1] यह माड़ौ के राजा जम्बै का पुत्र था और इस की मृत्यु मलखान के हाथ से हुई थी ।

[2] यह जम्बै की लड़की थी और मरने के बाद फुलवा के रूप में फिर उत्पन्न हुई और इस की ऊदन से शादी हुई थी ।

[3] यह परमाल की रानी मल्हना का प्रसिद्ध नौलाख रुपयों की कीमत का हार था जिस के लिए इतनी लड़ाइयां हुईं और आल्ह-खंड के कई चुने हुए वीर जिस के कारण मारे गये । मल्हना ने बाद में इसे दस्सराज और देवी के विवाह के समय देवी को पहना दिया था । आगे चल कर कड़िया ने दस्सराज को खतम कर इस हार को उठा ले गया था । इसी के वजह से माड़ौ की प्रसिद्ध लड़ाई हुई थी ।

रहिमल[1] टोडर[2] दस्सराज[3] औ । चौथे बच्छराज[4] महराज ।
ये रहवैया बकसर वाले । चारों बीर बनाफर राय ॥
मीरा ताला बनरसवाले । तिन नौ पूत अठारह नाति ।
अली अलामलि औ दरियाखां । बटा जान बेग मुलतान ॥
मियाँ बिसारति औ कल्लू खाँ । कल्लन वेन और कल्यान ।
कारो बाना कारो निशाना । कारे घोड़न के असवार ॥
शिर पर चीरा है मुग़लानी । मीरा तालन राजकुमार ।
जहाँ हद्द है नृप जैचंद की । तहँ पर भयो बखेड़ा आय ॥
वे फिरयादी कनउज चलिभये । राजा जयचँद के दरबार ।
जो रस्ता थी महुबे ह्वइके । वे महुबे में पहुँचे आय ॥
पूँछन लागे हरिकारा पर । चारौ वीर बनाफल राय ।
हम सब जैहै गढ़ कनउज कौ । रस्ता हमहिं देउ बतलाय ॥
तब हरिकारा पूछन लागो । अपनो काम देउ बतलाय ।
यह सुनि चारौ बोलिन लागे । सरहद भयो बखेड़ो जाय ॥
हम फिरियादी कनउज जैहैं । राजा जैचँद के दरबार ।
फिरि हरकारा बोलनि लागे । ठाकुर सुनो हमारी बात ॥
यह बस्ती है गढ़ महुबे की । यहँ पर बसत राजा परिमाल ।
बात बड़ी है परीमाल की । मानत जिनहिं कनौजी राय ॥
भयो बखेड़ा है धूरे पर । जो लिखि दिहैं राजा परिमाल ।
सोइ फैसला तुम्हरौ ह्वैइहै । जाते काम सिद्ध ह्वइजाय ॥
कही हमारी जो ना मनिहौ । तुम्हरो काम होनको नाहिं ।
बात मान लइ हरकारा की । द्वारे गये चँदेले क्यार ॥

---

[1] रहमल, टोडर, दस्सराज और बच्छराज बकसर के बनाफर वीर थे और चारो भाई भाई थे। यह परमाल के सेनापतियों में से थे। रहमल का लड़का देवा था जिस ने जम्बै को मारा था।

[2] यह भी अपने भाइयों के साथ महोबे में आया था और इस के पुत्र का नाम तोमर था।

[3], [4] दस्सराज भी अपने अन्य भाइयों के साथ महोबे आये थे। इन्होंने ग्वालियर के दलपति की बेटी देवी या देवल देह से व्याह किया था जिस से इन के दो पुत्र प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदल उत्पन्न हुए थे। इन के दूसरे भाई बच्छराज का ब्याह भी ग्वालियर के दलपति की दूसरी लड़की बिरम्हा से हुआ था जिस से इन के दो पुत्र मलखान और सुलखान उत्पन्न हुए थे। इन छहों लड़कों की परमाल के पुत्र ब्रह्मा से बड़ी मित्रता थी और सब के सब बड़े वीर और युद्धकुशल निकले।

खाली सिदरी परीमाल की। तँह टिकि रहे बनाफर राय।
एक लँग ताला [1] बनरसवाले। एकलँग पड़े बनाफर राय॥
कड़िया आयो गढ़ महुबे में। वह जम्बै कौ राजकुमार।
जँह पर फाटक चंद्रवंश को। तहंई पड़े बनाफर राय॥
बोला कड़िया तब फाटक पर। ओ रजपूतो बात बनाव।
खबरि सुनायो चंद्रवंश को। औ मल्हना को जाय सुनाउ॥
हार नौलखा लै जल्दी से। मेरी नजर गुजारै आय।
यह सुनि बोला बनरसवाला। बोले तुरत बनाफर राय॥
तीनि रोज से गढ़ महुबे में। हम सब परे परौने आय।
हाल हमारो न जानो है। हम परदेश रहत महराज॥
हुक्म दे दिया तब कड़िया ने। कछु क्षत्रिन से कह्यो सुनाय।
बजै कुल्हाड़ा इस फाटक पर। औ धरती में देउ मिलाय॥
महल लूटि लेउ परीमाल को। सिगरो गहनो लेउ उठाय।
बजो कुल्हाड़ा तब फाटक पर। देखत खड़े बनाफर राय॥
मीरा ताला और बनाफर। सो आपस में लगे बतान।
तीन रोज से गढ़ महुबे में। खायो नमक चंदेले क्यार॥
सुख से पानी पियो यहां पर। सो हाड़न में गयो समाय।
हीनी ह्वइहै चंद्रवंश की। तौ जग ह्वइहै हँसी हमारि॥
दाग लागि है रजपूती में। सब क्षत्रीपन जाय नशाय।
सबहुन मिलि कै यह मत कीन्हो। प्राणन को दो मोह बिसार॥
खैंचि सिरोही यकलँग ह्वइकै। चारों वीर बनाफर राय।
एक ओर को ताला पहुँचे। सूबा जौन बनारस क्यार॥
बोले सैयद सब बेटन से। तुम सब सुनो हमारी बात।
याही दिन को हम पालो है। अपने हुनर देउ दिखलाय॥
काज पराये जो मरिजैहौ। पक्की कबर दऊँ चुनवाय।
जंग जीति हौ जौ दंगल में। ह्वइहै जुगन जुगन लै नाम॥
सीधा रस्ता है जन्नत [2] का। तुमको कौन पड़ी परवाह।
इतनी सुनि लइ उन लड़िकन ने। अपनी खैंचिलई तलवार॥

---

[1] यह बनारस के वीर सैयद थे जिन के नौ वीर पुत्र थे। इन से और बनाफर वालों से किसी बात पर झगड़ा हो गया था। पहले तो यह सब खूब लड़े पर बाद में झगड़े का फैसला करवाने के लिए परमाल के यहां आए थे।

[2] बाग़, स्वर्ग।

बादल गरजे ज्यौं भादों में। बिजली कड़कि कड़कि रहि जाय।
ऐसे गरजैं बनरसवाले। बनता बरन करी न जाय॥
सब मिलि झपटे उस कड़िया पर। जिन के मार मार रट लाग।
गड़बड़ परिगौ गढ़ महुबे में। बिपता कछू कही ना जाय॥
जहां भीर देखै कड़िया की। तँह घुस परैं बनाफर राय।
मारि सिरोही चहला[१] उढिगौ। सब दल रैन बैन ह्वै जाय॥
जौन रिसाला ताला बैठें। तेहि धरती में देयँ गिराय।
ऐसे काटो दल कड़िया को। जैसे काटै खेत किसान॥
बड़ै लड़ैया बनरसवाले। तँह पर बीत रहा घमसान।
मुँडन के तँह ढेर लागिगै। औ लोथिन पर लोथ दिखाय॥
कड़िया भागि गया माड़ो को। नाहीं मिलो नौलखा हार।
सुनी खबर जब परीमाल ने। औ मल्हना ने सुनो हवाल।
परे परौने जो द्वारे पर। तिनने राखी लाज हमारि।
धर्म हमारो तुमने राखो। तुम्हरो जन्म धन्य संसार॥
इतनी कहिके तब चंदेले। अपने बंगले गये लिवाय।
खातिर करिकै उन सबहिन की। मालिक करो चँदेले राय॥
राजपाट औ धन दौलति के। मालिक बने बनाफर राय।
फौज के मालिक ताला सैयद। सूबा जौन बनारस क्यार॥
मल्हना बोली परीमाल से। स्वामी सुनौ हमारी बात।
व्याह करावो इन ठकुरन को। लड़िका जौन बनाफर राय॥
तौ ये बने रहैं महुबे में। नाहीं कबहुँ जायँ परदेस।
देवैं ब्रह्मा[२] दुइ बहिनी हैं। लड़िका दस्सराज बछराज॥
व्याह रचावौ तिन दोनों का। तुम्हरे काम सिद्ध होइ जायँ।
इतनी सुनि कै परीमाल ने। अपनो नेगी[३] लियो बुलाय॥
टीका मँगाय लियो जल्दी से। औ लड़िकन को लियो बुलाय।
दस्सराज और बच्छराज को। टीका तुरतै लियो चढ़ाय॥
एकहि मड़ये में दोनों की। भाँवरि तुरत लई डरवाय।
बिदा कराय लई बहुअन की। औ द्वारे पर पहुँचे आय॥

---

[१] कीचड़।

[२] देवै (देवी या देवल दे) और ब्रह्मा या बिरम्हा यह दोनों ग्वालियर के दलपति की लड़कियाँ थीं और इन का विवाह क्रम से दस्सराज और बच्छराज से हुआ था।

[३] संबंधी।

जितनी रानी चंद्र वंश की । सो द्वारे पर पहुँची जाय ।
दोनों बहुवन को संग लीन्हो । राखी रंग महल में लाय ।।
हार नौलखा मल्हना लैके । सो देवै को दौ पहिराय ।
जौन[1] नौलखा के लेने को । चढ़िकै आयो कडिंगाराय ।।
औरौ रानी चंद्रवंश की । उन्हूँ हार दियो पहिराय ।
अनँद बधैया महुबे बाजै । घर घर भयो मंगलाचार ।।
फिरकै मल्हना बोलन लागी । स्वामी सुनो हमारी बात ।
स्याने लड़िका औ बहुयें हैं । इनको महल देव बनवाय ।।
नहीं गुजारा इन महलन में । सो तुम समुझि लेउ मनमाहि ।
इतनी सुनिकै चंदेलै ने । अपनो हुक्म दियो करवाय ।।
महुबे गढ़ से आध कोस पर । दशहर पुरवा दियो बसाय ।
सुन्दर महल सजे पुरवा में । तँह बसि गये बनाफर राय ।।
दस्सराज की रनि दिवला से । आल्हा प्रगट भये संसार ।
बच्छराज की रानी ब्रह्मा से । श्री सहदेव लीन्ह औतार ।।
पांडव कुल में जो तरवरिहा । जग में प्रगट भयो मलखान ।
ब्रह्मा जन्म लियो मल्हना से । पंडा अर्जुन को औतार ।।
रतीभान[1] की रनि तिलका से । पांडव नकुल केर अवतार ।।
लाखनि राना गढ़ कनउज में । जाको नाम प्रगट संसार ।
इसी साल के भइ अंतर में । ढेबा[2] आनि लिया अवतार ।।
रही गर्भ से दिवला रानी । योधा भीमसेन औतार ।
ऊदल नामक गढ़ महुबे में । ह्वइहै प्रगट आय संसार ।।
बच्छराज की रनि ब्रह्मा के । आयो गर्भ माहि सुलिखान ।
दस्सराज औ बच्छराज ये । दोनों रहैं एकही साथ ।।
नित-नित जावैं नगर महोबे । मानै हुक्म चँदेले क्यार ।
दोनों भाई समरथ होइगे । निशिदिन करैं राज को काज ।।
धनि-धनि माया परमेश्वर की । अचरज होत देखि सब काज ।
पाँय पनहियाँ जिनके नाहीं । तिनको प्रभू देत गजराज ।।

---

[1] रतिमान कन्नौज के राजा जयचंद का भाई था । इस की महिषी का नाम तिलका था जिस ने लाखन नाम के वीरपुत्र को उत्पन्न किया था ।

[2]. यह बनाफर वीर रहमल का पुत्र था । यह 'मनुर्था' नाम के घोड़े की सवारी करता था और भविष्य वाणी करने में बड़ा चतुर था । इसी ने माड़ौ के राजा जम्बै के प्राण लिये थे ।

यहां कि बातैं तो यहिं रहगईं । अब आगे के सुनों हवाल ।
एक दिन ताला बोलन लागे । तुम सुनि लेउ रजा परिमाल ॥
हाल बतावौ हमको अपनो । क्यों नहिं हाथ गहो हथियार ।
लौट जवाब दियो राजा ने । सय्यद सुनो हमारो हाल ॥
नगर चँदेली के हम राजा । बहुदिन करो राज को काज ।
भैया हमरो यक चंद्रा कर । तेहि हम सौंप दियो सब राज ॥
व्याह कियो हम गढ़ महुबे में । सुनिकै सुघर मल्हनदे रानि ।
इच्छा देखी रनि मल्हना की । तब हम रहे महोबे आय ॥
ससुर हमारे मालवंत थे । जिनके पुत्र महिल परिहार ।
तिनहिं बसायो हम उरई में । महुबे कियो राज दरबार ॥
भरतखंड में जितने योधा । हमने जीति लिये तत्काल ।
बावनगढ़ के राजा जीते । जीते बड़े बड़े भूपाल ॥
मार न खाई काहु बली की । सिगरो हालि गयो संसार ।
रह्यो मुकाबिल ना कोई योधा । खांड़ा सागर दिया परवार ॥
अमर गुरू की क़सम खायली । अब ना गहूँ हाथ हथियार ।
बहुत वर्ष बीते महुबे में । हमने ना पकरी तलवार ॥
माया परम प्रबल इश्वर की । सो प्रभु राखो धर्म सँभार ।
तुमहिं पठायो पमेश्वर ने । तुमने राखी लाज हमार ॥
इतनी सुनिकै सैयद बोले । तुम सुनि लेव रजा परिमाल ।
जहाँ पसीना गिरै तुम्हारो । तहँ दैदऊँ रक्त की धार ॥
ऐसे बात भई सैयद से । बहुते खुशी भयो परिमाल ।
हाल सुनाऊँ अब आगे को । यारो सुनियो कान लगाय ॥
मीरा ताला बनरसवाले । बेटा नाती संग लिवाय ।
कोइ कारजहित गये बनारस । पाई खबर महिल परिहार ॥
माहिल[1] चलिभे तब उरई से । लिल्ली घोड़ी पर असवार ।
आठि रोज को धावा करिकै । गढ़ माड़ौ में पहुँचे जाय ॥

---

[1]-माहिल परमाल का साला और मल्हना का भाई था । यह बड़ा ही कुचक्री, धूर्त और कायर था । षड्यंत्र ही एक मात्र इस का काम था । यह था तो मल्हना का भाई पर इसी ने कड़िया को नौलखा हार के अपहरण का कुमंत्र देकर इतना बड़ा बखेड़ा खड़ा कर दिया । इसीने आगे चल कर पृथ्वीराज को भी परमाल का शत्रु बना दिया जिस का फल यह हुआ कि एक-एक करके सब वीर लड़ लड़ कर मर गये । इसी के कुमंत्र से पृथ्वीराज ने छल कर के चौंड़ा को स्त्री वेश में भेज कर ब्रह्मा को मरवाया । इस ने बनाफर वीरों को अहीर वंश का प्रसिद्ध कर रखा था जिस की वजह इसे इतना रक्तपात हुआ और इस के और पृथ्वीराज के सिवा सभी मर गये ।

जहाँ कचहरी थी जंबै की। माहिल उतरि परे अलगाय।
करी बंदगी तब जंबै को। घोड़ी थामि लई थनवार॥
आवो आवो उरई बोले। अपनो हाल देउ बतलाय।
माहिल बोले तब राजा से। तुम सुनि लेव बघेले राय॥
मीरा तालन बनरस पहुँचे। खाली पड़ा महोबा गाँव।
फेंट बँधैया[1] तँह कोई नाहीं। चलिके लूट लेउ करवाय॥
औसर चूके फिर पछितै हो। आवै घड़ी न बारम्बार।
यह मन भाय गई करियाके। औ महुबे को भयो तयार॥
माहिल चलिभे गढ़ माड़ों से। औ उरई में पहुँचे आय।
राजा जंबै ने ललकारो। बेटा सुनौ कड़िंगाराय॥
काम तुम्हारो ना जैबे को। ना महुबे पर होउ तयार।
तुमहिं लूटिबो ना सोहत है। हो राजन के राजकुमार॥
कही न मानी वा कड़िया ने। अपनो कूच दियो करवाय।
आठ रोज को धावा करकै। गढ़ महोबे में पहुँचो आय॥
आधी राति के भइ अमला में। दश पुरवा में पहुँचो जाय।
सोवत बाँधो दस्सराज को। बच्छराज को लियो बंधाय॥
महल लूटलौ उन दोउन को। सिगरो गहनो लियो उठाय।
हार नौलखा देवै पहिरे। सोऊ तुरतै लियो छिनाय॥
माल खजाना चंद्रवंश को। सब लै लियो कड़िंगाराय।
गज पचशावद[2] दस्सराज को। सो कड़िया ने लियो खुलाय॥
लाखा पातुर[3] दसराज की। घोड़ा पपीहा[4] लियो मँगाय।
जौन वस्तु देखी समुहे[5] पर। सो लै गयो कड़िंगा राय॥
करी वीरता क्या कड़िया ने। चोरी करी महोबे माहि।
लानत ऐसी रजपूती पर। तेगा बाँधन को धिरकार[6]॥
माल पराया जो कोउ ताकै। चोरी करै पराई आय[7]।
धोखा देवै जो काहू को। ताको बार बार धिक्कार॥
पर उपकार करै दुनियां में। सब बिधि सुखी करै नरनार।
काम बनावे जो काहू का। ताको जन्म धन्य संसार॥

---

[1]कमर कसने वाला। [2]पचशावद नाम का दस्सराज का प्रसिद्ध हाथी था जिसे कड़िया खोल ले गया था और बाद में आल्हा ने इसे युद्ध में कड़िया से छीन लिया और फिर अपने काम में लाने लगा। [3] यह दस्सराज की एक गुणी वेश्या थी। [4]यह दस्सराज का परदार घोड़ा था। [5]सामने। [6]धिक्कार। [7]आमदनी अथवा आकर।

कड़िया पहुँचो गढ़ माड़ो में । जीत को डंका दियो बजाय ।
दस्सराज औ बच्छराज को । पत्थर कोल्हू दियो पिराय ॥
शीश काटि कै दोउ भैयन को । सो बरगद में दयो टंगाय ।
हार नौलखा देवे वारो । पहिरैं नित्य बिजैसिनि रानि ॥
नित उठि नाचै लाखा पातुर । राजा जम्बै के दरबार ।
गज पचशावद दस्सराज को । तापर चढ़े कड़िंगाराय ॥
यहां की बातैं तो यहां रह गई । अब महुबे को सुनो हवाल ।
राम बनावे जो बनि जावे । बिगड़ी बनत-बनत बनि जाय ॥

देवे ब्रह्मा दोनैां रोवैं । हा ! दैया गति कही न जाय ।
सुनी खबर जब परीमाल ने । तुरतैं गिरे धरनि मुरझाय ॥
जितनी रानी चन्देले की । सब ने छांड़ि देइ डिंडकार ।
मल्हना रानी रोवन लागी । बिपता कछू कही न जाय ॥
दै दै हाँकै रनियाँ रोवैं । कोई धीर धरैया नाहिं ।
कछुक दिना में ताला सैयद । आए नगर महोबे माहिं ॥
सुनी हकीकत गढ़ महुबे की । सैयद गिरे मूरछा खाय ।
हाय हाय करि रोवन लागे । अब कहूँ मिले धर्म के भाय ॥

कहा बिगारो तिन कड़िया को । बिन तकसीर सतायो आय ।
धोखा दीन्हों उस कायर ने । कड़िया तेरो बुरो ह्वै जाय ॥
अब कहँ पैहैं हम भैयन को । यह दुख दियो मोहि कर्तार ।
धावा मारौ जो माड़ौ पर । तो कछु काम बनन को नाहिं ॥
कठिन लड़ाई है माड़ौ की । कोई शूर बचन को नाहिं ।
बारह कोसन बबुरी वन है । औ लोहागढ़ कोट कराल ॥
कहा हकोकति बंदूकीन की । तोप निशाना ना अनियाय ।
देवै बोली तब सैयद से । सैयद सुनौ हमारी बात ॥

अब तुम पालौ सब लड़िकन को । सिगरो दुःख देउ बिसराय ।
कबहूँ लायक लड़िका ह्वइहै । माड़ौ लिहैं बाप को दाँव ॥
तबहीं चुरिया हम तोड़ैंगी । मिटिहै तबहि पेट को दाह ।
सुनि कै बातै रनि देवे की । सैयद धीर धरौ मन माहि ॥
तीन महीना के बीते पर । ऊदनि आनि धरो अवतार ।
कछु दिन बीते रनि ब्रह्मा के । सुलिखे आनि लिया औतार ॥

देवे बोली तब बाँदी से । बाँदी सुनि ले बात हमारि ।
मुँह ना देखौ या लड़िका को । जियतै याहि देउ फिंकवाय ॥
हंडिया ह्वैके बेटा जन्मों । कहिहैं सबै नगर नर नारि ।
बाँदी बोली तब देवै से । रानी सुनौ हमारी बात ॥

राज पाट धन संपति मिलिहैं । लड़िका फेरि मिलनको नाहिं ।
पुत्र बड़ो फल है दुनियाँ में । पालो याहि मेटि तकरार ।।
बहुतक समझाया बाँदी ने । देवे के मन नाहि समाय ।
कर्म हीन यह बालक जन्मों । याने डारो बाप मराय ।।

टारो-टारो मेरे समुहे से । औ जंगल में देहु फिकाय ।
फिरि कै बाँदी बोलन लागी । रनियाँ बार-बार बलिजाउँ ।।
बिरवा सींचत सब दुनियाँ में । यह आगे को ऐहैं काम ।
बड़े प्यार से याको पालो । माड़ो लिहैं बाप को दांव ।।
मनै हमारे ऐसी आवे । ह्वइहैं सबै तुम्हारे काम ।
ताते तुम को समुझावती हौं । रानी मानौ बात हमार ।।

फेकन योग्य नहीं यह बालक । सो तुम समुझि लेउ मनमाँहि ।
बात न मानी एक देवे ने । औ बाँदी से कह्यो सुनाय ।।
हुक्म अदूली जो तू करिहै । तेरो पेट दऊँ फड़वाय ।
जल्दी ले जा या लड़िका को । औ समुहे से जाउ बराय ।।
लड़िका लीन्हों तब बाँदी ने । औ मल्हना पै पहुँची जाय ।
हाथ जोरि के बाँदी बोली । रानी सुनो हमारी बात ।।

बालक जन्मों रनि देवे ने । औ यह हम से कह्यो सुनाय ।
बन में फेको या लड़िका को । हम को हँसिहैं सकल जहान ।।
हंडिया ह्वइके बालक जन्मों । हमरे जीवन को धिरकार ।
इतनी बात सुनी मल्हना ने । तब राजा को लियो बुलाय ।।
हाल बतायो सब देवे को । सुनतै दुखी भए परिमाल ।
केहि मति मारी है देवे की । क्या कहुं अक्किल गई हिराय ।।

विष्णु बड़े हैं सब देवन में । वेदन सामवेद को गान ।
तैसेइ पुत्र बड़ो दुनियाँ में । जिस देही में नैन प्रधान ।।
छाती चौड़ी या लड़िका की । नैना हिरना की अनुहारि ।
ऊँचो माथो मुख सुंदर है । अच्छे लच्छण परैं दिखाय ।।
शूरवीर ह्वइहैं यह बालक । रानी बचन करो परमान ।
बहुत हेत से याको पालो । मन में करो न सोच विचार ।।

बानी सुनि के मल्हना रानी । मन में बहुत खुशी ह्वइ जाय ।
लैके लड़िका मल्हना रानी । पालन करन लगी करि प्यार ।।
एक दूध को ब्रह्मा पीवे । दूजो पियै उदयसिंह राय ।
दूध पिआवे अमखुर बन से । दोनो पुत्र गोद बैठाय ।।
दिन-दिन बढ़न लाग नर ऊदनि । योधा भीमसेन औतार ।
बहुतै प्यार से मल्हना पालै । अमखुर बन से दूध पिआय ।।

कछु दिन बीते चंद्रवंश में । उपजो आय पुत्र रणजीत ।
आल्हा ऊदनि मलिखे ब्रह्मा । ढेबा रणजित[1] औ सुलिखान ।।
यहि विधि प्रकटे सातों लड़िका । शोभा कछू कही ना जाय ।
खेलत डोलैं सब आँगन में । सब को मल्हना करै दुलार ।।
आल्हा बोले रनि मल्हना से । मैं तरवरिहा पूत तुम्हार ।
बोली मल्हना तब आल्हा से । जुग-जुग जियो लड़ैते लाल ।।
सब तरवरिहा पूत हमारे । पानी पिऔं उतारि-उतारि ।
नित-नित लाड़ करैं लड़िकन को । ह्वै के खुशी मल्हनदे रानि ।।
सुंदर सुंदर कपड़ा लैके । सो लड़िकन को दे पहिराय ।
कड़ा सोबरन[2] के पहिराये । चीरा कलँगी दई बंधाय ।।
लै तरवारैं छोटी छोटी । सो लड़िकन को दई गहाय ।
इन्दा नाई चन्द्रवंश को । ताको मल्हना लियो बुलाय ।।
नाई आयो जब महलन में । तब मल्हना ने कह्यो सुनाय ।
तुम लै जावो इन लड़िकन को । जहँ दरबार चन्द्र सरदार ।।
संग लैलियो उन लड़िकन को । नाई गयो राज दर्बार ।
जबही लड़िका बँगला पहुंचे । तुरतै उठे रजा परिमाल ।।
बहुत प्यार से लै लड़िकन को । अपनी छाती लियो लगाय ।
दई मिठाई सब लड़िकन को । औ महलन को दियो पठाय ।।
उठी कचहरी जब राजा की । महलन गये चँदेले राय ।
एक ललकार दई मल्हना को । रानी अक्किल गई तुम्हार ।।
वंश नशैबे को लागी हो । बँगले लड़िकन दियो पठाय ।
हाथ जोरिकै रानी बोली । स्वामी सुनो हमारी बात ।।
दूध पूत नाहीं छिपिबे को । नाहीं छिपै सम्पदा राज ।
अबहिं तो लड़िका बँगला पहुँचे । भोरहिं खेलत फिरैं शिकार ।।
यह सब लड़िका समरथ होइहैं । एक दिन प्रगट होंय संसार ।
इतनी बात सुनी मल्हना की । मनमें खुशी भये महराज ।।
राम बनावै सो बनिजावै । बिगड़ी बनत बनत बनि जाय ।
कछुक दिना बीते महुबे में । आये अमरनाथ महराज ।।
खबरि पहुँचि गई रंगमहल में । आये अमर गुरू अधिराज ।
मल्हना दिवला ब्रह्मा रानी । सब मिलि आय गई तत्काल ।।
करि परिकर्मा अमरनाथ की । सातों लड़िका करे अगार[3] ।
लड़िका डारि दिये चरणों में । हाथ जोरिकै कह्यो सुनाय ।।

---

[1] परिमाल का द्वितीय पुत्र, ब्रह्मा का छोटा भाई । [2] सुवर्ण, सोना । [3] आगे ।

शरण तुम्हारी सब लड़िका है । जानौं इनहिं आपनो दास ।
दाया करिकै इन लड़िकन पर । अपनो हाथ धरौ महराज ॥
चारों ओर बसत बैरी हैं । केहि बिधि बनैं हमारे काज ।
यह सुनि बोले अमरनाथ जी । रानी सुनौ महौबे क्यार ॥
सोच त्यागि देउ तुम जियरा से । सब बिधि भला करै करतार ।
ये सब लड़िका समरथ हुइहैं । होइहैं सबै तुम्हारे काम ॥
साखा चलिहै बावनगढ़ में । जितिहैं बड़े बड़े बलवान ।
इतनी कहिकै अमर गुरू ने । लड़िका ठाढे करे अगार ॥
सूरति देखी उन लड़िकन की । मन में खुशी भये गुरू राय ।
पीठी ठोंकी जब आल्हा की । तब यह कही गुरू महराज ॥
जग में तुम्हरो साखा चलिहै । होइहैं जीति समर के माहिं ।
पीठी ठोंकी फिर ऊदनि की । बोले अमरनाथ तत्काल ॥
बज्रकि देही या लड़का की । जामें गडै नाहिं हथियार ।
हाथ फिराया नर मलिखे पर । काया सबै बज्र होइ जाय ॥
हाथ बढ़ावन लगे पाँव पर । तब ब्रह्मा ने कह्यो सुनाय ।
पाँव न छुइयो तुम चेला के । नहिं घटि जइहै धर्म हमार ।
यह सुनि बोले अमर गुरू जी । रानी सुनौ बनाफर क्यार ॥
सिगरी काया भई बज्र की । याके तलुअन में है काल ।
शस्त्र लागिहैं जब तलुवा में । तब ना बचै तुम्हारो लाल ॥
फिर कर परसा ब्रह्मानंद पर । सारा देह बज्र होइ जाय ।
तुम्हरि बरोबरि को ताहर है । नहिं दूजे की बार बसाय ॥
हाथ फिराया फिर सुलिखे पर । काया बज्र रूप होइ जाय ।
तुम्हरी बरनी है धाँधू[1] से । ना दूजे से काल तुम्हार ॥
फिर कर परसा नर ढेबा पर । औ रणजित पर फेरो हाथ ।
बज्र की काया करी गुरू ने । अपनी मढ़ी पहूँचे जाय ॥
आल्हा ऊदनि मलिखे ढेबा । ब्रह्मा रणजीत औ सुलिखान ।
सातौ लड़िका दिन दिन बाढैं । खेलैं राज महल के माहिं ॥
करै चौकसी रानी मल्हना । सबको देखि देखि खुश होय ।
राम बनावैं तो बनिजावै । बिगड़ी बनत बनत बनि जाय ॥

---

[1] यह पृथ्वीराज चौहान के भाई खंडे राय का पुत्र था और पृथ्वीराज के प्रमुख वीरों में से था । यह भौरानंद नाम के हाथी पर सवारी करता था । ब्रह्मा के हत्याकारियों में यह भी एक था । इसने धनुआ तेली और गंगा को मारा था और स्वयं लाखन के हाथ से मरा था ।

सोई बनाई रघुनन्दन ने । समरथ भये बनाफर राय ।
ताला सैयद बनरस वाले । जो सब लड़कन के उस्ताद ॥
युक्ति बताई बस लरिबे की । दीन्हे अस्त्र शस्त्र सिखलाय ।
आल्हा मलिखे औ नर ऊदनि । चौथे ब्रह्मा राजकुमार ॥
चारों लड़िका भये जोरावर । जिनके बल को नाहि संभार ।
मलिखे ऊदनि के समुहे पर । बिरला शूर गहै हथियार ॥
जो कोइ देखै इन लड़िकन को । मन में बहुत खुशी होइ जाय ।
फिरि तदबीर करी मल्हना ने । सातौं लड़िका लिये बुलाय ॥
सात बछेड़ा[1] बड़ी राशि के । सो मंगवाये मल्हन दे रानि ।
घोड़ करि लिया बड़ी राशि को । सो आल्हा को दियो गहाय ॥
घोड़ हरनागर बड़ी राशि को । सो ब्रह्मा को दियो गहाय ।
घोड़ि कबुतरी बड़ी राशि की । सो मलिखे को दई गहाय ॥
घोड़ा बेंदुला मल्हना लैकै । सो ऊदनि को दौ पकराय ।
घोड़ा मनुरथा मल्हना लैकै । सो ढेबा को दियो गहाय ॥
घोड़ा हिरौंजिनी मल्हना लैकै । सो सुलिखे को दई गहाय ।
घोड़ि हिरौंजिनी दुसरी लैकै । सो रणजीत को दी पकराय ॥
फिरि हंसि बोली मल्हना रानी । लड़िकौ सुनौ हमारी बात ।
भोर होत खन झाबर जैयो । बनमें खेलियो जाय शिकार ॥
हिरना लहैं जो जंगल से । सो तखरिहा पूत हमार ।
भोर होत ही सिगरे लड़िका । अपने घोड़न पर असवार ॥
जायके पहुँचे सब झाबर में । बन में खेलत फिरत शिकार ।
तीनि पहर जंगल में होइगे । ना काहू को मिलो शिकार ॥
आल्हा मलिखे ब्रह्मा ढेबा । रणजित और बीर मलिखान ।
ये सब लौटि गये महुबे को । ठाढो ऊदनि करे विचार ॥
ना शिकार बन में हम पाई । केहि बिधि जैहौ नगर महोब ।
तौलौं हिरना एक जंगल से । रस बेंदुल के भगो अगार ॥
घोडा बेंदुला कों धरि दाबो । औ हरिना को परो पिछार ॥
हिरना पहुँचो सो उरई[2] में । औ बगिया में गयो समाय ।
ऊदनि ढूँढै वा हिरना को । बगिया गर्द दई करवाय ॥
तब ललकारो तँह माली ने । ओ राजन के राजकुमार ।
कौन देश के तुम ठाकुर हो । बगिया गर्द दई करवाय ॥

---

[1] घोड़े का बच्चा । [2] उरई महोबा और कन्नोज के बीच में एक नगर या कसबा था । यहीं का ठाकुर प्रसिद्ध षड्यंत्रकारी माहिल था ।

जो सुनि पैहैं माहिल ठाकुर । तुम्हरो घोड़ा लिहैं छिनाय ।
इतनो सुनि कै ऊदनि तड़पे । औ माली से कह्यो सुनाय ॥
देश हमारो नगर महोबो । जँह पर बसत रजा परिमाल ।
छोटे भैया हम आल्हा के । औ ऊदनि है नाम हमार ॥
कौन सो त्त्री है दुनियां में । जो मेरो घोड़ा लेय छिनाय ।
इतनी कहि कै ऊदनि चलिभे । औ महुबे की पकरी राह ॥
एक पहर के तब अरसा में । गढ़ महुबे में पहुँचे आय ।
दुसरे दिन सब लड़िका चलिभै । बन में खेलन गये शिकार ॥
हिरना मारो सब ने मिलिकै । सो मल्हना के धरो अगार ।
करैं सवारी सब घोड़न पर । नित नित खेलन जाँय शिकार ॥
सुनि सुनि बातैं सब लड़िकन की । बहुतैं खुशी होय परिमाल ।
आल्हा ऊदनि मलिखे सुलिखे । माड़ौं लिहैं बाप के दांव ॥
तौ न लड़ाई आगे लिखिहौं । यारो सुनियो कान लगाय ।
सुमिरन करिये नारायण को । जो दीनन पर रहत दयाल ॥
भोलानाथ मनायहिये मँह । अब माड़ौ को लिखौं हवाल ।

जम्बै की लड़ाई

सुमिरन करिकै श्री गणपति को । औ गिरिजा के चरण मनाय ।
लिखौं लड़ाई अब जम्बै की । यारौ सुनियो कान लगाय ॥
एक हरकारा दाखिल ह्वै गयो । जहँ दरबार बनाफर क्यार ।
कागज लैकै कलपीवालो । अपनो कलमदान लै हाथ ॥
लिखी हकीकति तब आल्हा ने । पढ़ियो याहि बघेले राय ।
हैावे इच्छा जो लड़ने की । तौ तुम लड़ो हमारे साथ ॥
रारि मिटावनि की इच्छा हो । तौ सुन करो हमारी बात ।
हार नैा लखा लाखापातुर । डोला साजि बिजैसिन क्यार ।
बावन बचुका पशमीना के । हमरी नजरि गुजारौ आय ।
खुपरी लावो हमरे बाप की । औ आधीनी करौ बनाय ॥
दूजी करि हौ जो हमरे संग । पगिया बंद बचैयो नाहिं ।
चिट्ठी लिखि कै यह आल्हा ने । सो धावन को गई गहाय ॥
धावन चलि भयो तब लशकरसे । औ माड़ौ में पहुँचो जाय ।
जहां कचहरी नृप जम्बै की । धावनि उतरि परो अरगाय ॥
बड़बड़ त्त्री बंगाला बैठे । अजगर लागि रह्या दरबार ।
बात बनाफर की होती रहि । सब पर रही उदासी छाय ॥

धावन पहुँचि गयो समुहे पर । लचि जम्बै को कियो सलाम ।
सात पैग से कुन्नज[१] करि कै । पाती गद्दी दई चलाय ॥
नजरि बदलि गई तब जम्बै की । पाती तुरतै लई उठाय ।
खोलि कै पाती जम्बै बाँची । मन में बहुत खफा होइ जाय ॥
तुरत बुलायो तब पंडित को । साइति हमैं देउ बतलाय ।
तोप लगैहौं लोहा गढ़ में । महुबे वारन दऊँ उड़ाय ॥
इतनो सुनिकै पंडित बोले । गिनिकै मीन मेष बतलाय ।
साढ़े साती पड़ो शनीचर । अठयें पड़ी वृहस्पति आय ॥
अब ना बचिहौ रणखेतन में । समुहे काल बिराजो आय ।
करौ मित्रता तुम आल्हा से । जो मांगै सो देउ पठाय ॥
भलो तुम्हारो है याही में । इतनी मानो कही हमारि ।
इतनी सुनिकै राजा बोले । पंडित सुनौ हमारी बात ॥
एक दिन मरना है सब ही को । खटिया परिकै मरै बलाय ।
सन्मुख रण में हम मरिजैहें । होइहैं जुगन[२] जुगन लौं नाम ॥
डोला मांगत हैं बेटी को । ओछी जाति बनाफर केरि ।
टुकड़खोर[३] हैं चंदेले के । परीमाल के अहैं गुलाम ॥
दाग लागिहैं रजपूती में । हमरो जियत मरन होइ जाय ।
जीवत डोला हम ना देहैं । चाहै प्राण रहैं की जाँय ॥
इतनी कहिकै राजा जम्बै । फिरि पाती को लिखो जबाब ।
लिखो हकीकत यह जम्बै ने । पढ़ियो याहि बनाफर राय ॥
जीवत डोला हम ना देहैं । नाहक रारि बढ़ाई आय ।
चुप्पै लौटि जाउ महुबे को । नाहीं मूँड़ लऊँ कटवाय ॥
जो गति कीन्ही दस्सराज की । सो गति करौं तुम्हारी आय ।
ताते लौटि जाउ जल्दी से । इतनी मानव बात हमार ॥
पाती लिखिदई यह जम्बै ने । औ धावन को दई गहाय ।
चला साँड़िया गढ़ माड़ौ ते । औ लश्कर में पहुँचो आय ॥
जहाँ कचहरी थी आल्हा की । समुहे धावन गो नगिचाय[४] ।
करी बन्दगी श्री आल्हा को । पाती दई हाथ में जाय ॥
काढ़ि कतरनी ते बंद काटो । कोरी कागद दियो चलाय ।
पाती बाँची जब आल्हा ने । गुस्सा गई देह में छाय ॥
तुरत नगड़ची को बुलवायो । सोने कड़ा दिये डरवाय ।
बजै नगारा हमरे दल में । सिगरी फौज होय तैयार ॥

---

[१] झुक कर सलाम । [२] युगांतर । [३] दूसरे के टुकड़ों से पलने वाले । [४] नज़दीक आकर ।

तोप दरोगा को बुलवायो । सिगरी तोपै करौ तैयार ।
हाथिन वाले को बुलवायों । हाथी सिगरे होयँ तयार ॥
घोड़न वाले को बुलवायो । घोड़ा सबै लेउ सजवाय ।
हुक्म मानिकै चलो दरोगा । लश्कर सबै सजावन लाग ॥
जितनो तोपैं थी महुबे की । सो चरखिन पर दईं चढ़ाय ।
जितने हाथी थे महुबे के । हौदा एक साथ धरि जाँय ॥
जितने घोड़ा थे लश्कर में । काठी एक साथ खिंच जाय ।
बजो नगाड़ा जब लश्कर में । क्षत्री सबै भये हुशियार ॥
पहले डंका के बाजत खन । क्षत्रिन बाँधि लिये हथियार !
दुसरे डंका के बाजत खन । क्षत्रिन धरे रकाबन पाँय ॥
हाथी चढ़ैया हाथिन चढ़िगे । बाँके घोड़न के असवार ।
तिसरे नगाड़ा के बाजत खन । लशकर कूँच दियो करवाय ।
हाथी सजवायो पचशावद । तापर आल्हा भए सवार ॥
घोड़ी सिहिंनी सजि कै आई । सैयद फांदि भए असवार ।
घोड़ी कबुतरी तयार कराई । मलिखे फांदि भये असवार ॥
घोड़ा बेंदुला को सजवायो । ऊदनि फांदि भए असवार ।
घोड़ मनुरथा सजिकै आयो । ढेवा फांदि भए असवार ॥
तीनि घड़ी को अरसा गुजरो । लोहागढ़ में पहुँचो जाय ।
हुक्म दे दियो तब आल्हा ने । जल्दी तोपैं देउ लगाय ॥
बत्ती दैदेउ सब तोपन में । लोहागढ़ को देउ उड़ाय ।
एक हरिकारा दौरति आयो । औ जम्बै पर पहुँचो आय ॥
काहे गाफिल तुम बैठे हो । चढ़ि कै आए बनाफर राय ।
फाटक घेरि लियो आल्हा ने । अब लड़िबे को होउ तयार ॥
इतनी बात सुनो जम्बै ने । सुनतै उठे भरहरा खाय ।
इतनी बात सुनी जम्बै ने । सिगरी तोपै देउ चढ़ाय ॥
बत्ती दै देउ सब तोपन में । महुबे वालन देउ उड़ाय ।
इतनी सुनतै झुके खलासी । सिगरी तोपैं दईं चढ़ाय ॥
बत्ती दै दईं सब तोपन में । धुँअना रहो सरग में छाय ।
दगी सलामी आल्हा दल में । तोपन बत्ती दई लगाय ॥
धुँवा उड़ानों आसमान लौं । चहुँ दिशि रही अंधरिया छाय ।
गोला चलन लगे दोऊ दल । अंधाधुंध कहो ना जाय ॥
ओला के सम गोला बरसै । मानौ मघा बूँद झरलाय ।
खलभल[1] परिगौ दोनों दल में । क्षत्री गिरैं भूमि भहराय ॥

---

[1] खलबली ।

तकि-तकि गोला मलिखे मारै । लोहागढ़ में ना अनियाय ।
गोला छूटै लोहागढ़ से । कोऊ कुँवर न आड़ै पाँव ॥
गोला लागै लोहागढ़ में । तुरतै टूक-टूक होइ जाय ।
तीनि पहर भरि गोला छूटैं । गै चुटकिन के मास उड़ाय ॥
तोपैं धैं-धैं लाली होइ गईं । औ लोहागढ़ टूटा नाहि ।
कन्ने झरि गए सब तोपन के । तोप दरोगा दियो जवाब ॥
मोरे भरोसे तुम रहियो ना । यहँ तोपन की नाहिं बसाय ।
सुनतै आल्हा सोचन लागे । तब ऊदनि ने कही सुनाय ॥
जितनी लकड़ी है बबुरी बन । सो छकड़न मे लेउ मँगाय ।
सो भरवाय देउ खंदक में । नीचे सुरंग देउ लगवाय ॥
इतनी बात सुनी आल्हा ने । तब यह हुक्म दियो फरमाय ।
लावौं झाँखर बबुरी बन तें । औ खंदक में देउ डराय ॥
दीन्हो हुक्म सफर मैना को । जल्दी देवौ सुरंग लगाय ।
इतनी सुनतै लोहागढ़ में । तुरतै सुरंग लगावन लाग ॥
झाँखर आए बबुरी बन से । सो खंदक में दिए डराय ।
पीपा भरि-भरि बारूदन के । सो सुरंग में दिए झुकाय ॥
बत्ती दै दई जब बरूद में । सीसा पिघलि-पिघलि रह जाय ।
उड़ी दिवालैं लोहागढ़ की । मट्टी आसमान उड़ि जाय ॥
तोपैं गिरगईं तब ऊपर से । मलिखे धावा दियो कराय ।
छत्री पहुँचि गये फाटक पर । सब ने खैंचि लई तलवार ॥
जितना लश्कर था फाटक पर । सो सब काटि करो खरियान ।
लोहागढ़ फाटक माड़ौ को । सो धरती में दियो मिलाय ॥
रैयत रोवै गढ़ माड़ौ का । कड़िया तेरो बुरो होइ जाय ।
आपु नशाय गयो अपने गुन । औ रैयत को दियो बिगार ॥
काल आयगयो अब जम्बै को । बैठी बरैं दई उड़ाय ।
खलभल परिगयो सब रैयत में । सब के भूलिगये औसान ॥
बढ़े सिपाही महुबे वाले । फाटक निकरि गये वा पार ।
आगे-आगे पैदल बढ़ि गये । पीछे-पीछे चले सवार ॥
ताके पीछे हाथिन वाले । तोपैं आगे दई बढ़ाय ।
सैयद कूदे अली-अली करि । हिंदू कूदि परे कहि राम ॥
ऐसे कूदे गढ़ माड़ौ में । जैसे लंका में हनुमान ।
दौरत आया एक हरकारा । सो जम्बै पर पहुँचा जाय ॥
खबरि सुनाई तब जम्बै को । औ महाराज बघेले राय ।

सड़क बनाने वाले सिपाही (sappers and miners का अपभ्रंश) ।

सुख से बैठे हौ बंगला में । अब दुख नींद पहूँची आय ।
धावा बोलि दियो आल्हा ने । लोहा फाटक दियो गिराय ॥
इतनी सुनतै परलै होइ गई । जम्बै बहुत गये घबराय ।
तुरतै हाकिम उठि ठाढे भये । सिगरी सभा उठी भहराय ॥
हुक्म दै दिया तब जम्बै ने । सारी फौज होय तैयार ।
डंका बाजै मेरे दल में । लश्कर सजत न लागै बार ॥
बजो नगाडा तब लश्कर में : क्षत्री सबै भये हुशियार ।
पहले डंका में जिन बन्दी । दुसरे बाँधि लिये हथियार ॥
तिसरे डंका के बाजत खन । क्षत्री फाँदि भये असवार ।
हाथी चढैया हाथिन चढ़िगे । बाँके घोड़न पर असवार ॥
कोउ नालकिन कोउ पालकिन । कोऊ गजरथ पर असवार ।
चौथे डंका के बाजत खन । लश्कर चला बघेले क्यार ॥
राजा जम्बै करी तयारी । औ गंगाजल लियो मंगाय ।
करि अस्नान लिये राजा ने । चंदन चौकी लई मंगाय ॥
पूजन करिकै गणनायक की । करिकै इष्टदेव को ध्यान ।
चन्दन खारो मलयागिरि को । औ माथे में लियो लगाय ॥
जामा पहिरि लियो जल्दी से । ऊपर बखतर लियो चढ़ाय ।
टोप झलरिहा धरि माथे पर । ऊपर कुँडी लइ औंधाय ॥
बारह छुरियाँ कम्मर बाँधी । जम्बै दुइ बाँधी तलवारि ।
अगल बगल पै दुइ पिसतौलें । बाँयें सिंहिनि मूठि कटार ॥
जितनी शस्तर[1] रजपूती के । सो जम्बै ने लिये सँभार ।
भौरानंद[2] हाथी सजवायो । लैकै रामचंद्र को नाम ॥
सिढ़ियन सिढ़ियन जम्बै चढ़िगे । औ हौदा में बैठे जाय ।
हाथी चलि भयो तब जम्बै को । शोभा कछू कही ना जाय ॥
दोनों सेना एकमिल होइ गईं । खट खट चलन लगी तलवारि ।
चलै दुधारा दक्खिन वाला । कोता खानी चलै कटार ॥
खाँड़ा बाजैं रण के भीतर । गोली चलै दनाक-दनाक ।
कहँ लग बरनौं मैं त्यहि औसर । रण में चलैं सबै हथियार ॥
झुके सिपाही दोनों दल के । सब के मारु-मारु रट लागि ।
मुर्चन मुर्चन नचै बेंदुला । ऊदनि कहैं पुकारि-पुकारि ॥
नौकर चाकर तुम नाहीं हो । तुम सब भैया लगो हमार ।
जीतिकै चलिहौ जो महुबे को । सोने कड़ा दऊँ डरवाय ॥

---

[1] शास्त्र, हथियार । [2] यह जम्बै के हाथी का नाम था ।

दियो बढ़ावा नर ऊदनि ने । छत्री वीर रूप होइ जायँ ।
जैसे लड़िका गबड़ी खेलैं । गिनि-गिनि धरैं अगारू पायँ ॥
झुके सिपाही महुबे वाले । दोनों हाथ करैं तरवारि ।
जम्बै बढ़िगे तब आगे को । औ ऊदनि को दी ललकार ॥
कौन सूरमा है महुबे को । सो आगे बढ़ि देइ जवाब ।
घोड़ा बढ़ायो तब ऊदनि ने । दुइ मस्तकि अड़ाये पाँव ॥
सोने कलशा जो हौदा को । सो ऊदनि ने दिये गिराय ।
देही पजर गई जम्बै की । लिया हाथ में गुर्ज उठाय ॥
चोट चलाई नर ऊदनि पर । घोड़ा पाँच कदम हटि जाय ।
लगो चपेटा एक घोड़ा के । घोड़ा खड़ो खड़ो थर्राय ॥
खैंचि शिरोही लइ ढेबा ने । सो जम्बै पर दई चलाय ।
चोट बचाई तब जम्बै ने । अपनो दीन्हो गुर्ज चलाय ॥
लगो चपेटा तब घोड़ा के । सो समुहे ते गयो बराय ।
राजा जम्बै की डपटनि में । लश्कर तिड़ी बिड़ी ह्वइजाय ॥
छत्री हटिगे सब समुहे ते । कोऊ वीर ना आड़े पाँव ।
अकिलै जम्बै की मारन से । भागन लगे महोबिया ज्वान ॥
ऊँचे खाले भागन लागे । औ नारेन की पकरी राह ।
बाँधि लँगोटा कोउ कोउ छत्री । देही अंग विभूत रमाय ॥
हमैं न मरियो हमैं न मरियो । हम भिक्षा के माँगन हार ।
भिक्षा माँगन हम आये थे । तौ लौं चलन लगी तलवारि ॥
जो क्षत्रिन की ढालें गिर गईं । तिनकी लई बुचुकिया[1] बाँधि ।
प्राण पियारे जिन क्षत्रिन के । काँधे लई बचुकिया डारि ॥
हमैं न मरियो हमैं न मरियो । हम ढालन के बेचन हार ।
ढालैं बेचन हम आये थे । तौ लौं चलन लगी तलवारि ॥
कोऊ लरिकन को रोवत है । कोऊ पुरिखन को चिल्लाय ।
कठिन लड़ाई भइ जम्बै संग । औ बहि चली रक्त की धार ॥
देखि हकीकति तब जम्बै की । मलिखे घोड़ा दई बढ़ाय ।
बोले मलिखे मंडलीक से । दादा सुनौ हमारी बात ॥
जौहर कीन्हे हैं जम्बे ने । सब दल रैन बैन होइजाय ।
हमरी बरनी को नाहीं हैं । अब तुम लेउ जँजीरन बाँधि ॥
तुम्हरी बरनी को जम्बै है । बड़ बैरी को लीजै साधि ।
इतनी बात सुनी आल्हा ने । अपनो हाथी दियो बढ़ाय ॥

---

[1] गठडी

लै जँजीर तुरतै आल्हा ने । पचशावद को दई गहाय ।
साँकरि फेरी जब हाथी ने । सब दल रैन बैन ह्वइजाय ॥
भगे सिपाही माड़ौ वाले । अपने डारि डारि हथियार ।
भगत सिपाही जम्बै देखे । अपनो हाथी दियो बढ़ाय ॥

जम्बै बोले तब आल्हा ते । सुन लेउ दस्सराज के लाल ।
हमरी तुम्हरी अब बरनी है । देखैं कापर राम रिसाँय ॥
चोट आपनी आल्हा करिलेउ । नाहीं सरग बैठि पछिताउ ।
बोले आल्हा तब जम्बै ते । तुम सुन लेउ बघेले राय ॥

चोट अगाऊ हम न करते । ना भागे के परैं पिछार ।
हाहा खाते को ना मारैं । ऐसी आन चँदेले क्यार ॥
चोट आपनी पहिले करिलेउ । मनके मेटिलेउ अरमान ।
इतनी सुनिकै तब जम्बै ने । करमें लीन्ही लाल कमान ॥
तीर निकासो एक तरकस ते । सो हौदा पर दियो जमाय ।
बाँण चलाय दियो समुहे पर । आल्हा लीन्हों वार बचाय ॥

साँगि चलाई तब जम्बै ने । आल्हा हाथी दियो हटाय ।
बचिगै आल्हा तब हौदा में । नीचे गिरी साँग अरराय ॥
पाँच कदम जब आल्हा रहिगे । तब जम्बै ने कह्यो सुनाय ।
रच्छा कर लई परमेश्वर ने । अबँहू लौट महोबे जाउ ॥
आल्हा ज्वाब दियो जम्बै को । तुम सुनि लेउ बघेले राउ ।
पाँउ पिछारू हमना धरिहैं । चाहै प्राण रहै की जाउ ॥
तिसरो वार और भी करिलेउ । नहीं सरग बैठि पछिताउ ।
इतनी सुनिकै तब जम्बै ने । अपनी खैंचि लई तलवारि ॥

पिलकर चोट करी आल्हापर । आल्हा दीनी ढाल अड़ाय ।
तीनि शिरोही जम्बै मारी । तुरतै टूटि गई तलवारि ॥
देखि हकीकत राजा जम्बै । मन में गये सनाका खाय ।
आजु शिरोही धोखा दै गई । हमरो काल पहूँचो आय ॥
तब ललकार दई आल्हा ने । जम्बै सावधान ह्वइजाव ।
इतनी कहिकै नर आल्हा ने । अपनी लीनी ढाल उठाय ॥

औभड़ मारी तब जल्दी से । तुरत महावत दियो गिराय ।
गिरत महावत परलै ह्वइगई । जम्बै लई कटारी काढि ॥
हौदा मिलिगयो है हौदा संग । हाँथिन अड़ो दाँत से दाँत ।
चारि पहर तक चली कटारी । मन में कोऊ न मानै हारि ॥
हाथीपचशावद से तब बोले । आल्हा मंडलीक अवतार ।
बैरी समुहे यह ठाढ़ो है । ताको लेउ जँजीरन बाँधि ॥

फिर चलि भेंटौ परीमाल से । मैं हाँथी की लेंउ बलाय ।
फेरी सँकरि तब हाथी ने । तुरतै हौदा दियो गिराय ॥
आल्हा बाँधि लियो जम्बै को । लश्कर भगो बघेले क्यार ।
बहुत खुशी है महुबे वाले । विजय नगाड़ा दियो बजाय ॥
आल्हा ऊदनि मलिखे ढेबा । ताला सैयद संग लिवाय ।
जहाँ ख़ज़ाना था जम्बै का । तहँ सब गये महोबिया ज्वान ॥
जौन सिपाही थे पहरे पर । सबको कतल दियो करवाय ।
सिगरे छकड़ा लश्कर वाले । सो जुतवाये बनाफर राय ॥
कुलुफ[1] तोरिकै तब आल्हा ने । माल खजाना लियो लदाय ।
लूटि कराई गढ़ माड़ौ में । तुरतै छकड़ा दियो जुताय ॥
बड़ि-बड़ि तोपैं अष्टुधातु की । बबुरी बन को दई पठाय ।
हाथी घोड़ा रथ लुटवाये । औ सब लूटि लिये हथियार ॥
लूटि मारिकै लोहागढ़ से । आल्हा रँगमहल को जायँ ।
बोले आल्हा हरकारा से । तुम माता को लाउ लिवाय ॥
धावन चलि भयो तब जल्दी से । बबुरी बन में पहुँचो जाय ।
जहँ पर माता देवै बैठी । धावन हाथ जोरि रहि जाय ॥
तुमहिं बुलायो है आल्हा ने । जल्दी चलो हमारे साथ ।
तुरत पालकी तब मँगवाई । देवै तापर भई सवार ॥
चली पालकी रनि देवै की । औ द्वारे पर पहुँची जाय ।
आल्हा उतरि परे हाथी ते । औ देवै पर पहुँचे जाय ॥
बोले ऊदनि तब माता ते । रानी कुशल लेउ बुलाय ।
देवै बोली तब बाँदी ते । तुम रानी को लाउ बुलाय ॥
बाँदी आई तब कुशला पै । औ रानी ते कह्यो सुनाय ।
तुमहिं बुलायो है देवै ने । रानी चलौ हमारे साथ ॥
सुनत खबर यह रानी कुशला । मन में गई सनाका खाय ।
होश बंद भये तब रानी के । दोनों हाथ जोरि रहि जायँ ॥
बोली कुशला तब ऊदनि ते । समरथ बीर उदयसिंह राय ।
हाथ न डरियो तुम तिरियन पर । इतनी मानो कही हमारि ॥
बोले ऊदनि तब कुशला ते । माता सुनौ कड़िंगा क्यार ।
हाथ मेहरियन पर न डारैं । ना भागे के परैं पिछार ॥
बैर हमारो था कड़िया ते । सो हम खेतन दियो गिराय ।
चीरा कलँगी मेरे बाप को । डोला साजि बिजैसिन क्यार ॥

---

[1] ताला

हार नौलखा लाखा पातुर । सो तुम तुरत देव मँगवाय ।
बावन बचुका पशमीना के । मेरी नजरि गुजारौ आय ॥
जो कछु माँगो नर ऊदनि ने । सो सब रानी दियो मंगाय ।
आल्हा चलिभे तब कोल्हुन पै । डोला संग दिवलदे क्यार ॥
एक लँग डोला है कुशला को । संगै चले महोबिया ज्वान ।
पेड़ बरगदा को जँह ठाढो । पहुँचे तहाँ बनाफर राय ॥
झपटि खोपरी ऊदनि लीन्ही । सोने थार लियो मंगवाय ।
थार में आरति उन सजवाई । तामें खुपरी लई धराय ॥
मलिखे आल्हा बैला बनिगे । ऊदनि कातर दियो फिराय ।
ढेबा बहादुर लै जम्बै को । पत्थर कोल्हू दियो दबाय ॥
रानी कुशला देखै ठाढी । राजा जम्बै दिये पिराय ।
शीश काटिके तब जम्बै को । सोऊ द्वार दियो धरवाय ॥
बोली आभा दस्राज की । जुग-जुग जियो लड़ैते लाल ।
डाह बुझाय गयो छाती को । बैरी कोल्हू दियो पिराय ॥
गया हमारी अब तुम करिकै । खुपरी गंगा देउ सिराय ।
बोली आभा तब जम्बै की । सुनि लेउ दस्सराज के लाल ॥
वंश नाश हमरो तुम कीन्हो । पानी कोउ दिवैया नाहिं ।
खोपरी मेरी तुम गंगा में । दाया करिकै देउ सिराय ॥
हाल देखि यह रानी कुशला । तुरतै गिरी भूमि भहराय ।
देखि हकीकति ऊदनि बोले । रानी सुनौ बघेले राय ॥
जैसी करनी तैसी भरनी । है यह जाहिर सकल जहान ।
गड़हा खोदै जो काहू को । ताके लिये कुआँ तैयार ॥
हम अपराधी नहीं काहुके । मन में समुझि लेउ महरानि ।
जो-जो देखो तुम आँखिन ते । सो सब कर्म कड़िंगा क्यार ॥
धर्म की माता हौ हमरी तुम । बैठी राज करौ गढ़ माहिं ।
जो कोउ बैरी तुम्हें सतावे । तुरतै खबरि देउ पहुँचाय ॥
हम चढ़ि ऐहैं गढ़ महुबे ते । औ बैरिन को देहि भगाय ।
ऐसो धीरज ऊदनि देकै । कुशला को दीन्हों समझाय ॥
लैके डोला रनि बिजमाँ के । राखो महल दूसरे आय ।
ऊदनि बोले तब आल्हा से । दादा सुनो हमारी बात ॥
बात हारि गये हम बिजमा ते । हमने गंगा लई उठाय ।
खंभ गड़ावो रंग महल में । भाँवरि तुरत लेउ डरवाय ॥
बोले आल्हा तब ऊदनि ते । ना बैरी घर करैं विवाह ।
जब सुधि करि है अपने घरकी । तुमको देइ जान से मार ॥
मनमें समुझ सोच चुप बैठो । याको देउ जानते मारि ।

बोले ऊदनि तब आल्हा से । दादा बचन करौ परमान ।
हाथ न डरिहैं हम तिरिया पर । रण में झूँठ परै तलवार ॥
बोले आल्हा तब मलिखे ते । तुम बिजमाँ को डारौ मारि ।
ज्यों यह बात सुनी मलिखे ने । झड़की कम्मर से तलवार ॥
पिलचवार बिजमाँ पर कीन्हों । तुरतै गिरी धरनि पर जाय ।
बिजमाँ बोली तब घायल ह्वइ । तुम सुनि लेउ उदयसिंह राय ॥
हम ने जानी थी अपने मन । कछु दिन करिहैं भोग विलास ।
सो तुम धोखा दियो बीच में । ऐसी तुमहिं मुनासिब नाहिं ॥
जो तुम मरते अपने कर से । तो छुट जातो दुःख हमार ।
जेठ हमारे मलिखे लागत । तुम सुनिलेउ हमारो शाप ॥
मारे जैहौ तुम धोखे ते । जंह ना ह्वइहैं भाइ तुम्हार ।
जैसी कीन्हीं तुम हमरे संग । तैसी होय तुम्हारे साथ ॥
सुनि-सुनि बातैं यह बिजमाँ की । मोह में फँसे उदयसिंह राय ।
बाँह पकरि कै तब ऊदनि ने । औ बिजमाते कह्यो सुनाय ॥
अब की बिछुरी कब तुम मिलिहौ । साँची हमैं देउ बतलाय ।
लौटि जवाब दियो बिजमाँ ने । स्वामी सुनौ हमारी बात ॥
हम अब जन्म लेहिं नरवर गढ़ । फुलवा होइहै नाम हमार ।
काबुल जैहौ तुम घोड़न हित । तब फिरि ह्वइहैं भेंट हमारि ॥
इतनी बात कहत बिजमाँ ने । तुरतै दीन्हें प्राण गँवाय ।
लास उठाय लई ऊदनि ने । सो नदी में दई बहाय ॥
हथि पचशावद त्यार खड़ा था । आल्हा तापर भये सवार ।
घोड़ी कबुतरी पर मलिखे है । सैयद सिहिंनि पर असवार ॥
घोड़ा मनुरथा पर ढेबा हैं । देवै पलकी पर असवार ।
घोड़ा बेंदुला पर ऊदनि हैं । लाखा पातुर संग लिवाय ॥
चली सवारी गढ़ माडौ ते । सब बबुरीबन पहुँचे आय ।
जँह पर तम्बू है ब्रह्मा को । तंह सब उतरि परे अरगाय ॥
शूर सिपाही महुबे वाले । तिनको आल्हा लियो बुलाय ।
काहुइ दीन्हों शाल दुशाला । काहुई दियो मोतियन हार ॥
तलब बढ़ाय दई काहू की । काहुइ मुहरै दई इनाम ।
काहुक कड़ा दियो सोने के । चीरा कलंगी दई इनाम ॥
हाथ जोरि कै मलिखे ऊदनि । रनि देवै ते कही सुनाय ।
करिहैं गया जाय दादा की । माता हुक्म देव फरमाय ॥
हुक्म पाइके तब देवै को । ऊदनि और बीर मलिखान ।
कूच कराय दियो जल्दी ते । दोनों गया करन को जायँ ॥

लश्कर चलिभयो इत आल्हा को । औ महुबे की पकरी राह ।
कछुक दिना मारग में बीते । महुबो धुरो दबायो जाय ॥
रुपना बारी को आल्हा ने । गढ़ महुबे में दियो पठाय ।
खबरि सुनावौ तुम राजा को । आये जीत बनाफरराय ॥
रुपना चलि भयो तब जल्दी ते । अपनी घोड़ी पर असवार ।
जायके पहुँचे ड्योढ़ी में । जँह दरबार चँदेले क्यार ॥

करी बन्दगी परिमालै को । औ लश्कर को कह्यो हवाल ।
जीति के आवत हैं माड़ौ ते । आल्हा आदि शूर सरदार ॥
हमहिं पठायो है आगे को । जल्दी खबरि सुनावन काज ।
ठाढ़ी मल्हना है अंटा पर । हेरै बाट बनाफर केरि ॥
कोश दुइकते झंडा देखे । रानी सोचि सोचि रहिजाय ।
केहिको लश्कर यह चढ़ि आयो । रहि गयो एक कोश मैदान ॥

हथि पचशावद को पहिचानो । ब्रह्मानँद को लौ पहिचान ।
आल्हा ठाकुर सुलखे ढेबा । औ सैयद को लौ पहिचान ॥
तुरतै उतरी सत खंडा ते । औ सब सखियाँ लई बुलाय ।
साजि आरती मल्हना रानी । लागो करन मंगलाचार ॥
तौ लों आई फौज कटीली । जयको डंका दियो बजाय ।
दगी सलामी गढ़ महुबे में । आये जीति बनाफर राय ॥
आल्हा ब्रह्मा सुलखे उतरे । दरवाजे पर पहुँचे आय ।
चरण लागि कै रनि मल्हना के । सो माथे में लियो लगाय ॥
हाथ पकरिके रानी मल्हना । लड़िकन छाती लियो लगाय ।
करी आरती सब लरिकन पर । माथे टीका दियो लगाय ॥

कुशल क्षेम पूछी सबही की । तब आल्हा ने दियो जवाब ।
सब प्रताप माता तुम्हरा है । जो हम लियो बाप को दाँव ॥
चारौ बेटा राज दुलारे । सो खेतन में दियो गिराय ।
राजा जम्बै को कोल्हू में । जियतै समुहे दियो पिराय ॥
सुनतै रानी बहुत खुशी ह्वइ । पीठी पर दो हाथ फिराय ।
बोली मल्हना तक लरिकन ते । जुग जुग जियो लड़ैते लाल ॥
आल्हा ब्रह्मा सुलिखे ढेबा । पँचये सैयद संग लिवाय ।
पाँचौ पहुँचे तब बँगला में । जँह दरबार चँदेले क्यार ॥

करी बन्दगी परीमाल को । दोनों हाँथ बाँधि रहि जायँ ।
सबहि बिठायो चन्देले ने । औ सब पूछो हाल हवाल ॥
हाल बतायो सब आल्हा ने । मनमें बहुत खुशी ह्वइजाय ।
हुक्म दे दिया तब राजा ने । घर घर होयँ मंगलाचार ॥

अनंद बधैया महुबे बाजी । बाजा बजन लगे चहुँओर ।
भिक्षुक याचक सिगरे आये । बहुतक सोनो दियो लुटाय ॥
गयाते लौटे मलखे ऊदनि । दिवला तिलका भई त्यार ।
चुरी उतारी तिन सागर पर । और महलन में पहुँची आय ॥
ऐसो समर भयो माड़ौ में । सो हम लिखि कै दियो सुनाय ।
सिरसा गढ़ छीनो पारथ से । आगे सुनियो कान लगाय ॥
समय समय पर आल्हा गावौ । नित उठि लेउ राम को नाम ।
सीता राम मनाय हिये मँह । सुमिरौ कृष्ण चन्द्र घनश्याम ॥

इति माड़ौ की लड़ाई

अथ बेला के सती होने की लड़ाई

दो०:- सदा भवानी दाहिनी, सन्मुख रहैं गणेश।
पांच देव रक्षा करैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥

सवैया

कैटभ से नरकासुर से अरु, भीषम द्रोण महायशखेवा।
बालि बली बलि बाण दधीचि, ययातिदिलीपहुसे बलसेवा ॥
रावण और युधिष्ठिर भारत, भीम महाबलवान सुदेवा।
अंत समय उबरे न कोऊ, क्षणमाहिं भए सब काल कलेवा ॥

---o---

सुमिरन करिकै नारायण को। औ गणपति के चरण मनाय।
गाऊँ लड़ाई अब अखीर की। यारौ सुनियो कान लगाय ॥
ऊदनि पहुँचे रनि बेला पै। औ रानी से कही सुनाय।
चंदन खंभा हम ले आये। आगे हुक्म देउ फरमाय ॥
बोली बेला तब ऊदिन ते। अब तुम सुनौ हमारी बात।
पहिलो धूरो गढ दिल्ली को। दुसरो नगर महोबे क्यार ॥
तिसरो धूरो गढ़ कनउज को। चौथो बलख बुखारे क्यार।
चारि चौसंधे के धूरे पर। जल्दी सरा[1] देउ रचवाय ॥
यही हुक्म हमरो अखीर है। जल्दी चिता बनावौ जाय।
सुनतै चलिभै ऊदनि जोधा। ऊदनि सरा दियो रचवाय ॥
ऊदनि बोले तब लाखनि ते। दादा सुनौ कनौजी राय।
मरनकि बेरा अब आई है। सिगरो लश्कर लेउ सजाय ॥
खबरि पहोंची गढ़ महुबे में। सत्ती होत विलमदे रानि।
रैयत धाई सब देखन को। औ धूरे पर पहुँची आय ॥
सुनी खबरि यह पृथीराज ने। बेला सती होन को जाय।
लश्कर अपनो सब सजवायो। औ चढि आये पिथौरा राय ॥

---

[1] शय्या सेज

अगहन मास सुदी एकादशी । सत्ती भई बिलमदे रानि।
चिता समीप जब गई बेला । पति की लाश लई मँगवाय ॥
लाश धराई तुरत चिता पर । अपने कीन्हे सर्व सिंगार।
करि पैकरमा जबही बैठी । पृथीराज तब कही पुकार ॥
होवै जो कोउ चंद्रवंश में । आग सर में देउ लगाय।
जाति बनाफर की ओछी है । सो ना जांय चिता के पास ॥

आगे बढ़ि तब ऊदनि बोले । तुम सुनि लेउ बीर चौहान।
हुक्म दियो हमको बेला ने । की तुम आगी देउ लगाय ॥
कोटि उपाय करौ चाहे तुम । आगी हमहीं दिहैं लगाय।
गुस्सा ह्वइकै प्रथीराज तब । तुरतै हुक्म दियो करवाय ॥
बत्ती देदेउ सब तोपन में । इन पाजिन को देउ उड़ाय।
झुके खलासी तब तोपन पर । तुरतै बत्ती दई लगाय ॥

दगी सलामी दोनों दल में । धुँअना रह्यो सरग मँडराय।
तोपैं छूटी दोनों दल में । रण में होन लगो घमसान ॥
अररर अररर गोला छूटै । कड़ कड़ करैं अगिनियाँ बान।
रिमझिम-रिमझिम गोला बरसैं । सननन परी तीर की मार ॥
तड़-तड़-तड़-तड़ तासे बाजे । जंगी ढोल रहे झड़नाय।
शंख तोरही औ रणसिंहा । जहँ तहँ मदन बेलि घहराय ॥

तीर कमनिया जो मुलतानी । कारी नागनिसी मन्नाय।
जैसे साँप बंबी में जावै । त्यों ज्वानन के तीर सन्नायँ ॥
दोनों फौजन के संगम में । अंधाधुन्ध तोप की मार।
लागै गोला जा हाथी के । दल में डौंकि डौंकि रह जाय ॥
गोला लागै जौन ऊँट के । दल में गिरै चकत्ता खाय।
लागै गोला जिन घोड़न के । चारौं सुम्म गर्द ह्वइ जाँय ॥
गोला लागै जिन चत्रिन के । तिनकी त्वचा सरग मँडराय।
बँब को गोला जिनके लागै । तिन के हाड़ मांस छुटि जाँय ॥

गोला जजिरहा जिन के लागै । तिन के दुइ खंडा ह्वइ जाँय।
तोपैं धँधैं लाल ह्वइ गईं । ज्वानन हाथ धरे ना जाँय ॥
चढ़ी कमनियां पानी ह्वइ गईं । गै चुटकिन के माँस उड़ाय।
तोप रहकला पीछे छाँड़े । लंबे बंद करे हथियार ॥
झुके सिपाही दोनों दल के । रहिगै पाँच पैग मैदान।
साँगैं चलन लगीं दोनों दल । ऊपर बरछिन की दइ मार ॥
छुटैं पिचक्का तहँ लोहू के । औ बहि चली रक्त की धार।
बूड़ि जुलफियाँ गई चत्रिन की । चरबी अंग गई लपटाय ॥

मानहुँ टेसू बन में फूले । ऐसी रही लालरी छाय ।
हौदा भरिगै है लोहू ते । औ चुचुआत फिरै असवार ॥
चारि घरी भरि बजौ संगड़ा । भारी भई साँग की मार ।
टूटिकै भाला दोना ह्वइगै । सबियाँ हारि मानिगै ज्वान ॥
दोनों फौजन के संगम में । रहिगो डेढ़ कदम मैदान ।
खैंचि शिरोही लइ ज्वानननें । नंगी चलन लगी तलवार ॥
खट-खट-खट-खट तेगा बाजै । बोलै छपक-छपक तलवार ।
चलै जुनब्बी औ गुजराती । ऊना चलै बिलायत क्यार ॥
तेगा चटकैं बर्दवान के । कटि-कटि गिरै सुघरुआ ज्वान ।
पैदल के संग पैदल अभिरे । औ असवारन ते असवार ॥
हौदा के संग हौदा मिलिगै । ऊपर पेशकब्ज, की मार ।
कटि-कटि शीश गिरै धरनी में । उठि उठि रुंड करैं तलवार ॥
आठ कोस के तहँ गिरदा में । अंधाधुंध चलै तलवार ।
पैग-पैग पर पैदल गिरिगै । उनके दुइ दुइ पग असवार ॥
बिसे बिसे पर हाथी डारे । छोटे पर्वत की उनहार ।
कल्ला कटिगै जिन घोड़न के । धरती गिरे भरहरा खाय ॥
कटे भुसुंडा[1] जिन हाथिन के । दल में गिरैं करौटा खाय ।
कटि भुजदंडै रजपूतन की । चेहरा कटे सिपाहिन क्यार ॥
दोनो सेना एकमिल हो गईं । ना तिल परै धरनि में जाय ।
ज्यों सावन में छुटै फुहारा । त्यों ही चलै रक्त की धार ॥
परे दुशाला जो लोहू में । जनु नद्दी में परो सिवार ।
पगिया डारी जे लोहू में । मानो ताल फूल उतरायँ ॥
परी शिरोही हैं ज्वानन की । मानो नाग रहे मन्नाय ।
घैहा डारे रण में लोटैं । जिनके प्यास प्यास रट लागि ॥
मुर्चन मुर्चन नचै बेंदुला । ऊदनि कहै पुकारि पुकारि ।
नौकर चाकर तुम नाहीं हौ । तुम सब भैया लगौ हमार ॥
पाँव पिछाड़ी को ना धरियो । यारौ रखियो धर्म हमार ।
सन्मुख लड़िकै जो मरिजै हो । ह्वइहैं जुगन जुगन लौं नाम ॥
जो मरिजैहौ खटिया परिकै । कोउ न लिहै तुम्हारो नाम ।
दै-दै पानी रजपूतन को । ऊदनि आगे दियो बढ़ाय ॥
झुके सिपाही महुबे वारे । जिनके मार-मार रट लागि ।

---

१ सूंड

ऊँचे खाले कायर भागे । जे रण दुलहा चले बराय ।
लंबी धोतिन के पहिरैया । तिन नारेन की पकरी राह ॥
भेष बदलिकै छत्री भागैं । हा दैया गति कही न जाय ।
कोऊ रोवै है लरिकन को । कोऊ पुरिखन को चिल्लाय ॥
कोउ-कोउ रोवै तहँ तिरियन को । बेड़ा कौन लगै है पार ।
चौड़ा ब्राह्मण के समुहे पर । ढेबा करो सामना जाय ॥

बिकट लड़ाई भइ दोनों में । ढेबा जूझि गयौ मैदान ।
घोड़ी बढ़ाई जगनायक तब । औ चौंड़ा को दइ ललकार ॥
बहुत लड़ाई भइ दोनों में । सो मैं कहँ करौं बखान ।
जगनिक जूझि गये खेतन में । आगें बढ़ो चौंड़िया राय ॥
बोले पृथीराज भूरा ते । भूरा सुनौ हमारी बात ।
जान न पावैं कोउ महुबे को । सबकी कटा देउ करवाय ॥

भूरा मुगुल रहै काबुल को । सो मुर्चा पर पहुँचो जाय ।
बोले लाखनि तब सैयद ते । मैं चाचा की लेउँ बलाय ॥
बड़ा लड़ैया यह भूरा है । याको शीश लेउ कटवाय ।
अली-अली करि सैयद झपटे । औ भूरा को दइ ललकार ॥
सुनतै गुस्सा ह्वइ भूरा ने । अपनी खैंचि लई तलवार ।
करो जड़ाका तब सैयद पर । सैयद लीन्ही चोट बचाय ॥

टूटि शिरोही गइ भूरा की । खाली मूठि हाथ रहिजाय ।
खैंचि शिरोही लइ सैयद ने । औ भूरा पर दई चलाय ॥
शीश काटि लौ वा भूरा की । बीर भुगन्ता बढ़ो अगार ।
बीर भुगन्ता ने ललकारो । सैयद खबरदार ह्वइ जाउ ॥
लई कमानयाँ बीर भुगन्ता । समुहे कैबर दियो चलाय ।
चोट बचाई तब सैयद ने । फिरितेहि भाला दियो चलाय ॥

भाला लागत सैयद गिरिगै । लाखनि गये सनाका खाय ।
बोले लाखनि तब गंगा ते । मामा राखौ धर्म हमार ॥
सैयद जूझि गये खेतन में । को असमय में ऐहै काम ।
हाथी बढ़ायो तब गंगा ने । बीर भुगन्तै दइ ललकार ॥

लैकै भाला बीर भुगन्ता । सो गंगा पर दियो चलाय ।
चोट बचाय लई गंगा ने । अपनी खैंचि लई तलवार ॥
करो जड़ाका इक समुहे पर । बीर भुगन्ते दियो गिराय ।
यह गति देखी पृथीराज जब । तब धाँधू ते कही सुनाय ॥
मार गिरावौ कनवजियन को । सबके शीश लेउ कटवाय ।
हाथी बढ़ायो तब धाँधू ने । औ धाँधू यह कही सुनाय ॥

कौने मारो बीर भुगन्तै । सो समुहे ह्वइ देय जवाब ।
हथिनी दाबी तब गंगा ने । औ धाँधू को दियो जवाब ॥
हमने मारो बीर भुगन्तै । यह कहि हथिनी दई बढ़ाय ।
गुर्ज उठायो तब धाँधू ने । सो गंगा पर दियो चलाय ॥
चोट बचाय लई गंगा ने । अपनी खैंचि लई तलवार ।
ढाल अड़ाय दई धाँधू ने । तापर भयो जड़ाका जाय ॥
टूटि शिरोही गइ गंगा की । खाली मूठि हाथ रहिजाय ।
यह गति देखी जब गंगा ने । मनमें गये सनाका खाय ॥
जौन शिरोही ते गज काटे । औ घोड़न के चारों पाँव ।
सोइ शिरोही धोखा दैगइ । हमरो काल रह्यो नियराय ॥
हाथी बढ़ायो तब धाँधू ने । औ भाला फिर दियो चलाय ।
भाला लागत गंगा गिरिगये । लाखनि देखि गये घबराय ॥
भुरुही बढ़ाये लाखनि आये । औ धाँधू को दइ ललकार ।
खबरदार रहियो हाथीपर । तुम्हरो कालरह्यो नियराय ॥
बोले धाँधू तब लाखनि ते । पहले चोट करौ तुम आय ।
ज्वाब दियो तब लाखनि राना । नहिं यह हुक्म कनौजी क्यार ॥
पहले चोट करौ तुम अपनी । नाहीं स्वर्ग बैठि पछिताउ ।
इतनी सुनते धाँधू ठाकुर । अपनी लीन्हीं लाल कमान ॥
कैवर छाँड़ि दियो समुहेपर । लाखनि लीन्हीं चोट बचाय ।
भाला लैकै दियो समुहेपर । सो लाखनि पर दियो चलाय ॥
हथिनी हटिगइ तब लाखनि की । भाला गिरो भूमि पर जाय ।
खैंचि शिरोही लइ धाँधू तब । औ लाखनि पर दई चलाय ॥
लाग्यो गुर्ज जाय खोपड़ी में । धाँधू जूझि गयो मैदान ।
देखि हाल यह पृथीराज तब । मनमें बहुत गये घबराय ॥
बड़ो शूरमा यह मारोगैा । को गाढ़े में ऐहै काम ।
नौसै हाथी के हलका में । आगे बढ़े पिथौरा राय ॥
आदि भयंकर झूमत आवै । बैठे शब्दबेधि चौहान ।
बीच में घिरिगये लाखनि राना । तब लाखनि मन सोचन लाग ॥
सिगरो लश्कर पिरथी लाये । हमते कियो सामना आय ।
उतरे लाखनि तब भुरुहीते । औ धरती पर पहुँचे आय ॥
फूल मँगाय लियो गगरी भरि । सो हथिनी को दियो पिलाय ।
भाँग मिठाई औ अफीम को । गोला दीन्हों तुरत खवाय ॥
हथिनी मस्त करी लाखनि ने । औ साँकल को दइ पकराय ।
बोले लाखनि तब हथिनी ते । भुरुही राखो धर्म्म हमार ॥

यह कहि चढ़िगै लाखनि राना । आगे हथिनी दई बढ़ाय ॥
खैंचि शिरोही लै लाखनि ने । समुहे गोल गये समुहाय ।
भुरुही साँकल फेरन लागी । लश्कर तिड़ी बिड़ी ह्वइ जाय ॥
अकिले लाखनि की दपटनि में । सब दल रैन बैन ह्वइ जाय ।
आगिन सरमें लागन पाई । बेला केश दिये छिटकाय ॥

लपटैं छूटी तब बारन ते । जरने लगी सरा ततकाल ।
ढाल अड़ाये लाखनि राना । समुहे खड़े पिथौरा राय ॥
लाखनि बोले पृथीराज ते । तुम सुनि लेउ बीर चौहान ।
है कोउ क्षत्री तुम्हरे दल में । सन्मुख लड़ै हमारे साथ ॥
यह सुनि पिरथी बोलन लागे । लाखनि सुनो हमारी बात ।
बारह रानिन के इकलौता । औ सोलैके सर्व सिंगार ॥

आस लकड़िया हौ जैचंद की । नाहक देहौ प्राण गँवाय ।
कही हमारी लाखनि मानौ । तुम समुहेते जाउ बराय ॥
घुंडी खोली तब लाखनि ने । समुहे छाती दई अड़ाय ।
बोले लाखनि पृथीराज ते । तुम सुनि लेउ पिथौरा राय ॥
हिरणाकुश सतयुगमें ह्वइगौ । जाने कियो अखंडित राज ।
सो ना अमर भयो पृथवी पर । अब क्या अमर कनौजीराय ॥

त्रेता में रावण राजा भयो । जाके बीस भुजा दश भाल ।
सो ना अमर भयो दुनियां में । अब क्या अमर कनौजी राय ॥
द्वापर में राजा दुर्योधन । ह्वइगै बहुत बली सरनाम ।
सो नहिं अमर भये धरती पर । अब क्या अमर कनौजी राय ॥
धर्म्म क्षत्रियन के नाहीं है । जो हटि धरै पिछारी पाँव ।
फिरि समझायो पृथीराज ने । लाखिन मानौ कही हमारि ॥

जैसे लड़िका रती भान के । तैसेइ लड़िका लगौ हमार ।
ताते तुमको समुझावत है । हमते नाहिं करो तकरार ॥
भुरुही लावो हमरे दल में । हम तुम लूटैं नगर महोब ।
हँसिकै लाखनि बोलन लागे । औ पिरथी को दियो जवाब ॥
धर्म नहीं है यह क्षत्रिन को । की घटि करैं काहुके साथ ।
बोले पृथीराज गुस्सा ह्वइ । तादिन कहाँ रहे महराज ॥

लाये संयोगिनि हम कनउजते । अब बढ़ि करत सामुहे बात ।
तापर ज्वाब दियो लाखनि ने । काहे बोलत बात बनाय ॥
नाहीं जैचँद मँडवा गाणो । नाहीं दीन्हों कन्यादान ।
चेरी लाये तुम कनउज ते । अब बढ़ि कहत बात महराज ॥
उमिरि हमारी तब थोरी थी । मैं नहिं धरी कमर तलवार ।

बदला लेहैं संयोगिनि को । तब छाती को डाहु बुझाय ॥
इतनी सुनतै गुस्सा ह्वइ तब । पृथीराज ने लई कमान ।
तीर निकारि लिये तरकस ते । छाती उठी कनौजी क्यार ॥
बाइस तीर हते तरकस में । सो पिरथी ने दिये चलाय ।
ढाल फारि लाखनि राना की । छाती निकरि गये वा पार ॥
देह नहीं हाली लाखनि की । पिरथी गये सनाका खाय ।
बड़ों शूरमा यह लाखनि है । नाती बेनचक्कवै क्यार ॥
है यह बेटा रतीभान को । यह मारे ते मरि है नाहिं ।
भुरुही हथिनी आगे बढ़िकै । आदि भयंकर दियो हटाय ॥
सोचैं पृथीराज अपने मन । गरुई गाज कन्नौजी क्यार ।
बड़ी जोरावर यह हथिनी है । हमरो हाथी दियो हटाय ॥
पीठी फेरी पृथीराज ने । हौदा गिरे कनोजी राय ।
हाथ से गिरी ढाल लाखनि के । सो चौंड़ा ने लइ उठाय ॥
जहँ मुर्चापर उदैसिंह थे । तहं पर गयो चौंड़िया राय ।
चौंड़ा बोल्यो हंसि ऊदनि ते । ऊदनि देखौ दृष्टि पसारि ॥
लाये हाथी जो कनउज ते । सो तुम रण में दई गँवाय ।
लाश पड़ी लाखनि राना की । सो तुम जाय लेउ उठवाय ॥
काहू लूटी छुरी कटारी । काहू लुटी बैंजनी पाग ।
हम लै आये गैंड़ा वाली । सो तुम देखि लेउ पहिचानि ॥
देखि ढाल ऊदनि पहिचानी । अपनो घोड़ा दियो बढ़ाय ।
जाय के देखो जब लाखनि को । ऊदनि छांड़ि दई डिंडकार ॥
हाय विधाता यह कैसी भइ । हम ते बिछुरो मित्र हमार ।
देखि न पाये मरती बिरियाँ । मारे गये कनौजी राय ॥
अब कहँ मिलिहौ लाखनि राना । सो तौ हमहिं देउ बतलाय ।
बचन बँधे हमरे सँग आये । यहँ पर दीन्हे प्राण गँवाय ॥
माता मिलि है ना देवैसा । भाइ न मिलै बीर मलिखान ।
मित्र कन्नौजी से नहिं मिलिहैं । चाहै सात धरौं औतार ॥
दिया बुझाय गयो कनउज को । अब हम दे हैं कोन जवाब ।
हम ते पुछि हैं रानी तिलका । पुछि हैं हमहिं कुसुम दे रानि ॥
कुशल बतान देउ राना की । सब हम करि हैं कौन उपाय ।
मुख दिखलैबो भारी परि है । क्या जैचँद को दिहौं जवाब ॥
कहि आये थे हम तिलका ते । पहिले मरैं उदैयसिंह राय ।
बात हमारी झूँठी ह्वइ गइ । हमरे जीवन को धिरकार ॥
सरा में ठाढो ऊदनि रोवैं । लै लै नाम बिलमदे क्यार ।

याही दिन को तुम उपजी थीं । तीनों दीपक दिये बुझाय ॥
दिल्ली कनउज औ महुबे को । तुम ने दीन्हों दिया बुझाय ।
आभा बोली तब बेला की । तुम सुनि लेउ हमारी बात ॥
लिखी विधाता की मेटै को । जो कछु कर्म लिखी सो होय ।
गढ़ दिल्ली ते औ महुबे लौं । ह्वइ हैं सबै सुहागिनी राँड ॥
अब तुम रोवत हौ काहे को । काहे भरम गँवायो आय ।
सुनतै चलिभये ऊदनि तहँ ते । अपनो मरण ठानि तेहि काल ॥
चौंड़ा ब्राह्मण हमको मारै । हम बैकुंठ धाम को जाँय ।
सोचि समझि यहु बधि ऊदनि ने । अपनो घोड़ा दियो बढ़ाय ॥
ऊदनि चौंड़ा को ललकारो । ब्राह्मण खबरदार ह्वइ जाउ ।
हम तुम खेलैं रणखेतन में । दुइ में एकु आँकु रहिजाय ॥
आजु अखाड़े में बरनी है । चौंड़ा खेलौ जूझ अघाय ।
इतनी सुनतै चौंड़ा ब्राह्मण । अपनो हाथी दियो बढ़ाय ॥
बोल्यो चौंड़ा तब ऊदनि ते । तुम्हरो काल राह्यो निराय ।
सम्हरौ ऊदनि तुम घोड़ा पर । यह कहि लीन्हीं लाल कमान ॥
तीर निकारि लीयो तरकस ते । सो ऊदनि पर दियो चलाय ।
घोड़ा बेंदुला दहिने ह्वइ गयो । कैवर निकरि गयो वा पार ॥
साँग उठाई तब चौड़ा ने । सो ऊदनि पर दई चलाय ।
चोट बचाय लई ऊदनि ने । नीचे साँग गिरी अरराय ॥
भाला मारो तब चौंड़ा ने । सोऊ ऊदनि गये बचाय ।
सोचे ऊदनि तब अपने मन । हम ने मरन करो अख्त्यार ॥
फिरि क्यों वृथा लड़त चौंड़ा ते । यह मन सोचि ऊदयसिंह राय ।
एंड लगाई रस बेंदुल के । औ हौदा पर उर के जाय ॥
ढालकि औझड़ ऊदनि मारी । सोने कलशा दिये गिराय ।
हौदा मुड़िया भौ चौंड़ा को । चौंड़ा गयो सनाका खाय ॥
खैंचि शिरोही लइ चौंड़ा तब । लैकै रामचन्द्र को नाम ।
करो जड़ाका बघ ऊदनि पर । ऊदनि दीन्हीं ढाल अड़ाय ॥
ढाल फाटि गइ गैंड़ा वाली । सोने फूल गिरे झहनाय ।
शीश काटिलौ तब ऊदनि की । ऊदनि स्वर्ग लोक को जाँय ॥
देखि हाल यह इन्दल बोले । औ आल्हा ते लगे बतान ।
काहे दादा यह कैसी भइ । मारे गये उदयसिंह राय ॥
मार्यो चाचै चहि चौंड़ा ने । ताको देउ जान ते मारि ।
हमरी बरनी को नाहीं है । नहिं करि देतिउँ खंडा चारि ॥
सुनतै गुस्सा ह्वइ आल्हा ने । अपनो हाथी दियो बढ़ाय ।

इक ललकार दई चौंड़ा को। चौंड़ा ख़बरदार ह्वइ जाउ ॥
हाथ बढ़ायो तब चौंड़ा ने। कर में लीन्हीं लाल कमान।
कैबर छाँड़ि दियो समुहे पर। आल्हा लीन्ही चोट बचाय ॥
साँग उठाई तब चौंड़ा ने। सो आल्हा पर दई चलाय।
चोट बचाय लई आल्हा ने। चौंड़ा खैंचि लई तलवार ॥
चोट चलाय दई आल्हा पर। आल्हा दीन्हीं ढाल अड़ाय।
तीनि शिरोही चौंड़ा मारी। आल्हा लैगै चोट बचाय ॥
टूटि शिरोही गई चौंड़ा की। खाली मूठि हाथ रहिजाय।
हाथी बढ़ायो तब आल्हा ने। औ अपने मन कियो विचार ॥
है यह जालिम चौंड़ा ब्राह्मण। द्रोणाचारज को औतार।
गिरि है रुधिर बूंद धरती पर। दुसरो चौंड़ा होय तैयार ॥
बाँह पकरि कै तब चौंड़ा की। तेहि हौदा ते लियो उतारि।
मींजि मींजि कै चौंड़ै मार्‌यो। देखो हाल पिथौरा राय ॥
सोच आयगै पृथीराज को। मारो गयो चौंड़िया राय।
बड़ो शूरमा यह मारों गयो। को गाढ़े में ऐहै काम ॥
हाय बिधाता यह कैसी भइ। कोउ न रह्यो शूर सरदार।
हाथी बढ़ायो पृथीराज तब। औ आल्हा पै पहुँचे जाय ॥
पृथीराज बोले आल्हा ते। अब तुम खबरदार ह्वइजाउ।
सम्हरि के बैठो तुम हौदा में। तुम्हरो काल पहूँचो आय ॥
इतनी सुनते नुनि आल्हा ने। समुहे छाती दई अड़ाय।
घुंडी खोल दई आल्हा जब। पिरथी लिन्ही लाल कमान ॥
तीर चलायो पृथीराज ने। लागो तीर भुजा में आय।
लगत तीर के भुज दंडन में। निकसी तुरत दूध की धार ॥
देखि हाल यह पृथी राज तब। अपनो हाथी दियो हटाय।
मोह आइगौ नुनि आल्हा कौ। मलि मलि हाथ बहुत पछिताँय ॥
अपने मन में हम जानीं थी। हमरे अमर उदैसिंह राय।
जो हम जनते हम अम्मर है। काहे मरत लहुरवा भाय ॥
खोली सांकल तब आल्हा ने। पचशावद को दई गहाय।
फेरी सांकल तब हाथी ने। छत्री काटि करो खरिहान ॥
जब सुधि आई बध ऊदनि की। आल्हा गये क्रोध में छाइ।
खंग दई थी जो देवी ने। सो आल्हा ने लई निकारि ॥
जहँलग आभा परी खंग की। छत्री भये शीश ते हानि।
शीश उतरिगै जब शत्रुन के। रहिगै चन्दभाज पृथीराज ॥
जब दोनों थे वृक्ष ओट में। तौलौ गोरख पहुँचो आय।

हाथ पकरिकै तब आल्हा को । गुरु गोरख जी लगे बतान ॥
बेटा तजि देउ गुस्सा अब तुम । अपनी म्यान करो तलवारि ।
खड्ग म्यान में करि आल्हा तब । गुरु गोरख को कियो प्रणाम ॥
समुहे आय पृथीराज जब । देखत आल्हा गये रिसाय ।
नाश कर दियो इन भारत को । कीन्ह्यों नाश क्षत्रियन क्यार ॥
चारिहुँ लँग को आल्हा देखो । कोऊ शूर न परो दिखाय ।
लोथैं डारी तँह लोथिन पर । चँहु दिशि देखि परा सुन-सान ॥
मारन हित तब पृथीराज के । आल्हा खाँड़ा लियो उठाय ।
हाथ पकरि लौ तब गोरख ने । आल्हा मानो बात हमारि ॥
छोड़ि देउ तुम पृथीराज को । बन को चलौ हमारे साथ ।
धरि दै खाँड़ा तब आल्हा ने । पृथीराज पै गै नगिचाय ॥
लील छुवाय दियो आखिन में । अपनो करि कै दो लौटाय ।
खबरि पहुँच गइ गढ़ महुबे में । सब कटि मरे सूर सरदार ॥
करत बिलाप चली रानी सब । समुहे इन्दल परे दिखाय ।
बोली सुनवां तब इन्दल ते । रण को हाल देउ बतलाय ॥
आल्हा ऊदनि को देखो कहुँ । तौ तुम हमहि देउ बतलाय ।
यह सुनि आल्हा कहि इंदल ते । रण को हाल देउ बतलाय ॥
राज छोड़ कै तुम महुबे को । बन को चलौ हमारे साथ ।
बोले इन्दल तब सुनवाँ ते । ऐसी तुमहि मुनासिब नाहिं ॥
समुहे दादा हमरे ठाढे । तुम ने लियो कंत को नाम ।
राख समेटि दई तुरतै तहँ । इन्दल चौरा दियो बनाय ॥
कूदि बछेरा पर चढ़ि बैठे । औ आल्हा संग भये तयार ।
चलिभै आल्हा कजरी बन को । लटकति चली सुनमदे रानि ॥
पूँछ काट दई तब हाथी को । सुनवाँ गिरी भूमि पर जाय ।
आल्हा चले गये कजरी बन । सुनवाँ जरी कुंड में जाय ॥
फुलवा जरि गइ औ रानी सब । अपने दीन्हें प्राण गंवाय ।
मल्हना चलिभइ पारस लै कै । सागर होम दियो कर वाय ॥
करकै पूजा वा पारस की । बोली हाथ जोरि महरानि ।
चन्द्रवंश में जो कोउ होवै । महुबे आय लेय अवतार ॥
ता घर ऐओ तुम पूजन हित । नाहीं तुमहि और ते काम ।
यह कहि पारस पत्थर लै कै । सो सागर में दियो सिराय ॥
लंघन करिकै परीमाल ने । दुखते दीन्हें प्राण गँवाय ।
सती हुइ गई मल्हना रानी । महुबे दीपक गयो बुझाय ॥
आल्हा खंड यह पूरो हुइ गौ । रहिगौ एक राम को नाम ।

भूल चूक ह्वइ है या में कछु । छमि हैं चूक सुजन गुण धाम ॥
पढ़ि प्रसन्न ह्वइहैं सज्जन जन । निन्दा करिहैं क्रूर अजान ।
आल्ह-खंड असली बातैं सब । हमने लिखी सुमिरि हनुमान ॥
आल्हा गावौ समय पाय तुम । नित उठि नाम लेउ भगवान ।
भोलानाथ मनाय हिये मंह । सीताराम क्यार धरि ध्यान ॥

इति बेला के सती होने की लड़ाई एवम्

आल्ह-खंड समाप्त

चंद

चंद बरदाई

चंद बरदाई यों तो अभी तक हिंदी के प्रथम महाकवि, पृथ्वीराज रासो के रचयिता और महाराज पृथ्वीराज के सखा, सामंत तथा राजकवि माने जाते रहे हैं, पर अभी थोड़े दिनों से कुछ लब्ध-प्रतिष्ठ पुरातत्व-वेत्ताओं और साहित्यिक खोज के प्रसिद्ध विद्वानों के भिन्न-भिन्न और परस्पर विपरीत निर्णयों में चंद संबधी उपर्युक्त तीनों ही बातों को वादग्रस्त और पृथ्वीराज रासो को एक जाली ग्रंथ सिद्ध कर दिखाने की प्रायः सफल चेष्टा देख पड़ती है। उक्त प्रयास करने वालों में प्रमुख हैं कविराज श्यामल दास जी तथा प्रसिद्ध पुरातत्वविद् पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा। इन की शंकाओं को निर्मूल सिद्ध करने की प्रबल चेष्टा रासो के संपादक श्रीयुत मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या ने की है। फिर अभी-अभी हिंदी संसार को जोधपुर (मारवाड़) निवासी श्रीयुत नानूराम जी ब्रह्म भट्ट नाम के एक सज्जन का पता चला है जो कि अपने को कवि चंद का वर्तमान वंशधर बतलाते हैं। यह महाशय भी बड़े उत्साही साहित्यिक खोज करने वाले हैं और बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत डा० हरप्रसाद शास्त्री और दक्षिण के डा० भंडारकर को मारवाड़ और मेवाड़ प्रांत में शिलालेखों तथा अन्य साहित्यिक सामग्री के अन्वेषण करते समय इन से बड़ी सहायता मिली थी। कहते हैं इन के पास सं० १४५५ की लिखी रासो की एक प्रतिलिपि भी है, और इधर ओझा जी आदि के अनुसार रासो की सब से पुरानी हस्तलिखित प्रति सं० १६४२ की है। पता नहीं ओझा जी को नानूराम जी के चंद के वंशधर होने और उन की सं० १४५५ वाली प्रति के संबंध में कुछ कहना है कि नहीं। अभी तक तो शायद उन्होंने कुछ नहीं कहा है। ऐसी अवस्था में चंद और उस के रासो के संबंध में कुछ विशेष बातें दृढ़ और निश्शंक-रूप से नहीं कही जा सकती। अधिक-से-अधिक वर्तमान स्थिति में जो किया जा सकता है वह इतना ही कि दोनों पक्षों के वक्तव्य तथा मंतव्य को बहुत संक्षेप से स्पष्ट करते हुए अपेक्षाकृत माननीय पक्ष के निर्णय या अनुमान का भार साहित्य-रसिकों तथा विद्यार्थियों के ही ऊपर छोड़ दिया जाय। हां, दोनों ओर के वक्तव्य की परीक्षा करने के बाद इतना हम निडर होकर अभी कह सकते हैं कि किसी भी पक्ष की सभी बातें निराधार नहीं हैं। पांड्या जी यदि अवश्यकता या औचित्य से अधिक रासो की 'संरक्षा' में तत्पर हैं तो ओझा जी के रासो संबंधी ऐतिहासिक

अनुशीलन को भी याथार्थ की सीमा को लाँघता हुआ और बहुत ज्यादा ठंढा या वैज्ञानिक मानने पर विवश होना पड़ेगा। सत्य दोनों के बीच में कहीं होगा अतएव पहले हम चंद का वर्तमान रासो से प्राप्य तथा किंवदंतियों के आधार पर स्थित परिचय देते हैं।

रासो में चंद के जीवन आदि के संबंध में कुछ नहीं लिखा है, परंतु यह प्रसिद्ध है कि चंद और पृथ्वीराज साथ ही पैदा हुए, जन्म भर साथ रहे और अंत में साथ ही मरे। पृथ्वीराज का जन्म संवत् रासो में १११५ दिया हुआ है। अब यदि चंद और पृथ्वीराज का जन्म एक ही समय हुआ है तो चंद का जन्म भी सं० १११५ में मानना पड़ेगा। परंतु यह संबत अशुद्ध है। प्रामाणिक इतिहासों तथा शिलालेखों के आधार से यह निश्चय हो चुका है कि पृथ्वीराज का जन्म संवत १२१७ वि० के पहले नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार की गड़बड़ी रासो में आए हुए सभी संबतों में है और यही मुख्य कारण है कि विद्वानों को चंद के पृथ्वीराज के राजत्वकाल में लिखे जाने के संबंध में संदेह हुआ और ओझा जी ऐसे कुछ लोगों ने गंभीरता पूर्वक चंद और उस के ग्रंथ के वास्तविक निर्माणकाल आदि पर नया प्रकाश डाला। जो हो, रासो के अनुसार चंद भट्ट जाति के थे और जगात इन का गोत्र था। इन के पूर्वपुरुषों का वास-स्थान पंजाब में था और इन का जन्म भी लाहोर में हुआ था। ये महाराज पृथ्वीराज के राज कवि तो थे ही, साथ ही उन के सखा और सामंत भी थे। ये षड्भाषा, व्याकरण काव्य, साहित्य, छंद शास्त्र, ज्योतिष, पुराण, तथा नाटक आदि अनेक विषयों और विद्याओं में निपुण थे। इन्हें जालंधरी देवी का इष्ट था जिस से ये अदृष्ट काव्य भी कर सकते थे। ये मंत्र-तंत्र आदि में भी बड़े प्रवीण थे। इन का जीवन पृथ्वीराज के जीवन से ऐसा मिला-जुला था कि उस से अलग नहीं किया जा सकता। युद्ध में, आखेट में, सभा में, यात्रा में सदा ये महाराज के साथ रहा करते थे और इन्हों-ने कई बार संकट और आसन्न मृत्यु से इन की रक्षा भी की है। शहाबुद्दीन के साथ अंतिम युद्ध में जब वह पृथ्वीराज को क़ैद कर ग़ज़नी ले गया तो कुछ दिनों बाद चंद भी वहीं गए। जाते समय चंद ने रासो की अपूर्ण पुस्तक अपने पुत्र जल्हन के हाथ में देकर उसे पूर्ण करने का संकेत किया था। पृथ्वीराज को ग़ज़नी ले जा-कर शहाबुद्दीन ने उन की आँखें निकलवा ली थीं और जेल में बड़ी यातना दे रहा था। छद्मवेश में चंद उस के दरबार में पहुँचे। वहाँ कोई जलसा हो रहा था और लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से शाह के सामने अपना-अपना जौहर दिखा रहे थे। चंद ने कहा पृथ्वीराज जो इस समय अन्धा है, शब्दवेधी बाँण मार सकता है, इस उत्सव के समय आप को उसे भी अपनी विद्या दिखाने का अवसर देना चाहिए। शाह के भी मन में यह बात बैठ गई उस ने पृथ्वीराज को बुलाया। उन्होंने पृथ्वीराज की सफलता पर मुग्ध हो 'शाबास' कहा, उन का स्वर इन के कानों में पड़ा, बस फिर

कवि-परिचय

क्या था, चंद का इशारा तो था ही, दूसरा तीर दूसरे ही क्षण में शाह के हृदय को चीरता हुआ निकल गया। तदनंतर, इस के पहले कि शाह के सिपाही इन के ऊपर हाथ उठावें, चंद ने अपनी पगड़ी में से एक कटार निकाली, और उसी से दोनों ने एक दूसरे को मार कर वहीं अपनी-अपनी इहलीला संवरण कर दी। इधर चंद के पुत्र जल्हन ने, उस के ग़ज़नी प्रस्थान के बाद से लेकर अंत तक का वृतांत लिखा है। जल्हन के हाथ में रासो के सौंपे जाने और उस के पूरा किए जाने का उल्लेख रासो में इस प्रकार है—

पुस्तक जल्हन हाथ दै, चलि गज्जन नृप काज।

*　　　*　　　*

रघुनाथ चरित हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज-सुजस कविचंद कृत, चंद नंद उद्धरिय तिमि॥

अब हमें यह देखना है कि चंद के संबंध की उपर्युक्त सूचनाएँ कहाँ तक विश्वसनीय हैं। पृथ्वीराज के दरबार में एक जयानक नाम का कवि था जिस ने संस्कृत में 'पृथ्वीराज विजय' नामक एक काव्य लिखा है। इस में दिए हुए संवत्, पृथ्वीराज की वंशावली, तथा उन के जीवन की मुख्य घटनाएं प्रामाणिक इतिहासों, शिलालेखों तथा फ़ारसी के इतिहासों के वर्णन से मिलती है और इसलिए इस के सम-सामयिक और प्रामाणिक ग्रंथ होने में संदेह करने का कोई कारण नहीं है। अब ऐसी अवस्था में यदि चंद पृथ्वीराज का लंगोटिया यार सलाहकार और राजकवि होता तो जयानक उसे अवश्य भली प्रकार जानता और उस का यथोचित उल्लेख अपने काव्य में करता। परंतु वह पृथ्वीराज के मुख्य भाट या बंदिराज का नाम "पृथिवी भट्ट" लिखता है। चंद का वह कहीं नाम तक नहीं लेता। उस के ग्रंथ के पाँचवें सर्ग के एक श्लोक में यमक के रूप में 'चंद्रराज' नाम के एक कवि का संकेत किया गया है। रासो के समर्थकों का विश्वास है कि इस 'चंद्रराज' से और कोई नहीं पृथ्वीराज रासो के रचयिता चंद बरदाई से ही मतलब है। वह श्लोक यों है—

तनयश्चन्द्रराजस्य चंद्रराज इवा भवत्।
संग्रहं यस्सुवृत्तानां सुवृत्तानामिव व्यधात्।

राय बहादुर श्रीयुत पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह चंद्रराज वास्तव में 'चंद्रक' कवि है जिस का उल्लेख काश्मीरी कवि क्षेमेंद्र ने भी किया है। इस के अतिरिक्त पृथ्वीराज के समय के शिलालेखों तथा फ़ारसी इतिहासकारों की कृतियों से भी चंद का पृथ्वीराज का समकालीन होना नहीं सिद्ध होता। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से चंद को पृथ्वीराज का समकालीन मानने में बड़ी अड़चनें हैं। यह विषय आगे वर्तमान पृथ्वीराज रासो

तथा उस के निर्माणकाल पर विचार करने से और भी स्पष्ट हो जायगा। परंतु ग्रंथ और उस के निर्माणकाल पर विचार करने के पहले अपने को चंद का वर्तमान वंशधर कहने वाले नानूराम के चंद संबंधी वक्तव्य पर यहां विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री ने सन् १९०९ से १९१३ तक मारवाड़ और मेवाड़ में पुराने काव्य ग्रंथों की खोज में कई यात्राएं की थीं। नानूरामजी से इन की भेंट इसी अवसर पर हुई थी और उन्होंने अधिकतर यात्राओं में शास्त्री जी का साथ देते हुए उन की खोज में यथेष्ट सहायता पहुँचाई थी। शास्त्री जी ने अपनी इन यात्राओं का विस्तृत विवरण बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में छपाया भी है। इस विवरण में चंद और पृथ्वीराज रासो के संबंध में भी बहुत कुछ कहा गया है। इस में लिखा है कि कोई कोई तो चंद के पूर्वजों को मगध से आया हुआ बताते हैं पर पृथ्वीराज रासो के अनुसार चंद का जन्म लाहौर में हुआ था। फिर कहा जाता है कि चंद पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय में राजपूताने में आया था और पहले कुछ दिन तक सोमेश्वर के दरबार में भी था और इस की यथेष्ट प्रतिष्ठा भी उस उक्त दरबार में थी। सोमेश्वर के जीवन काल में ही इस की पृथ्वीराज से गाढ़ी मित्रता हो गई थी और इस का अधिकांश समय पृथ्वीराज के ही साथ बीतता था। पृथ्वीराज के सिंहासनारोहण के बाद वह मित्रता और भी घनिष्ठ हुई और यह क्रमशः इन का एक सामंत, मंत्री और राजकवि होकर अंत में सर्वेसर्वा हो गया था। पृथ्वीराज ने नागोर नाम का एक नगर बसाया था और वहां चंद को बहुत सी भू-संपत्ति भी मिल गई थी।

चंद के वर्तमान वंशधर नानूराम जी से डा० हरप्रसाद शास्त्री को इन का एक वंशवृक्ष भी प्राप्त हुआ है जो अन्यत्र दिया जाता है। अब तक इस के पहले चंद का सही या जाली, किसी भी प्रकार का वंश वृक्ष किसी ने नहीं प्रगट किया था। यों तो यह ठीक मालूम होता है पर ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहां तक विश्वास योग्य है इस के निर्णय करने का अभी कोई साधन नहीं है। कोई दूसरा वंश-वृक्ष भी चंद का हमारे सामने नहीं है जिस से यह मिलाया जा सके। एक शंका जो इस वंश-वृक्ष पर पहली दृष्टि डालते ही होती है वह यह है। यह तो सभी जानते हैं कि यह वृक्ष भट्ट जाति (भाट) के लोगों का है पर इस में कुछ नाम ऐसे हैं जो भाटों के नाम नहीं जान पड़ते जैसे—भगवानसिंह, कर्मसिंह, माथुरसिंह, बालगोविंद सिंह, विजयसिंह और मानसिंह आदि। नाम के अंत में 'सिंह' पदवी लगाने की प्रथा क्षत्रियों की है न कि भाटों की। ब्राह्मणों में भी कहीं-कहीं 'सिंह' पदांत युक्त नाम देखने में आते हैं और उदाहरण के लिए हम वर्तमान समय के दो प्रसिद्ध साहित्यिकों के नाम दे सकते हैं जैसे-पं० अयोध्यासिंह जी तथा पं० पद्मसिंह जी। कुछ कायस्थ भी अपने नाम के अंत में 'सिंह' शब्द

लगाते हैं पर वह सुविधा के लिए 'सिनहाँ' हो गया है। पर भाटों के नाम के अंत में अभी तक हम ने 'सिंह' शब्द जुड़ा हुआ नहीं देखा है।

महाकवि सूरदास की साहित्यलहरी की टीका में एक पद ऐसा आया है जिसे लोग सूर की वंशावली कहते हैं। लोक में प्रसिद्ध है कि सूरदास चंद के ही वंशधर थे पर यह अभी निश्चय नहीं हो सका है कि यह सूरदास 'सूर सागर' के रचयिता सूरदास थे या कोई और। पर जो हो इस वंशावली के अधिकांश नाम नानूराम वाले वंश वृक्ष से मिलते हैं इसलिए मिलाने के लिए वह पद यहां उद्धृत कर दिया जाता है।

प्रथम ही प्रभु यज्ञ तें भे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप।
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय।
पारि पायँन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु वंस प्रसंस में भौ, चंद चारु नवीन।
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ता के चार कीनो प्रथम आप नरेस।
दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचंद सरूप।
वीरचंद प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप॥
रथभो हमीर भूपति संग खेलत जाय।
तासु वंस अनूप भो हरिचंद अति विख्याय॥
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत वीर।
पुत्र जनमे सात ताके महाभट गंभीर॥
कृष्णचंद उदारचंद जू रूपचंद सभाइ।
बुद्धिचंद प्रकास चौथे चंद भे सुखदाइ॥
देवचंद प्रबोध संसृतचंद ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचंद मंद निकाम॥

इस वंशावली के अधिकतर नाम नानूराम वाले वंशवृत्त से मिलते हैं, मुख्य भेद इतना ही है कि जो नाम नानूराम के वृत्त में जल्ह चंद की परंपरा में हैं वह उपर्युक्त पद में जल्हचंद के भाई गुणचंद की परंपरा में आते हैं। पृथ्वीराज रासा में भी जिस पद में चंद के लड़कों का वर्णन है उसमें 'जल्ह' और 'गुन' यह दोनों नाम आते हैं, यथा—

"दहति पुत्र कविचंद के सुंदर रूप सुजान।
इक्क जल्ह गुन बावरो गुन–समुद ससभान॥"

नानूराम जी के अनुसार चंद के चार पुत्र थे जिन में दो के नाम तो मालूम हैं हो, शेष दो के बारे में उन का कहना है कि उन में एक तो मुसलमान हो गया था और दूसरे का कुछ पता नहीं।

यहां तक तो चंद का जो कुछ परिचय वर्तमान सामग्री से मिल सकता था दिया गया। उस के संबंध की और बातें उस के ग्रंथ तथा उस के रचनाकाल पर विचार करने से ज्ञात होगी। पृथ्वीराज रासो, सच्चा या जाली जो कुछ भी हो, अब हिंदी साहित्य की एक बहुमूल्य निधि हो चुकी है, और कुछ लब्धप्रतिष्ठ पुरातत्ववेत्ताओं और ऐतिहासिकों के इस निष्कर्ष पर पहुँचने मात्र से कि रासो पृथ्वीराज के समय में नहीं बना, इस की घटनाएँ और तिथियां सब अशुद्ध हैं, तथा चंद नाम का पृथ्वीराज का कोई राजकवि नहीं था, साहित्य की दृष्टि से भी उक्त ग्रंथ का अध्ययन तथा अनुशीलन निरर्थक न समझ लेना चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार इसपर विचार करने के पहले कि रासो में किन-किन बातों की गड़बड़ी से पुरातत्वान्वेषकगण उसे जाली मानने पर विवश हुए हैं, आगे यह जान लेना आवश्यक है कि रासो में है क्या, उस का सारांश क्या है। तभी अपर पक्ष की दलीलों को समझना और उन पर कोई मत स्थिर करना संभव हो सकेगा। पूरा ग्रंथ पढ़ने के लिए बहुत समय और बड़ी मिहनत चाहिए। जो लोग ऐसा न कर सकें वे नीचे लिखे अति संक्षिप्त विवरण से भी अपने को एक अंश तक रासो से परिचित कर सकते हैं।

पृथ्वीराज रासो

कथा

इस समय जो प्रकाशित पृथ्वीराज रासो हमारे सामने है वह प्रायः ढाई हजार पृष्ठों का बहुत बड़ा ग्रंथ है। इस में ६९ 'समय' या अध्याय हैं जिन में पृथ्वीराज का जन्म से ले कर मरण पर्यंत का वृतांत है। प्रसंगवश पृथ्वीराज का जिन-जिन लोगों से जहां-जहां काम पड़ा था, उन का भो पर्याप्त विवरण इस में मिलता है। इस प्रकार उस समय के भारतवर्ष के प्रायः सभी राजाओं और उन के राज्यों तथा वहां के लोगों का पर्याप्त विवरण इस महान् ग्रंथ में मिलता है। इन्हीं कारणों से कर्नल टाड को इसे 'Universal history of the period', अर्थात् अपने समय का विश्वइतिहास मानना पड़ा था। अस्तु

रासो के अनुसार पृथ्वीराज सोमेश्वर का पुत्र तथा अर्णोराज का पौत्र था। सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के तोमर राजा अनंगपाल की कन्या से हुआ था। अनंगपाल की दो कन्याएं थीं, जिन में से एक का नाम सुंदरी तथा दूसरी का नाम कमला था। कमला अजमेर के चौहान राजा रामेश्वर को ब्याही थी और इसी से पृथ्वीराज की उत्पत्ति हुई थी। इन चौहानों की उत्पत्ति अग्निवंश से हुई थी। दूसरी कन्या सुंदरी का विवाह कन्नौज के राठौर राजा जयचंद से हुआ था और

इसी से जयचंद की उत्पत्ति हुई। अनंगपाल निस्संतान थे और इस लिए उन्होंने अपने नाती पृथ्वीराज को गोद ले लिया। जयचंद भी उन का नाती था पर उन को स्नेह पृथ्वीराज से इस लिए अधिक था कि विवाह के पहले ही जब जयचंद के पिता विजयपाल ने अनंगपाल के ऊपर चढ़ाई की थी तब इन्हीं पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर ने ही तोंवर राज की सहायता की थी। इस का फल यह हुआ कि अनंगपाल का राज्य भी पृथ्वीराज के हाथ लगा और इस से जयचंद बहुत कुढ़ा। यद्यपि उस समय वह सब से अधिक समृद्धिशाली था, आर्यावर्त के प्रायः सभी राज्य उस के सामने सीस नवाते थे, पर पृथ्वीराज इस से सदा अकड़े ही रहे। जयचंद ने एक बार संसार को अपना एक छत्राधिपत्य दिखाने के एक समय राजसूय यज्ञ का विशाल आयोजन कर यज्ञ के कामों में हाथ उठाने के लिए सब राजाओं को निमंत्रित किया। पृथ्वीराज भी निमंत्रित हुए पर उन्होंने इस प्रकार वहां जाना अस्वीकार किया। जयचंद ने अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर भी इसी समय रचा। संयोगिता ने पहले से ही अपना हृदय पृथ्वीराज को दे रखा था और मन ही मन उन्हें ही अपना पति बनाने का निश्चय कर चुकी थी। इधर स्वयंवर सभा में और सब तो पहुँचे पर पृथ्वीराज नहीं आए, यह देख जयचंद ने सब उपस्थित राजाओं के सन्मुख अनुपस्थित पृथ्वीराज को अपमानित करने का एक विचित्र उपाय ढूँढ़ निकाला। उस ने पृथ्वीराज की एक प्रतिमा बनवा कर सभामंडप के द्वार पर द्वारपाल के सामने रखवा दी। इस का आशय सब को यह बताना था कि मेरे दरबार में पृथ्वीराज ऐसों की हैसियत द्वारपाल से अधिक नहीं है। जो हो पर संयोगिता ने औरों की ओर दृष्टिपात भी न करते हुए इसी प्रतिमा को ही जयमाल पहिना कर पृथ्वीराज के प्रति अपने अपार प्रेम का परिचय दिया। भरी सभा में जयचंद का सिर नीचा होगया। वे चले थे पृथ्वीराज को अपमानित करने पर अब अपने ही को हज़ार गुना अधिक अपमानित समझने लगे। बाद में उन्होंने हर तरह से संयोगिता का मन पृथ्वीराज की ओर से फेरने की चेष्टा की पर सब व्यर्थ। अंत में झुंझला कर उन्हों ने गंगा किनारे एक महल में संयोगिता को एकांतवास का दंड दे दिया। इधर पृथ्वीराज के सामंतों को इस की खबर मिली तो उन्होंने आकर जयचंद का यज्ञ विध्वस कर डाला और साथ ही पृथ्वीराज और चंद भी भेस बदल कर कन्नौज पहुँचे। पर जयचंद को इन के आने की सूचना मिल गई और उस ने चंद का डेरा घेर लिया। बस फिर क्या था, लड़ाई शुरू हो गई। इधर पृथ्वीराज कन्नौज की सैर करते हुए संयोग से संयोगिता के महल के नीचे से गुजरे और दोनों की निगाहें भी चार हुईं। अंत में सखी सहेलियों की सहायता से दोनों वहीं मिले और गांधर्व विवाह भी वहां का वहीं हो गया। इस विचित्र प्रेममिलन के बाद पृथ्वीराज अपने सामंतों से आ मिला पर उन लोगों को पृथ्वीराज का इस प्रकार अकेले संयोगिता के साथ लिए हुए आना अच्छा न लगा। यह देख पृथ्वीराज लौटे और अपने घोड़े पर प्रेममुग्धा संयोगिता को बैठा कर

फिर अपने सामंतों से आ मिले। लड़ाई तो हो ही रही थीं पर जयचंद और उस के आदमियों को जब यह मालूम हुआ कि पृथ्वीराज संयोगिता को भी भगा ले आया है तो उन के क्रोध का ठिकाना न रहा और बड़ी भीषण मार काट आरंभ हुई। पृथ्वीराज और उस के सिपाही लड़ते हुए दिल्ली की ओर अग्रसर होते जा रहे थे। अंत में इसी तरह दिल्ली की सीमा तक लड़ाई होती रही पर जयचंद के आदमी पृथ्वीराज को पकड़ न सके। अत में जयचंद ने कोई उपाय न देख कर दिल्ली में ही विधिवत् पृथ्वीराज और संयोगिता का ब्याह करा दिया। और दहेज के रूप में बहुत सी धन संपत्ति भी दी। यह सब तो हुआ पर जयचंद के हृदय में पृथ्वीराज के प्रति जो भयानक द्वेषाग्नि भभक उठी थी वह शांत न हुई। इधर संयोगिता को पाकर पृथ्वीराज भोग विलास में ऐसे डूबे कि राज काज से उन्होंने एक प्रकार से संबंध ही तोड़ लिया। इधर समय देख और जयचंद का इशारा पा शहाबुद्दीन महम्मद ग़ोरी इन पर चढ़ दौड़ा पर गई गुज़री हालत में भी पृथ्वीराज के सामने उसे बार-बार नीचा देखना पड़ा, किंतु अंत में वह पृथ्वीराज को पकड़ कर ग़ज़नी ले ही गया और वहाँ उसने उस की आँखें निकलवा कर कारागार में ठूंस दिया। इधर चंद भी वहां पहुँचे और वहां जिस प्रकार उन्होंने पृथ्वीराज के हाथों शहाबुद्दीन को मरवा कर अंत में स्वयं जिस प्रकार एक दूसरे को मार कर सुरधाम सिधारे वह ऊपर कहा जा चुका है।

संक्षेप में यही रासो की मूल कथा है। इसी के प्रसंग में पृथ्वीराज के कोड़ियों विवाह पचासों लड़ाइयाँ और सैकड़ों आखेट के वर्णन आए हैं। पहले-पहल शहाबुद्दीन के आने का और पृथ्वीराज से लड़ाई ठानने का रासो में एक विचित्र किंतु कौतूहलपूर्ण कारण दिया गया है। शहाबुद्दीन एक नवयौवना सुंदरी पर आसक्त था जो कि उस के दरबार के हुसेन शाह नाम के वीर पुरुष से प्रेम करती थी और लाख कोशिश करने पर भी वह सुलतान के चंगुल में नहीं फंसती थी। अंत में उस के अत्याचार के भय से हुसेन शाह अपनी प्रेयसी को लेकर पृथ्वीराज की शरण में चला आया। यहां पृथ्वीराज ने उन्हें हिंदू वीरता के आदर्श के अनुसार अभय दान देकर अपने यहां रख लिया। यह समाचार सुन सुलतान ने पहले तो बिना झगड़ा बढ़ाए इन दोनों को अपने यहां भेज देने को कहा पर इस का उत्तर पृथ्वीराज ने जो दिया होगा वह तो हम सहज ही में अनुमान कर सकते हैं। अंत में जो होना था वही हुआ और जो हुआ उस की याद कर के अब भी एक बार प्रत्येक भारतवासी अपना सर ठोकता है।

हम देखते हैं कि इन वीरगाथाओं में लड़ाई का आदि कारण प्रायः कुछ इसी ढंग का दिया जाता है। जोधराज के हम्मीर रासो में अलाउद्दीन और हम्मीर के वैमनस्य का कारण तो बिलकुल ऐसा ही है।[1]

---

[1] इस का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत ग्रंथ में जोधराज की भूमिका में दिया हुआ है।

पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल

यह पहले ही कहा जा चुका है कि रासो में आए हुए संवत् और उस में वर्णित घटनाएं कुछ ऐसी निराधार और कल्पित सी सिद्ध हुई हैं कि इस समय के अधिकांश विद्वान् इसे एक जाली ग्रंथ समझने लगे हैं। तो भी अभी विद्वानों में मतभेद बहुत है। कोई एक बात इस के संबंध में स्थिर नहीं हो सकी है। रासो को जाली मानने वाले विद्वानों की ऐसी धारणा है कि इस ग्रंथ का संकलन या संपादन सं० १६०० के आस-पास हुआ होगा। बाबू राम नरायण दूगड़ ने अपने पृथ्वीराज-चरित्र में इस विषय पर पहले कुछ विचार प्रगट किए हैं। उन्हें उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय में रासो की एक पुस्तक मिली थी। उस के अंत के एक छंद में यह लिखा है कि चंद के छंद जगह-जगह पर बिखरे हुए थे जिन को महाराणा अमरसिंह जी ने एकत्रित कराया। वह छंद यों है—

गुन मनियन रस पोइ चंद कवियन कर दिद्धिय।
छंद गुनी ते तुट्ट मंद कवि भिन-भिन किद्धिय॥
देस-देस बिष्षरिय मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत आस बिन आलय आवय (?)॥
चित्रकोट रान अमरेस नृप हित श्री मुख आयस दयौ।
गुन बिनबीन करुणा उदधि लिखि रासौ उद्दिम कियौ॥

इस छंद से यह तात्पर्य निकलता है कि किसी अज्ञात कवि ने राणा अमर-सिंह के समय में उन की आज्ञा से कवि चंद के छंदों को, जो देश के भिन्न-भिन्न भागों में बिखर गए थे, पिरोकर इस रासो को पूर्ण किया। उदय पुर के राजवंश में अमर सिंह नाम के दो राजा हो गए हैं जिन में से एक का राज्य काल से १६५३-७६ तक और दूसरा १७५५-६७ तक था। अब यह निश्चय करना है कि उस रीति से रासो का संग्रह किस अमर सिंह ने कराया था। भाग्यवश इस का निर्णय महाराणा राज सिंह द्वारा राजमुद्र तालाब के नौ चौकी बाँध पर बड़ी-बड़ी शिलाओं पर सं० १७३२ में खुदवाए हुए महाकाव्य से हो जाता है। इसी में पहले रासो का उल्लेख मिलता है। इस में यों लिखा है—

"भाषा रासा प्रस्तकेस्य युद्ध स्योटिय स्ति विस्तरः २७"

यह लेख सं० १७३२ का है, अतएव यह स्पष्ट है कि रासो का संग्रह या संकलन यदि किसी अमर सिंह के समय में हुआ होगा तो वह पहले अमर सिंह ही हो सकते हैं दूसरे नहीं। क्योंकि दूसरे अमर सिंह इस समय तक गद्दी पर भी नहीं बैठे थे। इन प्रमाणों के आधार पर इतना तो मानने में किसी प्रकार की आशंका नहीं होनी चाहिए कि चंद नाम का कोई कवि अवश्य था जिस ने वर्तमान पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं को लेकर रासो के मौलिक अंश की रचना की

थी और जिस के छंद संगृहीत न होने के कारण बिखर गए थे और जिन का संग्रह राणा अमर सिंह (प्रथम) ने करवाया। पर इन प्रमाणों से यह नहीं सिद्ध हो सकता कि यह चंद कवि पृथ्वीराज का समकालीन या उन का राजकवि था और उस ने उन के समय में ही रासो की रचना की थी। परंतु उदयपुर वाली प्रति के उल्लिखित उद्धरण को आधार मानने में एक कठिनाई है। यह प्रति सं० १९१७ की लिखी हुई है। इस के अंत में एक 'विवाह प्रस्ताव' है जिस के अंत में यों लिखा है :—

"इति श्री विवाह संम्यो संपूर्ण। शुभं भवतु। संवत १९१७ रा वर्षे मासोत्तम मासे भाद्रपद मासता कृष्णपक्षे तिथि ॥६॥ बुधे तिषति श्री उदयपुर मध्ये महाराणा जी श्री श्री श्री १०८ श्री सरूप सिंह जी विजय राजै लिषितं व्यास अंदरनाथ चंदरनाथ मन्थानी बड़ा पर्लोपाल खोम राय श्री निवास जी री भैम पुरी मध्ये श्री हजूर में लषाणी श्रीरस्तु कल्याणमस्तु शुभं भवतु॥"

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि उक्त प्रति सं० १९१७ की है और पुरानी नहीं है। बहुत संभव यही है कि यह राणा अमर सिंह द्वारा संकलित कराई हुई प्रति की प्रतिलिपि हो क्योंकि यह तो हमें इस ग्रंथ के आभ्यंतरिक प्रमाणों से ही ज्ञात हो जाता है कि इस का संग्रह राणा अमरसिंह जी के समय कराया गया था। और फिर इस में 'गुनिमुनियन रस पोई...' वाले के ऊपर ही एक और छंद ऐसा मिलता है जिस में इस के संकलन या संग्रह काल का निर्देश सा जान पड़ता है। वह छंद यों है :—

> मिली पंकज गन उदधि करद कागद की तरनी।
> कोटि कवी काजलह कमल करिक ते करनी॥
> इहि तिथि संख्या गुनत, कहै कका कवियों ने।
> इह श्रम लेपन हार, भेद भेदे सोइ जाने॥
> न कष्ट ग्रंथ पूरन करय जन बंभ्रया दुखना लहय।
> पालिये जतन पुस्तक पवित्र लिषि लेषक बिनती करय॥"

इस छप्पै का अर्थ अस्पष्ट और संदिग्ध है। पुराने लेखकों की आदत ही कुछ ऐसी थी कि प्रथम तो वह अपनी कृतियों के सन् संवत् आदि का उल्लेख निरर्थक समझते थे और जहां कहीं देते भी तो इस प्रकार बुझौवल या पहेली के रूप में कि उन के तात्पर्य यथार्थ निकालने में बहुत सरपच्ची करनी पड़ती है और बहुधा उन के कई अर्थ भी निकाले जा सकते हैं। पर इस प्रकार की रचना और जगह कदाचित् चमत्कारिक मानी भी जा सके पर कूट काव्य में सन् और संवत् का उल्लेख करने से अधिकतर अर्थ का अनर्थ ही होने की विशेष अधिक संभावना रहती है। अस्तु ऐसी अवस्था में बाबू श्यामसुंदर दास जी ने इस छंद पर जो प्रकाश डाला है उस को यहां उद्धृत करना अनुचित न होगा। बाबू साहब भी इस छंद के अर्थ को अस्पष्ट और संदिग्ध मानते

हैं। जो हो इतना तो इस छप्पै की तीसरी पंक्ति से स्पष्ट है कि ऊपर की दो पंक्तियों में इस ग्रंथ की संकलन तिथि दी गई है। आदि की दो पंक्तियों का अर्थ यों किया गया है—'यदि पंकज से पंकज नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिस का एक फल होता है, मानलें तो संवत् १६४१ बनता है। शेष शब्दों में मास तिथि आदि होगी पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब से रासो का संकलन सवत् १६४१ मान लिया जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा। इस से कई बातों का सामंजस्य हो जयगा।'[1] यहां यह कहा जा सकता है कि वास्तव में गुण तीन और समुद्र सात प्रसिद्ध हैं और इस हिसाब से यह संवत् १३७१ हो जाता है, और किसी बात का सामंजस्य नहीं होता उलटे उलझन और बढ़ जाती है।

जो हो बाबू साहब स्वयं इस गणना को विशेष महत्व नहीं देते, पर अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्तमान रासो का प्रथम संकलन या संग्रह या संपादन सं० १६२६ और १६४२ के बीच में ही हुआ होगा। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा में जो रासो की प्रति सुरक्षित है वह सं० १६४२ की है और इस से भी उस निष्कर्ष को ठीक मानने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती।

वर्तमान रासो का संकलन विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पहले मानने में पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा तथा अन्य विद्वानों को निम्नलिखित कठिनाइयां पड़ती हैं :—

(१) सं० १४६० में रचित हम्मीर महाकाव्य में चौहानों का विस्तृत इतिहास दिया गया है परंतु उस में रासो के अनुसार चौहानों को अग्निवंशी क्षत्रिय नहीं माना गया है और न उस की दी हुई चौहानों की वंशावली ही इस में आधार मानी गई है। ऐसी स्थिति में यह धारणा स्वाभाविक है कि उस समय तक रासो को कोई नहीं जानता था, क्योंकि यदि इतना बड़ा ग्रंथ उस समय तक प्रसिद्धि में आगया होता तो हम्मीर महाकाव्य का लेखक कुछ अंशों में तो अवश्य उसे आधार मानता।

(२) पृथ्वीराज रासो में रावल समर सिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुंभा का बीदर के मुसलमान बादशाह के पास जाना लिखा है परंतु पृथ्वीराज के समय तक मुसलमानों का दक्षिण में प्रवेश नहीं हुआ था। बीदर का राज्य सं० १४८७ में अहमद शाह वली द्वारा पहले पहल स्वतंत्र रूप से स्थापित किया गया था। इस से भी वही धारणा पुष्ट होती है।

---

[1] १९१० की ओरियंटल कानफरेंस के हिंदी विभाग के सभापति की हैसियत से बाबू श्यामसुंदर दास जी का भाषण।

(३) पृथ्वीराज रासो में सोमेश्वर और पृथ्वीराज की मेवात के मुग़ल राजा से लड़ाई और उस में उस के क़ैद होने तथा उस के पुत्र वाजिद खाँ के मारे जाने की कथा लिखी है और यह भी एक बड़ी भारी गड़बड़ी है। मुग़लों का भारत में प्रथम प्रवेश सं० १४५५ में तैमूर लंग के हमले के साथ हुआ और उन का प्रथम राज्य-स्थापन बाबर के द्वारा सं० १५८३ में हुआ। ऐसी अवस्था से १४५५ से पहले रासो का बनना कैसे माना जा सकता है।

(४) महाराणा कुंभ ने वि० सं० १५१७ में कुंभल गढ़ के किले की प्रतिष्ठा की थी और वहां के मामादेव (कुंभ स्वामी) के मंदिर में की बड़ी-बड़ी पाँच शिलाओं पर संस्कृत काव्य में मेवाड़ के उस समय तक के राजाओं का बहुत कुछ वृत्तांत लिखवाया था। पर इस में न तो कहीं रासो का उल्लेख है और न महाराणा समरसिंह के पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह या शहाबुद्दीन के साथ लड़ाई में उन के मारे जाने का ही वर्णन है। इस से भी यही विश्वास होता है कि सं० १५१७ तक रासो प्रसिद्धि में नहीं आया था, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो कुंभकर्ण वाले लेख में अवश्य उक्त घटनाओं का उल्लेख होता। कुंभ ही की भाँति महाराणा राज सिंह ने अपने बनवाए हुए राजसमुद्र तालाब के 'नौ चौकी', नामक बाँध पर २५ बड़ी-बड़ी शिलाओं पर एक महाकाव्य सं० १७३२ में खुदवाया था। इस में उक्त घटना का उल्लेख तो है ही साथ ही उस में रासो का नाम भी आया है जैसा कि आगे कहा जा चुका है[१]।

उपर्युक्त युक्तियों के आधार पर यह निर्भ्रांत रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान रासो का निर्माण, संग्रह, संकलन, या संपादन सं० १५१७ और सं० १७३२ के बीच किसी समय हुआ होगा। उदयपुर के विक्टोरिया हाल पुस्तकालय की प्रति में इस के संकलन की जो तिथि दी हुई है उस से तथा नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित सं० १६४२ वाली प्रति से भी (जो कि इस समय सब से पुरानी प्रति है) यही धारणा पुष्ट होती है। इन्हीं कारणों से अधिकांश विद्वान् वर्तमान रासो का निर्माण काल सं० १६०० से पहले मानने को तैयार नहीं हैं।

---

[१] ततः समर सिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः। पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्याति हार्दतः॥
गोरी साहिब दीनेन गजनीशेन संगरं। कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महा सामंतशोभितः॥
दिल्लीश्वरस्य चोहाननाथस्यच सहायकृत्। स द्वादशसहस्रै स्ववीराणां सहितो रणे॥
बध्वा गोरीपतिं दैवात् स्वर्यातः सूर्यबिंबभित्। भाषा रासा पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३

यह तो सभी विद्वान् इस समय मानने लगे हैं कि सं० १६०० के लगभग जिस रासो की सृष्टि हुई उस में प्रक्षिप्त अंश बहुत है और उस में चंद की कविता यदि कुछ है तो वह बहुत थोड़ी है और वह भी इस प्रकार की है कि उसे ढूँढ़ निकालना और प्रक्षिप्त अंश से उसे अलग करना बड़ा कठिन है। फिर न तो पृथ्वीराज के समय के किसी दूसरे भाट की कविता लभ्य है जिस से उस काल की कविता की भाषा और रंग ढंग का निश्चयात्मक रूप से कुछ ज्ञान हो सके। ऐसा यदि हो सकता तो हमें यह निश्चय करने का साधन मिल जाता कि चंद नाम के किसी कवि ने पृथ्वीराज के समय मूल पृथ्वीराज रासो के कुछ छंदों की कविता की थी। इस खेद का कारण यह है कि बहुत से विद्वानों की अभी तक यह दृढ़ धारणा बनी हुई है कि चंद नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के समय में अवश्य था और उसी ने रासो के मूल अंश की रचना विविध छंदों में की थी जो कि इधर-उधर बिखर गए थे और जिन का उपर्युक्त रीति से संग्रह विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में हुआ। यद्यपि रासो को छोड़ और कोई ग्रंथ या लेख ऐसा नहीं है जिस से चंद का पृथ्वीराज का समसामयिक और राजकवि आदि होना और रासो की रचना करने का प्रमाण मिलता हो, बल्कि जो कुछ भी प्रमाण मिलते हैं वह इस के विरुद्ध ही मिलते हैं जैसा कि हम ने ऊपर देखा है। पृथ्वीराज के वास्तविक समसामयिक कवि जयानक के ग्रंथ 'पृथ्वीराज विजय' में चंद्रराज नाम के एक कवि का नाम आया है और रासो के समर्थक एक स्वर से उसे 'चंद बरदाई' मानने लगे थे परंतु पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने इस पर दूसरा ही प्रकाश डाला जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, और तब से फिर सब की राय बदल गई। अब सब यही कहने लगे हैं कि जिस 'चंद्रराज' का जयानक ने उल्लेख किया है वह वही 'चंद्र' (चंद्रक) कवि हो सकता है, जिस का उल्लेख विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होने वाले कश्मीरी कवि क्षेमेंद्र ने भी किया है [1]। एक जगह से हमें निश्चित रूप से इस प्रश्न पर प्रकाश डालने की सुविधा हो सकती थी पर अभाग्यवश वह भी इस समय अलभ्य है। कहते हैं जिस प्रकार चंद ने महाराज पृथ्वीराज का यश वर्णन किया है उसी प्रकार भट्ट केदार ने कन्नौज के राजा जयचंद का गुण गान किया है। रासो में चंद और भट्ट केदार के संवाद का एक स्थान पर उल्लेख भी है। भट्ट केदार ने अपने 'जयचंद प्रकाश' नामक महाकाव्य में जयचंद की कथा लिखी थी। इसी प्रकार इसी समय के मधुकर नाम के एक दूसरे कवि ने 'जय मयंक-जस चंद्रिका' नामक एक बड़ा ग्रंथ लिखा था। पर खेद है कि ये दोनों ग्रंथ इस समय अलभ्य हैं। बाबू श्यामसुंदर दास जी ने बड़े परिश्रम से इन की खोज की पर उन्हें निराश होना पड़ा। इन ग्रंथों के मिल जाने पर निस्संदेह चंद

---

[1] आफ्रेक्ट कैटेलागस कैटेलागोरम्; भाग १, पृ० १७१।

और रासो पर नया प्रकाश पड़ने की पूरी सभावना थी। इस समय केवल इन का उल्लेख सिंघायच दयालदास कृत 'राठौड़ाँरी ख्यात' में मिलता है जो बीकानेर के राजपुस्तक-भांडार में सुरक्षित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी ऐसा प्रमाण इस समय उपलब्ध नहीं है जिस से रासो का निर्माण काल सं० १६०० के पहले माना जा सके। इन्हीं कारणों से अधिकांश विद्वान् अब रासो को एक जाली ग्रंथ समझने लगे हैं। परंतु इन सब प्रबल प्रमाणों के रहते हुए भी कुछ थोड़े से विद्वान ऐसे भी हैं जिन्हें चंद को पृथ्वीराज का समसामयिक मानने में कोई संकोच नहीं है और जो रासो को जाली मानने के लिए तैयार नहीं हैं। इन में प्रमुख हैं मिश्रबंधु। इन की एक मात्र ज़बर्दस्त दलील यह है—"यदि कोई मनुष्य सोलहवीं शताब्दी के आदि में इसे बनाता, तो वह स्वयं अपना नाम न लिख कर ऐसा भारी (२५०० पृष्ठों का) बढ़िया महाकाव्य चंद को क्यों समर्पित कर देता[1]। इस का एक मात्र उचित उत्तर देते हुए पं० गौरी शंकर हीराचंद ओझा लिखते हैं, "चंद नाम के अनेक कवि समय-समय पर हो सकते हैं। कालिदास नामक अनेक कवि हो गए और तेरहवीं सदी के आस-पास होने वाले 'ज्योतिर्विदाभरण' के कर्त्ता ज्योतिषी कालिदास ने अपने को विक्रम का मित्र और उस के दरबार के नवरत्नों में से एक होना लिख दिया है। इतना ही नहीं, किंतु कलियुग सं० ३०६८ (वि० सं० २४) में अनेक ग्रंथ का प्रारंभ और अंत होना भी लिख दिया है।"[2] पं० रामचंद्र शुक्ल तथा बाबू श्यामसुंदर दास जो रासो की घटनाओं तथा सवतों को तो अशुद्ध स्वीकार करते हैं पर उस के कर्त्ता का समय सं० १२२५ और १२४९ के बीच में मानते हैं और साथ ही जयानक के 'पृथ्वीराज विजय, में जिन घटनाओं और नामों के उल्लेख हैं उन्हें ठीक मानते हैं।[3] बाबू साहब अपनी सब से हाल की रचना 'हिंदी भाषा और साहित्य' में भी रासो को पूर्ण रूप से जाली नहीं मानते। वह कहते हैं, 'चंद बरदाई नाम के किसी कवि का पृथ्वीराज के दरबार में होना निश्चित है, और यह भी सत्य है कि उस ने अपने आश्रय दाता की गाथा विविध छंदों में लिखी थी; परंतु समयानुसार उस गाथा की भाषा तथा उस के वर्णित विषयों में बहुत कुछ हेर-फेर होते रहे और इस कारण अब उस के प्रारंभिक रूप का पता लगाना असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन अवश्य हो गया है।"[4] कदाचित् स्थानाभाव से बाबू साहब अपने उपर्युक्त कथनों के प्रमाण

रासो जाली ग्रंथ है ?

---

[1] मिश्रबंधु; हिंदी नवरत्न; (तृतीय संस्करण) पृष्ठ ४६१।

[2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका; भाग १० पृष्ठ ६५।

[3] नागरी प्रचारिणी पत्रिका; भाग १५, पृष्ठ २८।

[4] बाबू श्यामसुंदर दास; हिंदी भाषा और साहित्य; पृष्ठ २८२।

न दे पाए। कम से कम 'बरदाई' नाम के किसी कवि के पृथ्वीराज के दरबार में निश्चित रूप से होने का प्रमाण जानने की सभी को बड़ी उत्कंठा होगी। जान पड़ता है बाबू साहब किंवदंती के आधार पर ही चंद को पृथ्वीराज का दरबारी कवि और उसे रासो का रचियता मानते हैं। क्योंकि उन्हों ने अभी-अभी सन् १९३० की ओरियंटल कानफरेंस के हिंदी विभाग के सभापति की हैसियत से अपने भाषण में कहा है, "प्रबंध-काव्यों में सब से पुराना ग्रंथ किंवदंती के आधार पर पृथ्वीराज रासो है। इस के असली होने के संबंध में भी विद्वानों में बड़ा मत भेद है। कोई तो इसे वास्तविक रूप में वर्तमान मानते हैं और कोई इस को सर्वथा जाली बतला कर इस का वर्तमान रूप में आविर्भाव सं० १६०० के पीछे का मानते हैं। इस ग्रंथ के वर्तमान रूप को देख कर यह अवश्य मानना पड़ता है कि यह ग्रंथ जिस रूप में इस समय वर्तमान है वह पुराना नहीं है, वरन् उस में प्रक्षिप्त अंश बहुत मिला हुआ है।" इन उद्धरणों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि बाबू साहब रासो को निर्भ्रांत रूप से जाली मानने में हिचकते हैं। उन का विश्वास है कि पृथ्वीराज के दरबारी कवि चंद को रचना वर्तमान रासो में इधर-उधर बिखरी पड़ी है और जिसे ढूँढ़ निकालना वे सर्वथा असाध्य नहीं समझते और विद्वानों तथा काव्य-प्रेमियों को उसे ढूँढ़ निकालने के कठिन काम में पड़ना व्यर्थ ही नहीं वरन् उन का कर्त्तव्य समझते हैं और बार-बार उत्साही साहित्य-सेवियों को इस काम के हाथ में लेने के लिए प्रेरित करते हैं। परंतु पंडित रामचंद्र जी शुक्ल की राय अब इस से कुछ परिवर्तित हो गई है। ये अभी-अभी प्रकाशित हिंदी साहित्य के इतिहास' में संक्षेप से रासो के वास्तविक अस्तित्व के पक्ष और विपक्ष के प्रायः सभी प्रमाणों को परीक्षा करते हुए अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, 'इस संबंध में इस के अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में जाली है।' इतना वह कह तो गए पर तुरंत ही शायद कुछ हिचके क्योंकि साथ ही इन्हें इतना और कहने की आवश्यकता जान पड़ी। "यह हो सकता है कि इस में इधर-उधर कुछ पद्य चंद के भी बिखरे हों, पर उन का पता लगाना असंभव है।" पर जो हो शुक्ल जी अब रासो को एक प्रकार से निर्भ्रांत रूप से जाली समझने लगे हैं। इस धारणा का कारण उन्हीं के शब्दों में यह है, "यदि यह ग्रंथ किसी समसामयिक कवि का रचा होता और इस में कुछ थोड़े अंश ही पीछे से मिले होते तो कुछ घटनाएं और इस में कुछ संवत् तो ठीक होते"। अब चंद नाम का कोई पृथ्वीराज के दरबार में था या नहीं इस प्रश्न के संबंध में भी शुक्ल जी प्रायः निर्भ्रांत हैं। इस विषय पर उन की राय ओझा जी की राय से मिलती है और इस का उल्लेख ऊपर हो चुका है। पर इस के संबंध में वह एक नई ही कल्पना करते हैं। वह कहते हैं: "इस अवस्था में यही कहा जा सकता है कि चंद बरदाई नाम का यदि कोई कवि था तो वह या तो पृथ्वीराज की सभा में न रहा होगा या जयानक के कश्मीर लौट जाने पर आया होगा। अधिक संभव यह जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के

पुत्र गोविंदराज या उन के भाई हरिराज अथवा इन दोनों में से किसी के वंशज के यहां चंद नाम का कोई भट्ट-कवि रहा हो जिस ने उन के पूर्वज पृथ्वीराज की वीरता आदि के वर्णन में कुछ रचना की हो। पीछे जो बहुत सा कल्पित "भट्ट भणंत" तैयार होता गया उन सब को ले कर और चंद को पृथ्वीराज का समसामयिक मान, उसी के नाम पर "रासो" नाम की यह बड़ी इमारत खड़ी की गई हो।[१] उपर्युक्त कथन अधिक से अधिक कल्पना मात्र है यद्यपि यह युक्तिसंगत जान पड़ता है। पर जो हो अब इतना मानने में कोई हानि नहीं जान पड़ती कि चंद पृथ्वीराज का समसामयिक नहीं था। इस निष्कर्ष पर पहुँचने का एक मात्र कारण यही है कि किसी समसामयिक कवि की रचना में सभी घटनाएं और सन, संवत्, इतिहास विरुद्ध नहीं हो सकते। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या जी ने रासो की तिथियों को शुद्ध सिद्ध करने के लिए कई प्रकार की कल्पनाओं से काम लिया पर अब वह सभी निराधार सिद्ध हो गई हैं और उन पर अधिक विचार करना व्यर्थ है। तो भी संक्षिप्त रीति से उन्हें जान लेना चाहिए।

कर्नल टाड ने रासो के आधार पर एक चौहानों का इतिहास लिखा था और संवतों की जांच करने पर जब उन्हों ने उन्हें अशुद्ध पाया तो यों लिखा। "किसी आश्चर्य जनक, तो भी एक सी, भूल के कारण सब चौहान

'भटायत' और 'आनंद' 'संवत'

जातियां अपने इतिहासों में १०० वर्ष पहले के संवत् लिखती हैं × × × × परंतु इस से पृथ्वीराज के कवि चंद ने भी भूल खाई है और पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२१५ के स्थान १११५ में होना लिखा है; और सब तरह संभव है कि यह अशुद्धि किसी कवि की अज्ञानता से हुई है"।[२] इसी कथन के आधार पर पंड्या जी ने विक्रम का एक नया संवत् खड़ा कर दिया जिस का नाम उन्हों ने 'भाटों का संवत्' या 'भटायत' संवत् रक्खा और साथ ही यह भी मान लिया कि उस में १०० वर्ष जोड़ने से शास्त्रीय विक्रम संवत् ठीक मिल जाता है। पंड्या जी ने पृथ्वीराज रासो की 'प्रथम संरक्षा' नाम की अपनी एक पुस्तिका में रासो में आए हुए संवतों को पहले यही भटायत संवत् माना। परंतु अब यह सिद्ध हो गया है कि ऐसा मानने पर भी, अर्थात् भटायत संवत् में १०० वर्ष जोड़ने से भी वह विक्रम संवत् से नहीं मिलता। उदाहरण के लिए पृथ्वीराज की मरण तिथि लीजिए। इतिहास के अनुसार पृथ्वीराज की मृत्यु सं० १२४८-४९ (हिजरी सन् ५८७) में तराइन की लड़ाई में हुई थी। रासो में पृथ्वीराज का जन्म संवत् १११५ में होना और ४३ वर्ष की उम्र पाना लिखा है। इस को पंड्या जी के अनुसार भटायत संवत् मानने से पृथ्वीराज की मृत्यु संवत् ११५८

---

[१] पंडित रामचंद्र शुक्ल; हिंदी साहित्य का इतिहास; पृष्ठ ४१-४२।

[२] टॉड राजस्थान (कलकत्ते का छपा, अँगरेजी) जि० पृष्ठ ५०० टिप्पण।

में माननी पड़ती है जो कि वास्तविक तिथि के १० वर्ष पीछे है। इस गड़बड़ी को मिटाने के लिए पंड्या जी ने पृथ्वीराज के जन्मवाले दोहे का अर्थ ही एक विचित्र रीति से किया है। दोहा यों है—

एकादस से पंचदस विक्रम साक अनंद।
तिहि रिपु जयपुर हरन को भए पृथिराज नरिंद॥

पंड्या जी ने देखा कि इस दोहे का संवत् १११५ न हो कर यदि ११०५ होता तो यह शुद्ध संवत् से मिल जाता। इस लिए उन्हों ने इस दोहे में आए हुए 'पंचदस' शब्द का अर्थ पाँच किया और 'दह' (दश) अर्थ शून्य बताया। परंतु इस से किसी को संतोष न हुआ और उन्हें किसी दूसरे ही प्रकार से रासो के संवतों को शुद्ध सिद्ध करने की धुन सवार हुई और इस के फल स्वरूप 'अनंद' संवत् की प्रसिद्ध कल्पना भी उपर्युक्त दोहे के बल पर की गई। जैसे 'भटायत' संवत् की कल्पना के समय उन्हों ने 'पंचदह' शब्द का एक विचित्र अर्थ किया था उसी प्रकार इस बार उन्हों ने उस से भी विचित्र अनंद शब्द का अर्थ लगाया। उन के अनुसार विक्रम 'साक अनंद;' का अर्थ हुआ 'नौ रहित विक्रम साक'। 'अनंद', शब्द के 'अ' का अर्थ नहीं या रहित और नंद का अर्थ नौ (नंदवंशी राजाओं से यह अर्थ निकाला गया है जो कि संख्या में नौ थे)। परंतु इस प्रकार भी 'विक्रम' साक अनंद का अर्थ नौ रहित विक्रम साक या संवत् निकलता है न कि ९० रहित विक्रम साक जैसा कि पंड्या जी निकालते हैं। वह स्वयं यों लिखते हैं, अब विक्रम साक अनंद को क्रम से अनंद विक्रम साक अथवा विक्रम अनंद साक कर के उस का अर्थ करो कि नव रहित विक्रम का शक अथवा विक्रम का नव रहित शक अर्थात् १००–९=९०।९१ अर्थात् विक्रम का वह शक कि जो उस के राज्य के ९०।९१ से प्रारंभ हुआ है।" इस प्रकार की विलक्षण कल्पना के द्वारा उन्हों ने १०० में से ९० वर्ष घटाया तो अवश्य पर इस के लिए कोई ठीक कारण बताने में वह असमर्थ हुए। कहते हैं कि नंद वंशी शूद्र थे इस लिए उन का राजत्वकाल राजपूत भाटों ने शुद्ध विक्रम संवत् से अलग कर दिया।

एक समय भारत के अधिकांश विद्वानों ने पंड्या जी द्वारा कल्पित इस 'अनंद' संवत् को स्वीकार भी कर लिया था पर अब इस स्वीकृति का कारण यही जान पड़ता है कि विद्वानों ने बिना इस की अच्छी छान बीन किए ही इसे मान लिया होगा। परंतु बात यहीं तक नहीं थी। इस को यूरोप के विद्वानों और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने भी ज्यों का त्यों मान लिया। बात यह हुई थी कि बाबू श्यामसुंदर दास जी ने नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा की गई सन् १९०० की हिंदी पुस्तकों की खोज का वार्षिक रिपोर्ट की भूमिका में पंड्या जी के कथन का दृढ़ समर्थन किया था और इसी के आधार पर डा० ग्रियर्सन और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक स्मिथ ने भी इसको स्वीकार कर लिया। स्मिथ ने इस का ज्यों का त्यों उल्लेख अपनी पुस्तक, अर्ली हिस्ट्री आफ़

इंडिया, में भी कर दिया यद्यपि उस ने बाबू साहब या पंड्या जी का नाम नहीं दिया है[१]। उक्त रिपोर्ट की समालोचना करते समय डाक्टर रूडोल्फ हार्नली ने भी बाबू श्यामसुंदर दास जी का समर्थन किया। उस ने 'अनंद' संवत्' नाम के विषय में पेश की हुई पंड्या जी की दलीलों को तो पूर्णरूप से असंतोषजनक कहा है परंतु उन के निष्कर्ष को साधारण रूप से ठीक मानता हुआ वह यों कहता है, "……वास्तव में जो ठीक प्रतीत होता है वह मि० श्यामसुंदर दास का यह कथन है कि यदि अनंद विक्रम संवत् का आरंभ प्रचलित विक्रम संवत् से, जो कि पहचान के लिए 'सनंद' विक्रम सवत् कहा जाता है, ९०-९१ वर्ष पीछे माना जावे तो रासो के सब संवत् शुद्ध मिल जाते हैं, इस लिए यह सिद्ध हो जाता है कि 'अनंद' विक्रम संवत् में ३३ जोड़ने से ई० सन् बन जाता है।[२] इसी प्रकार डाक्टर बार्नेट ने भी सन् १९१३ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'एंटिक्विटीज़ आफ़् इंडिया' नाम की पुस्तक में 'अनंद' विक्रम संवत् का प्रारंभ ई० सन् ३३ से माना है।[3] मिश्रबंधुओं का भी दृढ़ विश्वास है कि 'अनन्द' विक्रम संवत् चलता अवश्य था और वह साधारण संवत् से ९० या ९१ वर्ष पीछे था। उस के चलने का कारण न ज्ञात होना उस के अस्तित्व में संदेह नहीं डाल सकता[४]। यद्यपि अनंद विक्रम संवत् किस प्रकार चला और साधारण संवत् से वह ९० वर्ष पीछे क्यों है इस के विषय में पंड्या जी और श्याम सुंदर दास जी के दिए हुए तर्कों और कारणों को वह सतोषजनक नहीं समझते तो भी वह न जाने क्यों इस का चलना और इस का साधारण संवत् से ९०-९१ वर्ष पीछे होना निस्संदेह रूप से ठीक मानते हैं। उन्हें अभी आशा है कि किसी दिन अनंद संवत् के चलने का कारण भी ज्ञात हो सकता है, इन सब गड़बड़ियों के होते हुए भी उन का यह दृढ़ विश्वास है कि "रासो जाली नहीं है और पृथ्वीराज के समय में ही चंद ने इसे बनाया था[५]"।

उपर्युक्त कथनों पर विचार करने से यही धारणा होती है कि भारत और यूरोप के अधिकांश विद्वानों ने जो अनंद संवत को स्वीकार कर लिया उसका प्रधान कारण यही है कि पंड्या जी तथा बाबू श्यामसुंदर दास जी के कथनानुसार इस के मानने से रासो के संवत् शुद्ध संवत् से मिल जाते हैं और रासो जाली ग्रंथ होने से बच जाता है। यह अनंद संवत् डूबते हुए रासो के लिए तिनके का सहारा सा जान पड़ा था पर अब अन्य विद्वानों तथा मुख्यतः पं० गौरीशंकर हीराचंद जी

---

[१] विसेंट स्मिथ; अर्ली 'हिस्ट्री आफ इंडिया' पृ० ४२ टिप्पण २।

[२] जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, सन् १९०६ पृ० ५००-१।

[3] डाक्टर बार्नेट; एंटिक्विटीज़ आफ़् इंडिया, पृ० ६५।

[४] मिश्रबंधु; हिंदी नवरत्न, पृ० ५८८-५९१ (नवीन संस्करण)।

[५] मिश्रबंधु; हिंदी नवरत्न, पृ० ५९१ (नवीन संस्करण)।

ओझा के रासो विषयक गंभीर ऐतिहासिक अनुशीलन ने मृगमरीचिका की भाँति उसे भी धोखा सिद्ध कर दिया है। वह यों कि उन्हों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि रासो के संवतों में ९०। ९१ जोड़ने से भी वह शुद्ध संवत् से नहीं मिलते जैसा कि अभी तक कुछ लोगों का विश्वास है। उदाहरण के लिए कुछ मुख्य-मुख्य संवतों का मिलान नीचे दिया जाता है।

(१) पृथ्वीराज का जन्म संवत्। रासो के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म सं० १११५ में हुआ। इस में ९०। ९१ जोड़ने से १२०५-६ होता है परंतु शिलालेखों तथा फारसी इतिहासकारों के आधार पर ओझा जी ने यह सिद्ध किया है कि पृथ्वीराज का जन्म सं० १२२१ के आस-पास हुआ होगा। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि सं० १२१७ के पहले उन का जन्म होना असंभव है[1]।

(२) पृथ्वीराज का दिल्ली गोद जाना। रासो के अनुसार सं० ११२२ में ७ वष की अवस्था में पृथ्वीराज को उन के नाना अनंगपाल ने गोद लिया। इसे अनंद संवत् मानने से सं० १२१२—१३ में पृथ्वीराज का गोद जाना सिद्ध होता है, पर जैसा कि सिद्ध हो चुका है इस संवत् तक तो पृथ्वीराज का जन्म ही नहीं हुआ था फिर वह गोद कैसे गए। और फिर इतिहास और शिलालेखों से सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का विवाह अनंगपाल की कन्या से नहीं हुआ था। वि० सं० १२२६ के विजोलियां के लेख से स्पष्ट है कि दिल्ली का राज्य पहले सोमेश्वर के बड़े भाई विग्रहराज चतुर्थ (वीसलदेव) ने अपने अधिकार में कर लिया था[2]। फिर 'पृथ्वीराज विजय' से यह भी ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज की माता अनंगपाल की पुत्री कमला नहीं बल्कि चंदि (जबलपुर प्रांत की प्राचीन राजधानी) के हैहय वंशी राजा तेजल (अचलराज) की कन्या कर्पूर देवी थी[3]। इस का समर्थन फारसी इतिहासों तथा शिलालेखों से भी हो जाता है। 'हम्मीर महाकाव्य' का लेखक नयचंद्र भी पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूर देवी लिखता है[4]। 'सुर्जन चरित' का लेखक भी इन की माता का नाम कर्पूर देवी और उसे दक्षिण के कुंतल देश के राजा की पुत्री बतलाता है[5]।

---

[1] इन प्रमाणों के सविस्तार वृतांत के लिए नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ में प्रकाशित 'अनंद विक्रम संवत् की कल्पना' नाम का ओझा जी का लेख देखना चाहिए।

[2] प्रोतल्यां च वलभ्यां च येन विश्रमितं यशः [।] ढिल्लिकाग्रहणश्रांतमाशिका लाभ लिंभितः (तं) ॥२२॥ विजोलियां का लेख (छाप पर से)

[3] जयानक; पृथ्वीराज विजय, सर्ग ७ श्लोक १६ तथा सर्ग ८ श्लोक ३०, ४७, ४८, ४६

[4] हम्मीर महाकाव्य; सर्ग दो श्लोक ६७, ७२

[5] सुर्जन चरित; सर्ग ६, श्लोक ४

इसी प्रकार की गड़बड़ी रासो में दिए हुए सब संवतों में मिलती है। कैमास की लड़ाई का समय १२३०—३१ (अनंद सं० ११४०) दिया हुआ है जब कि पृथ्वीराज का राज्याभिषेक तक नहीं हुआ था वह उस समय १२ वर्ष से ऊपर के न रहे होंगे। ऐसा ही रासो में आए हुए और संवतों के विषय में भी समझना चाहिए। रासो के संवतों को 'भटायत' और 'अनंद' संवतों की कल्पना के द्वारा शुद्ध सिद्ध करने का पंड्या जी का प्रयास एक विशेष कारण से बहुत निर्बल हो जाता है। उन्हों ने रासो तथा चौहानों की ख्यातों आदि में दिए हुए जिन संवतों में १०० वर्ष के जोड़ने से (भटायत संवत्) उन का शुद्ध संवतों से मिल जाना पहले बतलाया था उन्हीं का फिर ९० । ९१ वर्ष जोड़ने से (अनंद संवत्) शुद्ध संवतों से मिल जाना बताया। पृथ्वीराज के जन्म संबंधी दोहे का उन्होंने अपनी कल्पना को सिद्ध करने के लिए ही दोनों बार दो प्रकार के अर्थ किए।

अंत में सारांश यही निकलता है कि रासो में दिए हुए संवत् न तो 'भटा-यत' संवत् हैं और न 'अनंद' संवत्; वे वास्तव में हैं विक्रम के ही साधारण संवत् पर उन के लेखक को शुद्ध समय का ज्ञान नहीं था और वे अटकल पच्चू लगाए गए और इसलिए उन में से कोई भी शुद्ध न निकल सके। रह गया उन पट्टों और परवानों का प्रमाण जिन पर कि पंड्या जी तथा रासो के संवतों के अन्य समर्थकों को इतना भरोसा था। कहा जाता है कि ये पट्टे परवाने आदि पृथ्वीराज के समय के हैं और उन के संवतों और प्रमाणों में अविश्वास का कोई कारण नहीं है। पर अब ये भी दुर्भाग्य वश नकली या जाली सिद्ध हुए हैं। ओझा जी के शब्द में ये सिखाए हुए गवाह की तरह और भी मामला बिगाड़ गए। कहने को यह भी कहा जा सकता था कि रासो कोई इतिहास-ग्रंथ नहीं है जिस से कि इस के संवतों मे गड़बड़ी पाने पर पूरा ग्रंथ ही झूठा मान लिया जाय। ठीक है, पर बात संवतों ही तक होती तो उतनी हानि नहीं थी। इस की तो मुख्य-मुख्य प्रायः सभी घटनाएं भी इतिहास विरुद्ध और कल्पित सी जान पड़ती है। इन घटनाओं में से कुछ का उल्लेख तो प्रसंग वश पहले ही यथास्थान होता आया है और कुछ का दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है।

रासो की इतिहास विरुद्ध बातें

(१) चौहान वंश की उत्पत्ति—रासो के अनुसार चौहानों के आदि पुरुष की उत्पत्ति वशिष्ठ द्वारा स्थापित एक यज्ञ कुंड से हुई थी। राक्षसों के संहार के लिए किसी वीर पुरुष की आकांक्षा से ब्रह्मा का ध्यान करते हुए इस कुंड में आहुति देने लगे और तुरंत ही इस से चार भुजा वाला एक बड़ा तेजस्वी पुरुष प्रकट हुआ। यज्ञकुंड से निकले हुए इस पुरुष को देख कर वशिष्ठ ने उस का 'चहुवान' नाम रक्खा। इस प्रकार चौहानों को रासो में अग्नि से उत्पन्न होने के कारण अग्निवंशी क्षत्रिय कहा गया है। पर चौहानों से संबंध रखने वाले अब तक जितने इतिहास शिलालेख

ताम्रपत्र तथा अन्य लेख प्राप्त हुए हैं उन में किसी मे भी इन को अग्निवंशी नही कहा गया है। सभी इन को सूर्यवंशी कहते हैं।

(२) रासो में दी हुई चौहानों की वंशावली भी कृत्रिम या कल्पित सी जान पड़ती है। 'पृथ्वीराज विजय' और विजोलियां के शिलालेख की वंशावली एक दूसरे से प्राय: पूर्ण रूप से मिलती-जुलती है और दोनों ही के प्रमाणों को सब एक स्वर से विश्वासयोग्य मानते हैं, पर रासो की वंशावली इन से बिलकुल भिन्न है।

(३) रासो में पृथ्वीराज की माता का नाम अनंगपाल की कन्या कमला कहा गया है। पर यह सारी कथा कपोलकल्पित और अशुद्ध है जैसा कि आगे पृथ्वीराज का अनंगपाल की गोद जाने के प्रसंग में लिखा गया है।

(४) रासो के अनुसार पृथ्वीराज की बहिन पृथा कुँवरि का विवाह मेवाड़ के राणा समरसिंह के साथ हुआ था। परंतु शिलालेखों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि उक्त विवाह असंभव था क्योंकि पृथ्वीराज की मृत्यु के बहुत दिन बाद तक समरसिंह के पितामह जैत्रसिंह ही विद्यमान थे। समर सिंह के समय का प्रथम शिलालेख सं० १३३० का और अंतिम सं० १३५८ का है। इस से यह स्पष्ट है कि समरसिंह पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद कम से कम १०९ वर्ष तक जीवित थे। पृथ्वीराज, समरसिंह और पृथाबाई के संबध के अनंद संवत् १५४३ से १६४७ तक के जो पत्र पट्ट परवाने आदि पेश किए जाते हैं उन को विश्वास योग्य न मानने के पर्याप्त कारण ज्ञात हुए हैं।[1]

इसी प्रकार रासो में वर्णित सोमेश्वर की मृत्यु गुजरात के राजा भीम के हाथ से और भीम की पृथ्वीराज के हाथ से, तथा पृथ्वीराज के नाहर राय की पुत्री और इच्छनी से विवाह आदि की कथाएं इतिहास की कसौटी पर कसने से सब निराधार और कपोल कल्पित सिद्ध हुई हैं। इस विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है।

पृथ्वीराज रासो की भाषा

किसी ग्रंथ की प्राचीनता स्थिर करने में उस की भाषा शैली और छंद आदि से भी बड़ी सहायता मिलती है विशेषतः काव्य ग्रंथों में। यह तो हम ऊपर देख चुके कि रासो में दिए हुए संवत् और उस की घटनाएं अप्रामाणिक अथवा अशुद्ध होने के कारण हमें उस का समय स्थिर करने के बजाय और भी उलझन डाल

---

१ —नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण) भाग १, पृ० ४३२—४२।

देती हैं। अब रही भाषा। पर भाषा से सहायता तभी मिल सकती है जब वह एक प्रकार की या कम से कम एक ही समय की रचना हो। पर खेद है कि रासो की भाषा में हम यह बातें भी नहीं पाते। इस ग्रंथ में हम भाषा में इतनी विभिन्नता और अस्थिरता देखते हैं जिस से कि यह स्पष्ट हो जाता है कि वह किसी एक कवि या एक काल की रचना नहीं है, वरन् वह भिन्न-भिन्न काल के भिन्न कवियों की रचना है। ऐसी अवस्था में गड़बड़ी और भी बढ़ जाती है, और चंद की रचना यदि उस में कही है तो उस को औरों से छांट कर निकालना असंभव जान पड़ने लगता है। कहीं-कहीं भाषा बिलकुल अपभ्रंश और प्राकृत से मिलती हुई है तो कहीं बहुत कुछ अर्वाचीन सी हो गई है; कहीं व्याकरण आदि की कोइ व्यवस्था नहीं है तो कहीं क्रियाएं और कारक चिह्न-आदि आधुनिक साँचे में ढले दिखते हैं। इन के अतिरिक्त कहीं कहीं इस में स्पष्ट परिवर्तन कालिक भाषा का सच्चा स्वरूप अर्थात् पुरानी या प्रारंभिक हिंदी का वह रूप जिसे हम विक्रम की बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी की भाषा का रूप कह सकते हैं, देखने में आता है। यों तो इस की भाषा में बहुत विभिन्नता है और उस के अनेक प्रकार के नमूने दिखाए जा सकते हैं पर मोटी तौर से तीन मुख्य प्रकार की भाषाएं स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। एक तो वह जो प्राकृत और अपभ्रंश से टक्कर लेती हुई जान पड़ती है और जिस में व्याकरण आदि बहुत अव्यवस्थित और त्रोटक आदि छोटे छंदों में अनुस्वारांत शब्दों की बेतरह भरमार दिखाई पड़ती है। इस के समझने में सर्व-साधारण को बहुत कठिनाइयां पड़ती हैं और रासो का अधिक भाग इसी भाषा में है। उदाहरण देखिए—

(१) **छंद रसावला**

बोल पुच्चै घनं स्वामि जंपे मनं। रोस लग्गो तनंसिंघ मद्द मनं।
छोह मोहं षिनं दांन छुट्ट ननं। ममरजं घनं भ्रंम सातुक्कनं॥
मेलि साह भरं षग्ग षेले रुरं। हिंदू मेछं जुरं मंत जा जंभरं।
दतं कढ्ढे करं उपमा डप्परं। केंद भीलं जुरं कोपि कढ्ढे करं॥

(२) दूसरे प्रकार की भाषा जो उल्लिखित उद्धरण की भाषा से बिलकुल भिन्न है वह बहुत कुछ आधुनिक सांचे में ढली हुई मालूम पड़ती है और आश्चर्य यह है कि अपने को चंद का वर्तमान वंशधर कहनेवाले नानूरामजी इसी को चंद की असली भाषा कहते हैं। उदाहरण देखिए—

चौपाई

एक पहुर में साँवत प्यारे। लोक हजार पाँच तहँ मारे।
ये सांवर पृथ्वीराज पियारे। के ते ईदल सँकर बुहारे॥

तब दल थंभ चंदेल जुहारे। सांवत युगे महल मंझारे।
महलन मध्ये घाव सिवाये। फते-फते कर सांमत आए॥

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों की भाषा का मिलान कर कौन कह सकता है कि दोनों ही पृथ्वीराज के समकालीन किसी एक कवि की रचनाएं हैं ?

(३) एक और मुख्य प्रकार की भाषा जो प्रायः रासो में देखने में आती है और जिस में कृत्रिमता बहुत कम तथा प्राचीन भाषा के वास्तविक लक्षण अधिक मिलते हैं वह उपर्युक्त दोनों से भिन्न है। इस का भी एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

कवित्त

कहै साह हुस्सेन। सुनौ चहु आन जुझ्झ बत।
आज सीस तुम कज्ज। सेन साहब षँडौं षत॥
मो कज्जै साहस्स। करिग पृथिराज सरन भ्रम।
हौं उज डंसू अज्ज। करौं राजन अकथ क्रम॥
जंपै सु राज पृथीराज तब। कहा अचिज्ज जंपौ तुमह।
अप्पौं सुछत्र गज्नन पुरह। सद्धि सेन साहाब गह॥

उपर्युक्त उद्धरण की भाषा में प्राचीन हिंदी के सब लक्षण वर्तमान होते हुए भी यह पहले उद्धरण की भाषा की भाँति प्राकृत या अपभ्रंश की नकल नहीं जान पड़ती। इस में न तो प्राचीनता प्रगट करने के लिए जान बूझ कर अनुस्वारांत अनगढ़ शब्दों की भरमार ही है और न इस में कृत्रिमता ही आने पाई है। हो सकता है यही मौलिक रचना की भाषा हो पर निश्चय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि और बातों के साथ भाषा की विभिन्नता से भी रासो की प्रामाणिकता में व्याघात ही होता है और कुछ इनेगिने विद्वानों को छोड़ कर अधिकांश विद्वान् अब हताश होकर यही कह रहे हैं कि भाषा की दृष्टि से भी वह ग्रंथ अब अन्वेषकों के काम का नहीं रह गया। इस का स्पष्ट कारण यही है कि इस में किसी एक निश्चित काल की रचना न होकर कई शताब्दियों की भिन्न-भिन्न कवियों की रचनाओं का एक गड़बड़ संग्रह हो गया है। दूसरे शब्दों में इस में 'क्षेपक' भाग इतना अधिक हो गया है कि असली ग्रंथ की मौलिक भाषा का अलग करना असंभव हो गया है।

अंत में इस अनुशीलन के बाद प्रत्येक साहित्य और पुरातत्त्व के जिज्ञासु की यही धारणा होगी कि ढाई हजार पृष्ठों के इस विशाल ग्रंथ में सार भाग न्यूनातिन्यून है पर अभी हाल का नानूरामजी का कथन इस निष्कर्ष को प्रत्युत स्थगित कर देता है, अंततः कुछ समय के लिए। उन का कहना है कि चंदने तीन या चार हजार छंदों में ही अपनी रचना समाप्त की थी। उन के पीछे उन के पुत्र जल्हन ने अंतिम दस

समयों को लिख कर ग्रंथ को पूरा किया। वे रासो की असली प्रति का होना भी अपने पास बतलाते हैं। पर वह प्रति अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है और न उस की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं को विधिवत् कुछ अनुशीलन करने का ही अवसर प्राप्त हो सका है। उन्होंने इस प्रति के एक समय की नक़ल महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री को दी थी। पर उस की भाषा को देखने से कुछ अधिक उत्साह नहीं होता। जो हो नानूराम जी ने साहित्यिकों को इस समय त्रिशंकु की अवस्था में डाल दिया है। रासो को पूर्णरूप से तथा निश्चय रूप से अप्रामाणिक या जाली करार देने के पहिले नानूराम जी के कथनों की भलीभाँति परीक्षा कर लेनी होगी। यद्यपि आशा कम है, पर कदाचित् आगे चल कर नानूराम जी की प्रति ही असली रासो सिद्ध हो और फिर सब को अपनी धारणा बदलनी पड़े और इस दृष्टि से प्रस्तुत संग्रह में इस प्रति से कुछ अंश उद्धृत करना अनुचित न होगा। उन्होंने महोबा समय की जो प्रतिलिपि शास्त्री जी को दी थी और वह ज्यों की त्यों नागरी प्रचारिणी पत्रिका के ९ वें भाग में छप चुकी है। यही अंश प्रस्तुत संग्रह में भी ज्यों का त्यों ले लिया गया है।

इस संग्रह का दूसरा अंश पृथ्वीराज रासो का नवां समय (हुसेन कथा) है और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण से लिया गया है। इस अंश की कविता में हमें कृत्रिमता कम और वास्तविक पुरानी हिंदी के लक्षण अपेक्षाकृत अधिक देख पड़े और इस की कथा में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के वैमनस्य के मूल कारण का भी वृत्तांत आ जाता है। कथा का सारांश प्रसंग वश आगे दिया जा चुका है। यह संग्रह काशी की नागरी प्रचारिणी सभा से मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, राधाकृष्णदास, तथा बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित प्रति से किया गया है।

महोबा समय

दुहरा (दोहा)

मौहब राज चंदेल कर । वोहो बलवंत राजाँन ॥
पंचस दिष के प्रचंड । महावीर बलवाँन ॥ १ ॥

मोहबे राज चंदेल किन । घामलां भाग बिसराम लीन ।
आरंभ घावना किया संज । निरमला निरउन भाग भंज ॥
तहाँ देख रूप दरखत अनूप । देखे बिसित सुगंद चूप ।
नौ नौ प्रकास फुलवार रूप । आंख धूँबना देष भूप ॥
मकान रच्यां च्यार घायला पूर । अत्यंत महा बिकराल सूर ।
अतीत राय अदभुत चहुँवाँन । लिंगरि चंड पंडिर नान ॥
तिन पास च्यार षिज मत्त होय । तवि आग बनाई धके जोय ।
तहां भाग मंझ परवेस कीन । सुलताँन मंझ सुगंध लीन ॥
रहियत्त रूखवारो बागवान । देषे साँवत बरजे तमाम ।
उतरो नहीं इत बाग माँहि । चंदेल राय को हुकम नांहि ॥
हम बागवान बर्जत तोय । इन बाग मंझ उतरे न कोय ।
इकहूँ सावँत बोलत बंचन । मो मंती बरज इक रह बरन ॥
मोदी लिथांन प्रथीराज भूप । सिंभरि सिंघ ना मोह दूत ।
मोह सिंह घाव चालत्त राह । उज्जार भाग कौ करां नाह ॥
उतरे जहां बादल अवास । पुकार तोयना राय पास ।
चालत नहीं दिन च्यार हेक । तुम राय जाय बल करीम सेष ॥
तब बागवान उच्चरत बैन । उन दई बान कावल केन ।
परसुनी गाल चहूँवान कैंन । षग तोल सिस मेल्यो भवन ॥
तब चलि मालनि करि पुकार । चंदेल राय राजा मंझार ।
चंदेल राय तोय क्रियाद् । मोय समय मारकिनो विषाद ॥
चंदे राय उचरत अेम । मोहराज भंह कहोक कम केम ।
अैसो जुकू बलवंत सूर । फुरमाय राय बोलब हजूर ॥

कहियत मालनि महरवांन । चहुंवान वंस मैं दिलीथाँन ।
मादल महल में बसे जाय । षिजमत्तदार समुसियत धाय ।।
कर हुँकम राय पठाय दूत । पचिसूरके के हरियकूत ।
चाली सुदूत भागन सद्रोव । जानत एक सावंत भेव ।।
पठे सुजाय बागन मंझार । षिजमत्त धाव साँबत सार ।
ललकार करन पच्चिसताम । सुन उठे च्यार सावंत नाम ।।
धावना पूर अधभुत अपार । छोड़े बिसार षिजमत्तदार ।
कर कोप कन बोले चहुँवान । धिरकार तोय छत्रि प्रवाँन ।।
धादला हबरामिन कन्न । धिक्कार तोय भाता संमन ।
मुज पास आव देहत वीर । जिवत्त जाय तुम जवा भीर ।।
धिक्कार तोय राजन समेत । तोय राय तेय सिर रेत रेत ।
अब आव पास मोय करहु हत्थ । तुम संग किसे छत्रि सुअत्थ ।।
षगतोल बोल चांवड राय । पंडिर राय छत्रि सवाय ।
लिंगरि अंग बोहोत्तरिय धाव । अतित राय संग्राम भाव ।।
सुवच्यार धाव कोपे सवाय । समसेर आँन कर पंझलाय ।
पच्चिस मार पच्चास दिठ । पच्चास मार इक माजरिठ ।
इक सौ मार दोय सौ जुआय । दोय सौ जो मार दस सस्त्र आय ।।
राय संग लोक ग्यारे हजार । पीछले लोक को कौन पार ।
संग्राम मंडेपुर मंझार । सांवत फ़ौज़ पर षाग झार ।।

चौपाई

एक पहुर में सांवत सारे । लोक हजार पाँच तहँ मारे ।
ये सांवत पृथिराज पियारे । केते इंदल संकर बुहारे ।।
मारे लोक हजार अठारा । उमय हूर इक बीस सिंगारा ।
दोउ घरिय पच्चिसूँ पूं गे । धूम ध्यान के चुषट पुग्गे ।।
तापिछ्र तोगच्यार दस मारे । पिछले पहुर पचास सिंगारें ।
तब दल थंभ चंदेल जुहारे । सांवत युगे महल मंझारे ।।
महलन मध्ये धाव सिवाये । फते २ कर सांमत आये ।

कवित (छप्पय)

लूटन नगर मौहबो आँन चहुँवाँन दी रायत ।
मोह चित्त आनंद जित चहुवाँन न पावत ।।
पुलरे चहुवाँन जान करब अरुपडव ।
सिरजीत अप्रबल मारि जिसे नव षडव ।।
घिन सांवत मनुसूर समद से नर पड हंके ।
मझदेश मारवि नाँव सँमर सूँ सूके ।।

चक्रवंत चहुँवाँन तास घर छत्रि इधक नर।
सिष्ट सितसा पुरस भव में राजन् इमस भर॥
मोहौब मझार संग्राम सुध इधक इधक जस जस उच्चर।
साँवत इस प्रथिराजरा भरदाय चंद किरल कर॥

दोहरा (दोहा)

सुनहि बात मातन द्रिगन उपकरत अम्भेर।
मांनू क्रोध में कोप कर कर में कर समसेर॥

छंदजात भुंजगी

सिर कोपियो राय चंदेल भ्रांत। लघुभ्रात किमिर चाले सुराँत।
अस बंस छतीस संग्राम सुरं। महामूष साथे मुगंट हजूरं॥
तहं संग सूरं असुरं अपारं। महाभारथि श्रेम सासूर भारं।
तिहं जात कुल नाम सांवत होई। मह प्रकट नरमिरभ ताल जोई॥
तहं जुद्ध संग्राम सांवत प्रवान। येहि पौह मलिरना कौन ज्यानं।
तिहं मार षग्गं करूं टूक टुक्कं। नहिं औरकं मीर ना नाह ढक्कं॥
अनि क्रोधकं कोप फौजां चालं। जिमि इंद्र घटान सावन कलानं।
अगलान पानि पिछलान कोय। तिहं मन संग्राम भारत्थ जोय॥
तह चलिय मालहे माल डंडे। तहाँ मार बलवाँन किय षंड षंडे।
असि भिद्ध फौज चलाई तहारं। तपे जो मनाजोर सौहाल भारं॥
तिहं मोहोब बान कब्बान कस्ते। षगब्बार तो बार सोभा रसस्ते।
हस्ती घूमते चले फौजान मध्धं। तुरि पीठ पाषर कसे तेग बध्धं॥
यहि विधना फौज सावंत घेरे। तहं लोक महलन को और दौरे।
तिहं राय नोंनम भारत्थ होई। महाभीर बलवान मरिया न सोई॥
महलां मंझ सावंत निचत्त सोही। मानों डरे नासक्त नासं महोही।
तब उच्चरे भने भारत्थ रायं। लघुभ्रात कुँजीत कहां दिस जायं॥
तुजे मार षंगा धरा टूक डारे। मेरे भ्रांत निपंच दससीस सिरे।
असावान जवान भारत्थ उचारे। तुम लोक हजार पचास मारे॥
असा कौन बलवान मोय थान आवे। तुजे धावना भ्रांत भवना सिवावे।
तुज सांमने मुज्ज सों पाव मंडं। तुज मार षंगा करु षंड षंडं॥
ऐसो कौन बलवांन तुम कौन सूरं। तुम किसे ना पास छत्री हजूरं।
बक बोल सांवंत वयने उचारं। मुझ राय चहुँवान नासूर भारं॥
मैहथां नहि दान दिल्ली हजूरी। प्रथी राजरि पास षिजमत पूरि।
तहां षरारे महा बैन बोले। मैहे ता सरूपं षर्ग तोले॥
तब होय सांवंत क्रोधं अपारं। करे तोलवे चंद बेदे त्रिवारं।
पग मेटिये धाव अनवार तेनं। तहां जुद्ध संग्राम नाकोड मंडनं॥

दल सांम हहालिया सूरभिरं । मनु आप संग्राम सांवंत घिरं ।
तिह मार सांवंत अनन्न तोले । हहक्कार हक्कर झक्कार बोले ॥
हले ऊलटे एम सांवंत आरं । तहां मार संग्राम सांवंत जोरं ।
तबे चालिये वांन प्रबाँन बेनं । जिनू सांमैहै च्यार सांवंत मेनं ॥
दले टुक्क टुक्कं तिहां पाग भाटं । तहां चंड पंडिर चाले निहाटं ।
वहे च्यार तरवार एके सीरिसि । इमे राय चहुँवान अतीति सौसि ॥
महा जुद्ध होषै संग्राम सूरं । तहाँ भुंपिये आन आजेक रुरं ।
तहाँ सामिये कौन नामिर ढक्कं । महा भारथि तास कै कंठ सुक्कं ॥
तनंगां आला बहु जुद्ध जियं । बहे फूल धारा मनुं बीज दीपं ।
तां समिय सूर अन्नेक हारे । यना च्यार खर्व बहु लोक मारे ॥
वहे रक्त नाला न दिजे मनिरं । भये जोगनि सट्ठ त्रपत्र त्रमिरं ।
परे सुर गयेंद सानेक वारि । सबे च्यार समसी सन्न्यास मारि ॥
देषे सुरना हाथ भारत्थ राई । तये राय नौ लोक भागे न जाई ।
जिनु मार पग्गां सभे दल्ल ढाई । महा भारथ पूब तरवार वाही ॥
इमे पाछलि भौन भारत्थ जादे । तहां पास संग्राम सावंत ढाढे ।
जिनु मार षग्गां सबे दल्ल ढायौ । अनुजस सामंत चंदेल गायौ ॥

———

अथ हुसेन कथा लिख्यते

(नवां समय)

संभरिनरेश (पृथ्वीराज) और ग़ज़नी के शाह
(शाहबुद्दीन) से केसे बैर हुआ इसका वर्णन ॥

दूहा ॥ संभरिवै चहुँआन कै, अरु गजन वै साह ॥
कहौ आदि किम बैर हुअ, अति उतकंठ कथाह ॥
छं० ॥१॥ रू० ॥१॥ *

शहाबुद्दीन के भाई मीर हुसेन के गुणों और उस की
वीरता की प्रशंसा ॥

कवित्त ॥ बंधव साहि सहाब । मीर हुस्सेन बान धर ।
निज्ज वान सु प्रमान । वान नीसान बधै सूर ॥
गान तान सुज्जान । बाहु अज्जान वान बर ।
भेव राज परवान । उच्च जस थान जुझ्झ भर ॥
उद्दार चित्त दातार अति । तेग एक बंदै विसव ।
संकंत साहि साहाब तिन । तेज अजै जयमंत ग्रब ॥
छं० ॥२॥ रू० ॥२॥

---

[1] पाठांतर—चहुँआन । गजन । साहि ॥

* हमारे पास की सं० १६४७ वाली पुस्तक में इस प्रथम रूपक के नीचे तो इस में लिखा दूसरा रूपक ही लिखा हुआ है परंतु उस के किनारे पर यह दोहा और लिखा हुआ है सो हम को क्षेपक दीखता है ।

दूहा ॥ आंनदिय गंधर्व तब, अहो मुनहि द्रिग जेन ।
अति विथार कथन फथा, विबर कहौ बर बेन ॥

[2] पाठांतर—साहाब । हुसेन । वान । निज । वान । प्रमान । वान नीसान बंधे । गांन । तांन तोन । सुज्जानं सुज्जानं । आजानं । वानं । परमानं । परवानं । उचं । थान । जुझ । उदार । संकेतं । अजे ॥

शहाबुद्दीन की पातुर चित्ररेषा की प्रशंसा, शहाबुद्दीन का उस पर प्रेम, मीर हुसैन का भी उस पर आसक्त होना और चित्र रेषा को भी मीर को चाहना ॥

कवित्त ॥ इष्षि बधु आचार । मीर उमराव जपि जस ॥
एक पात्र साहाब । चित्ररेषा सु नाम तस ॥
रूप रंग रति अंग । गान परमान विचष्षन ॥
बीन जान बाजान । आनि बत्तीसह लच्छन ॥
दस पंच बरष वाचा सुबच । सुप्रसाद साहाब अति ॥
आसक्क तास हुस्सेन हुअ । प्रीति परसपर प्रान गति ॥

छं० ॥३॥ रू० ॥३॥

शाह का यह समाचार सुनकर क्रोध करना ॥

कवित्त ॥ एक सुदिन सुविहांन । साह हुस्सेन सुबुल्लिग ॥
वे काफ़र आतस्स उतँग । दह दिसि नह डुल्लिग ॥
पैसंगी पासंग लष्ष लष्षां नलवाही ॥
सांई सौं संग्राम । हक्कि हैवर गुरदाही ॥
गर्दन गुराव नहि महि मषां । पांषवास अष्षिय घरह ॥
अन हल्ल नाल लभ्भय रवन । करौं तुच्छ तुझ्झी बरह ॥

छं० ॥४॥ रू० ॥४॥

हुसेन का शाह की बात न मानना और शाह को आज्ञा देना कि या तो मेरा राज्य छोड़ दो नहीं मारे जाओगे ।

दूहा ॥ सुनिअ बैन साहाब तब । प्रीत न छुंडी बाम ॥
कोपि कह्यो सुरतान तब । हनौ कि छुंडौ ग्रांम ॥

छं० ॥५॥ रू० ॥५॥

मीर हुसेन का देश छोड़ कर परिवार आदि के साथ नागौर की ओर आना ।

कवित्त ॥ सुनिय बत्त हुस्सेन । सेन अप्पन साधारिय ॥
छुंडि नयर निस्संक । संक मन साह नसारिय ॥

---

३ पाठांतर—इषि । बंध । स नांम । अति अंग । गान । परमान । विचक्षन । जांन बाजांन । आनि । लछुन । लक्षन । आसिक । हुसेन । प्रांन ।

४ पाठांतर—सदिन । हुसेन । आतस । उतंग । पासंगं । लष । लषां सांई । सो । गह । अनहल । लभ्भेय । लभय । तुझीय ।

५ पाठांतर—सुनिग । छुंडिय । बांम । सुरतान । क । ग्रांम ।

निसा जाम इक आदि । लई सो पाच परम गुन ॥
तरुनि पुत्र परिवार । सज्जि सब साज सु अप्पन ॥
परिगह सु अप्प अग्गैं करिय । षांन षांन बंधी सिलह ॥
संचरयौ नैर नागौर इह । तजिय देस निज गंठ ग्रह ॥
छं० ॥६॥ रू० ॥६॥

मीर हुसेन का पृथ्वीराज के यहां आना ।

दोहा ॥ लै परिगह हुस्सेन गय । दिसि प्रथिराज नरिंद ॥
संभरि वै संभारि कैं । मनु आयौ ग्रहदंद ॥
छं० ॥७॥ रू० ॥७॥

मीर हुसेन को आदर के साथ पृथ्वीराज का बुलाना और मीर का आकर सलाम करना ।

कवित्त ॥ पातिसाहि तद्दिन ❀नरिंद । साहि पीरोज प्रसन्नौ ॥
घर घर साहि षरंन । छित्ति नीसान दिवन्नौ ॥
पर पठान उंचीगु । मान अगिवान अगन्नौ ॥
तिन में रष्यौ साहि । आन गज्जन धर थन्नौ ॥
लम्भै सुमीर जंमी जहर । दुनियां दिल लगि दुअन थां ॥
हुस्सेन मीर सल्लाम करि । गौ चहुआनह पास थां ॥
छं० ॥८॥ रू० ॥८ ॥

पृथ्वीराज का शिकार खेलना और मीर हुसेन का सुंदरदास को पृथ्वीराज के पास भेजना ।

कवित्त ॥ पारधि पहु प्रथीराज । रमै षट्टू पुर पासह ॥
वहिल त्रीस चित्रक्क । ससिप रेसम धर रासह ॥
सो कुरंग फंदेत । डोरि बहु बंधि विनानिय ॥
जाम एक दिन आदि । मध्य षेलै मृगयानिय ॥
आयौ बसाहि हुस्सेन तहँ । सुन्यौ राज मृगया समय ॥
बुल्लाय दास सुंदर षित्रिय । पठ्यौ प्रत्ति चहुआन तय ॥
छं० ॥९॥ रू० ॥९॥

---

६ पाठांतर—हुसेन । छंडिय । निसंक । सारीय । जांम । सादिल्लीय पाआ परम गुन । सथि । परगह । बंधिय ।

७ पाठांतर—हुसेन । प्रथीराज । मनो ।

८ पाठांतर—पातसाहि । ❀अधिक पाठ है । नीसांन । पठांन । गुमांन । मांन अँगानौ । अगानौ । मैं । रष्यै । थांनौ । लभै । जु । दुनो । हुसेन सलांम ।

९ पाठांतर—पारिधिरा । पृथीराज । षट्टूपुर । तीस । फंदैत । विनानीय । जांम मधि हुसेन । तहां । बुलाय । सुंदरि । षित्रिया । चहुआंन । रय ।

सुंदर छाया का स्थान देखकर मीर का डेरा डालना।

दोहा ॥ उत्तम ठाम सुछांह जल। करि मुकाम बलवीर ॥
षुलि डेरा बिधि बिधि बरन। तहां बयट्ठौ मीर ॥
छं० ॥१०॥ रू० ॥१०॥

हरम (स्त्रियों) का डेरा पीछे की ओर डाला।

दोहा ॥ डेरा हरम सुपिट्ठ रषि। चिहु पष्षा बर मीर ॥
पासबांन कुल सील सम। पास रष्षि बर नीर ॥
छं० ॥११॥ रू० ॥११॥

सुंदर दास का पृथ्वीराज के पास जाना, पृथ्वीराज का मीर का कुशल समाचार पूछना और उस का सब हाल कहना।

दूहा ॥ सुंदर दास सुपास गय। जहां राज प्रथिराज ॥
मिलिय बिबिधि पुच्छै कुसल ; कहौ मीर सब साज ॥
छं० ॥१२॥ रू० ॥१२॥

मंत्री, कैमास, चद, पुंडीर आदि को बुलाकर पृथ्वीराज का पूछना कि क्या करें क्योंकि दोनों तरह विपत्ति है एक शाह का कोप दूसरे शरण आए को न रखना धर्म विरुद्ध है।

दूहा ॥ बोलि मंत्रि कैमास बर, बोलि चंद पुंडीर ॥
राव पजून प्रसंग नर, गोयँद रा गुन नीर ॥
छं० ॥१३॥ रू० ॥१३॥

दूहा ॥ मेछ मुप देषे न नृपति, विपति परी दुहु क्रंम ॥
इक सरना इक रग्रहन, इक धर रष्पन ध्रंम ॥
छं० ॥१४॥ रू० ॥१४॥

चंद का सलाह देना कि जैसे शरणागत होने पर विष्णु भगवान ने मत्स्य रूप धर कर पृथ्वी को अपनी सींग पर रक्खा था वैसे ही आप भी कीजए।

गाथा ॥ मनसा धारि विरंचं। दच्छिन पग अंगुरी नषयं ॥
संभू मंन नरिंदं। सत जु ' आदि कीन पैदासं ॥
छं० ॥१५॥ रू० ॥१५॥

---

१० पाठांतर—उतिम। षंम। मुकांम। बरवीर। बयठो ॥

११ पाठांतर—पीठि। चिंहु। पषां। पासवांन। शील। रषि।

१२ पाठांतर—यु पास। राजन। पूछै। पूछी।

१३ पाठांतर—मंत्र। पुंरीर। रा पजूंन। गोइंद।

१४ पाठांतर—यक। रषन।

१५ पाठांतर—यह रूपक और इस के आगे वाले १६ और १७ रूपक संवत् १६४७ की प्राचीन पुस्तक में नहीं हैं किन्तु इतर आधुनिक पुस्तकों में हैं।

कवित्त ॥ संभू मन वरदान । लियौ तप जोर ब्रह्म पहि ॥
सरन रष्षि वसुमती । होत कलपंत काल महि ॥
नारद धरत बताइ । मच्छ रूपं जगदीसं ॥
दस हजार जोजनं । शृंग रचि ऊरध सीसं ॥
करि सत्त नाव तिहि पर धरे । अनकंपित जिम गैन धुम्र ॥
ऐसेक चंद कहि पीय सम । गरूम तंन नृप अग्ग हुअ ॥

छं० ॥१६॥ रू० ॥१६॥

जैसे शिवजी गले में विष धारण किए हैं वैसे ही मीर को आप भी रखिए यह चंद ने कहा ।

दोहा ॥ संकर गर विष कंद जिम । बड़वा अगनि समंद ॥
तै रष्षहु चहुआंन तिम । पां हुसेन कहि चंद ॥

छं० ॥१७॥ रू० ॥१७॥

सुंदरदास से पूछना कि सब स्त्रियां तो सुख से हैं और शाह से झगड़ा होने की बात क्या सच है ?

दोहा ॥ मिलिय सु सुंदर दास तहँ । पुच्छिय विधि विधिवत्त ॥
कहौ सुषीत्रिय सब विवर । विरस साहि सौं सत्त ॥

छं० ॥१८॥ रू० ॥१८॥

सुंदरदास का कहना कि हूर की ऐसी एक पातुर शहाबुद्दीन के पास थी उस को लेकर हुसेन यहां चौहान की शरण में आया है ।

दोहा ॥ पात्र एक साहाब संग । हूर नूर गुन गान ।
लै आयो हुस्सेन इत । सरन तक्कि चहुआन ॥

छं ॥१९॥ रू० ॥१९॥

चंद का पृथ्वीराज की प्रशंसा करना कि जैसे मोरध्वज के यहां अर्जुन ब्राह्मण बन कर शरण गया, भगवान ने सिंह बनकर मांस मांगा, शरणागता द्रोपदी का चीर बढ़ाया, वैसे ही तुमने शरणागत को रखकर क्षत्रियधर्म की रक्षा की, तुम्हारे माता पिता धन्य हैं ।

---

१६ पाठांतर—रषि । मछ । अग ।

१७ पाठांतर—ते । रष्षौ । चहुआंन ।

१८ पाठांतर—तहां । पुछिय । सुषि । त्रीय । विसर । सों ।

१९ पाठांतर—संग । गांन । हुसेन तब । तकि । चहुआंन ।

कवित्त ॥ मोरद्धज कै सरन । गयौ दुज होइ सु अर्जुन ॥
सिंह रूप धरि कन्ह । मंस मंग्यौ करि गर्जन ॥
दैन चीर अरधंग । नृपति सिर कर वत धारयौ ॥
देषि महा सतवंत । प्रगट गोविंद उचारयौ ॥
धनि धंनि मात पित धंनि तुअ । सरनागत भ्रम तैं रषिय ॥
षित्री कहंत कविचंद सौं । संभरि बै तिहिसम लषिय ॥
छं० ॥२०॥ रू० ॥२०॥

शाह हुसेन का पृथ्वीराज से मिलना, पृथ्वीराज का आदर देना ।

दोहा ॥ गयो राज सामंत सम । मिलिग साह हूसैन ॥
आदर नृप किन्नो अदब । विवाह प्रसंनिय बैन ॥
छं० ॥२१॥ रू० ॥२१॥

हुसेन को दक्षिण की ओर नागौर की जागीर देना ॥

दोहा ॥ लिए सथ्थ पृथिराज पहुँ । गयौ सुपुर नागौर ॥
धरमायन कारथ धवल । दिसि दच्छिन दिय ठौर ॥
छं० ॥२२॥ रू० ॥२२॥

पृथ्वीराज का हुसेन को घोड़े हाथी आदि देना और दोनों का परस्पर प्रेम बढ़ना ॥

दोहा ॥ भोजन मष्षे विविध वर । बहु आदर विधि कीन ॥
मान महातम रष्पि राज । राज उभय हय दीन ॥
छं० ॥२३॥ रू० ॥२३॥

दोहा ॥ धरिय डोर हुस्सेन सिर । है बंधिय हैसाल ॥
अप्प सुचिन्हिय अवर दिन । रज पट्ठवै रसाल ॥
छं० ॥२४॥ रू० ॥२४॥

---

२० पाठांतर—देन । धंनि धंनि । ध्रंभ । सों ।

नोट २१ पाठांतर—नृप । प्रसंनीय ॥

२२ पाठांतर—सब । पृथीराज । पहुँ ध्रंमाइन कायथ । दछिन । दषन दै ॥

धरमायन कायथ = पृथीराज का दरबार मुंशी था । उस का काम है कि जो जो दरबार में आवें उन को उन की नियत की हुई ठौर पर बैठावें ऐसा बरताब अभी तक राजपूताने में प्रचलित है ।

२३ पाठांतर—भष । मांन । रषि । उभै ।

२४ पाठांतर—धरी । हूसेन । चीन्हे । पठवै ।

कवित्त ॥ तरकस पंच गिरंम । तीन प्रति षगत तीन सह ॥
षुरासान कंमांन । पंच परमान मान जह ॥
गज सुएक सिंह लीय । सेन तन मद्द रत्ति वह ॥
गुंजत मधुप कपोल । गज्ज भज्जै प्रेमल सह ॥
हय पंच साजि साकति सुनग । ऐरा की कुल उच्च जिहि ॥
अंमोल बज्र इक लाल दोय । रिंझ समिप्पय राज सहि ॥
छं० ॥२५॥ रू० ॥२५॥

दूहा ॥ राजन रष्पिय सब्ब इह । प्रनवेऊ प्रति मंत ॥
उभय परस्पर गंठि परि । संचिय पेम सुमंत ॥
छं० ॥२६॥ रू० ॥२७॥

शहाबुद्दीन का चार दूत अजमेर भेजना ॥

दूहा ॥ च्यारि दूत अजमेर पुर । थिर मुक्केसु विहान ॥
आषेटक बन देषि कै । तक्कि गए चहुआन ॥
छं० ॥२७॥ रू० ॥२७॥

पृथ्वीराज को हुसैन को कैंथल, हासी, हिसार का पर्गना देना और शिकार में साथ रखना, यह सब समाचार दूतों का शहाबुद्दीन से कहना ॥

कवित्त ॥ आषेटक चहुआंन । पास हुस्सेन संपत्तौ ॥
बार आइ चहुआंन । भाइ घन ताहि दिषत्तौ ॥
नीति राव कुटवाल । तास ग्रहराज सु अप्पिय ॥
*वर कैंथल हांसि हिंसार । राज पट्टौ दै थप्पिय ॥
इह चरित देषि सब दूत तब । जाइ संपते साहि दर ॥
चरवर चरित जुग्गिनी पुरह । कहिय बत्त से मुष्षंधर ॥
छं० ॥२८॥ रू० ॥२८॥

---

२५ पाठांतर—तोन । षतंग । षुरासांन । कंमांन । पच परमांन मांन जिहि । सिंधलीय । मदरति । गज । भजै । परिमल । उंच जिहि । दुइ । रोज ।

२६ पाठांतर—रषिय । घन ।

२७ पाठांतर—थिह । मुके । मुक्कै । विहान । चहुआंन ॥

२८ पाठांतर—चहुआन । हुसेन । संपत्तौ । आय । भाद्र । दिषंतौ । नीतिराज । कुटवार । * अधिक पाठ है । कैंथल । हांसी । हिंसार । पटो । थपीय । जाय । साहिवर । चवर । चरित । जुग्गिनी । मुष ।

शहाबुद्दीन का क्रोध करना और अरब खां का पृथ्वीराज के पास भेजना कि भला चाहो तो हुसेन को निकाल दो ॥

छं० पद्धरी ॥ संभरिय बत्त साहाब दीन । उच्चरिय बैन अति कोप कीन ॥
मुक्कलौं इत चहुआंन पास । कढ्ढौ हुसेन जीव आस ॥
छं० ॥२९॥

बोलयौ षांन तातार तब्ब । संजाव षांन उमराव सब्ब ॥
पुच्छी सु बत्त किय इतसार । थप्पी सु बत्त षुरसान बार ॥
छं० ॥३०॥

आरब्ब सेप लीनौ बुलाइ । वैब्रद्ध ब्रद्ध बुद्धी सुताइ ॥
वंछै सुपेम एक लेहिं साहि । लज्जी अनंत आदब्ब थाहि ॥
छं० ॥३१॥

उच्चरयौ बैन साहाब भास । आरब्ब जाहु चहुँआंन पास ॥

अरब खां से कहना कि पहिले हुसेन के पास जाना जो वह पातुर को दे दे तो हम क्षमा कर देंगे जो वह गर्व कर के न माने तो पृथ्वीराज के पास जाकर हमारा यह पत्र देकर समझाना ॥

अप्पै जु पात्र हुस्सेन जाम । लै आउ सम्म हुसेन ताम ॥
छं० ॥३२॥

मुक्कों सुगुनह कीनौ पसाव । मैं दीन पच्छ करि षिमा दाव ॥
छंडै न पात्र हुस्सेन अब्ब । चहुआंन मिलै सामंत सब्ब ॥
छं० ॥३३॥

जंपियौ बयन चहुआंन साइ । कट्ठौ हुसेन नागौर थाइ ॥
अज्जीज षांव तुम सच्च उच्च । लिष्यौ सुपत्र हम परम रुच्च ॥
छं० ॥३४॥

कढ्ढौ हुसेन तुम देस अंत । बंच्छो जो पेम मानौं सुमंत ॥
रष्या हुसेन जो असु परेस । चतुरंग सेन सज्जौं विसेस ॥
छं० ॥३५॥

---

२९ पाठांतर—उचरीय । मुकलों । कढौ । हुसेन । जौं । ततारातब । सब । पुछी । कीय । षुरसांन ॥३०॥ आरब शेष । वृद्ध वृद्ध । वुद्धीय । बछै । पिम्म । लैहिं । बज्जी । आदव थाह ॥३१॥ उचरयौ । वेंन । आरब । हुसेन । जांम । संम्म । हुसेन । ताम ॥३२॥ मुक्यौ । में । एछ । हुसेन । अब । सब । अब ॥३३॥ बेंन । षांइ । थाइ । अजीजबान । सच उच । लिषै । रुच ॥३४॥ बछौ । जौ । यु । मानों । रषौ । जौ । तौ । चतुरंग । सजौ ॥३५॥ करौ ।

भंजौं सुनैर नागौर देस । जीवंत बंदि बंधौं नरेस ॥
सामंत सूर सब करौ अंत । बंधौं सुबंध सा तरुनि कंत ॥
छं० ॥३६॥

उच्चरि गुमान तन बत्त थूल । संषेप कहैं मानौं स मूल ॥
तुम जाउ सिघ्र नागौर वाम । मति करौ एक षिन घर विश्राम ॥
छं० ॥३७॥

तीन सौ सवार और रथ देकर अरब खाँ को रवाना करना ॥

सै तीन दीन असवार सथ्थ । आरुहन दीन नरयान रथ्थ ॥

एक महीने में अरब खां का नागौर पहुँचना ॥

संचरयौ सेष आरब्ब राह । दो पष्ष पत्त नागौर थाह ॥
छं० ॥३८॥ रू० ॥२६॥

अरब खाँ से मिलकर हुसेन को समझाना, हुसेन का न मानना ॥

दूहा ॥ गय आरब नागौर धर । मिल्यौ साह हूसेन ॥
भोजन भष्ष सुभाव किय । विवध प्रसन्निय बैंन ॥
छं० ३६ ॥रू०॥ ॥३०॥

दूहा ॥ कही बत्त हुसेन सम । जो कहि साह सहाब ॥
नह मंनिथ सोमंत हिय । दिय आरब जवाब ॥
छं० ॥४०॥ रू० ॥३१॥

अरब खां का पृथ्वीराज के पास जाना ॥

दूहा ॥ गयो सेष आरब्ब दर । लही षवर प्रथिराज ॥
बोलि मझ्झ मंडिय महल । सामंतन सब साज ॥
छं० ॥४१॥ रू० ॥३२॥

पृथ्वीराज से सुलतान का कुशल पूछना

दूहा ॥ मंझ महल आरब्ब गय । मिलि मंनिय सनमान ॥
दै आसन पुच्छिय कुसल । चाहुआंन सुलतान ॥
छं० ॥४२॥ रू० ॥३३॥

---

३६ उच्चरि । गुमांन । कहो । मानों । जाहु । शीघ्र । वांम । करौं विश्रांम ।
३७ सथ । असहनन । नरयान । रथ । आरब । दोय । पष ॥
३० पाठांतर—हुसेन । भष । विवाह । प्रसंन्ने । वेन ॥
३१ पाठांतर—हुसेन । साहाब । नंह । आरब ॥
३२ पाठांतर—आरब । षबरि । पृथीराज । मझ । सांमतां । सम राज ।
३३ पाठांतर—आरब । सनमांन । पुछिय । कुशल । चाहुवांन । सूरतान ।

अरब खां का कहना कि हुसेन खां को निकाल देने के लिए सुलतान ने कहा है ॥

छं० पद्धरी ॥ उच्चर्‌यो बैन आरब्ब सेष। सल्लाम बहुत पति एक एष ॥
कढ्ढौ हुसेन तुम देस अंत। साहाब साहि बंछौ सुमंत ॥
छं० ॥४३॥

जुगमीत अथ्थि उबरै न आदि। इस ताउ भाउ बहु बैन सादि ॥
जंपे सुबैन जे कहे साहि। कढ्ढी न बत्त गंभीर भाहि ॥
छं० ॥४४॥

शहाबुद्दीन का संदेसा सुनकर पृथ्वीराज का मुख लाल हो गया, भौहें चढ़ गईं ॥

संभलिय बत्त पृथ्वीराज मंत। भृकुटी करूर द्रिग रत्त जंत ॥
आरत्त मुष्ष स्तुत श्रोन बुंद। कलमलिय कोप रोमंच जिंद ॥
छं० ॥४५॥

कैमास ने डपट कर कहा कि आर्य लोगों का धर्म सुलतान नहीं जानता इस से ऐसा कहता है हुसेन पृथ्वीराज के शरणागत है क्षत्री का धर्म उसे छोड़ने का नहीं है।

उच्चर्‌यौ कोपि कैमास बानि। अतासनि।आर्य सिंच्यौ सुजानि ॥
आरब्ब बोल बोल्यौ विरुर। सुरतान जानि जंप्यौ गरूर ॥
छं० ॥४६॥

प्रति बुद्ध लहौ पृथिराज नूर। अतुलित जुद्ध सामंत सूर ॥
हुस्सेन आइ पृथिराज थान। जोधांन ध्रंम षत्रीय आन ॥
छं० ॥४७॥

कन्ह चौहान, सूरसिंह, गोयंदराज, चंद, पुंडीर आदि का भी यही कहना और सुलतान से लड़ने को हम प्रस्तुत है यह कहना।

जंपै सुबैन चहुआंन कन्ह। द्रिग पानि रत्त रोमंच तंन ॥
रज ध्रंम विषम बुझ्झैन न साह। अनि राह जेम जपै विराह ॥
छं० ॥४८॥

---

४३ युगमीत। अथि। उबरें। वेंन। जंपै। कहै। भाह। नाह।
४४ तथ्य। तथ। पृथिराज। भृकटी। आरक्त। मुष्य। श्रत्ति। कलि।
४५ उचरयौ। बानि। आरज्य। संच्यौ। जांन। आरब। सुरतान। जानि।
४६ पृथीराज। अतुलित। युद्ध। हुसेन। थांन। जोधांन। षित्रीय। आंन।
४७ जंपै। चहुआन। बुझै।
४८ गर्जे। कोपें। मृगेंद्र। उतकृष्ट। नरिंन्द्र। तजि। जषि। गोंयद। बेंन।

गज्जैं न लज्ज कोपैं मृगिंद्र । उतकिष्ट सूर सिर सहि न निंद्र ॥
गुरु तज्जि जंप्पि गोइंदराज । लग बैन गीर गरु बत्त साज ॥
छं० ॥४६॥

संज्वाल तेज सम तेज बान । निरभै सुतासु चंपै पयान ॥
उचर्‌यौ चंद पुंडीर कोप । आदीत भाल रस दून ओप ॥
छं० ॥५०॥

गज्जनौ कौंन केतुक सहाब । गरु अत्त बत्त जंपै कहाब ॥
हुस्सेन आइ पृथीराज थान । सरनै सुकौन कढ्ढै नियान ॥
छं० ॥५१॥

दल सज्जि सीम चम्पै सुसाहि । दल भंजि ग्रहै पृथीराज ताहि ॥

अरब खां का अपना निरादर होता देख उठ आना और ग़ज़नी का कूच करना तथा शहाबुद्दीन से सब समाचार कहना ।

मानी न सेष आरब्ब बत्त । सामंत सूर देषे विरत्त ॥
छं० ॥५२॥

आदरह मंद तजि उठ्यौ सेष । झंपौर बदन द्रिग बढ्ढि तेष ॥
पुच्छीय जुगति नृप महल जानि । उठि गर्व दुष्ष मन हीन मानि ॥
छं० ॥५३॥

चढ़ि चल्यौ सेप रह साह देस । गज्जनैं गयौ मन मानि रेस ॥
गय महल साहि मिलि कहिय बत्त । सिर धूनि रीस करि नैन रत्त ॥
छं० ॥५४॥

उठि गयौ साह बद्दल महल्ल । आसंन साजि बैठों सथल्ल ॥
छं० ॥५५॥ रू० ३४॥

दर्बार कर के ये शहाबुद्दीन का तातार खां, अरब खां, मीर ज़माम, कमाम, ख़ुरासा खां, रहन महन खां, रुस्तम खां, हाजी खां, ग़ाजी खां, जम्मन खां, ग़ज़नी खां, मुहब्बत खां, मीर खां आदि सरदारों को बुला कर सलाह करना ॥

---

४६ तेजवांन । निरभैं । सतास । पयान । उचर्‌यौ । ऊप ।
५० गजनौ । केतक । जंपे । हुसेन । पृथीराज । थान । कोंन । नियान ।
५१ सजि । सीस । पृथीराज । मांनी । आरब । शेष । विरत्त । पुछिय । नप । जांनि । दुष । मांनि ।
५२ गजनैं । मानि । धुनि । नैंन ।
५३ महल । सुथल ।

कवित्त ॥ सजि आसन साहाब । साह काजी मत बैठो ॥
बोलि मभ्भ तत्तार । बोलि आरब दिन जेठौ ॥
मीर जमांम कमांम । षांन षुरसांन न्यान बर ॥
षांन रहंन महंनं । षांन रुस्तंम महा भर ॥
हाजीय षांन गाजीय षां । षांन जमन बंधब सुत्रिय ॥
गजनीय षांन महुबत्ति षां । मीर खान सबबोलि लिय ॥
छं० ५६ ॥ रू० ॥ ३५ ॥

तातार खां का कहना कि तुरंत पृथ्वीराज पर चढ़ाई करनी चाहिए ॥

कवित्त ॥ कहै साहि साहाब । अहो तत्तार षांन सुनि ॥
जिन जुमत्ति उपज्जै । कहौ सब षांन जानि मन ॥
गौ आरब चहुँआन । फेरि आयौ सु सुनिय सब ॥
सरन रषि हुस्सेन । बोलि सामंत राज अब ॥
जंपिय ततार संजो सयन । हनौ राज पृथिराज रन ॥
है गै सुबंध बंधौ रिनह । मेरे कि गहि छुट्टै सुतन ॥
छं० ५० ॥ रू० ॥ ३६ ॥

खुरासान खां का तातार खां से कहना कि उस के बल को भी विचार लो जल्दी न करो ॥

दूहा ॥ कहैं षांन सुरषांन तब । अहो षांन तत्तार ॥
चाहुआंन सामंत बल । चिंत सुविविध विचार ॥
छं० ५८ ॥ रू० ॥ ३७ ॥

अरब खां का कहना कि उस का बल अतुल है तुम लोगों ने देखा नहीं है इस से ऐसा कहते हो ॥

दूहा ॥ कहै सेष आरब अतुल । बल सामंत नरिंद ॥
अवे न तुम दिष्यिय नयन । सजो सैन बिन बंध ॥
छं० ॥ ५६ ॥ रू० ॥ ३८ ॥

---

३५ पाठांतर—बोल । मभ्भ । जिठौ । जमांम । कमांम । पुरसांन । म्यांन । महंनं ॥

३६ पाठांतर—मति । उपजै । जानि । चहुआंन । स सुनिय । हुसेन । सजौ । हनौ । भरैं ।

३७ पाठांतर—कहैं । चित्त सुबुद्धि विचार ।

३८ पाठांतर—बे । शेष । दिषिय ।

शाह का बल पराक्रम का हाल पूछना ॥

दूहा ॥ कहै साहि आरब्ब तुम । कहौ सूर सामंत ॥
कहा क्रांति प्राक्रम कहा । सत्ति पयं पहुँ तंत ॥
छं० ६० ॥ रू० ॥ ३९ ॥

अरब खां का पृथीराज के बल की प्रशंसा करना ॥

कवित्त ॥ इष्ट मंत्र उच्चार । दिष्ट उट्ठ हित इक्क थर ॥
क्रमत पेषि पच्चीस । मिलत सत एक इष्षि पर ॥
सहस सुभर बाहंत । एक सामंत पराक्रम ॥
जामह दुप्पल कटै । ताम बाधंत बीर दस ॥
सिर परै सुहक्के धर भिरै । परैं श्रोन उठै सधर ॥
असिधार सूर उट्ठैं किलकि । एह पराक्रम सूर नर ॥
छं० ॥ ६१ ॥ रू० ॥ ४० ॥

तातार खां का अरब खां की बात को हँसी में उड़ा देना, अरब खां का कहना कि अपनी आँख से न देखने से ऐसा कहते हो ॥

कवित्त ॥ हस्यो षान तातार । एम हाजी सब बद्दिय ॥
जय रु नहीं बिन बषत । मरन भै डरै न कद्दिय ॥
कहि आरब्ब तत्तार । अहो सामंत न दिष्षिय ॥
अतुल तेज बल अतुल । अतुल बलदेव सुरष्षिय ॥
वे साम ध्रंम रत्ते अतुल । अतुल मत्त कैमास भर ॥
उमरा अनंत देषे अनत । अतुल बत्त पहुँचे न नर ॥
छं० ॥ ६२ ॥ रू० ॥ ४१ ॥

शाह का क्रोध कर के तातार खां को चढ़ाई के लिए प्रस्तुत होने की आज्ञा देना ॥

दूहा ॥ कहै साहि गोरी गरुअ । अहो षांन तत्तार ॥
कल्ह तरीक सुउज्ज दिन । चढ़ि अरि सद्धौ सार ॥
छं० ॥ ६३ ॥ रू० ॥ ४२ ॥

---

३९ पाठांतर—आरब । तुब । क्रांति । सत्य ।
४० पाठांतर—उचार । उठ । इक । पचीस । इषि । दुपल । तांम । परे । सुहकै । उठै । ऊठें ।
४१ पाठांतर—ततार । वदिय । भय । कद्दिय । काहि । दिषिय । रषिय । सांम । उमरा । अनंत ।
४२ पाठांतर—काल्हि । तेरकि सुं । सधौ ।

दूहा ॥ उठि गोरी दिन्ने बहुरि। गयौ सुअंदर साह ॥
बहुरि षान मीरं बरा। अति चंचल तुर ताह ॥
छं० ॥ ६४ ॥ रू० ॥ ४३ ॥

शाह के जी में रात-दिन चौहान की चिंता लगी रहना।

दूहा ॥ तपै साहि गोरी सबर। चित सालै चहुआंन ॥
बैरोचन की सांप ज्यौं। कीटी भ्रंग प्रमान ॥
छं० ॥ ६५ ॥ रू० ॥ ४४ ॥

अरिल्ल ॥ जग्गत निषि झंपत सुरतानह। घरी सत्त रहि सेष प्रमानह ॥
जगि आयस दिय दीन निसानह। चिंता साहि चढ़ी चहुआनह ॥
छं० ॥ ६६ ॥ रू० ॥ ४५ ॥

सेना के साथ शाह का चढ़ाई के लिए तयार होना ॥

छं० मोती दांम ॥ भर सुर तीन धुनक निसान। चढ्यौ अश्व सजि सिल्है सुरतान ॥
चढ़े सब षांनसु उम्मर मीर। सजे सहनाइ बजे रस बीर ॥
छं० ॥ ६७ ॥

बजे सब बाज भयानक भाइ। चितै हिय बुद्धि जिने जन नाइ ॥
चढ्यो सब सज्जिय सेन गरिष्ट। परी दस दिग्ग सुधूधरि दिष्ट ॥
छं० ॥ ६८ ॥

अशकुन होना

सबद्द सियांन सुसेन कपोत। सनमुष साहि दिष्यौ दल दोत ॥
भयौ दिसि वामिय कग्ग करार। रुक्यो दिवि धोमय धूम गभार ॥
छं० ॥ ६९ ॥

सनमुख देषिय जंबुक सेन। विरो मिलि चंपहि भग्गहि तेन ॥
क्रमें तस उप्पर गिद्ध असंष। चवै सुर रुद्र पसारिय पंष ॥
छं० ॥ ७० ॥

---

४३ पाठांतर—दिनं।

४४ पाठांतर—चहुआंन। भृंग। प्रमांन

४५ पाठांतर—जगत। जषंत। सुरतांनह सत्त। रही। प्रमांनह। निसांनह। चहुआंनह।

४६ पाठांतर—मोतीदांम। निसान। साजि। सिल्हे। सुरतांन ॥

६७ पाठांतर—सजे। चिते। जिनें। सजिय। गरिट्ठ। दिघ्घ। घुंघरी। दिठ।

६८ सिचान। वांमीय।

६९ उपर। पसारीय।

७० सुरतांन। रहो। कहु। कहौ। आज। गही चल मंमहु चढ़ि सं गुन।

अरब खां का कहना कि आज ठहर जाइए शकुन अच्छा नहीं है ॥

गही सुरतान सु आरब बग्ग । रहौ दिन आज संगुन न जग्ग ॥
रहै कुहु अज्ज ततार सुदिन्न । गही चढ़ि चल्लहु मन्नि सगुन्न ॥
छं० ॥ ७१ ॥

सुलतान का कहना कि काफ़िर चौहान को जीतना कौन बड़ी बात है जो इतना विचार करते हो ॥

कहै सरतान अहो तुम क्रूर । भयै भय मृत्यु सु झंषहु नूर ॥
कहा बल युद्ध कहौ पृथिराज । कितौ बल सामत युद्धिह साज ॥
छं० ॥ ७२ ॥*

हनौ रन सूर जिके चहुआंन । गहौ युद्ध राज सुषंडिय प्रान ॥
कहा डर काफ़र दासहु मुझ्झ । कहा भर आवध आगरि जुज्झ ॥
छं० ॥ ७३ ॥*

नंमनि चंमकि चढ्यो सुरतान । टमंकिय गज्जिय नद्द निसान ॥
जल थ्थल होय थल जल भार । अमग्गह मग्ग चलै गहि लार ॥
छं० ॥ ७४ ॥

मिल्यो इक साहन लष्ष समुंद । समुझ्झिन कंन भयो सुर मुंद ॥
चल्यो सुरतान मिलान-मिलान । बढ़ी अति चिंत दुनी चहुआंन ॥
छं० ॥ ७५ ॥ रू० ॥ ४६ ॥

शाह का चौहान की ओर जाना और दूतों का यह समाचार नागौर में हुसेन को देना ॥

दूहा ॥ गयौ साहि चहुँआन घर । दिय मिलानमिलान ॥
गए सुचर नागौर पुर । कही षबरि सुरतान ॥
छं० ॥ ७६ ॥ रू० ॥ ४७ ॥

पृथ्वीराज को चढ़ाई का समाचार सुनकर सरदारों को बुला कर सिंध तक शाह के पहुँचने का हाल कहना ॥

---

७१ भयैं भये । पृथीराज । वलु । सामंत ।
७२ हनौ । चहुआंन । गहो । मुझ । जुझ ।
७३ चल्यो । सुरतान । गजिय । निसांन । जंल थल हूअ थलं जल चार ।
७४ लष । समुझि । सुरतांन । मिलांन २ । चहुवांन ।
* यह ७२ और ७३ दो छंद सं० १८४० वाली पुरानी पुस्तक में नहीं किंतु इतर में है ।
४७ पाठांतर—चहुवांन । घर । दिये । मिलांन २ । सुंचर । सुरतांन ॥

कवित्त ॥ सुनिय षबरि पृथिराज । कहिय जे चरन चरित सह ॥
बोलि मंत्रि कयमास । चामंड गुम्भ गह ॥
बोलि चंद पुंडरि । बोलि षींची प्रसंग बर ॥
बोलि गज्जि गहि लौत । बोलि का कन्ह नाह नर ॥
बोलेति सब्ब सामंत भर । कही बत्त सो कहिय, चर ॥
सामंत मंत भर सब्ब मिलि । सिंधु सुचंपिय साह घर ॥
छं० ॥ ७७ ॥ रू० ॥ ४८ ॥

लड़ने के लिए प्रस्तुत होने का सब का मत होना ॥

दूहा ॥ कहत सब्ब सामंत मति । चढ़ि दल सजौ समंकि ॥
सुनिव मंत्रि कयमास कहि । करहु निसांन टमंकि ॥
छं० ॥ ७८ ॥ रू० ॥ ४६ ॥

युद्ध की तयारी

गाथा ॥ भय टामंक निसानं । पत्तं निज ग्रेह सूर सामंतं ॥
बाजे बज्जि अनेकं । हय मंगे राज चहुआंन ॥
छं० ॥ ७६ ॥ रू० ॥ ५० ॥

गुरुराम ब्राह्मण का आकर आशीर्वाद देना, बहुत कुछ दान करना और वेद मंत्र से तिलक करना ॥

छं० पद्धरी ॥ आये सुताम गुर राम राज । पढ़ि पत्र मंत्र दुज बोलि साज ॥
ग्रह नव सुदान विधि विद्ध दीन । बेदंत विप्र अभिषेक कीन ॥
छं० ॥ ८० ॥
चव सहस हेम दिय विप्र दान । अस्सेष वेद त्रय साम गान ॥
दिय दान भूरि पंषी सुचंड । दीनौ मुअथ्थ जिन हथ्थ मंडि ॥
छं० ॥ ८१ ॥
जै जया जीह जंपी सु आन । मंगल सवार चव पट्ठि गान ॥
आसिष्ष वयन चहुआंन रान । गुरु राम जज्जि आहुत्त आन ॥
छं० ॥ ८२ ॥

---

४८ पाठांतर—प्रथीराज । चरनि । कैमास । झुम्झ । ग्रह । षीचि गजि । सब । मिल्लि ॥

४९ पाठांतर—सुनै । मंत्र । कैमास । करहु । निसांन ।

५० पाठांतर—पंत । गेह । सामंत । चहुआंनं ।

५१ पाठांतर—राम । दांन ॥

८० थांन । असेष । सांम । गांम । दान । सचंड । (अथ) हाथ । जयप आंन । पढि । गान । आशिष । बेन । चहुवांन । रांम जजि । ध्रांन ॥

८२ हनमंत । चास । चकोर । आंनि । जांनि । वांनि । दरस्स । दरस चिंत ।

दिय तिलक पत्र पढ़ि वेद मंत्र। आरोपि कंठ इन मंत्र जंत्र ॥
कज दरस वाम चकोर आनि। कब्बूत जानि जंपै सुबानि ॥
छं० ॥ ८३ ॥

षंजन सिषंड किय दरसि दिस्स। आदरस दिष्षिकिय असि परस्स ॥
चिंत्यै सुचित्त जपि उमय कंत। मंग्यौ सुहंस हय तेजवंत ॥
छं० ॥ ८४ ॥

षिची सु जाति जोवंनपुर। बंच्यो कि मनौ नृप रथ्थ सूर ॥

भगवान का स्मरण कर यात्रा करना ॥

साकत्ति सब्ब सज्जी सु बानि। धरि और हेम नृप अग्ग आनि ॥
छं० ॥ ८५ ॥

चंपै सु चढ्यौ नृप वाम पास। जै जया सद्द आयास भास ॥
चढि चल्यौ बंधि आवद्ध राज। समंत सब्ब चढि सूछ साज ॥
छं० ॥ ८६ ॥

नीसान ताम बज्जे सु घाव। आकास धरा फुट्टे निहाव ॥
संबत तीस अरु पंच माघ। तेरस्स सेत सुभ जोगि साध ॥
छं० ॥ ८७ ॥[1]

हुसेन का भी अपनी सेना के साथ पृथ्वीराज से आ मिलना ॥

सजि सथ्थ चढ्यौ हुस्सेन सेन। बंधे स तोन भर मीर ऐन ॥
हुस्सेन सथ्थ मिलि सहस एक। उर सामि ध्रंम बंधें सुतेक ॥
छं० ॥ ८८ ॥

---

८४ षंच्यौं। मुचि। मनों। रथ। हांकत। सब। सजी। वांनी। ओर। आंनि।

[1] नोट इस ४१ रू० के छंद ८७ के दूसरे पद में इस हुसेन और चित्र रेखा विषयक शहाबुद्दीन की चढ़ाई का मुक़ाबिला करने को जाने पर सनद अर्थात् पृथ्वीराज का तीसरा शाक ११३५ माघ शुक्ला १३ शुभ योग कहा है वह जैसे कि अब तक इस महाकाव्य में आए हुए सब सनन्द अर्थात् प्रचलित विक्रमी संवत् से आदि पर्व के रूपक ३५५। में कहे अंतर वर्ष ९०। ९१ के जोड़ने से मिल जाते हैं वैसे मिल जाता है-११३५ × ९०। ९१-१२२५। २६ ॥

९५ स चढ्यौ। सबद। आउद्ध। सब। कुछ ॥
९६ नीसांन। तांम। बजै। स्वेत ॥
९७ सजि सथ। संपत्त हुसेन। सेन। सतोन। एन हुसेन। सथ सांमि। बंधें ॥
८८ पृथीराज आय किनौ। सलाम। अदब। तांम। बजे। बज्जप।

पृथीराज आई किन्नौ सलाम। आदर अदब्ब दिय राज ताम ॥
मिलि चल्यौ सेन भर तेजवंत। बज्जे सुबज्ज जय हेमवंत ॥
छं० ॥ ८६ ॥

दस क स पर डेरा देना ॥

दस कोस जाइ दिन्नौ मेलान। डेरा सुदीन जल सुम्भ थान ॥
छं० ॥ ९० ॥ रू० ॥ ९१ ॥

दूतों का सुलतान को पृथ्वीराज के चढ़ आने का समाचार देना ॥

दूहा ॥ देखि चरित नृप साह चर। गए पास सुरतान ॥
कहै सेन संमुष रजै। चढि आयौ चहुआंन ॥
छं० ॥ ९१ ॥ रू० ॥ ५२ ॥

सुलतान का चढ़ाई के लिए धूम धाम से चलना ॥

दूहा ॥ सुनि चरित्त साहाब चर। दिय निरघोष निशान ॥
चढ्यौ सेन सज्जे सिलह। करिब फौज सुरतान ॥
छं० ॥ ९२ ॥ रू० ॥ ५३ ॥

सुलतान की चढ़ाई का वर्णन ॥

छंद मोतीदाम ॥ चढ्यौ सुरतान सुसज्जिय फ़ौज। बजे बर बज्जन बीर असोज ॥
भयौ गज घुंमर घंट निघोर। मनौं झुकि क्रंन्न भयौ सुह रोर ॥
छं० ॥ ९३ ॥

गर्जै गज मद्द मनौं घन भद्द। चिकार फिकार भये सुर रुद्द ॥
तुरंग महींस कड्डुक लगांम। खरक्किय पष्षर तोन सुंतान ॥
छं० ॥ ९४ ॥[1]

चमंकत तेज सनाह सनाह। करै धर पद्धर राह बिराह ॥
झलक्कत टोप सुटोप उतंग। मनौं रज जोति उद्योत बिहंग ॥
छं० ॥ ९५ ॥

---

८६ किनों मिलांन। शुभ थानं। थांनां। ५२ पठांतर—सुरतान। कहै। चहुवांन ॥

[1] यह पद Canfield Miss. में नहीं है।

५४ पाठांतर—मोत दांम। सुरतान। जुसजिव। वजन घंटन। कंच।

९३ गर्जें। मनों। भद। रद्द। रुद। सकर फल। षरक्किय। पषर। सतांम।

९४* यह तुक ए० सो० की प्रति में नहीं है। कहैं। झलकत। मनों। रजि।

९५ कमांन २। मान। खषें। जतिन। गति।

दमंकत तेज कमान कमान । चितं चित मीर रही मइमान ॥
भले भर सांइय भ्रंम सगत्ति । लषैं धर जीयन जात्तिन गत्ति ॥
छं० ॥ ९६ ॥

नमैं निज सांइय पंच बषत्त । सिपारह तीस पढै दिन रत्त ॥
नमैं निज सेष धरंम सरंम । क्रमैं रह रीति कुरान करंम ॥
छं० ॥ ९७ ॥

दिढंबर बाचरु काछह मीर । तरुनिय एक रतैं बर बीर ॥
सबद्दय बेध करैं तम तांह । ममंतिय पंषि हनैं छित छांह ॥
छं० ॥ ९८ ॥

धरै इक एक अनेक सुवान । झलक्कत मुंड तबल्लह मान ॥
धरैं धर नाहिय स्याहिय सीस । सिरक्कहि बंबर धुंमर दीस ॥
छं० ॥ ९९ ॥

अनेक सुवान अनेक रंग । चढ़े सब मीरह सेन अभंग ॥
अनेक सुवान अनेकय ब्रंन । समुझ्झि न हीय समुझ्झिन क्रंन ॥
छं० ॥ १०० ॥

पयं भर अग्ग अनेकह सुभार । अनेक सुजाति अनेक सुतार ॥
सिरंकिय मुंडिय मुंड सु अद्ध । जुवट्टिय उट्टिय जानि अनद्ध ॥
छं० ॥ १०१ ॥

करंतिय झंडिय रंग अनेक । फुरक्कहि झंषहि झंषह तेग ॥
चले धर बान सुसद्धिय दिठ्ठ । अगें हथ नारि अभूल गरिठ्ठ ॥
छं० ॥ १०२ ॥

अगें किय मद्द सरक्क सुभार । मनौं पय चल्लत पब्बत लार ॥
ढलैं सिर ढाल अनेक सुरंग । फरैं फर हारि उभारिय अंग ॥
छं ॥ १०३ ॥

---

९६ वषत । पढै । रत । नमै । जिन । कुरांन । तरुनीय । रतें । सबदया । करं । तांह । भ्रंमतिय । धरें सवांन । झलकत तबलह । मांन । धरें । इक । धरनाहीय । शीस । कहि । घुंघर ॥

९९ बांन । अनेक सु । सेयन मीर । बांन । बृन्न । समुझि ।

१०१ हढ़िढय । फरकहि । झंषय । बांन । सधिय ॥

१०२ मद । सरक । मानों । पग । चलत । पबत । ढलै ॥

१०३ मनो । रित । अनंगय । ढबरे । रेपणु । सेनु ॥

बरनह झंडय मंडय जूव। मनौं षट रिति अनंगह रुव ॥
भई षुर डंबर अंबर रैंन। जलं थल पद्धरि संक्रमि सेन ॥
छं० ॥ १०४ ॥ रू० ॥ ५४ ॥

सारुंड अचलपुर में सुलतान का डेरा डालना।

दूहा ॥ जथ्थ तथ्थ संक्रमि सयन । उंच थान जल थांन ॥
दिय सारुडंप अचल पुर। किय मुकाम सुरतान ॥
छं० ॥ १०५ ॥ रू० ॥ ५५ ॥

कैमास का यह समाचार घड़ी रात रहे पृथ्वीराज को देना ॥

दूहा ॥ घरी सुनव निसि सेष चर। आय पास चहुआंन ॥
गये पास कैमास जपि। चरित सब्ब सुरतान ॥
छं० ॥ १०६ ॥ रू० ॥ ५६ ॥

अरिल्ल ॥ जगि मंत्री कैमास महाभर। गंठिय चित्त चरित्त कहिय बर ॥
जग्गिय सथ्थ सज्ज निस सेनं। गयो राज यह सज्जि द्रुगेनं ॥
छं० ॥ १०७ ॥ रू० ॥ ५७ ॥

पृथ्वीराज का उसी समय चढ़ाई करने के तयार होना ॥

गाथा ॥ जग्गिय नृप चहुवानं। कहियं कैमास सज्जि सुरतानं ॥
बज्जि निहाय निसानं। सजि बंधि सेन सुरतानं ॥
छं० ॥ १०८ ॥ रू ॥ ५८ ॥

चढ़ाई की तयारी, भगवत स्मरण तथा दान देना ॥

छंद त्रिभंगी ॥ सयंन सब्बानं, किय सज्जानं, बज्जि नीहानं, नीसानं ॥
बंधे सिलहानं, निज, निज थानं, पष्षरि पानं, असगानं ॥
निजकिय तं न्हानं, दीन सुदानं, सेव समानं हंसानं ॥
मंने ब्रिप्पानं, चंडी सानं आसिष्षानं जंपानं ॥
छं० ॥१०९॥

---

५५ पाठांतर-जथ। थांन। जलथांन। सारुंडे। मुकाम। सुरतांन ॥
५६ पाठांतर-निशि। सेवचर। आइ। चहुवांन सब। सुरतांन ॥
५७ पाठांतर-गढीय। गंठीय। कहीय। नेनं। सजि ॥
५८ पाठांतर—चहुवांनं। सुरतांनं। सज्जी कै बोध सेन सुरतांनं। सज्जि कै बांध केन सुर तांनं। सजि कै बोध ॥
५९ पाठांतर—सवानं। कीय। सजानं बजि। थांनं पषरि। अस षांनं। तन्हानं। ईसानं इसांन। बिपानं निजपानं ॥
१०९ तुरसी सिह मंजरि चक्र तनं जरि कर जुग्र अंजुरि। हरिचरनं। सल। सिवं। जुझारं मौज। हलं। बगत्तरि। कसिढ रं। है। पषर। मुषराजं।

तुलसी तिन मंजरि, चक्र तन धरि हरि चरनां चारि जल सारं ॥
गिलकी सत कंतरि, कृष्ण उरं धरि सांज सबं करि जूझारं ॥
मौजह हलहं धरि, राग तंब्र परि, सज्जि बंग तरि, करि ढारं ॥
मंगै हय राजं, साकति साजं, पष्परि भ्राजं सुष राजं ॥
छं० ॥ ११० ॥

हिंदू अंदाजं, तेज महाजं, कीरति काजं, कुलराजं ॥
नामं जा हंसं, उत्तिम बंसं, पुर गिरि जंसं रजिमंसं ॥
पडुदिय आएसं, सेव नेरसं, कस्सेतं सं, उत्तंसं ॥
चढ्ढयौ चहुवानं, मंगे जानं, पै वामानं चंपानं ॥
छं० ॥ १११ ॥

चिंते चितानं, चित्त सुभानं, जग्ग इसानं ईसानं ॥
छं० ॥ ११२ ॥ रू० ॥ ५६ ॥

पृथ्वीराज का सवार होना ॥

कवित्त ॥ चितं ईस चहुआन । चढ्यौ हय सज्जि सु आवध ॥
बोलि सूर सामंत । बान सज्जे सुबान जुध ॥
जय हर ! जंपे राज । चल्यौ थप्परि है कंधं ॥
जै मन्निय है राव । करी कसि मुष ऊरद्धं ॥
षुदंत धरा षुर षुर विहर । करिय लोह दंतै क्रसक ॥
नाचंत तेन पैरव सुथल । धरनि ध्यंम धुज्जिय धसकि ॥
छं० ॥ ११३ ॥ रू० ॥ ६० ॥

पृथ्वीराज का मीर हुसेन के डेरे में आना, मीर हुसेन का अपने साथियों-के साथ तयार होकर पृथ्वीराज को सलाम करना ॥

कवित्त ॥ गयौ राज चहुआंन । साह डेरा हुस्सेनह ॥
सुनी षबरि बर बीर । सज्जि आयौ सथ्थैं सह ॥
करि गोसल्ल पवित्र । होइ चिंते रहमानं ॥
बंधि सिलह है मंगि । बीर बज्जे नीसानं ॥
चढ़ि वाह सज्जि सथ्थिय सयन । सीस नम्मि सलमां किय ॥
देषे सुबीर विकसे सुमना । बर सनमान अतिंत किय ॥
छं० ॥ ११४ ॥ रू० ॥ ६१ ॥

---

११० सदाजं उतिम । केस तंमं । उतंसं । चढ्यौ । चढियौ पैवामंनं ॥
१११ जग । सानं । इसानं ।
६० पाठांतर है । सजि । सूद सडबान । संबान । जुद्ध । जै । हय । मंत्री । उरधं । करिय । दंत लोहैं । पयरव । धरनि ताम । धुजिय ।
६१ पाठांतर—चहुवांन । हुसेनह । सजि । सथें । चिल्यौ । बजे निसांनं । सज । सथी । नांमि । सलांग । सनमांन । अतित ॥

पृथ्वीराज और मीरहुसेन के मिलकर चलने का वर्णन ॥

छंद गीता मालची ॥ चढ़ि चल्यो राजं सेन साजं, बीर बाजं बज्जए ॥
नद्दं निसानं सजे बानं, गोम गानं गज्जए ॥
फौजें हलक्की बीर बक्की । सूर जक्की जंभरं ॥
बिरदैत बीरं जुद्ध धीरं । आय भीरं धर धरं ॥
छं० ॥ ११५ ॥

असमंस हासं सांइ आसं, उच्च भासं अज्जरं ॥
लीकं सुबच्छं सुद्ध कच्छं, हूअ गच्छं धीढरं ॥
सजि वान पथ्थं दंत अथ्थं । राज सथ्थं संमिलं ॥
चल्लै सबल्लं, ढाल ढल्लं गज्ज मल्लं झुम्झिझयं ॥
छं० ॥११६ ॥

घंटा सुघोरं भेरिरोहं, तयं तोमं सद्दयं ॥
संषं सबद्दं नीर मद्दं, सूरं नद्दं बद्दयं ॥
धर पाइ धक्की है षुरक्की, गैग हक्की पष्षरं ॥
उड्डी सुरेनं मुंदि गेनं, आइ सेनं सद्धरं ॥
छं० ॥ ११७ ॥

गिद्धी सुतथ्थं, चली संथ्थं सीस रथ्थं अच्छुरं ॥
निरषैं सुवीरं निज्ज नीरं, अस्स हीरं मच्छुरं ॥
पुट्टैं समीरं बहि सधीरं, साइ भीहं संभरं ॥
सेनं सहस्सं तेय दस्सं, झुम्झूझं जस्सं धिद्धरं ॥
छं० ॥ ११८ ॥

नारद्द नद्दं बीर बद्दं, गोम सद्दं तद्दयं ॥
सामंत सूरं चढे नूरं, जुद्ध भूरं जद्दयं ॥
सथ्थं श्रृंगारं मंस हारं ना उचारं जैकरं ॥
श्रोनं सभष्षी भू चरष्षी षैचरष्षी षेच्चरं ॥
छं० ॥ ११९ ॥ रू० ॥ ६२ ॥

---

६२ पाठांतर—बज । नद्दें । निसांनं । गजए । हलकी । बकी । जकी । बिरदै ।
युद्ध । सांइ धंधरं ॥

११५ साइं । उच । अजरं । सुबछं । कछं । गछं । धिढरं । वांना । पथं । अथं ।
सथं । चढे । सबलं । गज । मलं झुम्झयं ।

११६ सदयं । बदयं । धकी । षुरकी । गहकी । पष्पंर । उडी । सदेने आय । सधरं ।

११७ सतथं । सथं । रथं । अछुरं । निरष्षै । निरषें । निज । अस । मछुंर । पट्टें ।
साय सहसं । दसं । झुम्झ । जसं । विद्धरं ।

११८ नारद । तदयं । तद्दयं । युध । जदयं । सथं ।
शांगारं । संगारं । जैकरं । सभषी । चरसी । षैचरषी ।

सुलतान के चरों का सुलतान को जाकर समाचार देना कि शत्रु की सेना एक योजन पर आगई।

दूहा ॥ चरित लष्ष साहाब चर। गए पास सुरतान ॥
सजी सेन सामंत पति। आयो जोजन थान ॥

छं० ॥ १२० ॥ रू० ॥ ६३ ॥

सुलतान की सेना की तैयारी का वर्णन ॥

छंद विअष्षरी ॥ सुनि चरित्त साहाब तास चर। बोलि मीर उमराव महा भर ॥
दिय निरघात घाव नीसानं। चल्यौ केन सज्जे सव्वानं ॥

छं० ॥ १२० ॥

बाजित्र वीर अनेक सुबज्जे। धर पडिहाय सुगोमह गज्जे ॥
डग्यौ सूर चढ्यौ सुरतानं। वज्जि निहाव नाल गिरि वानं ॥

छं० ॥ १२१ ॥

फौज सुपंच सजी साहावं। उलटयौ सेन समुद्रह आवं ॥
दच्छिन दिसा सज्जि तत्तारं। दिसि बांई पुरसान सुधारं ॥

छं० ॥ १२२ ॥

हाजिय राजिय गाजिय पानं। सनमुप सेन सजी सुरतानं ॥
मीर जमांम पांन कंमानं। महबति मीर पुट्ठि सजि तामं ॥

छं० ॥ १२३ ॥

पान मरुस्तम रूस्तम पानं। मद्धि फौज रज्जे सुरतानं ॥
सहते वीस वीस सजि फौजं। तुंबा पंच रचे अहहौजं ॥

छं० ॥ १२४ ॥

चिहुपष्पां गज घूमहि डंमर। हथ्थ नारि गिर बांन असंबर ॥
रिन रन तूर घोर नीसानं। भेरी श्रृंग गरुड थन थानं ॥

छं० ॥ १२५ ॥

नपफेरी त्रिय बिध सुर डंडं। जोमष पट्ट बजे घन दंडं ॥
आवत झुझ्झ डहक्क डहक्किय। है बर हींस दरक्क गहक्किय ॥

छं० ॥ १२६ ॥

---

६३ पाठांतर—सं० १६४७ की में इस का यह पाठ है—मिलि भूचर षेचर सकति। लष। सुरतांन। थांन।

६४ पाठांतर—उमदा। निघात। चल्यौ। सज्जै।

१२० वजे। गजे। उग्यौ। वजित्र।

१२१ सामुद्रिक। दषिन। सजि। षुरसांन। साधरं।

१२२ हाजीय। राजीय। गाजीय। सुरंतांनं। जमांम। षांन। कमानं। पुठि।

१२३ मधि। रजे। तेईस। ठुंबा।

१२४ चिहुं। षां। धुंमर। हथ। बांन। असंवरं। रिनतूर। नीसांनं। नफेरी। त्रिबिधि। पट। आवध। झुझ। डहक। डहकिय। हय। गहकिय।

गज चिक्कार फिकार सबद्द । तंदुल तबल मृदंग रबद्द ॥
जंगी वीर गुंडीर अनेकं । बाजित्र अनेक गने को बेगं ॥
छं० ॥ १२७ ॥

फौज पंच साजी साहाबं । मीर अनेक गने को नावं ॥
देस देस मिलि भाष अनंतं । तवीयन नाम अनेक गनंतं ॥
छं० ॥ १२८ ॥

फौज पंच सजि चल्यौ जु साहं । गज्जैं धरनि गैंन पुर गाहं ॥
सारुंडै सज्ज्यो दिसि वामं । पद्धर सद्धर उत्तिम ठामं ॥
छं० ॥ १२६ ॥ रू० ॥ ६४ ॥

सारुँडे के बाईं ओर सजकर सुलतान का खड़ा होना ॥

दूहा ॥ उत्तिम पंथरु पुट्ठि जल । लष्षी जीय सुथान ॥
सारुंडौ दिसि बांमदै । सजि ठाढौ सुरतान ॥
छं० ॥१३०॥ रू० ॥६५॥

उड्डि रेन डंबर अमर । दिष्यौ सेन चहुआंन ॥
सुनिगक्रंन वाजित्र त्रहक । सजे सीस असमान ॥
छं० ॥१३१॥ रू० ॥६६॥

सुलतान की सेना देख कर पृथ्वीराज का मीर हुसैन की ओर देखना, हुसैन का अपने सरदारों के साथ तयार होकर पृथ्वीराज को सलाम करना ॥

कवित्त ॥ देखि सेंन सुरतान । नैंन चहुआंन महाभर ॥
सज्जि फौज हुस्सेन । सेन सब मीर बीर बर ॥
रूमी षां कंमांम । बेग हुस्सेन समथ्थं ॥
षां दलेल दिषिनीय । जुद्ध करि करै अकथ्थं ॥
कासिम्म षांन करीम षां । षोजा कासिम काज सुध ॥
सिल है सुसब्ब लिय समथ सजि । करि सलांम किय सीस उध ॥
छं०१३२॥ रू०॥६७॥

---

१२६ चिकार । फिकार । सवदं । रवदं । गुंडीर । अनंत ।
१२७ सजी । मीर अनेक अनेक सनावं । चाष अनेकं । नांम करे । सुविवेकं ।
१२८ सु । यु । गजे । सज्यौ । पधर । सधर । ठामं ।
६५ पाठांतर—उत्तम थलअरु । लषी । थूांन । वांम सुरतांन ।
६६ पाठांतर—उड्डि । मंवर अबर । दिषी । सुने । असमांन ।
६७ पाठांतर—सूरतांन नेंन । चहुवांन । सजि । हुसेन । कमाम । हुसेन । समर्थ । दषनी । करीय । अकथं । कासम्म षांन । षोजा काश्यप । सब । सथ सजि । किय सलांम । करि सीस ॥

मीर हुसैन का कहना कि आपने हमारे लिए कष्ट उठाया है तो हमारा सिर भी आप के लिए तयार है देखिए कैसी लड़ाई लड़ता हूँ, पृथ्वीराज का कहना कि इस में आश्चर्य क्या है मैं भी आज तुम्हें ग़ज़नी का सुलतान बनाता हूँ ॥

कवित्त ॥ कहै साह हुस्सेन । सूनौ चहुआंन जुझ्झ बत ॥
आज सीस तुम कज्ज । सेन साहाबं षंडौं षत ॥
मो कज्जै साहस्स । करिग प्रथिराज सरन ध्रम ॥
हौं उज उंसू अज्ज । करौं राजन अकथ क्रम ॥
जंपै सुराज प्रथिराज तब । कहा अचिज्ज जंपौ तुमह ॥
अप्पौं सु छत्र गज्जनपुरह । सद्धि सेन साहाब गह ॥

छं०॥१३३॥रू०॥६८॥

मीर हुसैन का सलाम करके बाईं ओर सेना सजाना पृथ्वीराज का अपने सरदारों को आज्ञा देना कि तुम लोग मीर हुसैन की सहायता करो और सामंतों की आज्ञा पालन करना ॥

कवित्त ॥ करि सलाम हुस्सेन । अनी बंधी दिसि बाईं ॥
सजरा बंधे कंठ । सहं सज्जे थन थाईं ॥
बोलि राज प्रथिराज । बीर जद्दव जामामी ॥
महन सीह परिहार । सूर गज्जर रामानी ॥
तीकंम बोलि तारंन भर । बगारीय देवह सुअन ॥
मँडलीक बोलिप रसंग सुअ । जीहराज जंपै सुगुन ॥

छं०॥१३४॥रू०॥६९॥

कवित्त ॥ चवै राज चहुआन । तुम सामंत सूर बर ॥
बर कुलीन कुल लज्ज । जुद्ध अन भंग अंग भर ॥
तुम सहाइ हुस्सेन । सेन सज्जौ दिषि बाईं ॥
तुम अनंत बल तेज । देव बर कंठ सुहाईं ॥

---

६८ पाठांतर—हुसेन । झुझ्झ । कज । षंडो । कजै । साहस । प्रथीराज । ध्रमं । हौं उज ऊसुं अज । करो । राजंनं । अकथ्थं । अकथ्थ । क्रम । अप्पों ॥

६९ पाठांतर—किय । सलांम हुसेन । सजे । प्रथीराज । जांमांनी । गूजर । रामांनी । तिकंम । सगुन ॥

७० पाठांतर—चहुवांन । तुम । लज । सहाय । हुसेन । सजौं । बांई ।

साहाब दीन सुरतांन सौं। भिरौं चाल बंधन बिंहसि ॥
मनैं सुचले निज सेन सजि। नाइ सीस रजि वीर रस ॥
छं०॥१३५॥रू०॥७०॥

कैमास आदि सामंतो का चार सहस्र सेन के साथ पृथ्वीराज के दक्षिण ओर सेना सजना ॥

कवित्त ॥ दिसि दच्छिन कैमास। राइ चामंड महाभर ॥
चंद्रसेन। पुंडीर। सिंघ पम्मार झुझ्झ सर ॥
गरु अधाव गहिलौत। निभै पति धार भार घन ॥
तुँवर राइ परिहार। पित्त अनमंग मोट मन ॥
साहस्स चार सज्जे सयन। अनी बंधि दच्छिन नृपति ॥
रत्तामि वस्त्र रत्ते सुभर। जै मंनी चहुआंन चित ॥
छं०॥१३६॥रू०॥७१॥

पृथ्वीराज के आगे की ओर गोइंदराय आदि सरदारों का पांच सहस्र सेना के साथ खड़े होना ॥

कवित्त ॥ मद्धि अनी प्रथिराज। अग्ग सज्जे भर सामत ॥
गरुअ राइ गोइंद। राज मंने साहस सत ॥
देवराइ बग्गारि। कन्ह चहुआन नाह नर ॥
षीची राइ प्रसंग। बीर कन कूबड गूजर ॥
सामंत सूर बिकसे सुमन। अरि दल तिल मत्तह गनिय ॥
छं० ॥ १३७ ॥ रू० ॥ ७२ ॥

दोनों सेनाओं का सामना होना और निशान बज उठना ॥

दूहा ॥ अनी बंधि प्रथिराज नृप। अनी पंच सुरतान ॥
मिलि सेन दूनों निजरि। गज्जे गोम निसान ॥
छं० ॥ १३८ ॥ रू० ॥ ७३ ॥

हुसैन और तातार षां की सेनाओं की लड़ाई होना अंत को तातार षां की फ़ौज का भागना ॥

सुरतांन। भिरों। वंधवि। विहंसि। नाई। सास।

७१ पाठांतर—दछिन। दषिन। राय। पामार। झुझ। गहिलोत। तोंअर। राय। पहार। पिति। साहज्ज। सजे। दषिन। रतामि। रते। चहुवांन।

७२ पाठांतर—मध। प्रथीराज। अग। सजे। सामंत। राव। चंद चहुआन कनकु। मथह। अनीय। समन। मत्तहि।

७३ पाठांतर—वधी प्रथीराज। सुरतांन दोनुं। गजे। निसांन।

छं० भुजंगी ॥ जगे गोम नीसानं इवान सेन । धमंकै धरा गान गज्जे सुगेंनं ॥
झरं पष्परं हार ढालैं ढलक्की । घनं सेंन संन्नाह दूनों चमक्की ॥
छं० ॥ १३६ ॥

मिले मीर धीरं सुदिट्ठं दुआनं । पलं एक जीवं उभैं सिघ जानं ॥
दिसा बाइयं साद हुस्सेन अनी । तिनं मम्झ सामंत सामंत मंनी ॥
छं० ॥ १४० ॥

भरं जाम जद्दों सुमारू मंहनं । षलं गुज्जरं राम मंनै न मंनं ॥
सजे सेन अनी सहस्सं चियारं । गुरुं जुम्झ भारी सुधारी करारं ॥
छं० ॥ १४१ ॥

सनंमुष्प तत्तार बीसं सहस्सं । घटा बंधि भद्दों बकै बीर रस्सं ॥
उड़ी सेन रेंन रुक्यौ रथ्थ सूरं । बकैं दीन दीनं भरं अप्प ढूरं ॥
छं० ॥ १४२ ॥

घनं बांन कंमान उड्डै कि जंगं । मनौं जोति षद्योत प्रस्तू निहंगं ॥
ढलक्की मिली ढाल ढालं दुसूरं । महानद्द सद्दं मनौं सिघं पूरं ॥
छं० ॥ १४३ ॥

बजै धार धारं सुभारं करारं । परैं गज्ज सुंड ढरैं सूर भारं ॥
हकैं हक्क बज्जी सजग्गी सकत्ती । परैं रुंड मुंडं परं श्रोन रत्ती ॥
छं० ॥ १४४ ॥

मिलैं पानं तत्तार हुस्सेन सेनं । बकैं उंच बाचं सिरं सज्जि गेनं ॥
हयं छंडि कंधं पयं मंडि कन्ने । समं ,संमुषं दूव सूरं समन्ने ॥
छं० ॥ १४५ ॥

सहस्सं हयं छंडि हूसेन सथ्थं । सयं तीन ताई बियं हिंदु तथ्थं ॥
सथं पांन तत्तार सत्तं सहस्सं । हयं छंडि कांमं मनं मन्नि गस्सं ॥
छं० ॥ १४६ ॥

---

७४ पाठांतर—नीसानं । दूबांन । धमंके । गजे । पषंर । ढालै । ढलकी । चमंकी ।

१३९ स । दिंठ । हुसेन । अमी । मंझ ।

१४० जांम गुजरं । रांम । मंने । सहसं । जुम्झ ।

१४१ सनमुष । सहसं । बकै । रसं । रथ । बकें ।

१४२ बांन । कमान । उडै । मनौं । ज्योति । ढलकी । मनौं । परैं । गज ।

१४३ ढरें । हकें । हक । वजी । सजगी । सकती । परें । श्रोनं रती ।

१४४ मिलें । पांन । ततार । हुसेन । बकें । सजि । दूश्र । सूर । मनिं ।

१४५ सहसं । हुसेन । सथं । तथं । पांन । सहसं । गसं ।

१४६ दुयं । युद्ध । दिषे । निम्मैल । सामित । उंडं । गजे । जषै । कंमानं ।

भई फौज तीरं दुअं युद्ध धीरं। दिषै अम्मलं निज्ज सामित्त बीरं ॥
उभै डारि ओडं न गज्जै गुमानं। जपैं दीन मौरं सु नषी कमानं ॥
छं० ॥ १४७ ॥

बजैं नद्द नीसान भेरी भयंदं। गजैं शृंग रीसं मनौं मेघ नद्दं ॥
उभै हथ्थ षोले सुषग्गं करारं। परैं सुभ्भरं सुम्भरं फूल धारं ॥
छं० ॥ १४८ ॥

उभै आस जीवं नसा सूर छुट्टी। भरी काल संबान आयं सुघट्टी ॥
करी अप्प ईसं दुईसं दुहाई। मनौ बन्न झुंभ्भे गजं मद्दराई ॥
छं० ॥ १४६ ॥

ढरै उत्तमंगं उडै श्रोन पूरं। मनौं काल पावक्क झालं करूरं ॥
मिले घाइ हुस्सेन तत्तार षानं। जुटे डट्ट हथ्थं उभै काल जानं ॥
छं० ॥१५०॥

तुटैं आवधं सावधं लग्गि बथ्थं। सुनी कन्न कथ्थन्न दिठ्ठी अकथ्थं ॥
जमं दढ्ढ प्राहार छेदं छुलिक्का। उरा पार फुट्टै हवक्कें कसक्का ॥
छं० ॥१५१॥

कलेवार षेतं ढरं दूअचेतं। उभै सूर झुझ्झै उभै साहि हेतं ॥
भिरैं वान रूमीय षानं दलेलं। परै पार सांई हकै सेन पेलं ॥
छं० ॥१५२॥

परे षंड षंडं निजं सामि अग्गै। न को हारि मंनै न को झूझ भग्गै ॥
हकैं जांम जद्दों सुतं सिंघ बीरं। ढरैं आबधं आवधं ढारि धीरं ॥
छं० ॥१५३॥

भगी षांन तत्तार अंनी बिहालं। भिरी साहि फौजं टरी गज्जढालं ॥
छं० ॥१५४॥ रू० ॥७४॥

---

१४७ नद। नीसांन। गर्जे। मनों। नदं। हाथ। परें। झरं। सुभरं।

१४८ संबांन। मनों। बंत्र। जूझें।

१४६ ढरें। मनों। पावक। हुसेन। षांनं। जुटैं। डट। हथं।

१५० तुटै। लगि। बथं। सुनी कथ्थ कंनेन दिठ्ठी अकथ्थं। प्रहारं। उराफार। फुटैं। हवकें। कसका।

१५१ कलेंवार। ढरें। झूझैं। भिरें। षानं। रूंमीय। षांन। परे। पाय। हके।

१५२ सांइ। अगें। भगें। जाम। जदौं। ढरे।

१५३ बिहालं। भिली। गज।

दूहा ॥ सहस पंच रन मीर परि । साथ सुषांन ततार ॥
परे हुसेन सुनीन सै । सै दो हिंदू सार ॥
छं० ॥१५५॥ रू० ॥७५॥

गाथा ॥ नंचिय तीस कमंधं । करि झोरी षांन तत्तार ॥
दिष्षिय रनसुर बद्दं । भय रस अदभुत्त भयानं ॥
छं० ॥१५६॥ रू० ॥७६॥

भग्गिय अनी षांन* तत्तारं । चंपियं जद्दव महा असवारं ॥
बज्जिय बर नीसानं । सज्जिय जुद्ध हिंदू' सवानं ॥
छं० ॥१५७॥ रू० ॥७७॥

खुरासांन खां का आगे बढ़ कर लड़ना ॥

छंद त्रोटक ॥ सजि संमुष पां खुरसान दलं । जग डंबर बंवर ढाल ढलं ॥
बजि भेरि नफेरि भयान सुरं । घननं किय घुघ्घर घंट घुरं ॥
छं० ॥१५८॥

गजघोर निसानत घुंमरयं । दिग अट्ठ धरा धर धुंमरयं ॥
मिलिवीय अनी दुअ आवधयं । भर बंछि उभै पल सावधायं ॥
छं० ॥१५९॥

झर आवध आवध झाक झरं । मटि मंडल षंडल ढारि ढरं ॥
धरि पेलहिं सेलहिं केस कसं । रस होइ भयानक रुद रसं ॥
छं० ॥१६०॥

असि षंड विहंडति हैवरय । गज सुंडह मुंड ढरैं धरयं ॥
धर लुट्टहि जुट्टहि रंधरयं । मिलिबीय अनी दुअ आवधयं ॥
छं० ॥१६१॥

---

७५ पाठांतर—हुसेन । सैं । दों । दोइ । हिदू ।

७६ पाठांतर—नंचीय । कमधं । दिषिय । बदं । रस अदभूत । भायानं ।

७७ पाठांतर—भगीय । * अधिक पाठ इतर पुस्तकों में है और प्राचीन में वह है ही नहीं । तत्तारं । चंपिय । बजीय । सजि । युद्ध । हिंदुसवांनं ।

७८ पाठांतर—अमरावली । पुरसांन । भयांन । घननंकय । घुघर ।

१५८ घुमरयं । अठ । ढरी ।

१५९ पेलहि सेलहि । पेलांहिं सेलहिं ।

१६० गजन । सुडंह ।

१६१ फर । डक । डकति । आंनि ।

झरयं फिर गिद्धय रारे रुलं । घर श्रोन प्रवाहति पूर जलं ॥
करि डक्कह डक्कति बीर नचैं । सिर माल सूईसर आनि सच ॥
छं० ॥१६२॥

बर बीर भरैं भर अच्छुरियं । सुर रोर सकत्तिय मच्छुरियं ॥
हनि हक्कहि षां षुरसान रिनं । द्रिग दिष्षिय चावंड राय तिनं ॥
छं० ॥१६३॥

मिलि आवध सावध दुम्भरयं । हय घाय गुरज्जत सुभ्झरयं ॥
क्रमि चामँड संगिय झारि झरं । जुग फुट्टिय जातु हयं समरं ॥
छं० ॥१६४॥

सम षां षुरसान सहाब परं । वहि शृंगय शृंग समूर ढरं ।
दम षान हयं तज उप्परयं । बदि जोह दुरी हति दुप्परयं ॥
छं० ॥१६५॥

पग छंडिय चामंड राइ रिनं । दिषि राज पुँडरि तज्यौ हयनं ॥
मिलि चंपिय ढारत षान धरं । तब भग्गिय फौज असुझ्झ परं ॥
छं० ॥१६६॥ रू० ॥७८॥

खुरासान खां की फौज का भागकर सुलतान की फौज के साथ मिलनी और कैमास का चढ़ाई करना ।।

दूहा ॥ भगी अनी षुरसान षां । मिलिय जाइ सुरतान ॥
चढिय फौज कैमास तब । सज्जे सिर असमान ॥
छं० ॥१६७॥ रू० ॥७६॥

बाईं ओर से जमान, दाहिनी ओर से कैमास और सामने से पृथ्वीराज का चढ़ना ॥

गाथा ॥ झोरी षां षुरसानं । परिय मोर रंन सहसेयं ॥
बढ्ढिय जैतसु राजं । भग्गिय सेन देषि सुरतानं ॥
छं० ॥१६८॥ रू० ॥८०॥

---

१६२ बीरवरें । अछरियं । सकत्तिय । मछरियं । हन । षुरसांन । दिषिय । चावंड ।
१६३ आउध । साउध । दुभरयं । गुरजत । सुभरयं । चामंड । जांनु ।
१६४ षुरसांन । साहाव । सुमूर । उपरयं ।
१६५ चांवंड । चामंड । पुंडीर । षांन । भगिम । असुझ ।
७६ पाठांतर—षुरसांन । जाय । सुरतान । सजे । असमांन ।
८० पाठांतर—गादां । षुरसांनं । रन । सहसयं । बढिय । जैतस । भगी । ग्गीनी । सेन । सुरतानं ।

दिसि बाईं जामानं । दिसि दाहिनी चंपियं कैमासं ।।
सनमुष चंपिय साजं । जै जै जंपि राइ चहुआनं ।।
छं० ।।१६९ ।। रू० ।।८१।।

युद्ध का वर्णन ।।

छंद नाराच ।। जयं जयंति जंपियं । चढ़े सुराज चंपियं ।।
बहंत बांन बानयं । ग्रहंत गोम छानयं ।।
छं० ।।१७०।।

करी सुफौज एकयं । बहंत ताम तेकयं ।।
बहंत वीर आवधं । करंत बीर सावधं ।।
छं० ।।१७१।।

हबक्कि संग संगयं । बहंत अंग अंगयं ।।
झटा पटा झमक्कयं । करीअ रीत टक्कयं ।।
छं० ।।१७२।।

समं भरं बगत्त । हुंवंत षंड षंडरं ।।
ढरंत रुंड मुंडयं । कमंत जंत तुंडयं ।।
छं० ।।१७३।।

फरं फरंत फेफरं । बुलंत ते डरं डरं ।।
कटें सुपाइ रिघंयौ । करंत घाव धिंघयौ ।।
छं० ।।१७४।।

करंत हक्क हक्कयं । क्रमंत धक्क धक्कयं ।।
चढंत देत दंतरं । अरु अभ्भंत अंतरं ।।
छं० ।।१७५।।

भभक्कयंत श्रोनयं । बहंत बेग कोनयं ।।
झरप्फरंत गिद्धयौ । किलक्किलंत सिद्धयौ ।।
छं० ।।१७६।।

---

८१ पाठांतर—बाईं । चंपिय । राय ।
८२ पाठांतर—छंद लघुनाराच । नराज । छंद । बांन । बांन ।
१७० आउध ।
१७१ हबकि झटकयं । टकयं ।
१७२ नरं । बगतरं । हुअंत ।
१७३ फर । पाय । सिंघयौ ।
१७४ धकधकयं । दंतदंतरं । अरुझरंत ।
१७५ भभकयंत । झरफरंय । किलकि ।
१७६ सठि चरियं । दियंत । वीर । डहकि । धम ।

नच्चंत सढ्ढि सारियं । करंत बीर तारियं ॥
डहक्कि डक्क ईसुरं । धमं धमंत भीसुरं ॥
छं० ॥१७७॥

फिकारियंत फेरियं । पलं चरंत रेकियं ॥
सपूर श्रोन सक्कती । गुरं सुरंग ह्क्कती ॥
छं० ॥१७८॥

किलं सुकंठ षामयं । मनंत मंनि तामयं ॥
कटे सुगज्ज कंधरं । विहंड षंड षंडरं ॥
छं० ॥१७९॥

करंत गज्ज चिक्करं । फिरंत सूर फिक्करं ॥
किनक्किनंत बाजयं । जमं ग्रहंत साजयं ॥
छं० ॥१८०॥

बहंत श्रोन नद्दियं । चलंत सूर सद्दियं ॥
धरं गजं विकं ठयं । हयं अनेक संठयं ॥
छं० ॥१८१॥

तरं सझंड झालयं । रजंत संगि लालयं ॥
धरं परंत मच्छयौ । गजं॑सु सीस कच्छयौ ॥
छं० ॥१८२॥

गजं सुसुंड ग्राहयौ । सुरंजि अप्प चाहयौ ॥
रजंत बीर नम्मयं । भयं दपंति जम्मयं ॥
छं० ॥ १८३ ॥

पलं अनंत पंकयं । कुकातरं भयंकयं ॥
सुहंत सीस अंबुजं । षटं पदं द्रिगंबुजं ॥
छं० ॥ १८४ ॥

---

१७७ फेकियं । संपूर । सकती । हकती ।

१७८ कामयं । गज ।

१७९ गज । चिकरं । फिकरं । किनकिनंत ।

१८० नदीयं । सदीयं । धरं गठं । विकठयं । सठय ।

१८१ मछयौ । ससीस । कछयौ ।

१८२ किगजंसु । ग्राहयो । किरंजि । अय । चाहयौ । रजंत मीर निम्मयं ।

१८३ सुभंत । शीश । दिगं ।

१८४ बिथुरं । कंठरं । कसूर ।

कच्चं सिवार विथ्थुरं । सुगंधि पंषि कंदुरं ॥
बहंत पूर जोरयं । करूर सद्द रोरयं ॥
छं० ॥ १८५ ॥
सुतान पंति गोमयं । उच्चंत बीर सेनयं ॥
अनेक रंग चंमरी । बहंत जीन षंमरी ॥
छं० ॥ १८६ ॥
वही अनेक साकते । कहंत चंद बाकते ॥
अनेक रथ्थ अच्छुरं । बरंत सूर सच्छुरं ॥
छं० ॥ १८७ ॥
रजोद कंठ सक्कती । रजंत श्रोन रक्कती ॥
हहक्क रंत साजयं । झरंत जेम बाजयं ॥
छं० १८८ ॥ रू० ८२ ॥

पृथ्वीराज की सेना का बढ़ना, और मंडलीक का मारा जाना ॥

कवित्त ॥ बाज जेम चहुआंन । झारि सेना झर सुझ्झर ॥
कोउ लत्त केलत्त । गज्ज ढाहे घर सुद्धर ॥
ढेलि अनी दस पेंड । झक्क बाजंती झारी ॥
मारि मीर अनभंग । विधर जू सेभर सारी ॥
मंडलीक सूर षिझ्झिझय सुभर । जुटे षांन सु गज्जनिय ॥
मंडलीक सीस तुट्टैं विलगि । हन्यौ षांन विन चंचनिय ॥
छं० ॥ १८९ ॥ रू० ॥ ८३ ॥

कवित्त ॥ विना सीस मंडलीक । हयौ गज्जनीय षांन गुर ॥
अवर मीर चयालीस । जुझ्झ ढाह भर सुझ्झर ॥
परत सुअन पर संग । बुद रुधिरं नर बुड्ढिय ॥
सुहथ खग्ग सब एक । बीर करि किलकि सुउठ्ठिय ॥

---

१८५ गोमयं । वीर रोमय । जान संमद्दी ।

१८६ रथ । अछुर । सछुरं ।

१८७ सकती । रकती । हहक । रज १ ।

१८८ [1] यह तुक ए० सो० की प्रति में नहीं है ।

८३ पाठांतर—चहुंवान । सुझर । केउलत केलत । गज । बाजंती । ढारी । मारि मार । मंडलीक । षिझिय । षीजिय । गजनीय । मंडलीक । शीश तुट्टे । बिन सीस नीय ।

८४ पाठांतर—मंडलीक । झुझ ढाहे भर सुभर । बुड्डिय । डठिय ।

रत्तरे गात उतंग तन । उद्ध रोम झारंत असि ॥
गहि दंत दंति धरि पुंछ हय । उड्डि संनचिय बीर हंसि ॥
छं० ॥ १६० ॥ रू० ८४ ॥

शहाबुद्दीन की सेना का भड़कना और पृथ्वीराज की सेना का पीछा करना ॥

कवित्त ॥ भरकि सेन साहाब । डररि भगो हय गय नर ॥
घरिय एक बित्ती । बिरूर अड्डे अघास हर ॥
दिष्षि दिष्ट साहाब । राइ चामंड बीर बर ॥
चंद्रसेन पुंडीर । जाम जद्दौं भर सुब्भर ॥
कैमास दिष्टि दिष्यौ समर । क्रमे च्यारि गहनं सुबचि ॥
आए सुबीर अड्डे अकसि । रन-रस आवध रीठ मचि ॥
छं० ॥ १६१ ॥ रू० ॥ ८५ ॥

घोर युद्ध का वर्णन ॥

छं० विज्जुमाला ॥ मचिय मत्त आवद्ध रीठ । भर हरि दैनं सुब्भर पीठ ॥
हक्कैं सूर अग्गर सार । धर-धर परैं तुट्टिय धार ॥
छं० ॥ १६२ ॥
जंपै उभै दीन जु आंन । जुझिझय मत्ता मत्तिय पांन ॥
बह बहरू कह कै हाक । बज्जै विषम आवध झाक ॥
छं० ॥१६३॥
परि लर थरैं उठ्ठैं।एक । तम्मी उकसि झारैं नेक ॥
षट्ट षट्टी आवध सार । बाहै बीर बारं बार ॥
छं० ॥१६४॥
अंन्यो अन्य सद्दैं नाम । आवध ग्रहैं अप्पन ताम ॥
हं हं करैं इष्ट संभारि । उठ्ठैं विरद धारी झारि ॥
छं० ॥१६५॥

रतरे । उतंग उध उड्डि । हँसि ।

८५ पाठांतर— घरीय । विरूर । अडे । आए सहर भर । अयासु । दिषि । राय-चामुंड । जांम । जद्दो । सुभर । गहन । सुमीर । अडे । दिन ।

८६ पाठांतर—छंद उघोर । मंत । मद्ध । दैंन सुभर । हकें । अगर परें ।

१६२ जुवांना वह वह रुक हक्कैं हाक ।

१६३ थरें । उठि । तीम । झारें । षट षट्टि । वहि ।

१६४ सदें । नांम । यहै । अप्पनै । ताम । हं हं । द्रष्ट । संभारि । उठे ।

१६५ अदभुत्त । चदभुत । भैयांन । मचि । कंकम । झकांन । रंभान । उरिय । जांनि ।

अदैभुत्त बीर भैयान । मंचिय कंक विषम कृपान ॥
नर बर बरय हंस रंभान । उठि्ठय नेह ग्रेहति जानि ॥
छं० ॥१९६॥
तुटि्टय सेन पल तिष तीर । इन परि जुद्ध जुट्टिय धीर ॥
तरैं सांईं उप्पर भ्रत्य । सेवक उद्ध सांई किति ॥
छं० ॥१९७॥
चौसठि क्रंम लोथि पथार । भर परि धरह लुभ्भिय हार॥
उप्पर भिरैं सामंत सूर । मत्तौ जुद्ध दून करूर ॥
छं० ॥१९८॥
ठेलैं एक एकैं वीर । गज्जै दीन जंपै मीर ॥
चावंड राव जद्दों जामि । मारू महन गूजर राम ॥
छं० ॥१९९॥
गोविंद राव विकसिय भाल । मानौं कोंपियंते काल ॥
आवरि बीर च्यारौं बीर । धारैं षग्ग दोकर धीर ॥
छं० ॥२००॥
हक्कैं बीर जंपै बांनि । जुट्टे इसं केहरि जानि ॥
चंपै मीर तुट्टैं मार । नंचैं कमध अट्ठ उभार ॥
छं० ॥२०१॥
भग्गैं परैं के अगिवांन । बढी जैत राव चहुआंन ॥
सतै सहस लुथ्थिय भार । परि रन मीर धीर पथार ॥
छं ॥२०२॥ रू ॥८६॥

पृथ्वीराज के सामंतों का शाहबुद्दीन का पीछा करना ॥

कवित्त ॥ परे मरि पथ्थार । साह हंक्कयौ रा*चावंड ॥
संमुह गोरी चंपि । मनौं गज सौं गज आमंड ॥

---

१९६ तुटिय । तरें । सांइं । उप्प । ऊपर । भृत्त । सांइ । भेत ।
१९७ लुथि । लुभिय । भिरें । सामंत । दुनों ।
१९८ एकें । गजै । चावंड । जांम । गुजरा । रांम ।
१९९ गोइंद राय । गोबिंदराव । गोइदराइ । विकसि । मानों । कोपीयंते आंवरि । धारें । धारे । षग ।
२०० हकें । बांनि । इम । जांनि । चपें । तुटें । कमंध ।
२०१ भग्गे । परें । अगिवांन । जैतरा । चहुवांन । सतै । लोथीय । लुथिय ।
८७ पाठांतर—पथार । हक्यौ । * अधिक पाठ है । गौरी । मनों । क्रमि सनमुष पुंडीर मंत्रि । जद्दव राजामं । राय । राव । गहै । जांम चंपियं ।

चंद्र सेन पुंडीर । आइ सज्यौ दिसि वामं ॥
क्रमि सनमुष कैमास । हक्कि जद्दव राजामं ॥
पुंडीर राइ चामंड भर । गहैं दून दूनों सुकर ॥
हे हन्यौ जांम जद्दव उभ्भर । मिलि चिहु चंपियं षंड भर ॥
छं० ॥२०३॥ रू० ॥८७॥

सुलतान का पकड़ा जाना, उस की सेना का भागना और पृथ्वीराज की विजय ॥

कवित्त ॥ गहयौ षंचि सुरतान । डारि अड्डौ है चामंड ॥
भगी सेन बेहाल । परे घन थान थान थड ॥
ग्रहन अग्र सुरतान । परे षां न्याजी गाजी ॥
मीर मान कम्मांन । परयौ आरब अरि भाजी ॥
को गनै षान मीर रुअवर । सहस सत्त तुद्दे सुधर ॥
नच्चै कमंध च्यालीस रस । जै लम्भी चहुआंन भर ॥
छं० ॥२०४॥ रू० ॥८८॥

दूहा ॥ मंडलीक षीची परयौ । तीकम त्यार सुबंध ॥
राम वाम पंमार परि । नचि सामंत कमंध ॥
छं० ॥२०५॥ रू० ॥८९॥

सूर्योदय से एक घड़ी पांच पल पर लड़ाई आरंभ हुई और चार घड़ी दिन रहे सुलतान पकड़ा गया, बीस हजार मीर और सात हजार हाथी घोड़े मारे गए हिन्दू तेरह सौ मारे, तीन कोस में लड़ाई हुई. सुलतान को अपने डेरे में लाए ॥

कवित्त ॥ घरी एक पल पंच । सूर ऊगत सज्यौ जुध ॥
घरी च्यारि दिन शेष । ग्रह्यौ सुरतान पान उध ॥
सहस बीस इक ब्रन्न । परे रन मीर समथ्थं ॥

---

८८ पाठांतर—सुरतांन । अडो । हैं । चामंडं । थांन थांन । सुरतांन मांन कमान । भागी । षांन । सु । तुट्टें । सधर । नंचं । लभी । चहुआंन ।

८९ पाठांतर—दोहरा । रांम । वाम ।

९० पाठांतर—उग्गत । गहयौ । सुरतांन । पांनं । बृच । समथं ।

सहस्स सत्त हैंगे । समुह षंडे धर तथ्थं ॥
सय तेर परे हिंदू सयन । कोस तीन रन अद्ध परि ॥
सुरतान गहिय चहुआन पहु । आयौ बज्जत बज्जत घर ॥
छं० ॥२०६॥ रू० ॥६०॥

रण क्षेत्र में ढूंढ़ कर पृथ्वीराज का मीर हुसैन की लाश निकलवाना ॥

दूहा ॥ षेत ढूंढ़ि प्रथिराज नृप । बजे जीत रन तूर ॥
षां हुसेन घनघाय घट । उप्पारिग बर सूर ॥
छं० ॥२०७॥ रू० ॥६१॥

पातुरि का जीते जी हुसैन से साथ क़ब्र में गड़ जाना ॥

दूहा ॥ परत्यौ हुसेन सुपाच सुनि । चिंतिय चित्त इमांन ॥
सजौं घोर हुस्सेन सथ । करौ प्रवेस अपांन ॥
छं० ॥२०८॥ रू० ॥६२॥

पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन को पांच दिन आदर के साथ रखकर तीन बेर सलाम करा के मीर हुसैन के बेटे ग़ाज़ी को उस को सौंप कर यह प्रण करा के कि अब हिंदुओं पर न चढूंगा, छोड़ना, शाह का ग़ाज़ी को लेकर कुशल से ग़ज़नी पहुँचना ॥

कवित्त ॥ रष्षि पंच दिन साहि । अदब आदर बहु किन्नौ ॥
सुअ हुसेन गाजी सुपुत्त । हथ्थैं ग्रहि दिन्नौ ॥
किय सलाम तिय वार । जाहु अप्पने सुथानह ॥
मति हिंदू पर साहि । सज्जि आऔ स्वथानह ॥
बैठाइ साह सुष्षासनह । लाय अप्प गाजी सुसथ ॥
संपत्त जाइ गज्जन पुरह । करो बैर उद्धार अथ ॥
छं० ॥२०९॥ रू० ॥६३॥

सहस । समूह । पानी । पंडै । तथं । परें । सुरतान । चहुआंन ।

६१ पाठांतर- -प्रथीराज । उपारिग ।

६२ पाठांतर—इमांन । सजौं । हुसेन । करों । अपान ।

६३ पाठांतर—मपुत्त । हथें । दिन्नौ । सलांम । बेर । सजि । आयौ । सथांनह । बैठाय । सुषासनहि । लीय । मथ । जाय । गजनपुरह ।

अमीरों का सुलतान के जीते जागते लौटने पर
बधाई देना और कुशल पूछना ॥

दूहा ॥ और बधाई ऊंमरा । करी आइ सुरतांन ॥
अंन्य सवन कीनी षयर । पुजिय पीर ढटांन ॥
छं० ॥२१०॥ रू० ॥६४॥

इति श्री कविचंद विरचिते प्रथिराज रासके हुसेन खां
चित्ररेखा पात्र अधिकारे पातिसाह ग्रहन
नाम नवम प्रस्ताव सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

---

६४ पाठांतर—उमरिनि । उमरनि । आय । सुरतान । अंन्य । पुजीय ।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास

जैसा कि प्राक्कथन में कहा गया है पहले तुलसीदास जी की रचनाओं का संग्रह इस जिल्द में करने का निश्चय नहीं हुआ था। इन्हें हमने वैष्णव कवियों वाली जिल्द के लिए ही अलग कर रक्खा था। यद्यपि यह शांत अथवा भक्ति रस के लिए ही प्रसिद्ध हैं पर यह सभी साहित्य मर्मज्ञ मानेंगे कि इस महाकवि ने प्रसंगवश जहां जिस रस को ही उठाया है उसी में सफलता प्राप्त की है। इन के ग्रंथों में वीर रस की भी उत्तम रचना का अभाव नहीं है। इसी से कवितावली तथा मानस से उच्च कोटि के वीर रस से ओत-प्रोत कुछ अंश संग्रह करना अनिवार्य समझा गया। संग्रह के लिए सब से प्रामाणिक पाठ हमें नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी-ग्रंथावली की जिल्दों में ही मिले।

तुलसीदास की जीवनी और कविता आदि के विषय में हम इस जिल्द में कुछ न कहेंगे। हिंदी कविता के सूर्य तुलसी के न्याय करने के लिए उसके वास्तविक महत्त्व के अनुरूप ही लिखना होगा अगर कुछ लिखना है तो। पर यह इस जिल्द में ठीक न होगा। इन का वास्तविक क्षेत्र भक्तिकाव्य ही है और जिस जिल्द में इस विषय के काव्य का संग्रह किया जायगा वहीं वह सब लिखना ठीक होगा। इन्हीं बातों को सोचकर इस विषय को बिलकुल स्पर्श न करते हुए हम केवल इन के वीर काव्य की कुछ बानगी भर ही हिंदी संसार के सम्मुख रख कर संप्रति संतोष करते हैं।

प्रस्तुत संग्रह के आरंभ में कवितावली के कुछ चुने हुए वीर रस के छंद लिए गए हैं और फिर मानस के लंकाकांड से पाठ हमने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, तुलसीग्रंथावली' का ही सब से प्रामाणिक माना है जैसा कि ऊपर कहा गया है।

कवितावली

सवैया

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले ।
भारी गुमान जिन्हें मन में, कबहूँ न भये रन में तनु ढीले ॥
तुलसी गज से लखि केहरि लौं झपटे पटके सब सूर सलीले ।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले ॥

सूर सजोइल साजि सुबाजि सुसेल धरे बगमेल चले हैं ।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भांति भले हैं ॥
तुलसी जिन्हें धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सो मेरू हले हैं ।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं ॥

सर तोमर सेल समूह पँवारत मारत बीर निसाचर के ।
इत तेँ तरु ताल तमाल, चले खर खंड प्रचंड महीधर के ॥
तुलसी करि केहरि-नाद भिरे, भट खग्ग खगे खपुवा खरके ।
नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत मुंड सों मुंड परे झर के ॥

रजनीचर मत्तगयंद घटा बिघटै मृगराज के साज लरै ।
झपटै, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै ॥
तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै ? ।
बिरुझो रन मारुत कों बिरूदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै ॥

जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाए ।
ते रन रार कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए ॥
लूमि लपेटि अकास निहारि कै हाँक हठी हनुमान चलाए ।
सूखि गै गात चलै नभ जात, परे भ्रम-बातन भूतल आए ॥

घनाक्षरी

हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सो सँहारे,
रथनि सोँ रथ बिदरनि बलवान की ॥
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं,
हहराना फौजैं भहरानी जातुधान की ॥
बारबार सेवक-सराहना करत राम,
तुलसी सराहैं रीति साहेब सुजान की ॥
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ लखन लरनि हनुमान की ॥

दबकि दबोरे एक बारिधि के बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात है ॥
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं ॥
तुलसी लखत राम-रावन बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं ॥
बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथप निपाते बातजात हैं ॥

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह सी ॥
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाह सी ॥
कंपत अकंपन सुखाय अतिकाय काय,
कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी ॥
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो,
बीर रघुबीर को समीरसूनु साहसी ॥

झूलना

मत्तभट-मुकुट-दसकंध-साहस सइल-
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्रटाँकी ।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
सेष संकुचित, संकित पिनाकी ॥
चलित महि मेरु उच्छलित सायर सकल ।
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झांकी ॥
रजनिचर-धरनि धर गर्भ-अर्भक स्रवत ।
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ।
कौन की हाँक पर चौंक चंडीस बिधि,
चंडकर थकित फिरि तुरंग हाँके ।
कौन के तेज बलसीम भट भीम से,
भीमता निरखि कर नयन ढाँके ॥
दास तुलसीस के बिरुद बरनत बिबुध,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके ॥
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन ।

कहाँ हनुमान से बीर बांके ॥
जातुधानावली मत्त कुंजर घटा
निरखि मृगराज जनु गिरि तें टूट्यो ।
बिकट चटकन चपट-चरन गहि पटक महि,
निघटि गए सुभट सत सब को छूट्यो ॥
दास तुलसी परत धरनि-धरकत झुकत,
हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो,
धीर रघुबीर को बीर रन-बाँकुरो
हांकि हनुमान कुलि कटक लूट्यो ॥

छप्पय

कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत ।
कतहुँ बाजि सो बाजि, मर्दि गजराज।करक्खत ॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत ।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत ॥
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत ।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥

घनाक्षरी

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से ,
हने भट लाखन लषन जातुधान के ।
मारि कै पछारे कै उपारि भुजदंड चंड ,
खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के ॥
कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत ,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के ।
तुलसी महेस, बिधि, लोकपाल, देवगन
देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के ॥

लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ
मानहुँ गिरिनि गेरु झरना झरत हैं ।
सोनित सरित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल बाजि बिटप परत हैं ॥
सुभट सरीर नीर चारी भारी भारी तहाँ ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं ॥
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात ,
काक कंक-बालक कोलाहल करत हैं ॥

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे ,
मूँड़ के कमंडलु खपर किए कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी ,
तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै ॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से ,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ।
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै ॥

सवैया

राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी ॥
सोनित छींटि-छुटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।
मानो मरक्कत-सैल बिसाल में फैलि चली बर बीरबहूटी ॥

घनाक्षरी

मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट ,
आपने अपन पुरुषारथ न ढील की।
घायल लषनलाल लखि बिलखाने राम ,
भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की ॥
भाई को न मोह-छोह सीय को न, तुलसीस
कहैं, 'मैं बिभीषन की कछु न सबील की'।
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार सार ,
साहेब न राम से, बलैया लेउँ सील की ॥

सवैया

लीन्हो उखारि पहार बिसाल चल्यो तेहि काल, बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो ॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा की समाउ न आयो।
मानो प्रतेच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ॥

रामचरितमानस
लंका कांड

छं—ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गरजत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट विटप भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिँ जहँ तो तहं निसिचर हए॥

दो०—मेघनाद सुनि श्रवन अस, गढ़ पुनि छेँका आइ।
उतरि दुर्ग तेँ बीरवर, सनमुख चला बजाइ॥

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता . धन्वी सकल लोक विख्याता॥
कहँ नल नील द्विबिद सुग्रीवाँ। अंगद हनूमंत बलसीवाँ॥
कहाँ बिभीषनु भ्राता द्रोही। आजु सठहि हठि मारौं ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय कोप श्रवन लगि ताने॥
सरसमूह सो छाँडइ लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहं तहं परत देखिअहि बानर। सनमुख होइ न सके तेहि अवसर॥
जहं तहं भागि चले कपि रिच्छा। बिसरी सबहिं युद्ध कै इच्छा॥
सो कपि भालु न रन महुँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेखा॥

दो०—मारेसि दस दस बिसिख सब, परे भूमि कपि बीर।
सिंघनाद करि गर्जा, मेघनाद बलधीर॥

देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवन्त धायउ जनु काला॥
महा महीधर तमकि उपारा। अति रिसि मेघनाद पर डारा॥
आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब कोई॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आउ मरम सो जाना॥
रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकही प्रभु काटि निवारे॥
देखि प्रभाउ मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करै गरुड सन खेला। डरपावै गहि स्वल्प सँपेला॥

दो०—जासु प्रबल माया बिबस, सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि देखावै निसिचर, निज माया मति खोट॥

नभ चढ़ि बरषइ बिपुल अँगारा। महि ते प्रगट होहिँ जलधारा॥
नाना भांति पिचास पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥
बिष्ठा पूय रुधिर कच हाडा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाँडा॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥

कपि अकुलाने माया देखे । सब कर मरनु बना यहि लेखे ॥
कौतुक देखि रामु मुसुकाने । भए सभीत सकल कपि जाने ॥
एक बान काटा सब माया । जिमि दिनकर हर तिमिरनिकाया ॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके । भए प्रबल रन रहहिँ न रोके ॥

दो०—आयसु माँगि राम पहिं, अंगदादि कपि साथ ।
लछिमनु चले सकोप अति बान सरासन हाथ ॥

छत-जन यन उर बाहु बिसाला । हिम-गिरि-निभ तनु कछु एक लाला ॥
इहाँ दसानन सुभट पठाए । नाना सस्त्र अस्त्र गहि धाए ॥
भूधर नख बिटपायुध धारी । धाए कपि जै राम पुकारी ॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी । इत उत जै इच्छा नहिँ थोरी ॥
मुठिकन्ह लातन्ह दाँतन्ह काटहिं । कपि जय-सील मारि पुनि डाटहिँ ॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू । सीस तोरि गहि भुजा उपारू ॥
असि रव पूरि रही नव खंडा धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा ॥
देखहिँ कौतुक नभ सुर बृन्दा । कबहुँक बिसमउ कबहुँ अनंदा ॥

दो०—रुधिर गाड भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उड़ाइ ।
जिमि अँगाररासीन्ह पर, मृतकधूम रह छाइ ॥

घायल बीर बिराजहिँ कैसे । कुसुमित किंसुक के तरु कैसे ॥
लछिमन मेघनाद दोउ जोधा । भिरहिँ परस्पर करि अति क्रोधा ॥
एकहिँ एक सकहिँ नहिँ जीती । निसिचर छल बल करहिँ अनीती ॥
क्रोधवन्त तब भयेउ अनन्ता । भेजेउ रथ सारथी तुरंता ॥
नाना बिधि प्रहार करि सेषा । राच्छस भयेउ प्रान अवसेखा ॥
रावनसुत निज मन अनुमाना । संकट भयेउ हरिहि मम प्राना ॥
बीरघातिनी छाँड़ेसि साँगी । तेजपुंज लछिमन उर लागी ॥
मुरछा भई सक्ति के लागे । तब चलि गयेउ निकट भय त्यागे ॥

दो०—मेघनाद सम कोटिसत, जोधा रहे उठाइ ।
जगदाधार अनंत किमि, उठइ चले खिसिआइ ॥

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू । जारइ भुवन चारिदस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही । सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥
यह कौतूहल जानइ सोई । जा पर कृपा राम कै होई ॥
संध्या भई फिरी दोउ बाहिनी । लगे सँभारन निज निज अनी ॥
व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर । लछिमनु कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि ले लायेउ हनुमाना । अनुज देखि प्रभु अति दुख माना ॥
जामवन्त कह बैद सुषेना । लंका रह कोउ पठइअ लेना ॥
धरि लघु रूप गयेउ हनुमंता । आनेउ भवन समेत तुरंता ॥

दो०—रघुपति चरन सरोज सिरु, नायेउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवन सुत लेन॥
दो०—राम रूप गुन सुमिरि मन, मगन भयेउ छन एक।
रावन माँगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक॥

महिष खाइ करि मदिरापाना। गर्जा बज्राघातसमाना॥
कुंभकरन दुर्मद रनरंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥
देखि बिभीषनु आगे आयेउ। परेउ चरन निज नाम सुनायेउ॥
अनुज उठाइ हृदय तेहि लावा। रघुपति भगत जानि मन भावा॥
तात लात रावन मोहिं मारा। कहत परमहित मंत्रबिचारा॥
तेहि गलानि रघुपति पहिं आयेउ। देखि दीन प्रभु के मन भायेउ॥
सुनु सुत भयेउ कालबस रावनु। सो कि मान अब परम सुहावनु॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयेउ तात निसिचर कुलभूषन॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा-सुख-सागर॥

दो०—बचन कर्म मन कपटु तजि, भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि, भयेउँ कालबस बीर॥

बंधुबचन सुनि फिरा बिभीषन। आयेउ जहं त्रैलोक-बिभूषन॥
नाथ भूधराकार-सरीरा। कुंभकरन आवत रन-धीरा॥
एतना कपिन्ह सुना जब काना। किल-किलाइ धाए बलवाना॥
लिए उपारि बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥
कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥
मुरइ न मन तन टरइ न टारा। जिमि गज अर्क-फलन्हि कर मारा॥
तब मारुतसुत मुठिका हनेऊ। परेउ धरनि ब्याकुल सिर धुनेउ॥
पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥
पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥
चली बली-मुख-सेन पराई। अति-भय-त्रसित न कोउ समुहाई॥

दो०—अंगदादि कपि मुर्छित, करि समेत सुग्रीव।
कांख दाबि कपिराज कहुँ, चला अमित-बल-सींव॥

उमा करत रघुपति नरलीला। खेल गरुड जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग कालहि जो खाई। ताहि कि सोहै ऐसि लराई॥
जगपावनि कीरति बिस्तारिहहि। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहँ॥
मुरछा गइ मारुतसुत जाना। सुग्रीवहिं तब खोजनि लागा॥
सुग्रीवहुँ के मुरछा बीती। निबुकि गयेउ तेहि मृतक प्रतीती॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चला तेहि जाना॥
गहेउ चरन धरि धरनि पछारा। अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा॥

पुनि आयेउ प्रभु पहिं बलवाना । जयति जयति जै कृपानिधाना ॥
नाक कान काटे जिइ जानी । फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी ॥
सहज भीम पुनि बिनु स्रुति नासा । देखत कपिदल उपजी त्रासा ॥
जय जय जय रघु-बंस मनि धाए कपि देइ हूह ।
एकहिं बार जो तासु पर छाँडेन्हि गिरि तरु जूह ॥
कुंभकरन रनरंग बिरुद्धा । सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा ॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीडी गिरिगुहा समाई ॥
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा । कोटिन्हि मींजि मिलव महि गर्दा ॥
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा । निसरि पराहिं भालु-कपि-ठाटा ॥
रन-मद-मत्त निसाचर दर्पा । बिस्व ग्रसिहिं जनु एहि बिधि अर्पा ॥
मुरे सुभट रन फिरहिं न फेरे । सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे ॥
कुंभकरन कपिफौज बिडारी । सुनि धाई रजनी-चर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई । रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥
दो०—सुनु सौमित्र कपीस तुम्ह सकल सँभारेहु सैन ।
मैं देखउँ खल-दल-बलहि बोले राजिवनैन ॥
कर सारंग साजि कटि माथा । अरि-दल-दलनि चले रघुनाथा ॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुषटकोरा । रिपुदल बधिर भयेउ सुनि सोरा ॥
सत्यसंध छांडे सर लच्छा । काल सर्प जनु चले सपच्छा ॥
जहं तहं चले बिपुल नाराचा । लगे कटन भट बिकट पिसाचा ॥
कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा । बहुतक बीर होहिं सत खंडा ॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं । उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ॥
लागत बान जलद जिमि गाजहिं । बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं ॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं । धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं ॥
दो०—छन महं प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच ।
पुनि रघुबीर निषंग महं प्रबिसे सब नाराच ॥
कुंभकरन मन दीख बिचारी । हती निमिष महं निसिचरि-धारी ॥
भयेउ क्रुद्ध दारुन बल बीरा । करि मृग-नायक-नाद गंभीरा ॥
कोपि महीधर लेइ उपारी । डारइ जहं मरकटभट भारी ॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे । सरन्हि काटि रजसम करि डारे ॥
पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक । छांड़े अति कराल बहु सायक ॥
तन महं प्रबिसि निसरि सर जाहीं । जनु दामिनि घन मांझ समाहीं ॥
सोनित स्रवत सोह तन कारे । जनु कज्जलगिरि गेरुपनारे ॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए । बिहंसा जबहिं निकट भट आए ॥
गर्जत धायेउ बेग अति कोटि कोटि गहि कीस ।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दस सीस ॥

भागे भालु-बलीमुख-जूथा । बृक बिलोकि जिमि मेषबरूथा ॥
चले भागि कपि भालु भवानी । बिकल पुकारत आरत बानी ॥
यह निसिचर दु-काल-सम अहई । कपिकुल देस परन अब चहई ॥
कृपा-बारि-धर राम खरारी । पाहि पाहि प्रनतार-तिहारी ॥
स करुन-बचन सुनत भगवाना । चले सुधारि सरासन बाना ॥
राम सेन निज पाछे घाली । चले सकोप महा बल-साली ॥
खैंचि धनुष सर-सत संधाने । छूटे तीर सरीर समाने ॥
लागत सर धावा रिस भरा । कुधर डगमगत डोलति धरा ॥
लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी । रघु-कुल-तिलक भुजा सोइ काटी ॥
धावा बामबाहु गिरि धारी । प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी ॥
काटे भुजा सोह खल कैसा । पच्छहीन मंदरगिरि जैसा ॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका । ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका ॥

दो०—करि चिक्कार घोर अति, धावा बदन पसार ।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा होति पुकारि ॥

सभय देव करुनानिधि जानेउ । स्रवन प्रजंत सरासन तानेउ
बिसिखनिकर निसि चर-मुख भरेऊ । तदपि महाबल भूमि न परेऊ ॥
सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा । कालत्रोन सजीव जनु आवा ॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा । धर तें भिन्न तासु सिर कीन्हा ॥
सो सिरु परेउ दसासन आगे । बिकल भयेउ जिमि फनि मनि त्यागे ॥
धरनि धसई धर धाव प्रचंडा । तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ॥
परे भूमि जिमि नभते भूधर । हेठदाबि कपि भालु निसाचर ॥
तासु तेज प्रभुबदन समाना । सुर मुनि सबहिं अचंभौ माना ॥
सुर दुदुंभी बजावहिं हरषहिं । अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं ॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए । तेही समय देवरिषि आए ॥
गगनोपरि हरि-गुन-गन गाए । रुचिर बीर-रस प्रभु मन भाए ॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए । राम समर महि सोहत भए ॥

छं०—संग्रामभूमि बिराज रघुपति, अतुलबल कोसलधनी ।
स्रमबिंदु मुख राजीवलोचन, अरुन तन सोनितकनी ॥
भुज जुगल फेरत सरसरासन, भालु कपि चहुँ दिसि बने ।
कह दास तुलसी कहि न सक, छबि सेष जेहि आनन घने ॥

दो०—निसिचर अधम मलायतन, ताहि दीन्ह निज धाम ।
गिरिजा ते नर मंदमति, जे न भजहिं श्री राम ॥

रावन रथी बिरथ रघुबीरा । देखि बिभीषन भयेउ अधीरा ॥
अधिकप्रीति मन भा संदेहा । बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥

नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना ॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईसभजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोनसमाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा। यहि सम बिजयउपाय न दूजा ॥
सखाधर्म मय अस रथ जा के। जीतन कहं न कतहुं रिपु ताके ॥

दो०—महा अजय संसाररिपु, जीति सकइ सो बीर।
जा के अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥
सुनत बिभीखन प्रभु बचन, हर्षि गहे पद कंज।
एहि मिसि मोहि उपदेसिअ राम, कृपा सुख पुंज ॥
उत पचार दसकंठ भट, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि, करि निज निज प्रभु आन ॥

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना ॥
हरहूं उमा रहे तेहि संगा। देखत राम-चरित-रन-रंगा ॥
सुभट समर रस दुहुं दिसि मांते। कपि जयसील राम बल ताते ॥
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं ॥
मारहिं काटहिं धरनि पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं ॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं ॥
निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर डारि देहिं बहु बालू ॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे ॥

छं०—क्रुद्धे कृतांत समान कपि तनु स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दिहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं ॥
मारहिं चपेटहिं डांटि दातन्ह काटि लातन्ह मींजहीं।
चिक्करहिं मरकट भालु छल बल करहिं जेहि खल छीजहीं ॥
धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अंतावरि मेलहीं।
प्रहलादपति जनु बिबिध तनु धरि समरअंगन खेलहीं ॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन तें कुलिसकर कुलिस ते तृन कर सही ॥

दो०—निज दल बिचल बिलोकि तब, बीस भुजा दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन, फिरहु फिरहु करि दाप ॥

धायेउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सनमुख चले हूह देइ बंदर ॥
गहि कर पादप उपल पहारा। डारेहिं ता पर एकहिं बारा ॥

लागहिं सैल बज्रतनु तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रनदुर्मद रावन अति कोपी॥
इत उत झपटि दपटि कपिजोधा। मर्दई लाग भयेउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥
पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं॥
तेहि देखे कपि सकल पराने। दसहुँ चाप सायक संधाने॥

छं०—संधानि धनु सरनिकर छांड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहं कपि भागहीं॥
भयो अति कोलाहलु बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुनासिंधु आरतबंधु जनरच्छक हरे॥

दो० सिबचलत देखि अनीक निज, कटि निखंग धनु हाथ।
लछिमन चले सकोप तब, नाइ राम पद माथ॥

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकि तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउं तोहि सुतघाती। आजु निपातिं जुड़ावउं छाती॥
अस कहि छांडेसि बाल प्रचंडा। लछिमन किए सकल सतखंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रमान करि काटि निबारे॥
पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरिस्रिंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥
सत सर पुनि मारा उर माहीं। परेउ अवनितल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरुछा जागी। छांड़ेसि ब्रह्म दीन जो सांगा॥

छं०—सो ब्रह्मदत्त प्रचंडसक्ति अनंतउर लागी सही॥
पर्‌यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुलबल महिमा रही॥
ब्रह्मांड भुवन बिराज जा के एक सिर जिमि रजकनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रि-भुवन-धनी॥

दो०—देखत धायेस पवन सुत बोलत बचन कठोर।
आवत ही उर महुँ हनेउ मुष्टि प्रहार प्रघोर॥

जानु टेकि कपि भुमि न गिरा। उठा संभारि बहुत रिसभरा॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु ब्रज्रप्रहारा॥
मुरुछा गइ बहोरि सो जागा। कपिबल बिपुल सराहन लागा॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तें जियत उठेसि सुरद्रोही॥
अस कहि कपि लछिमन कहुँ ल्यायो। देखि दसानन बिसमउ पायो॥
कह रघुबीर समुझु जिअ भ्राता। तुम्ह कृतांतभच्छक सुरत्राता॥
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गगन गई सो सक्ति कराला॥
पुनि कोदंडबान गहि धाए। रिपुसन ख अतिआतुर आए॥

छं०—आतुर बहुरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।
गिर्यो धरनि दसकंधर बिकलतर बानसत बेध्यौ हियो॥
सारथी दूसरि घालि रथ तेहि तुरत लंका लेइ गयो।
रघुबीर बंधु बीर प्रतापपुंज बहोरि प्रभुचरनजिन्ह नयो॥

दो०—उहां दसानन जागि करि, करै, लाग कछु जग्य।
जय चाहत रघुपति बिमुख सठ हठबस अतिअग्य॥

इहा बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहिं सुनाई॥
नाथ करइ रावनु एक जागा। सिद्ध भए नहिं मरिहि अभागा॥
पठवहु देव बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावनभवन असंका॥
जबहीं करत जग्य सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेखा॥
रन तें निलज भाजि गृह आवा। इहां आइ बकध्यानु लगावा॥
अस कहि अंगद मारेउ लाता। चितव न सठ स्वारथ मनुराता॥

छं०—नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केसि नारि निकारि बाहर तेतिदीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांतसम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंसकृत मख देखि मन महं हारई॥

दो०—मख बिधंसि कपि कुसल सब आए रघुपति पास।
चलेउ लंकपति क्रुध होइ त्यागि जिवन कै आस॥

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाहिं सिरन्ह पर॥
भयेउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्धनिसाना॥
चली तमी-चर-अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥
प्रभु सनमुख धाए खल कैसे। सलभसमूह अनल कहुँ जैसे॥
इहां देवतन्ह बिनती कीन्ही। दारुन बिपती हमहिं एहि दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही॥
देवबचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटाजूट दृढ बांधे माथे। सोहहिं सुमन बिच बिच गाथे॥
अरुननयन बारिद-तनु-स्यामा। अखिल-लोक-लोचन अभिरामा॥
कटितट परिकर कसेउ निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥

छं०—सारंग कर सुन्दर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यौ।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरा-सुर-पद लस्यो॥
कहत दास तुलसी जबहिं प्रभु सरचाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

दो०– हरष देव बिलोकि छबि बरषहि सुमन अपार ।
जयजय प्रभु गुन ग्यान बल धाम हरन महिभार ।।
मज्जहि भूत पिचास बेताला । प्रथम महा झोटिंग कराला ।।
काक कंक लइ भुजा उड़ाहीं । एक ते छीनि एक लेइ खाहीं ।।
एक कहहिं ऐसिउ सौंधाई । सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई ।।
कहंरत भट घायल तट गिरे । जहं तहं मनहुं अर्धजल परे ।।
खेंचहिं गीध आंत तट भए । जनु बनसी खेलहिं चित दए ।।
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं । जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं ।।
जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं । भूत पिसाच बधू नभ नंचहि ।।
भट कपाल करताल बजावहिं । चामुंडा नाना बिधि गावहिं ।।
जंबुकनिकर कटक्कट कट्टहिं । खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं ।।
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं । सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ।।

छं०— बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं ।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट सुरपुर पावहीं ।।
निसि-चर-बरूथ बिमर्दि गरजहिं भालु कपि दर्पित भए ।
संग्राम अंगनसुभट सोवहिं रामसर निकरन्हि हए ।।

दो०—हृदय बिचारेसि दसबदन भा निसि-चर-संहार ।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउं अपार ।।

छं०—धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा ।
अति कोपि करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा ।।
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावन लियो ।
चहुंदिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तनु ब्याकुल कियो ।।

दो० –देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार ।
अंतरहित होइ निमिष महं कृत माया बिस्तार ।।

तोमर छं०—जब कीन्ह तेहि पाखंड । भए प्रगट जंतु प्रचंड ।।
बेताल भूत पिसाच । कर धरें धनु नाराच ।।
जोगिनि गहें करबाल । एक हाथ मनुजकपाल ।।
करि सद्य सोनित पात । नाचहिं करहि बहु गान ।।
धरु मारु बोलहिं घोर । रहि पूरि धुनि चहुँ ओर ।।
मुख बाइ धावहिं खान । तब लगे कीस परान ।।
जहं जाहि मर्कट भागि । तहं बरत देखहिं आग ।।
भए बिकल बानर भालु । पुनि लागि बरषइ बालु ।।
जहं तहं थकित करि कीस । गर्जेउ बहुरि दस सीस ।।
लछिमन कपीस समेत । भए सकल बीर अचेत ।।

हा राम हा रघुनाथ । कहि सुभट मीजहिं हाथ ॥
एहि बिधि सकल बल तोरि । तेहि कीन्ह कपट बहोरि ॥
प्रगटेसि बिपुल हनुमान । धाए गहें पाषान ॥
तिन्ह राम घेरे जाइ । चहुं दिसि बरूथ बनाइ ॥
मारहु धरहु जनि जाइ । कटकटहिं पूँछ उठाइ ॥
दस दिसि लंगूर बिराज । तेहि मध्य कोसलराज ॥

छं०—तेहि मध्य कोसलराज सुंदर स्यामतन सोभा लही ।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही ॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी ।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी ॥
माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे ।
सरनिकर छांड़े राम रावन-बाहु-सिर पुनि महि गिरे ।
श्री-राम-रावन समरहित अनेक कल्प जो गावहीं ॥
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं ।

दो०—ता के गुनगन कछु कहे जड़मति तुलसीदास ।
निज-पौरुष-अनुसार जिमि मसक उड़ाहिं अकास ॥
काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस ।
प्रभु क्रीड़त मुनि सिद्ध सुर ब्याकुल देखि कलेस ॥

काटत बढहिं सीस समुदाई । जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥
मरइ न रिपु स्रम भयेउ बिसेखा । राम बिभीषनतन तब देखा ॥
उमा काल मरु जा की ईछा । सोइ प्रभु कर जन प्रीतिपरीछा ॥
सुनु सर्बग्य चराचर नायक । प्रनतपाल सुर-मुनि-सुख-दायक ॥
नाभीकुंड सुधा बस या के । नाथ जियत रावनु बल ता के ॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला । हरषि गहे कर बान कराला ॥
असगुन होन लगे तब नाना । रोवहिं बहु सृगाल खर स्वाना ॥
बोलहिं खग जग-आरति-हेतू । प्रगट भए नभ जहं तहं केतू ॥
दस दिसि दाह होन अति लागा । भयेउ परब बिनु रबिउपरागा ॥
मंदोदरि उर कंपति भारी । प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी ॥

छं०—प्रतिमा स्रवहिं पबि पात नभ अतिबात बहु डोलति मही ।
बरषहिं बलाहक रुधिरु कच रज असुभ अति सक को कही ॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जये ।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भये ॥

दो०—खैंचि सरासन स्रवन लगि छांडे सर एकतीस ।
रघु-नायक-सायक चले मानहुं काल फनीस ॥

सायक एक नाभिसर सोखा । अपर लगे सिर भुज करि रोखा ॥
लेइ सिर बाहु चले नाराचा । सिर-भुज-हीन रुंड महि नाचा ॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । तब प्रभु सर हति कृत जुग खंडा ॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी । कहां राम रन हतउँ पचारी ॥
डोली भूमि गिरत दसकंधर । छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥
धरनिपरेउ दोउ खंड बढ़ाई । चापि भालु-मर्कट-समुदाई ॥
मंदोदरि आगे भुज सीसा । धरि सर चले जहां जगदीसा ॥
प्रबिसे सब निषंग महुं जाई । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ॥
तासु तेज समान प्रभुआनन । हरषे देख संभु चतुरानन ॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा । जय रघुबीर प्रबल-भुज-दंडा ॥
बरषहिं सुमन देव-मुनि-बृन्दा । जय कृपाल जय जयति मुकुंदा ॥

छं०—जय कृपाकंद मुकुंद द्वन्दहरन सरन-सुख-प्रद प्रभो ।
खल-दल-बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो ॥
सुर सिद्ध मुनि गंधर्व हरषे बाजि दुदुंभि गहगही ।
संग्रामअंगन रामअंग अनंग बहु सोभा लही ॥
सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं ।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगनु भ्राजहीं ॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिरकन तन अति बने ।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने ॥

दो०—कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किये सुरबृन्द ।
हरषे बानर भालु सब जय सुखधाम मुकुंद ॥

———
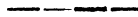
केशवदास

केशवदास

केशव की जन्मतिथि अभी तक प्रामाणिक रूप से निश्चित नहीं हो सकी है। इस विषय में केवल इतना ही निश्शंक रूप से कहा जा सकता है कि ये महाकवि तुलसीदास के समकालीन थे, और किंवदंतियों तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि इन की मृत्यु तुलसीदास की मृत्यु (सं० १६८०) के पहले ही हो चुकी थी।

काल-निर्णय

भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुमान इन के जन्म काल के संबंध में किए हैं। परंतु प्रायः इन सभी अनुमानों की आधार-भित्ति एकही है। इस बात को केशव से परिचित होने वाले सभी विद्वान् जानते हैं कि इन्हों ने अपनी आयु का एक बड़ा भाग बिताने के बाद काव्य रचना में हाथ लगाया। कहा जाता है कि इन के कुल में परंपरा से संस्कृत का विशेष रूप से अध्ययन और अध्यापन चला आता था। इन के पिता काशीनाथ जी एक बहुत बड़े ज्योतिषी थे, और उन का बनाया हुआ 'शीघ्रबोध' नामक प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथ आज भी ज्योतिष के विद्यार्थियों को प्रथम पाठ्य पुस्तकों में से है। केशवदास जी ने भी हिंदी में साहित्य रचना के पहले संस्कृत भाषा और साहित्य का ही विशेष रूप से अध्ययन किया था और उस में प्रगाढ़ पांडित्य भी प्राप्त किया था, जैसा कि उन के हिंदी के ग्रंथों से भी स्पष्ट प्रतीत होता है। परंतु संस्कृत कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि जिस में कोई कम से कम तीस पैंतिस वर्ष की अवस्था से पहले इतना ज्ञानगांभीर्य प्राप्त कर सके जितना कि केशव ने किया था।

ओड़छा दरबार से केशव के विद्वान घराने का संबंध पीढ़ियों से चला आता था, और इन के पितामह को भी उक्त दरबार से पुराणवृत्ति मिली थी। इसी वृत्ति के संबंध में इन के पूर्वजों को ओड़छे से बहुत सी भूसंपत्ति भी मिली थी। स्वयं केशवदास जी को इस दरबार से इतना सम्मान और इतनी संपत्ति मिली थी जितनी कि भूषण को छोड़ कर और कदाचित ही किसी हिंदी के कवि को मिली हो।

ओड़छे के प्रसिद्ध राजा मधुकरशाह के आठ पुत्र थे । उन में एक का नाम इंद्रजीत था और यही केशव दास के प्रधान आश्रयदाता थे । इन्हीं के एक भाई वीरसिंह देव थे जिन की प्रशंसा में कवि ने 'वीरसिंह देव-चरित' नामक अपना प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा था । परंतु पहले ये बहुत दिनों तक इंद्रजीत के आश्रय में रहे और उन्हीं की प्रार्थना से इन्हों ने अपना पहला ग्रंथ 'रसिकप्रिया' सं० १६४८ में पूरा किया था। यह संस्कृत के तो पूरे विद्वान थे ही। यहां तक कि 'भाषा' में काव्य ग्रंथ लिखना अपने लिए हास्यास्पद समझते थे। इसी लिए इन्हों ने कह दिया है कि हमारे कुल में सभी संस्कृत के ही विद्वान् और साहित्य सेवी हैं और हमीं पहले पहल भाषा में ग्रंथ रचना करने जारहे हैं और सो भी इंद्रजीत के आग्रह से—

"तिन कवि केसव दास सों, कीन्हों परम सनेहु
सब सुख दै कै यह कही रसिक--प्रिया करि देहु"

केशवदास जी बहुत वृद्ध होकर मरे थे इस का प्रमाण इन की रचनाओं में ही मिलता है। एक जगह वे कहते हैं—

"केसव केसनि असि करी, जैसी अरि न कराहिं,
चंद्र बदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं ।

इतनी बड़ी अवस्था तक इन्हों ने केवल पांच या छै ग्रंथ लिखे। इस से यह सिद्ध होता है कि इन के हर एक ग्रंथ की रचना में बहुत पर्याप्त समय लगा होगा। दूसरे शब्दों में हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि इन के एक एक ग्रंथ में साधारण रूप से पांच से दस वर्ष तक लग जाते होंगे। रसिकप्रिया इन का पहला ग्रंथ था। इस में भी इन्हें बहुत समय लगा होगा। यह सं० १६४८ में पूरा हुआ था। इन के जीवनकाल से संबंध रखने वाली यही पहली तिथि है जो हमें निश्चय रूप से मालूम है। अब ऊपर लिखी हुई सब परिस्थितियों पर विचार करते हुए मानना पड़ता है कि इन की अवस्था इस समय चालीस से कम कदाचित ही रही हो। क्योंकि कम से कम तीस वर्ष की अवस्था तक तो यह संस्कृत के ही अध्ययन में लगे रहे होंगे। इस के बाद दस वर्ष का समय हिंदी में काव्यकौशल प्राप्त करने तथा रसिकप्रिया को पूरा करने में अवश्य लगा होगा। इसी विचार धारा के अनुसार इन का जन्म सं० १६०८ के लगभग माना जाता है। कोई सं० १६१२ के लगभग इन की जन्म तिथि निश्चय करते हैं। परंतु मिश्रबंधु सं० १६०८ ही में इन का जन्म होना मानते हैं। 'सरोज' कार शिवसिंह सेंगर इन का जन्म संवत् १६२४ मानते हैं। 'की' साहब सं० १६१२ मानते हैं।

'केशव पंचरत्न' के संकलनकर्त्ता लाला भगवान दीन इन का जन्म सं० १६१८ में मानते हैं, परंतु इस निर्णय के पक्ष में इन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया है। इस

संबंध में वह इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि, "केशवदास और तुलसीदास समकालीन कवि थे।"

यह तो हुआ इन के जन्म संवत् के संबंध में। इन का मृत्यु संवत् भी ऐसा ही संदिग्ध और अनुमान के आधार पर है। सं० १६६८ तक के इन के रचे हुये ग्रंथ मिलते हैं। सं० १६६४ में इन्होंने वीरसिंह देव चरित की रचना की थी और सं० १३६७ में इन्होंने 'विज्ञानगीता जो कि किसी किसी के मत से इन की सब से और प्रायः सब के मत से इन की अंतिम रचना मानी जाती है–समाप्त की। इस के बाद संभव है ये कुछ वर्ष और जिए हों और इन्हीं परिस्थितियों के आधार पर इन की मृत्यु सं० १६७४ के लगभग मानी जाती है। 'की' साहब और मिश्रबंधु दोनों ही इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। तुलसीदास की मृत्यु सं० १६८० में हुई है, और एक बहुत प्रचलित किंवदंती है कि केशवदास मरने के बाद प्रेत होकर एक कुए में पड़े थे। संयोग से एक बार तुलसीदास ने पानी लेने के लिए उस में अपना लोटा डाला पर केशव के प्रेत ने इन्हें पहचान कर इन का लोटा पकड़ कर कहा 'मैं केशव हूँ, मेरा प्रेत योनि से उद्धार करो तभी मैं लोटा छोड़ूँगा।' तुलसीदास ने उन्हें स्वरचित रामचंद्रिका के इक्कीस पाठ करने का उपदेश दिया, पर प्रेत को पहला छंद ही नहीं याद आ रहा था; तुलसीदास ने इस की भी याद दिला दी। तब वे चंद्रिका के इक्कीस पाठ करके प्रेत योनि से मुक्त हुए। इसी से कदाचित् इन्हें 'कठिन काव्य के प्रेत' भी कहा है। जोहो, इस किंवदती में यदि कुछ तत्व है तो केवल इतना ही कि ये तुलसी दास की मृत्यु के कुछ पहले ही मर चुके थे। किंवदंतियां बिल्कुल निस्सार या निर्मूल नहीं हुआ करतीं। इस किंवदंती के अनुसार भी केशवकी मृत्यु सं० १६७४ के लग-भग माननी अनुचित नहीं प्रतीत होती। अंत में इस संबंध में इतना और कह सकते हैं कि केशव की निर्धारित मृत्यु तिथि, इन की जन्मतिथि की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है।

वंश और निवास-स्थान

केशवदास ने 'कविप्रिया' के द्वितीय प्रभाव में अपने वंश और कुल-शील आदि का कुछ विस्तार से वर्णन किया है। इस वंशावली से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन के पूर्व पुरुषों में से प्रायः सभी संस्कृत के अच्छे विद्वान् हुए थे, और तत्कालीन राजाओं ने उन का अच्छा सम्मान भी किया था। यह भारद्वाज गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण थे जिन की उत्पत्ति, केशव के अनुसार, सनत्कुमारों से हुई थी। इन के पूर्व पुरुषों में जयदेव के पुत्र कोई दिनकर हुए थे जिन्हें बादशाह अलाउद्दीन बहुत मानता था। इन्हीं के प्रपौत्र एक त्रिविक्रम मिश्र हुए थे जिन के पैर गोपाचाल क़िले के राजा ने पूजे थे। और इन्हीं त्रिविक्रम के प्रपौत्र हरिहर नाथ जी हुए जो तोमर पति के यहां रहते थे। हरिहरनाथ के पुत्र कृष्णदत्त को ओड़छाधीश महाराज रुद्र ने पुराणवृत्ति दी थी। यही कृष्णदत्त

केशव के पितामह थे। केशव के पिता का नाम काशीनाथ था। इन के तीन पुत्र थे—बलभद्र, केशव दास, और कल्याणदास। इन के बड़े भाई बलभद्र भी अच्छे कवि थे; इन का रचा हुआ 'नखसिख' हिंदीसाहित्य का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। कवि के छोटे भाई कल्याणदास की भी कुछ फुटकर कविता मिलती है। पहले इन के पूर्वज ब्रजमंडल के अंतर्गत 'डीग कुम्हरे' नामक एक गाँव में रहते थे। ओड़छे में सब से पहले इन के पितामह कृष्णदत्त जी राजा मधुकरशाह के समय में आए थे। कहा जाता है कि ओड़छा नगर के व्यासपुरा मुहल्लों में केशव के निवासस्थान का भग्नावशेष एक पुराने खंडहर के रूप में एक पुरानी इमली के पेड़ के नीचे अब तक विद्यमान है। सुनते हैं मिश्रबंधुओं ने इस इमली वृक्ष के दर्शन भी किए हैं।

केशवदास के विवाह और संतति आदि के विषय में अभी तक निश्चय रूप से कुछ ज्ञान नहीं हो सका है। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रसिद्ध 'सतसैया' कार महाकवि बिहारी केशवदास जी के ही पुत्र थे। जिस तरह आज कल भूषण और मतिराम का भाई होना विवादग्रस्त हो गया है, इसी प्रकार केशव और बिहारी के संबध को लेकर एक नई समस्या उपस्थित हो गई है। बाबू राधाकृष्ण दास ने बहुत से प्रमाणों की सहायता से यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि बिहारी केशव के ही पुत्र थे। पर मिश्रबंधु और बहुत से अन्य विद्वान् इन प्रमाणों को कुछ विशेष महत्त्व देने में असमर्थ हैं। यह विवाद बिहारी के इस दोहे को लेकर उठा—

> "जनम लियो द्विजराज कुल' $\frac{\text{सुबस}}{\text{प्रगट}}$ बसे ब्रज आय।
> मेरे हरो कलेस सब' केशव केशव राय॥'

बृंदावन निवासी गोस्वामी राधाचरण दास जी के अनुसार इस दोहे में आये हुए 'केसवराय' शब्द से महाकवि केशव दास से मतलब है। और केशव दास को बिहारी का पिता, इस दोहे पर की गई एक टीका के आधार पर माना जाने लगा है। इस दोहे का अर्थ उस टीकाकार ने इस प्रकार किया है—

> "श्लेष अर्थ केसव पिता, अरु हरि केसव राय।
> ये द्विज कुल, ये राज कुल, उपजे अर्थ जताय॥"

इस अर्थ, तथा बिहारी की कविता में बुंदेलखंडी शब्दों के प्रयोग और इन की रचना में एक जगह 'मधुकर' शब्द (ध्वनि) से ओड़छाधीश मधुकर शाह को सूचित करते हुए, के प्रयुक्त होने से इन विद्वानों को विश्वास होगया कि हो न हो महाकवि केशवदास ही बिहारी के पिता थे। पर इस निष्कर्ष तक पहुँचने में जो मुख्य कठिनाइयां पड़ सकती हैं इन पर उन लोगों का ध्यान कदाचित् नहीं गया, और गया भी तो ये विद्वान् हिंदी संसार में धूम मचा देने वाली एक नई

और ज्वलंत 'सूझ' को विद्वानों के सामने रखने की उतावली में इन पर गंभीर और शांत विचार करने में असमर्थ हुए।

इस बात को सभी मानते हैं कि बिहारी माथुर चौबे थे और केशवदास थे मिश्र। इस मोटी सी बात पर ध्यान देने का कष्ट कदाचित् नहीं उठाया गया। बिहारी की जन्म तिथि केशव के मृत्यु काल के निकट सं० १६६० के लग भग मानी जाती है। और फिर 'सरोज' कार के हिसाब से तो बिहारी का जन्म केशव के पहले ही हो चुका था। बिहारी स्वयं अपनी जन्मभूमि ग्वालियर अपना स्थायी रूप से निवास अपनी ससुराल मथुरा में कहते हैं। कहां ग्वालियर और मथुरा और कहां ओड़छा। इस बात का कहीं से भी प्रमाण नहीं मिलता कि केशव कभी भी ग्वालियर या मथुरा में रहे हों। और यदि केशव सचमुच बिहारी के पिता होते तो उन्होंने इस संबंध को कहीं न कहीं स्पष्ट अवश्य कर दिया होता, जब कि उन्होंने अपनी जन्मभूमि आदि का ठीक ठीक पता दे दिया है। सारांश यह कि बिहारी को केशव का पुत्र मान लेने का अभी तक हमारे पास कोई प्रबल प्रमाण नहीं है बल्कि इस मत से विपक्ष के प्रमाण या अनुमान ही अधिक प्रबल हैं। ऐसी स्थिति में बिहारी को केशव का पुत्र मान लेना असंगत है।

केशव के आश्रयदाता

केशव हिंदी के उन थोड़े से इने गिने दो या तीन कवियों में से एक हैं जिन का राज दरबारों से बहुत बड़ा सम्मान हुआ था। इस विषय में केशव की तुलना चंद या भूषण से ही हो सकती है। इन लोगों के आश्रयदाता इन्हें अपने आश्रित नहीं बल्कि अपने समकक्ष मित्र की भांति मानते थे और इसी कारण से इन कवियों की मान मर्यादा, रहन सहन, या ठाट बाट प्रायः इन के आश्रय दाताओं ही के टक्कर का हुआ करता था। वे लोग अपने-अपने आश्रय-दाताओं के युद्ध, विवाह, आखेट, देशाटन, मनोरंजन आदि सभी कार्यों में सदा साथ साथ रहते थे। चंद कवि होने के अतिरिक्त पृथ्वीराज का एक प्रधान सामंत और मंत्री भी था और उन को प्रायः सभी लड़ाइयां में साथ रहा और मित्रता दोनों में यहां तक थी कि दोनों एक ही साथ, एक दूसरे के हाथ से अफ़ग़ानिस्तान में शाहाबुद्दीन के दरबार में मरे। लग भग ऐसा ही संबंध भूषण और शिवा जी में था, अंतर केवल इतना था कि भूषण बहुत दिन बाद शिवा जी के दरबार में पहुँचे थे। ठीक इसी प्रकार का संबंध केशव और ओड़छाधीश मधुकर शाह के पुत्र इंद्रजीत और वीर सिंहदेव में था।

ओड़छा दरबार

यहां पर ओड़छा और बुँदेलखंड तथा वहां के राजाओं के विषय में की कुछ आवश्यक सूचना दे देना सुविधाजनक होगा।

मधुकर शाह के पूर्व पुरुषों में एक कोई 'पंचम' नाम के बड़े प्रतापी राजा हुए थे। इन के कई पुत्र थे जिन में से एक का नाम बुँदेल पड़ा। बुँदेल इन का नाम यों

पड़ा। पंचम की मृत्यु के बाद इन के और भाइयों ने सारा राज्य आपस में बाँट इन्हें राज्य से वंचित कर दिया। इस से ये बहुत खिन्न हो वन में किसी देवी के मंदिर में बैठ कर बड़ी उग्र तपस्या करने लगे। जब किसी प्रकार देवी प्रसन्न नहीं हुईं तो इन्होंने अपनी गर्दन भेंट करने के लिए तलवार निकाली और वार चलाही चुके थे कि इतने में देवी ने प्रगट होकर इन का हाथ थांभ लिया; तलवार गले को केवल स्पर्श मात्र कर सकी थी पर एक बूँद रक्त नीचे देवी के चरणों पर गिरही पड़ा। इसी से वह 'बुँदेल' नाम से प्रसिद्ध हुए। देवी के वरदान से इन्हें अपना खोया हुआ राज्य मिला और उसे इन्होंने बहुत कुछ बढ़ाया भी। इन के नाम से इन का राज्य 'बुँदेलखंड' नाम से प्रसिद्ध हुआ और इन के वंशज 'बुँदेला' कहलाए। यही नाम आज तक चले आरहे हैं। 'बुँदेले' वास्तव में 'गहरवार' क्षत्रिय हैं और ये अपनी उत्पत्ति दशरथ के पुत्र रामचंद्र के वंश में मानते हैं। बुँदेल के वंश में कई प्रतापी राजा हुए जिन में एक भारतीचंद थे। इन्हीं भारतीचंद ने कालिंजर के किले पर धावा करते हुए हिन्दुस्तान के बादशाह शेरशाह सूर का बध किया था तथा

मधुकरशाह

इन्हीं के कुल में ओड़छे के प्रसिद्ध महाराज मधुकर शाह का जन्म हुआ था। इन्हों ने अकबर जैसे प्रतापी सम्राट से अच्छा लोहा लिया। बुँदेलखंड के आसपास के मुग़लों के कई गढ़ इन्होंने छीन लिए थे। यहां तक कि इन की धृष्टता से खीझ कर अकबर ने स्वयं मुराद की अधीनता में इन को परास्त करने के लिए बड़ी भारी सैन्य भेजी पर उसे भी इन्हों ने मार भगाया। इन्हीं मधुकर शाह के बारह पुत्र हुए। इनमें सबसे बड़े का नाम दूलहराम, उपनाम राम शाह था। इन के अन्य भाइयों में सब से प्रसिद्ध इंद्रजीत, वीरसिंहदेव, रतनसेन और राव प्रताप थे। इन में से केशव के प्रधान आश्रय दाता इंद्रजीत, थे जो कि वीरसिंहदेव के बड़े भाई थे। कवि प्रिया में कविने एक जगह राजा राम शाह (दूलह राम या राम सिंह) को भी अपना आश्रय-दाता माना है। इस में से बड़े भाई राम शाह का अकबर के दरबार में बड़ा मान था और इंद्रजीत के हाथ में राज्य भार सौंप, अधिकतर यह मुग़ल दरबार में ही रहते थे।

राजा रामशाह के राज्यप्रबंध का भार इंद्रजीत के ऊपर था। इन्होंने

इंद्रजीत

इंद्रजीत को 'कछवा-कमल' नामक गढ़ दे दिया था। इंद्रजीत साहित्य और संगीत दोनों के बड़े रसिक थे और इन का अधिकांश समय साहित्य और संगीत चर्चा में ही व्यतीत होता था। देश के नामी गवैयों और पातुरों का इन के यहां सदा जमघट लगा रहता था। इन के यहां राय प्रवीन, नवरँग राय, विचित्रनयना, तानतरंग, रंगराइ, और रंगमूरति ये पांच पातुरें स्थायी रूप से रहती थीं। इन के ये नाम भी कल्पित जान पड़ते हैं। अनुमान से ऐसा जान पड़ता है कि इंद्रजीत ने तो इन की भिन्न-भिन्न विशेषताओं के अनुसार उन के भिन्न-भिन्न नाम रख दिए होंगे। विद्वानों

का भी इन के दरबार में बड़ा आदर था। केशव पहले यहां संस्कृत के विद्वान् के नाते ही सम्मानित हुए थे। इन के पिता काशीनाथ का पहले इस दरबार में बड़ा मान था। जान पड़ता है कि यह लोग ओड़छा दरबार के 'राजपंडित' थे। परंतु केशव इंद्रजीत आदि भाइयों के समान वयस्क थे और अधिकतर इन के साथ ही रहते थे। इंद्रजीत के आग्रह से ही केशव ने हिंदी का अभ्यास किया। केशव का कहना है कि मेरे वंश में कोई संस्कृत छोड़ हिंदी समझता भी न था और उस में ग्रंथ लिखना तो दूर रहा। अपने वंश में सब से पहले केशव दास ने ही साहित्य-सेवा के लिए हिंदी को चुना और सो भी इंद्रजीत के आग्रह से। केशव के वंश में संस्कृत का इतना प्रचार था कि 'भाषा' में यह लोग बोलना भी नहीं जानते थे। संस्कृत ही इन के नित्य प्रति की व्यावहारिक भाषा थी। परंतु केशव ने इद्रजीत के सत्संग में पड़कर हिंदी से प्रेम करना सीखा। इंद्रजीत को भाषासाहित्य और संगीत से विशेष प्रेम था और केशव संस्कृत काव्यकला और अलंकार शास्त्र के प्रौढ़ विद्वान् थे ही। हिंदी में तब तक कोई ग्रंथ इन विषयों पर नहीं लिखा गया था। इद्रजीत को भाषा साहित्य की यह कमी बहुत खटकती होगी और इसी कमी को पूरी करने के लिए ही उन्हों ने केशव को विद्वत्ता और साहित्यिक प्रतिभा को इस ओर प्रेरित की होगी। केशव के मुख्य ग्रंथ रसिकप्रिया और रामचंद्रिका इंद्रजीत के आग्रह से ही लिखे गए थे। केशव इंद्रजीत के दरबार की प्रसिद्ध पातुर रायप्रबीन के भी बड़े कृपा पात्र थे और अपना सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यप्रिया' इन्हों ने रायप्रबीन को बाधित करने के लिए ही लिखा था। उन दिनों दिल्ली के सिंहासन पर सम्राट् अकबर विराज मान थे। उन्हों ने रायप्रबीन के रूप गुण की प्रशंसा सुन कर इंद्रजीत से उसे अपने दरबार में भेज देने के लिए कहा। रायप्रबीन संगीत कला के अतिरिक्त काव्य कला में भी निपुण थी वह थी तो वारवधू पर एक मात्र इंद्रजीत को ही अपना स्वामी समझती थी। उसने अकबर की इस आज्ञा को सुन कर इंद्रजीत के सामने निम्न लिखित पद्य पढ़ा।

रायप्रबीन

> आई हौं बूझन मंत्र तुम्हैं निज सासन सों सिगरी मति गोई;
> देह तजौं कि तजौं कुलकानि हिए न लजौं लजिहै सब कोई।
> स्वारथ औ परमारथ को गथ, चित्त विचारि कहौ अब सोई;
> जामैं रहै प्रभु की प्रभुता, अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।

रायप्रबीन प्रतिव्रता थी, उसे अकबर की ख़िदमत में रहना असह्य था। इंद्रजीत ने यह बात समझ कर उसे अकबर के यहां नहीं भेजा, पर इस धृष्टता पर चिढ़ कर अकबर ने उस पर एक करोड़ रुपये का जुर्माना कर दिया। इस संकट काल में केशव ने जुर्माना माफ़ कराने का बीड़ा उठाया। वह यह जानते थे कि बादशाह बीरबल (अकबर के प्रसिद्ध मंत्री और साथी माहराजा बीरबल) को बहुत मानता है और वह अगर चाहेंगे तो जुर्माना माफ़ हो जायगा। इस महान् कार्य का भार

बीरबल

अपने सिर पर केशव ने केवल जुर्माना माफ़ कराने के लिए ही नहीं लिया, उन्हें राय प्रबीन का भी मान रखना था। जो हो वह इसी उद्देश्य से आगरे बीरबल के यहां पहुँचे और उन।को प्रशंसा में इन्होंने यह छंद पढ़ा।

"पावक, पंछी, पसू, नर, नाग, नदी, नद, लोक रचे दस चारी,
'केशव' देव, अदेव रचे, नरदेव रचे, रचना न निवारी।
कै बर-बीर बली बलबीर, भयो कृत कृत्य महाव्रत धारी,
दै कर तापन आपन पाहि, दई करतार दुवौ करतारी।"

इस छंद का बीरबर पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने छै लाख रुपयों की हुंडियां जो उन की जेब में पड़ी थीं, तुरत निकाल कर उन्हें दे दी और दरबार में जाकर युक्ति से अकबर को समझा बुझा कर जुर्माना भी माफ़ कर दिया। केशव दास ने निम्नलिखित छंद और पढ़ा—

"केशव दास-के भाल लिख्यौ विधि, रंक को अंक बनाय संवार्‌यौ,
छोड़े घुट्यौ नहिं धोए-धुयो, बहु तीरथ के जल जाय परवार्‌यौ।
ह्वै गयो रंक ते राउ नहीं; जब बीर बली बलबीर निहार्‌यौ,
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाय रह्यौ मुख चार्‌यौ।

इस छंद पर बीरबल इतने मुग्ध हुए कि इन्होंने कहा—'जो इच्छा हो माँगो'। इस पर केशव ने पूर्ण सतोष दिखलाते हुए केवल यही कहा—

"यों ही कह्यौ तु बीरबल, माँगु जु माँगन होय,
माँग्यौ तुव दरबार में, मोहि न रोकै कोय।"

इन छंदों से केशव के जीवन, उन की आर्थिक स्थिति उन के विचार तथ सभाचातुरी आदि पर कुछ प्रकाश पड़ता है। सब से पहिले तो यह कि बीरबल के पास जाने के पहिले इन की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी और तब तक इंद्रजीत के दरबार में भी इन का यथोचित सम्मान नहीं हुआ था। यदि ऐसा न होता तो बीरबल के सामने यह इतना दैन्य भाव न प्रगट करते। इन्होंने दूसरे छंद में अपने को बार-बार 'रंक' (भिखमंगा) कहा है। यदि इंद्रजीत के यहां इन का पूर्ण रूप से सम्मान हुआ होता तो इन को कदाचित ऐसा कहने की आवश्यकता न पड़ती। दूसरे यह कि यदि इन में सभाचातुरी, वाक्पटुता और सब से अधिक समयोचित काव्य रचना कीं प्रतिभा न होती तो बीरबल ऐसे परम चतुर और अभ्यस्त दरबारी को इतनी जल्दी अपनी ओर आकृष्ट कर इन से इतना बड़ा काम न ले सकते थे। इस का एक और प्रमाण यह भी हो सकता है कि दूसरे छंद को सुन कर बीरबल के 'वरंब्रूहि' कहने के बाद भी इन्होंने और कुछ नहीं केवल यही मांगा कि 'आप के दरबार में मुझे कोई न रोके।' केशव द्रव्य से मान और प्रतिष्ठा को अधिक महत्त्वपूर्ण समझते थे।

इंद्रजीत के सिर पर से इतनी बड़ी बला टालने के बाद से केशव उन के अत्यत कृपापात्र और अभिन्नहृदय मित्र हो गए, और इन का मान सम्मान फिर ओड़छे में दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। परंतु जुर्माना माफ़ करने पर भी अकबर राय प्रबीन को केवल एक बार अपने सम्मुख उपस्थित करने का लोभ संवरण न कर सके। परंतु राय प्रबीन भी किसी से कम सभाचतुर न थी। वह काव्य कला में भी 'प्रवीन' तो थी ही, अकबर के सामने ही भरी सभा में उस ने बड़ी युक्ति से यह प्रसिद्ध दोहा पढ़ा—

"बिनती रायप्रबीन की, सुनिये साहि सुजान,
जूंठी पातर खात हैं, बारी बायस स्वान।"

अकबर को इतनी बड़ी मीठी चुटकी कदाचित ही किसी ने दी हो। पर अकबर गुणग्राहक भी था। उस ने राय प्रबीन को पहचान लिया और उसे यथोचित सम्मान के साथ ओड़छे वापस भिजवा दिया। यह राय प्रबीन भी केशव को बहुत मानती थी और उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'कवि प्रिया इसी के लिए लिखा और इसी का समर्पण किया था, और इस दृष्टि से राय प्रबीन भी केशव की एक आश्रयदाता (Patron) कही जा सकती है।

इंद्रजीत के भाई वीरसिंह देव केशव के दूसरे प्रधान आश्रयदाता थे। वह बड़े वीर, विद्वान्, उदार और न्यायप्रिय हो गए हैं। प्रसिद्ध धर्मशास्त्र ग्रंथ 'वीर मित्रोदय' उन्होंने ही मित्रमिश्र नाम के एक ब्राह्मण विद्वान् के सहयोग से बनाया था और यह ग्रंथ उतना ही प्रामाणिक माना जाता है जितना कि 'मिताक्षरा' या 'दायभाग' न्यायप्रिय वह इतने थे कि इन्होंने किसी जघन्य अपराध में पाकर स्वयं अपने पुत्र को ही प्राण दंड दिलवा दिया था। उदार यह इतने थे कि योग्य पात्र को सब कुछ दे सकते थे और प्रायः ब्राह्मणों को तुला दान देते रहते थे। इन्हीं वीर सिंह के हाथ से अकबर के प्रसिद्ध विद्वान् मंत्री शेख़ अबुल फ़ज़ल की हुई थी, और सो भी केशव के अनुसार सम्मुख युद्ध में। बात यह हुई थी कि वीरसिंह देव स्वभाव से ही बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के थे। यहां तक कि उन्होंने अपनी इसी आदत से शाहंशाह अकबर को भी अपना शत्रु बना लिया। इन के बड़े भाई राजा राम शाह तो अकबर के दरबार में ही रहते थे और वे अपनी अनुपस्थिति में इंद्रजीत और वीरसिंह आदि अपने भाइयों के अधिकार में बुंदेल खंड प्रांत के भिन्न-भिन्न भाग छोड़ गये थे। पर वीरसिंह बहुत उद्दंड और बड़े महावाकांक्षी थे। इन की मुख्य जागीर 'बरांव' में थी जिसे राम शाह ने इन के उपभोग के लिए अलग कर दिया था। पर छोटी सी जागीर से इन को कब संतोष होनेवाला था। उन्होंने बहुत थोड़े ही समय में यवावा, तोआर, नरवर आदिमुगल साम्राज्य के कुछ ज़िले अपने अधिकार में कर लिये। ग्वालियर का राजा और युद्धप्रिय जाठ

वीरसिंह देव

सरदार भी इन के डर से थर थर कांपते थे। अकबर ने यह सब सुनकर इन्हें कुचल डालने के लिए राजा आसकरन की आधीनता में एक बड़ी सेना भेजी। पर इधर वीरसिंह भी उन के भाई इंद्रजीत और उन के भाई रावप्रताप ने अच्छी सहायता दी और अंत में मुगल सेना को इन से नीचा देखना पड़ा। तब अकबर ने खिझ कर इन को पकड़ने के लिए अपने प्रसिद्ध सेनापति अब्दुल-रहीम खानखाना और दौलतखाँ को भेजा पर इन्हें भी सफलता न मिली। खानखाना ने 'खिलत' और मनसब आदि का लालच देकर वीरसिंहदेव को अकबर के पक्ष में करने की भी चेष्टा की थी और यह चाल उन की कारगर भी हो चुकी थी, पर वीरसिंह एक छोटी सी बात पर रुष्ट हो कर फिर इन के चंगुल से शिकार के बहाने साफ़ निकल गये। अंत में अकबर को रामशाह पर ही संदेह हुआ कि इन्हीं की सहायता और षड्यंत्र से ही वीरसिंह पकड़ में नहीं आता। इस पर रामशाह ने वीरसिंह को पकड़ने की प्रतिज्ञा कर राजसिंह के साथ उसे बराँव के दुर्ग में घेर लिया पर फिर भी वह और उस से शपथ खा कर यह कहलाया कि अगर तुम दो दिन के लिए बराँव छोड़ कर चले जाओ तो हम घेरा उठा लेंगे। वीरसिंह इन के विश्वास में आकर बाहर चला गया पर उस के बाहर जाते ही रामशाह ने क़िले पर क़बज़ा कर लिया,और वीरसिंह को गुप्तरीति से सोते समय मरवा डालने की चेष्टा की पर वीरसिंह संयोग से जग गए और उन्हों ने अपने साथियों की सहायता से आततायियों को मार भगाया।

यह सब होने के बाद वीरसिंह को घर और बाहर चारो ओर शत्रुही शत्रु देख, किसी प्रभावशाली मित्र का आश्रय लेने की आवश्यकता जान पड़ी। उन दिनों सलीम और अकबर में 'अनारकली' नाम की बाँदी के संबंध को खेदजनक घटना को लेकर घोर वैमनस्य हो गया था। अकबर की यह बाँदी अपूर्व सुंदरी थी पर सलीम का उस के साथ सच्चा प्रेम होगया और वह भी स्वभावतः सलीम को बहुत चाहने लगी थी। यह बात अकबर को कई कारणों से असह्य प्रतीत हुई और उस ने राजनैतिक कारणों से या ईर्ष्या वश उसे जीवित अवस्था में ही दीवार में चुनवा दिया बस इस के बाद फिर सलीम ने पिता की ओर आँख उठा कर नहीं देखा और पिता से विद्रोह कर लिया। इस घटना के कुछ ही दिन बाद सलीम के शरण में वीर-सिंहदेव पहुँचे। दोनों हो को एक दूसरे की मित्रता बड़ी आवश्यक प्रतीत हुई। उस समय सलीम इलाहाबाद के पासही खेमा डाले पड़ा था। दोनों ने आजीवन एक दूसरे के साथ आजीवन सच्ची और निष्कपट मित्रता निबाहने का प्रण किया। सलीम ने सबसे पहले वीरसिंह को शेख़ अबुलफ़जल को पकड़ लेने या मार डालने की प्रार्थना की। वीरसिंह देव चरित्र के अनुसार सलीम ने अबुल फज़ल को मरवा डालने का कारण वीरसिंह को यह बताया था कि इसी शेख़ ने ही पिता और पुत्र में वैमनस्य करा दिया है। उन्हीं दिनों अकबर ने बड़ी जल्दी में शेख़ को दक्खिन से वापस बुलाया था और वह कूच पर कूच करता हुआ आगरे को लौट रहा

था। सलीम ने समझा हो न हो यह अकबर से मिल कर कोई मेरा बड़ा भारी अनिष्ट साधन करना चाहता है। उसे यह विश्वास हो गया था कि अगर यह (शेख़) बादशाह से मिल गया तो फिर मेरी ख़ैर नहीं है। इसी आशंका से वह जैसे हो वैसे शेख़ और शाह के मिलन को असंभव कर देना चाहता था। इस काम के लिए उस ने वीरसिंह को ही चुना। पहले तो वीरसिंह ने सच्चे मित्र की भाँति सलीम को बहुत कुछ ऊंच नीच समझाया, पर वह एक ही ज़िद्दी था। उस ने अपने हाथों वीरसिंह को सिरो पाव देकर उन के सिर पर पाग बांधी और अपनी तलवार उस के कमर में लगा दी। अंत में वीरसिंह को जाना पड़ा। उस समय शेख़ नरवर तक पहुँच गया था। उसे पता लगा कि सलीम का भेजा हुआ वीरसिंह उसे पकड़ने आ रहा है। यह सुनते ही उस के क्रोध का ठिकाना न रहा और वह तुरंत घोड़े पर सवार हो कर 'काफ़िर' को सज़ा देने के लिए चल पड़ा। शेख़ के एक विश्वास पात्र पठान ने उसे बहुत रोका और समझाया कि इस मौके पर वीरसिंह का सामना करना जान बूझ कर मौत के मुँह में कूदना है, पर शेख़ ने एक न मानी। रण मद में मत्त शेख़ जिधर ही झुक पड़ता उधर ही भगदड़ मच जाती थी। केशव ने शेख़ की इस समय की वीरता का बड़ा ही सजीव और अनूठा वर्णन किया है। पर अंत में शेख़ वक्षस्थल में एक गोली खाकर गिरा। युद्ध समाप्त होने के बाद वीरसिंह को खून से लथपथ उस का शरीर मिला और उस का हर्ष विषाद में परिणत हो गया पर उस ने शेख़ का गला काट लिया। इसे उस का कटा सिर सलीम को दिखाना था।

वीरसिंह के इसी कार्य को लेकर ऐतिहासिकों ने उन को हत्यारा डाकू बदमाश, सभी कुछ कहा है ओड़छा गज़ेटियर का कहना है कि इसी अबुल फ़ज़ल की हत्या ने वीरसिंह की उज्ज्वल कीर्ति में सदा के लिए एक काला धब्बा लगा दिया है। मुसलमान ऐतिहासिकों ने और भी बहुत कुछ बुरा भला कहा है। परंतु इस घटना के संबंध में केशव ने क्या कहा है इस पर विचार करने का कष्ट कदाचित् किसी इतिहास प्रेमी ने नहीं उठाया। पाश्चात्य साहित्य से परिचित सभी विद्वान् इस बात को जानते होंगे कि वहां ऐतिहासिक घटनाओं के संबंध के कवियों के कथन कितने महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक माने जाते हैं। अस्तु इस घटना के बाद भी अकबर ने वीरसिंह को पकड़ने के लिए कई प्रयत्न किये और सं० १६५९ में उस के आज्ञानुसार त्रिपुर क्षत्री एक बड़ी सेना लेकर वीरसिंह पर चढ़ दौड़ा और बेतवा के किनारे प्रसिद्ध 'बेतवा युद्ध' हुआ।[1] इस में वीरसिंह के प्रधान सहायक संग्राम में शाह मारे गए पर विजय अंत में बुंदेलों की ही हुई। इस घटना के थोड़े ही दिन बाद अकबर मर भी गया। जहांगीर सिंहासनारूढ़

---

[1] प्रस्तुत संग्रह में वीरसिंहदेव-चरित से इस इतिहासप्रसिद्ध 'बेतवायुद्ध' का वर्णन भी दिया गया है।

होने के बाद भी वीरसिंह से अपनी मित्रता का निर्वाह उसी प्रकार करता रहा। वीरसिंह ने अपने अंतिम दिन साहित्य और प्रजा की सेवा में बिताए। इन्होंने कुछ बड़ी बड़ी इमारतें बनवाईं जिन में सब से महत्त्वपूर्ण वृंदावन का केशवदेव का मंदिर था। यह मंदिर बहुत बड़ा था और यदि इसे औरंगजेब गिरवा न देता तो आज इस की गिनती ताजमहल और हलीवैद आदि भारत के कुछ प्रधान प्रासादों में होती। वर्नियर ने अपनी यात्रा में इस मंदिर का वर्णन किया है। अपने राज्य में इन्होंने तीन बड़े तालाब बनवाये जिन के नाम इन्होंने अपने नाम के तीनों शब्दों के अनुसार क्रम से वीरसागर, सिंहसागर, और देवसागर रक्खे। इन्हीं वीरसिंह के साथ केशव बहुत दिन तक रहे और इन्हीं की कार्ति को अमर करने के लिए इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'वीरसिंह देव चरित' लिखा था।

वीरसिंह के विषय में जिन घटनाओं का उल्लेख ऊपर किया गया है वे केशव के ग्रंथ से ही ली गई हैं, और प्रस्तुत संग्रह भी अधिकतर वीरसिंहदेव चरित से ही किया गया है, और इसी कारण से वीरसिंह का वृत्तांत कुछ विस्तार से देना पड़ा।

रतन सेन

मधुकर शाह के पुत्रों में एक रतनसेन थे जिन का जन्म इंद्रजीत के पहले हुआ था। इन्हीं की प्रशंसा में केशव ने अपना ग्रंथ 'रतन बावनी' लिखा था। यह बहुत होनहार थे पर दैवयोग से सोलह वर्ष की अवस्था में ही शाही सेना से लड़ते समय इनका स्वर्ग वास हो गया। इन के संबंध में अन्यत्र कहीं से कुछ विशेष परिचय प्राप्त करने का कोई साधन नहीं है। 'रतन बावनी' से केवल इतनी ही जानकारी होती है कि यह अपने पिता की अनुपस्थिति में भी बड़े साहस से प्रबल शत्रु का सामना करने के लिए तैयार हो गए थे। लोगों ने बहुत समझाया पर इन्हों ने किसी की एक न सुनी। इस का कारण यह था—मधुकर शाह एक बार अकबर के दरबार में गए हुए थे। उस समय यह जो जामा पहने हुए थे वह काफ़ी लंबा नहीं था। इसे देख कर अकबर ने उन से ऐसा ऊंचा (उटंग) जामा पहनने का कारण पूछा। इस के उत्तर में मधुकर शाह ने बड़ा विचित्र उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि, 'मेरा देश कँटीली जमीन में है'। इस पर अकबर ने बड़े गरूर से कहा, अच्छा मैं तुम्हारा देश और घर देखूंगा।' वह छंद यों है:—

"देख अकब्बर साहि उच्च जामा तिन केरो,
बोले बचन विचारि कहौ कारन यहि केरो।
तब कहत भयव बुंदेल मणि मम सुदेश कंटकि अवन,
करि कोप ओप बोले बचन में देखौं तेरो भवन।"

मधुकर शाह को अकबर के यह शब्द तीर के समान लगे। उन्होंने तुरंत रतन-सेन के पास एक पत्र भेज कर उन्हें अकबर के अपने घर देखने की सूचना दे दी

और शाही सेना का उचित सत्कार करने की भी सलाह दे दी। रतनसेन समझ गए कि बादशाह के इस घर देखने की इच्छा का क्या आशय है. और वे तुरंत मुग़लों से लोहा लेने के लिए तैयार हो गए। अपने साथियों को भी उत्साह देकर उन्होंने तैयार कर लिया। इतनी थोड़ी अवस्था में ही उन्होंने एक अभ्यस्त सेनानायक का सा व्यवहार कर दिखाया। केशव इस बावनी में ब्राह्मण के वेश में परमेश्वर को भी लाए हैं। वह रतनसेन के साहस और आत्मसम्मान की परीक्षा करने के अभिप्राय से बराबर उन्हें यह समझाते हैं कि जीवन से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं, यदि जीवन है तो मान-प्रतिष्ठा बहुत मिल जायगी। पर रतनसेन ने अपनी दलीलों से यह सिद्ध कर दिया कि अपनी मान और प्रतिष्ठा(पति') गँवा कर जीना मरने से भी बुरा है। अंत तक वह अपने प्रण पर दृढ़ रहे और वीरतापूर्वक लड़ते हुए स्वर्ग सिधारे।

केशव के ग्रंथ

निम्नलिखित ग्रंथों के रचयिता केशवदास माने जाते हैं 'राम अलकृतमंजरी' कहा जाता है कि केशव ने एक छंद ग्रंथ भी लिखा था पर वह यदि लिखा भी गया हो तो इस समय अलभ्य है। किसी-किसी का कहना है कि यही "राम अलंकृतमंजरी"-ही उन का छंद ग्रंथ है। जो हो यह ग्रंथ भी अभी प्रकाशित नहीं हुआ है और न इस की कोई हस्तलिखित प्रति ही हमारे देखने में आई है।

राम अलंकृत मंजरी

"जहाँगीर चंद्रिका" नाम का एक ग्रंथ जोकि केशव मिश्र का लिखा हुआ कहा जाता है, नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में मिला है। इस में जहाँगीर का वर्णन है, पर यह ग्रंथ भी अभी हमारे देखने में नहीं आया है। अतः इस के संबंध में विशेष कुछ कहा नहीं जा सकता। इस का समय सभा की खोज की रिपोर्ट में सं० १६६९ लिखा हुआ है। इस का विषय बादशाह जहाँगीर का यश वर्णन है। पर केशव के अन्य ग्रंथों से इस बात का पता नहीं चलता कि जहाँगीर भी इन के आश्रयदाताओं में से एक थे। परंतु यह सभी जानते हैं कि जहाँगीर केशव के आश्रयदाता के आश्रयदाता थे। बड़े संकट काल में जहाँगीर ने वीरसिंह देव की बाँह गही थी। जान पड़ता है कि इसी विचार से केशव ने जहाँगीर की प्रशंसा में कुछ छंद लिखे हों।

जहाँगीर चंद्रिका

'नखसिख' लिखने की प्रथा हिंदी में सब से प्रथम शायद केशव ने ही चलाई। इस का रचनाकाल नागरीप्रचारिणी सभा के अनुसार सं० १६५७ है। इस का विषय जैसा कि नाम ही से प्रगट है, नायिका के अंग-प्रत्यंगों का वर्णन है।

नखसिख

केशव के ऊपर लिखे हुए ग्रंथों को अभी बहुत कम प्रसिद्धि मिली है और कुछ इने गिने लोगों को ही अभी तक उन्हें देखने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है। इन के अतिरिक्त केशव के अन्य छै ग्रंथ हिंदी

रसिकप्रिया

संसार के सामने हैं और सर्वसाधारण के लिए सुलभ हैं। इन में से 'रसिकप्रिया' उन का पहला प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है इस का विषय रस-निर्णय है और इसे उन्हों ने इंद्रजीत (मधुकरशाह के पुत्र) के आग्रह से लिखा था, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। इस ग्रंथ में इन्हों ने शृंगार को 'रसराज' सिद्ध करते हुए यह दिखाया है कि इसी के अंतर्गत कविता के अन्य सब रस आ जाते हैं। इस का रचनाकाल सं० १६४८ हैं।

कविप्रिया

केशवदास ने अपना प्रसिद्ध अलंकार-ग्रंथ 'कविप्रिया' प्रवीनराय पातुर को समर्पित किया है। केशव को हिंदी कविता के प्रथम आचार्य (पहिलौ आचारज) का गौरवान्वित पद इसी ग्रंथ की रचना से मिला है। इस विषय पर इन के पहले भी दो एक कवियों ने लेखनी उठाई थी पर उन के ग्रंथ इस कोटि के नहीं हुए कि लेखक को 'आचार्य' पदवी मिल सके। इस का रचना काल सं० १६४८-५८ माना जाता है।

रामचंद्रिका

केशव ने 'रामचंद्रिका' नाम का एक प्रबंधकाव्य भी लिखा है। इस में विविध छंदो में रामायण की कथा संक्षेप से वर्णित है। इस की रचना 'कविप्रिया' के साथ ही साथ हुई थी। कार्तिक सुदी ५ बुधवार सं० १६५८ को कविप्रिया और कार्तिक सु० १२ सं० १६५८ को इन्हों ने रामचंद्रिका समाप्त की। केशव के ग्रंथों में सब से अधिक प्रचलित और सर्वप्रिय यही ग्रंथ हुआ। इस में से कुछ चुने हुए वीररसात्मक पद्य प्रस्तुत ग्रंथ में संगृहीत हुए हैं।

विज्ञानगीता

हिंदू दार्शनिक विचारों पर भी केशव ने 'विज्ञानगीता' नाम का एक ग्रंथ लिखा जो हिंदी साहित्य में अपने ढंग का निराला है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह केशव की सबसे अधिक प्रौढ़ रचना है। इस ग्रंथ को उन्हों ने सं० १६६७ में समाप्त किया था। विज्ञानगीता के बहुत से छंद ऐसे हैं जो 'कविप्रिया' और 'राम चंद्रिका' में भी आए हैं। केशव के प्रसिद्ध ग्रंथों में सबसे अधिक यही था।

वीरसिंहदेव चरित

वीरसिंह देव केशव के प्रधान आश्रयदाता थे और इन का वर्णन कुछ बिस्तार से ऊपर हो भी चुका है। इन्हीं की प्रशंसा में केशव ने वीरसिंहदेव चरित नामक ग्रंथ लिखा था। इस का रचनाकाल सं० १६६४ है। यह ग्रंथ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है और इस के कुछ विशेष अंश प्रस्तुत संग्रह में भी लिए गए हैं।

रतन बावनी

रतनसिंह या रतनसेन ओड़छा के सुप्रसिद्ध महाराज मधुकरशाह के एक होनहार पुत्र थे परंतु अभाग्यवश इन की मृत्यु शाही फ़ौज के साथ युद्ध में बहुत थोड़ी अवस्था में ही होगई थी। इन की वीरता के संबंध के ५२ छंद केशव ने इस ग्रंथ में लिख करयह सिद्ध कर दिया है कि वह वीररस की भी अच्छी कविता कर सकते थे। इस ग्रंथ की कथा का सारांश रतनसेन का परिचय देते समय संक्षेप से दिया जा चुका है। कुछ विद्वानों का मत है कि

यह केशव की पहली रचना है। इस के पहले किसी ने 'बावनी' नहीं लिखी है। एक प्रसिद्ध आधुनिक समालोचक का अनुमान है कि जैसा 'बिहारी सतसई' के अनुकरण में अनेक कवियों ने सतसैयाँ लिखी हैं वैसे ही इस "रतन बावनी" के अनुकरण में भूषण ने 'शिवा बावनी' लिखी है। परंतु ऐसा कहना कदाचित भूषण के साथ अन्याय करना होगा। स्वयं भूषण ने 'शिवा बावनी' नाम का कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखा था। इस नाम का जो ग्रंथ इस समय प्रचलित है उस में भूषण के रचे हुए शिवाजी के संबंध के बावन 'स्फुट' छंदो का संग्रह है। यह संग्रह भूषण के बाद किसी अज्ञात नाम कवि ने किया है। प्रस्तुत संग्रह में रतनबावनी का भी मुख्यांश संगृहीत है।

केशव की कविता

भाषा

केशव, सूर और तुलसी के समकालीन थे। सूर ब्रजभाषा के और तुलसी अवधी के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि केशव के समय में अवधी और ब्रजभाषा दोनो ही का कविता में बराबर व्यवहार होता था, परंतु क्रमशः कवियों का झुकाव ब्रजभाषा की ओर अधिक होता जाता था, और इस कथन के प्रमाण से यह कहा जा सकता है कि अवधी में 'मानस' की रचना कर तुलसी ने 'गीतावली' आदि अपने अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को ब्रजभाषा में लिखना आवश्यक समझा। केशव ने भी ब्रजभाषा की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता को पहचाना और अपनी कविता का माध्यम इसी को बनाया। केशव के जीवन-काल का अधिकांश बुंदेलखंड में बुंदेली राजाओं के सत्सग में बीता था और इस-लिए उन को भाषा में एक निश्चित सीमा तक बुँदेलखंडी शब्दों या मुहाविरों का मिलना अस्वाभाविक या कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इन को भाषा में एक और विशेषता है जिसे यदि चाहें तो एक बड़ा दोष भी कह सकते हैं। वह है इन का 'संस्कृतपना'। यह तो सभी जानते हैं कि यह वास्तव में संस्कृत के ही विद्वान् थे और किंवदंती है कि इन के कुटुंब के लोग संस्कृत छोड़ किसी अन्य भाषा का व्यवहार ही नहीं जानते थे; फिर ऐसी अवस्था में केशव संस्कृतपने से अपने को कहां तक बरी कर सकते थे। केशव के लिए यही बहुत था कि इन्होंने अपने वंश में अगुवा होकर हिंदी में कुछ उत्तम ग्रंथ रचे। इस संस्कृतप्रियता के कारण केशव के काव्य में प्रायः दुरूहता आजाती है।

केशव की कला

संस्कृतप्रियता के अतिरिक्त केशव में दो एक बातें और ऐसी भी थीं जिन के कारण इन की रचना की दुरूहता और भी बढ़ जाती थी। केशव कोरे भक्त कवि नहीं थे, वह वास्तव में एक कलाकार थे। इन की भाषा केवल शुद्ध और नैसर्गिक भावों के प्रवाह के लिए ही नहीं थी। वह साधारण बात को भी अलंकारों के प्रपंच में डाल कर इस प्रकार रखते थे कि प्रायः इनके मर्म को समझना कठिन

हो जाता है। यह भावों को बाह्याडंबरों से ऐसा आच्छादित कर देते थे कि बहुधा साधारण ज्ञान रखने वाले के लिए यह समझना कि उन के भीतर क्या रहस्य छिपा पड़ा है, एक प्रकार से असंभव हो उठता है। इन्हीं कारणों से लोग इन्हें 'कठिन काव्य के प्रेत' भी कहते हैं।

यह एक मोटी सी बात है कि कला का रूप ही कृत्रिम है। कला स्वाभाविक कभी हो ही नहीं सकती। फिर ऐसी अवस्था में केशव की कला में कुछ विद्वानों का अस्वाभाविकता और कृत्रिमता का दोष लगाना केशव के साथ अन्याय करना है। सूर या तुलसी इतने बड़े कलाकार नहीं थे जितने कि केशव या बिहारी। उन में प्रतिभा की मात्रा अधिक थी तो इन में शिक्षा अभ्यास और कला की। केशव में एक आदत बुरी अवश्य थी। यह कभी कभी अपनी रचना में कृत्रिमता की मात्रा इतनी बढ़ा देते थे कि प्रायः भद्दापन आ जाता है। इन मौकों पर उन के छंद ऐसे लगते हैं जैसे वह सुंदरी स्त्री जो अपनी सुंदरता बढ़ाने के लिए सिर से पैर तक अपने अंगों को अनावश्यक गहनों से मढ़ लेती है। केशव के एक ही छंद में प्रायः शब्द और अर्थशक्ति दोनों ही के चमत्कार से, खोजने पर बहुधा अलंकार, विभाव, अनुभाव, सात्विकभाव, तथा स्थायी और व्यभिचारी भावों से व्यक्त एक से अधिक और कभी-कभी परस्पर विरोधी रसों की छटा देखने में आती है। इन की इसी आदत से खीझ कर कुछ लोग प्रायः कहा करते हैं कि केशव अपनी अधिकांश रचना पांडित्य-प्रदर्शन करने के लिए किया करते थे। परंतु वास्तव में बात शायद यह नहीं थी। केशव काव्यकला के अनन्य भक्त थे। उन्हें 'चमत्कार' से कुछ विशेष प्रेम सा था और इसी धुन में कभी-कभी उन के छंद इतने चमत्कृत हो उठते थे कि पढ़ने वाले प्रायः झल्ला उठते हैं। की साहब (Mr. Keay अपनी "हिस्ट्री आव हिंदी लिटरेचर" में कहते हैं। "The poetry of Kesahva-Das is not an easy reading but there is no doubt of his being a poet of very great skill and his name is to be reckoned among the foremost." अर्थात् 'केशवदास की कविता आसान नहीं है परंतु इस में संदेह नहीं कि वह एक महान शक्तिसंपन्न कवि थे और उन की गणना हिंदी के सब से बड़े कवियों में होनी चाहिए'। शायद इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए मिश्रबंधुओं ने केशव को हिंदी कविता का 'मिल्टन' कहा है।

केशव ने अपने काव्यों में यों तो यथास्थान सभी रसों का निरूपण किया है परंतु प्राधान्य उन्हों ने शृंगार को ही दिया है। शृंगार को ही उन्हों ने रसराज मान कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि अन्य रस इस के अंतर्गत हो सकते हैं। शृंगार के बाद यदि किसी रस के निरूपण में उन्हें सफलता मिली है तो वह वीर रस है। प्रस्तुत ग्रंथ में उन की उस कविता का समह है जो कि 'चारण-काव्य' के ढंग की हुई है, 'चारण-काव्य' वस्तुतः वीररस प्रधान है; यहाँ तक कि कुछ विद्वानों ने इस ढंग के काव्य का नाम ही

केशव और वीररस

'वीर-काव्य', और इस प्रकार की कवितासंयुक्त पुस्तक का नाम 'वीरगाथा' रख दिया है। इस प्रकार के ग्रंथों में शृंगार और प्रबंधकाव्य के ढंग के साधारण विवरण भी बहुत रहते हैं पर वे हैं इसी नाम से प्रसिद्ध। हिंदी-कविता के आरंभ-काल में राजस्थान के कुछ 'चारण' और 'भट्ट' कवियों ने प्रायः बारहवीं शताब्दी के लग-भग इस ढंग की कविता की नींव डाली थी और उन्नीसवीं शताब्दी तक कवियों ने इस ढंग की कविता की है। पहला लक्षण इस प्रकार के काव्य का यह है कि कई बातों में इस का सादृश्य राजपुताने की बीहड़ 'डिंगल' कविता से पाया जाता है। इस का मुख्य लक्षण है संयुक्ताक्षरों और उन में भी विशेषतः टवर्ग के संयुक्ताक्षरों का बहु-प्रयोग। 'छप्पय' इस ढंग के काव्यकारों का बड़ा प्यारा छंद जान पड़ता है। वीररस के उद्रेक के लिए कविता में 'ओज' गुण का लाना अनिवार्य होता है और इस ओज के लाने के लिए भिन्न-भिन्न कवियों ने भिन्न भिन्न रीतियों का अनुसरण किया है पर अधिकांश ने उपर्युक्त विधि से ही काम निकाला है। केशव भी इस का आश्रय लेने को बाध्य हुए हैं। उदाहरण के लिए रतन बावनी का एक छंद देखिए :—

"जहँ अमान पट्ठान ठान हियवान सु उट्ठिव।
तहँ केशव काशी-नरेश दल रोस भरिट्ठिव।
जहँ तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुंदुभि बज्जिय।
तहाँ विकट भट सुभट छुटक घोटक तन तज्जिय।

इस छंद में डिंगल का रंग, टवर्ग और संयुक्ताक्षरों की प्रधानता, तथा अनुप्रास की 'विकट बहार आदि देखने योग्य हैं। 'रतनबावनी' की अधिकांश रचना इसी ढंग की है और छंद तो इस में सभी छप्पय हैं।

दूसरा ग्रंथ जिस में केशव ने कई स्थलों पर वीररसप्रधान रचना की है, 'वीरसिंहदेव चरित्र' है। यह रतनबावनी की भांति वीररसप्रधान ग्रंथ तो नहीं कहा जा सकता पर इस में दो एक स्थलों पर प्रकृत युद्ध के वर्णन में केशव को अच्छी सफलता मिली है और प्रस्तुत संग्रह में वही स्थल चुने गए हैं। पर इस ग्रंथ में वह वीररस के उद्रेक के लिए उसी रतनबावनी वाले पुराने पथ पर नहीं चले हैं। उदाहरणार्थ दो एक छंद नीचे दिए जाते हैं :—

काढ़े तेग सोह यौं सेख,
जनु तनु धरे धूमधुज देख।
दंड धरै जनु आपुन काल,
मृत्यु सहित जम मनहु कराल॥
मारै जाहि खंड द्वै होइ,
ताके सन्मुख रहै न कोइ।

गाजत गज, हींसत हय ठारे,
बिनु सूँडनि बिनु पायन कारे ॥
नारि कमान तीर असरार,
चहुँ दिसि गोला चले अपार।
परम भयानक यह रन भयौ,
सेखहि उर गोला लगि गयौ ॥
जूझि सेख भूतल पर परे,
नैकु न पग पाछे को धरे।

यह वर्णन उस समय का है जब अकबरी दरबार के प्रसिद्ध विद्वान् और योद्धा शेख अबुलफ़ज़ल 'क़ाफ़िर' (वीरसिंह देव) को उस की धृष्टता का उचित दंड देने के लिए चढ़ दौड़े थे। इन छंदों पर ध्यान देने से प्रगट होगा कि इन में डिंगल कविता का 'बीहड़पना' न घुसने देने की सफल चेष्टा की गई है, अथच इन में वीर-रस की मात्रा प्रचुर परिमाण में विद्यमान है। इन में वीररस के उद्रेक के निमित्त 'शब्दशक्ति' से अधिक 'अर्थशक्ति' का आश्रय लिया गया है। 'उपमा' 'रूपक' की बहार को यहां अनुप्रासों और यमकों की लड़ी से अधिक महत्त्व दिया गया है, तथा श्रुति-कटु मूर्धन्य और संयुक्ताक्षरों का प्रवेश यथाशक्ति रोका गया है। इस का फल यह हुआ है कि कविता के प्रधान गुण 'माधुर्य' का अक्षुण्ण रखते हुए भी केशव ओज लाने में समर्थ हुए हैं। छंद भी इस ग्रंथ में विविध प्रकार के आए हैं। इन बातों पर विचार करते हुए यह मानना अनुचित न होगा कि केशव ने अपने भिन्न-भिन्न ग्रंथों की रचना के समय काव्य-रचना और शैली संबंधी भिन्न-भिन्न सिद्धांतों को कार्य रूप में परिणत करने की चेष्टा की थी।

प्रस्तुत संग्रह का सबंध केवल 'रतनबावनी' और 'वीरसिंह देव चरित' की कविता से है इस लिए केशव के अन्य ग्रंथों की कविता के संबंध में विशेष कुछ विचार करने का यहाँ अवसर नहीं है। रामचंद्रिका से बहुत थोड़े से छंद लिए गए हैं। पर जो हैं वह केशव की श्रेष्ठ कला के नमूने हैं। वीरसिंहदेव चरित तथा बावनी में केशव की प्रतिभा का वह चरम विकास नहीं हो पाया है जो 'चंद्रिका' में हुआ है, इस लिए प्रबंध काव्य होते हुए भी इस में से कुछ उत्कृष्ट पद्य संग्रह कर लिए गए हैं।

(रतनबावनी)

दो०—मूषिक-बाहन गज-बदन एक-रदन[1] मुद-मूल ।
बंदहुँ गण-नायक-चरण शरण सदा सुख-तूल ।
ओड़छेंद्र मधुशाह सुत रतनसिंघ यह नाम ।
बादशाह सौं समर करि गए स्वर्ग के धाम ।

तिनकौ कछु बरनत चरित जा विधि समर सु-कीन ।
मारि शत्रु-भट बिकट अति सैन सहित परबीन ।

(युद्ध का कारण)

जिहि रिस कंपहि रूस रूम, कंपहि रन ऊ नह ।
जिहि कंपहि खुरसान शान तुरकान बिहूनह ।
जिहि कंपहि ईरान तूर्न तूरान बलख्खह ।
जिहि कंपहि बुख्खार तार तातार सलख्खह ।

राजा धिराज मधुशाह नृप यह विचार उद्दित भयव ।
हिंदुवान धर्म रच्छक समुझि पास अकब्बर के गयव ।

दिल्लीपति दरबार जाय मधुशाह सुहायव ।
जिमि तारन के माँह इंदु शोभित छवि छायव ।
देख अकब्बरशाह उच्च जामा तिन केरा ।
बोले बचन बिचारि कहौ कारन यहि केरो ।

तब कहत भयव बुंदेलमणि मम सुदेश कंटकि अवन ।
करि कोप ओप बोले बचन मैं देखौं तेरौ भवन ।

सुनत बचन मधुशाह शाह के तीर समानह ।
लिखिव पत्र ततकाल हाल तिहिं बचन प्रमानह ।।
जुरहु जुद्ध करि क्रुद्ध जोरि सेना इक ठौरिय ।
तोर तोर तन रोर शोर करिये चहु ओरिय ।।

१—दाँत ।

तुव भुजन भार है कुँवर यह रतन सेन शोभा लहय
कछु दिवस गएँ गढ़ ओड़छो दिल्लीपति देखन चहय ॥
दो०—सुनत पत्र मधुशाह को रतन सेन ततकाल ।
करिय तयारी जुद्ध की रोस चढो जिन भाल[1] ॥
दो०—साजि चमू मधुशाह-सुत हरवल दल कर अग्र ।
हय गय पयदर सजि सकल छांड़ि ओड़छौ नग्र ॥

कुमार उवाच

रतनसेन कह बात सूर सामंत सुनिज्जिय ।
करहु पैज पनधारि मारि सामंतन लिज्जिय ॥
बरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब ।
जुरि करि संगर आज सूरमंडल भेदहु सब ॥
मधुसाह-नंद इमि उच्चरइ खंड खंड पिंडहि करहुँ
कट्टहुँ सुदंत हथियान के मर्दहुँ दल यह प्रन धरहुँ ॥
जहँ अमान पट्टान ठान हियबान सु उट्ठिव ।
तहँ केशव काशी नरेश दल रोष भरिट्ठिव ॥
जहँ तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुंदुभि बज्जिय ।
तहां बिकट भट सुभट छुटक घोटक तन तज्जिय ॥
जहँ रतनसेन रण कहँ चलिव हल्लिय महि कंप्यो गयन ॥
तहँ है दयाल गोपाल तब बिप्र भेव बुल्लिय बयन

बिप्र उवाच

जुतौ भूमि तौ बेलि, बेलि लगि भूमि न हारै ।
जुतौ बेलि तौ फूल, फूल लगि बेलि न जारै ॥
जुतौ फूल तौ सुफल, सुफल लगि फूल न तोरै ।
जो फल तौ परि पक, पक्क लगि फलहिं न फोरै ॥
जा फल पक्क तौ काम सब, परिपकहिं जग मंडिये ।
प्रान जुतौ पति बहु रहै, पति लगि प्रान न छंडिये ॥

---

1 मस्तक ।

कुमार उवाच

गई भूमि पुनि फिरहि बेलि पुनि जमै जरे तैं ।
फल फूले तैं लगहिं फूल फूलंत भर तैं ॥
केशव विद्या विकट निकट बिसरे तैं आवै ।
बहुरि होय धन धर्म गई संपति पुनि पावै ॥
फिरि होइ स्वभाव सुशील मति जगत गति यहू गाइये ।
प्राण गएँ फिरिफिरि मिलहिं पति न गएँ पति पाइये ॥

विप्र उवाच

मातु हेत पितु तजिय, पिता के हेत सहोदर ।
सुतहिं सहोदर हेत, सखा सुत हेत तजहु बर ॥
सखा हेत तजि बंधु, बंधु हित तजहु सुजन जन ।
सुजन हेत तजि सजन, सजन हित तजहु सुखन मन ॥
कहि केशव सुख लगि घरनि तजि, घरनी हित घर खंडिये ।
सुइ छंडिय सब घर हेत पति, प्राण हेत पति छंडिये ॥

कुमार उवाच

जासु बीज हरि-नाम जम्यो सुचि सुकृति भूमि थल ।
एकादशी अनेक बिमल कोमल जाके दल ॥
द्विज चरणोदक बुंद कंद सींचत सुख बढ्ढिय ।
गोदानन के देत धर्म-तरुवर दिन चढ्ढिय ॥
सत्त फूल फुल्लिय सरस सुयश बास जग मंडिये ।
कहि केशव फलती बेर कर "पति" फल किमिकर छंडिये ॥

विप्र उवाच

दानो कहा न देय चोर पुनि कहा न हरई ।
लोभी कहा न लेय आग पुनि कहा न जरई ॥
पापी कहा न करै, कह न बेचै ब्योपारी ।
सुकवि न बरनै कहा-कहा साधू न सँचारी ॥
सुनि महाराज़ मधुशाह-सुव सूर कहा नहिं मंडई ।
कहि केशव घर धन आदि दै साधु कहां नहिं छंडई ॥

विप्र उवाच

पंच कहैं सो कहिय, पंच के कहत कहिज्जिय ।
पंच लहैं सो लहिय, पंच के लहत लहिज्जिय ॥
पंच रहैं तौ रहिय, पंच के दिष्षित दिष्षिय ।
परमेसुर अरु पंच सबन, मिलि इकय लिष्षिय ॥

सुनि रतनसेन मधुशाह सुव पंच सथ्थ नहि लज्जिये।
कहि केशव पंचन संग रहि, पंच भजै तहं भज्जिये॥

विप्र उवाच

लोकपाल दिगपाल जिते भुवपाल भूमि गुनि।
दानव देव अदेव सिद्ध गंधर्व सर्व मुनि॥
किन्नर नर पशु पच्छि जच्छ रच्छस पन्नग नग।
हिंदुव तुर्क अनेक और जल थलहु जीव जग॥
सुरपुर नरपुर नागपुर सब सुनि केशव सज्जियहु।
सुनि महाराज मधुशाह सुव को न जुद्ध जुरि भज्जियहु॥

कुमार उवाच

महाराज मलखान ठान लगि प्राणन छंडिव।
गहिव तरल तरवार तुरत अरि दल बल खडिव॥
राजकाज धरि लाज लोह लरि तुरुक बिहंडिव।
खरग सैनि हनि तासु बासु बैकुंठहि मंडिव॥
परताप रुद्र परताप करि अरि कुलबिनु तष्यत कियहु।
कहि केशव नर सह युद्ध करि इंद्रासन उद्दित लियहु॥

विप्र उवाच

द्विज माँगै सो देव विप्र कौ बचन न खंगिय।
द्विज बोलै सो करिय विंप्र कौ मान न भंगिय॥
परमेस्वर अरु विप्र एक सम जानि सु लिज्जिय।
विप्र वैर नहि करिय विप्र कहं सर्वसु दिज्जिय॥
सुनि रतनसेन मधुशाहसुव विप्र बोल किन लिज्जियहु।
कहि केशव तन मन वचने करि विप्र कह्य सुइ किज्जियहु॥

कुमार उवाच

पतिहिं गए मति जाय, गए मति मान गरै जिय।
मान गरे गुन गरै गरे गुन लाज जरै जिय॥
लाज जरे जस भजै भजे जस धरम जाइ सब।
धरम गये सब करम करम गए पास बसै तब॥
पाप बसे नरकन परै नरकन केशव को सहै।
यह जान देहुँ सरबसु तुम्हैं सुपीठ दएँ पति ना रहै॥

दो०—पति मति अति दृढ़ जानि कर सुनि सब बचन समाज।
राम-रूप दरसन दियौ केशव त्रिभुवन राज॥

(राम-रूप वर्णन)

हाटक जटित किरीट शीश स्यामल तनु सोहै।
हाथ धरें धनुबाण देखि मन मथ मन मोहै॥
जामवंत हनुमंत विभीषण भूपति भूषन।
केशव कपि सुग्रीव संग अंगद अरि दूषन॥
सँग सीता शेष अशेषमति गुण अशेष अंत अंगप्रति।
जहँ रतनसेन संकट बिकट प्रकट भये रघुवंश पति॥

कुमार उवाच

बिना लरें जो चलहुँ सुखद सुंदर नब को कह।
जो लरि चलौं सदेह लोग भागौ कहिं मोंकह॥
तातैं जुद्धहिं जुरहुं जुद्ध जोधन अँगवाँऊँ।
भुवि राखौ दै बाहु सीस ईसहिं पहिराँऊँ॥
राखहुँ शरीर खित्तहिं खभरि नहिं केशव नेकहु हलौं।
इहि भांति लोक अवलोक करि तबहिं सु तुव सथ्थहि चलौं॥

श्रीपरमेश्वर उवाच

प्रथम धरेहु अवतार तैं जु मेरौ ब्रत किन्नव।
जोबन तनु धन मरदि तबहिं मेरौ प्रण लिन्नव॥
प्रण प्राणन कौ बाद बहुत मेरे मन भायौ।
अब केशव इहि काल अबहि हौं भलौ रिझायौ॥
सुनि महाराज मधुशाह सुव जदपि लोभ नहिं तौ हियव।
तदपि सु मंगहि मंगने हौं प्रसन्न तोकहुं भयव॥

कुमार उवाच

लै कर बर तब बीर सभा मंडल सन बुल्लिय।
तुम साथी समरथ्थ शत्रु कहँ सत्त न डुल्लिय॥
लाज काज धरि लाह लोह लरि लरि यश लिज्जहु।
विकट कटक मैं हटक पटक भट भुवि महँ दिज्जहु॥
यह अनूप मेरौ बचन केशव चित धरि सुनहु सब।
मरहु तौ मो सथ्थहिं चलहु भज्जहु तौ भजि जाव अब॥

साथ के लोगन कौ बचन

तुम बालक हम बृध इते पर जुद्ध न देखे।
तुम ठाकुर हम दास कहा कहिये इहि लेखे॥
कहि आवै सो कहौ कहा हम तुमरो करिहैं।
हम आगैं तुम लरौ तु अब हम बूढ़ि न मरिहैं॥

कहि केशव मंडहिं रारि रण करि राखैं खित्तहि भवन ।
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव पुनि न होइ आवागवन ॥

कुमार उवाच

जानि शूर सब सथ्थ प्रगट पंचम तनु फुल्लिय ।
साधु-साधु यह बचन पाय सुख सब सौं बुल्लिय ॥
दै बरदान प्रसिद्ध सिद्ध कीनौ रण रुद्रहि ।
अधिक सुवेश सुदेश उदित उद्दित अरु बुद्धहि ॥
लखि लोकईश गुर ईश मिलि रचि कविता कविता ठई ।
सुरईश ईश जगदीश मिल एक-एक उपमा दई ॥

उपमा-वर्णन

किधौं सत्त की शिखा शोभ-साखा सुखदायक ।
जनु कुल-दीपक जोति जुद्ध-तम मेंटन लायक ॥
किधौं प्रगट पति-पुंज पुन्य कर पल्लव पिक्खिय ।
किधौं कित्ति-परभात तेज मूरति करि लिक्खिय ॥
कहि केशव राजत परम रतन सेन शिर शुम्भियहु ।
जनु प्रलय काल फणपति कहूँ फणपति फण उद्दित कियहु ॥
साजि साजि गजराज-राजि आगैं दल दीनहि ।
ता पीछे पति-पुञ्ज पुञ्ज पयदर रथ कीनहि ॥
ता पीछैं असवार शूर केशव सब मोसन ।
चलत भई चकचौंध बांधि बखतर बर जोशन ॥
तब फटक भये दल भट्ट सब तुरत सेन दपंटत रन ।
जनु बिज्जु संग मिलए कइक एकहि पवन झकोर घन ॥
कोइ निबहौ पग दोय कोइ पग तीन-तीन पर ।
कोइ निबहौ पग चार चल्यो कोइ पांच-पांच कर ॥
कोइ निबहौ पग खष्ट चलौ कोइ सात-सात तहँ ।
कोइ निबहौ पग आठ चल्यौ कोइ अग्ग अंक लइ ॥
दसइ पाय दसइ दिसइ साथी सबहि सटक्कियइ ।
इक मधुकुरशाह-नरेन्द्र सुत सूर कटक अटक्कियइ ॥
दीठि पीठि तन फेर पीठ तन इक न दिक्खिय ।
फिरहु फिरहु फिर फिरहु कहत दल सकल उमग्गिय ॥
ठान ठान निज शान मुरांक पाठान, जु धाए ।
काढ़-काढ़ तरवार तरल ता छिन तठ आए ॥

इक इक्क घाउ घल्लिव सबन रतनसेन रनधीर कहँ ।
जनु ग्वाल बाल होरी हरषि खंडल छोर अहीर कहँ ॥

दो०— रूपे शूर सामंत रण लरहिं प्रचारि-प्रचारि ।
पिच्छल पग नहिं चलहिं कोउ जूझत चलहिं अगारि ॥
मरण धारि मन लियौ वीर मधुकर सुत आयौ ।
विचल नृपति सब म्लेच्छ देखि दल धर्म लजायौ ॥
कटु कुभष्य सब करिय कुँवर रूप्यहु जुर जंगहि ।
तिल तिल तन कट्टिइव मुरकि फेरौ नहिं अंगहि ॥

कहि केशव तन बिन शीश है अतुल पराक्रम कमध किय ।
सोइ रतनसेन मधुशाहसुव तब कृपाल दुहु हत्थ लिय ॥

दो०— चले शूर सामंत सब धरम धारि प्रभु काम ।
कोपेहु तहँ माधुशाह-सुव ज्यों रावण पर राम ।
करि श्रीपतिहि प्रणाम इष्ट अपने सब बुल्लिव ।
पातशाह सुनि खबर आय बीचहि दल ढिल्लिव ।
सकल समिटि सामंत गहिव तब जाइ बाट कहि ।
लहिव जुद्ध अगवान शूर सब चले सांमुहहि ।

रजपूत दुट्टि धरणी गहहिं केशव रण तहँ हंकियव ।
सोइ रतनसेन महाराज जू विकट भट्ट बहु कट्टियव ।

दो०— रतनसेन हय छंडियौ उत कूदे सामंत ।
नोन उबारन शीश तें कियो लरन कौ तंत ।

साथी लोगन कौ बचन

बुल्लिव छत्रिय बचन सुनहु महराज सु-कानहि ।
आप जुद्ध कौं छंडि जाहु सुरपुर तिहि ठामहि ।
हम करिहैं संग्राम आज आवहिं तुव काजहि ।
राख धर्म तुम सुभग त्यागि आपुन परिवारहि ।

किज्जिय सुराज अरि मूल हनि केशव राखहि लाज रन ।
तुव नौन उबारहिं खित्त महिं यश गावहिं कवि तुम धरन ।

है बाणी आकाश सुबहु सब शूर संत यहि ।
रहहुँ तुमारे साथ मनहि करि राखहुँ अग्रहि ।
राखहु पति कुल लाज आवहिं खग्गन तनु खंडहु ।
जाहु मलेच्छ न इक्क सबै रण सैन विहंडहु ।

कहि केशव राखहु रणभुवन जियत न पिच्छल पग धरहु ।
सुइ रतनसेन कुल लाड़िलहु रिपु रण में कट्टहि करहु ।

दो०—राजा मनमुख तनु तजै करै स्वर्ग में भोग।
दुनियाँ में यश विस्तरै हँसै न जग कौ लोग।

रतनसेन रण रहिब प्राण छत्रिय भ्रम राखहु।
करहु सुवचन प्रमाण शूर सुर पुर पग नाखहु।
डेढ़ सहस असवार सहस दो पयदर रहियब।
पील पचास समेत इतिक सुरपुर मग लहियव।
जहँ सहस चारि सैना प्रबल तिन मँह कोउ न घर गयव।
सोइ रतनसेन महाराज कौ केशव यश छंदन कहिव॥

————

वीरसिंह देव चरित्र

दान लोभ विंध्यवासिनी संवाद

दान उवाच

सुनहु जगतजननी मति चारू । साहि कियौ पुनि कहा विचारू ॥
साहि सहिजादे की बात । कहियो हमसों उर अवदात ॥

श्री देव्युवाच

जबहिं तिपुर घर के मग लगे । जहां तहा के थानैं भगे ॥
सूनो जानि भंडैरि[1] मुकाम । बैठे आइ साहि संग्राम ॥
गये साहि पर साहि सलैम । भयौ साहि के तन छैम ॥
दतिया राखे बिरसिंहदेव । भसनेहे में हरसिंहदेव ॥
खड़गराइ सों भौ संग्राम । जूझे हरसिंहदेव बलधाम ॥
बीरसिंह सुनि कीनों रोस । मन ही मन मान्यो बहु सोस ॥
भइ यहि समय प्रीति अति नई । बीरसिंह देव संग्रामैं भई ॥
तब संग्राम साहि हिय हेरि । बीरसिंह को दई भंडैरि ॥
बीरसिंह संग्रामहि ऐन । कह्यो लचूरागढ़ ले दैन ॥
खड़गराइ खल खरो जिहान । महा मत्तमातंग समान ॥
बीरसिंह बरुता परचढ़्यो । बंधुबरग बहु विग्रह बढ़्यो ॥
तज्यौ लचूरा आवन दीठ । चमू चली ताकी परि पीठ ॥
रुक्यो लौटि अमिलौटा गाँउ । खड़गराइ जूझयो जिहि ठाँउ ॥
जूझयो तब ताकौ परिवार । काटे सिर सब तज्यौ बिचार ॥
लीनी जीत लचूरा ग्राम । बैठारे तहँ साहि संग्राम ॥
मूड़ काटि दै घाले तहाँ । साहि सलैम छत्रपति जहाँ ॥
अकबर साहि सुनी यह बात । मूड़ देखि सुख पायो तात ॥
उपज्यौ रोस सुनत ही बात । जालिम जलालदीन के गात ॥
पठ्यो तहँ कछवाहौ राम । साहि सलैम जहा बलधाम ॥
करि तसलीम समै जब लह्यौ । बचन निवारि राम सब कह्यौ ॥
दुहूँ दीन प्रभु साहि जलाल[2] । तुम ऊपर अति भए कृपाल ॥
तुम सुख सकल साहिबी करो । सत्रुन के सिर पर पग धरो ॥
बीरसिंह बासुकी गनेहु । जो तुम सुख सरीफखां देहु ॥

---

1 भंडेर झांसी जिले के एक स्थान का नाम है ।

2 जलालउद्दीन मोहम्मद अकबर ।

हय गय माल मुलक उमराउ । इन पर कीजै प्रगट प्रभाउ ॥
इतनौ बचन कहत ही राम । साहि सलैम हँसे बलधाम ॥
रामदास सुनु मेरी गाथ । यह साहिबी ईस के हाथ ॥
स्वर्ग नरक दस दिसि धाइये । काह कीन दई पाइये ॥
रंकहिं राजा होत न बार । राज रंक भये ते अपार ॥
जो में कत उपजावत छोभ । याको हमैं दिखावत लोभ ॥
बाबा जू के पग उद्धरै । अपनौ सीस निछावर करै ॥
बीरसिंह अरु बासुकि भूप । सुनि सरीफ़खां बुद्धि अनूप ॥
इन्हैं देत कैसो देखिये । हौं हजरति को सुत लेखिये ॥
राम दास तब ऐसो कह्यो । अब सरीफ़खां बासकि रह्यो ॥
अपने घर में सुख की जेई । राजा बीरसिंह दीजई ॥
सुनि सुनि साहि कह्यो बुधि लही । रामदास तै नीकी कही ॥
मेरो बीरसिंह जो होई । तो मैं वाहि देउ पति खोई ॥
मन क्रम बचन चित्त यह लेखि । मोकह बीरसिंह कह देखि ॥
देन कहत जगती कौ राज । ता कँह तू चाहत है आज ॥
वाके साथ विपति बरू परौं । वा बिनु राज कहां लै करौं ॥
तू मेरो सदई सुख कारि । और जो हो तो डारौं मारि ॥
जाहि वेगि जो चाहत छैम[1] । चले कूंच कै साहि सलेम ॥
करयो कूच पै कूच सभाग । गयो प्रगट प्रभु तुरत प्रयाग ॥
रामदास सब ब्योरा कह्यो । समुझ साहि सुनि चुप है रह्यो ॥
तेही समय गयौ अकुलाइ । खड़गराइ को लहुरो भाइ ॥
करी साहि सो जाइ फिरादि । अधिक अनाथन दीजै दादि ॥
साहि मुरादि जबै उत गये । रामसाहि तब आगी भये ॥
तब बोले हम साहि मुरादि । हमसे दीन न दीनी दादि ॥
सेवा देखि कृपाहग दिये । खड़ग राइ उन राजा किये ॥
सुनिये आलम पति इहु भेव । मारे हम सब बीरसिंह देव ॥
राजा बीरसिंह दोऊ संग्राम । इन्हीं दुहुन कौ एकै काम ॥
हमहिं मारि तब सुनहु सभाग । बीरसिंह नृप गये प्रयाग ॥

दोहरा

बोलि तिपुर सौं यह कही, दिल्ली के सुलतान ।
इनकौ नीकै राखिये, दै भोजन परधान ॥

---

1 कुशल (खेम) ।

चौपई

रामदास सों कहि येहु येहु । कोऊ एक बिदा कर देहु ॥
देखै जाइ आंड़छौ ग्राम । ल्यावै बेगि बोलि संग्राम ॥
भीतर भवन गये तिहि घरी । पहिरावन पठई पामरी ॥
रामदास मारो आपनो । पठै दियौ अपनी प्रति मनो ॥
कहै माहिं आलम रिस भर्‌यौ । बहुत गुनाह बुंदेलनु कर्‌यो ॥
माडौला तपै ग्वाली देस । मेरे सुत को भयौ प्रवेस ॥
बहुत बुंदेलनि बढ्यौ प्रभाउ । करिहैं साहि सलेम सहाउ ॥
रोस उठ्‌यो मेरे मन महा । इंद्रजीत को कीजै कहा ॥
बोल्यौ असरफ़ खा चित चाहि । घालो आउ बुँदेलनि साहि ॥
बिमुखनि को कीजे कुल नास । पद सनमुखनि बढ़ाव अकास ॥
अर्ज मेरि यह मानिये आज । इंद्रजीत को दीजे राज ॥
रामदास सों कह्यो बुलाइ । करो नवाज सुबा को जाइ ॥
सुभ दिन होय तो चेला करों । चेला करि बिपदा सब हरो ॥
यह कहि साहि झरोखहि गये । इंद्रजीत को देखत भये ॥
इंद्रजीत तैं जै है तहाँ । सठ संग्राम गये है जहाँ ॥
इंद्रजीत तब ऐसो कह्यो । मैं तो साहि चरन संग्रह्यौ ॥
मेरे मन यहई प्रन धर्‌यो । हजरति चरन कमल घर कर्‌यो ॥
इंद्रजीत तसलीम जु करी । साहि दई आपनि पामरी ॥
बूझे साहि सभासद सबै । बीरसिंह देव कहा है अबै ॥
इतहि नाउं कहि आया बैन । उत अति जल भरि आये बैन ॥
जब जब साहि सुनत यह नाँव । भूलत तन मन सुक्ख सुभाव ॥
सूल हिये तब हित सब सलै । नैननि ते जल धारा चलै ॥

सवैया

सूरनि को भूखन कै, दूखन असूरन को ।
कै धौं प्रति सूरनि को, साल उर परि है ॥
राजन को तिलक बिराजै, किधौं केसौराइ ।
अरि गजराजनि को, अंकुस निगरि है ॥
माँगनै को पारस कि, राज श्री को सारस ।
कहौ न हौं बनाइ घैर, होत घर घर है ॥
राजा बीरसिंह जू, को नाउ कि धौं ।
जानै यह अकबर साहि, नैन नीरद को कर है ॥

चौपही

आवत ही सुभ दिन सुभ घरी । रामदास तब बिनती करी ॥
आयसु साहि सुफल फर फरी । इन्द्रजीत सिच्छा की घरी ॥
साहि कह्यो जनु कूरम तात । इंद्रजीत सो कहु यह बात ॥
मन क्रम बचन कहौ ब्रत धरै । कह्यो गुरू को चेला करै ॥
जो याके यहाँ त्यारी होइ । देउ राज जाने सब कोई ॥
इंद्रजीत सों यहई बात । जाइ कही ऊदा के तात ॥
इंद्रजीत यह उत्तर दियौ । मैं अख़्त्यार सबै कछु कियौ ॥
जो कछु साहि कहैंगें आजु । सबै करौं पै लेहुँ न राजु ॥
यहै कही हजरति सो जाइ । भीतर भवन गए दुख पाइ ॥

दोहरा

दासी सब कुलतिय तजै, ज्यौं जड़ त्यौं यह जान ।
इंद्रजीत किय कुमति हित, राज श्री अपमान ॥

बोले तिपुर ताहि भन साहि । दीनौ राज कृपा करि ताहि ॥
मन क्रम बचन कियो अति मीत । तासों कह्यो बिक्रमाजीत ॥
तासो मतों करयो करि नैम । बोल्यौं हौं मैं साहि सलैम ॥
हौं अब रोकि राखि हौं ताहि । तू अब बेगि औड़छे जाहि ॥
चल्यौ तिपुर उत इतहि बसीठ । पठये साहि पुत्र पर ईठ ॥
गए तहां जहँ साहि सलेम । प्रगटयो जाइ पिता को प्रेम ॥
तुम बिन सुनो साहि को चित्त । कल न परत सुन आलम मित्त ॥
बेगम खां तन तजि यह लोक । छोड़ि गयो लीनो परलोक ॥
तिन को दुःख रह्यो परिपूर । दूर करै को तुम अति दूर ॥
इतनो सुनत छूटि गयो छेम । सोग संग्रहे साहि सलेम ॥
दिन दोई यह दुख अवगाहि । आये बाहिर आलम साहि ॥
मुजरा कियो बसीठनि आनि । पूछी तिन्हे बात जिय जानि ॥
अकबर साह गरीबनेवाज । इंद्रजीत की दीन्हो राज ॥
कहे बसीठनि सब ब्योहार । जैसो कछू भयो दरबार ॥
तब हँसि बोल्यो सरीफ़खान । बीरसिंह तजि को तन त्रान ॥
राजा बासुकि केसोराइ । तिनसों कह्यो चित्त को भाइ ॥
मोपै बेगमजू को सोग[1] । रह्यो न जाइ भगे सब भोग ॥
मेरे मन उपज्यो यह भाउ । देखौं पातसाहि के पाउ ॥
राजा बासुकि उत्तर दियो । अपने चित्त सबै समझियो ॥

---

[1] शोक

करन कह्यो है साहि न सोग । सोग किये ते उपजै रोग ॥
रोग भये भागे सब भोग । भोग भगे नहि सुख संजोग ॥
सुखबिन दुखकर दिन उद्दोत । दुखते कैसे मंगल होत ॥
ताते सोग न कीजे साहि । गवन तुम्हारौ भावत काहि ॥
केसौराइ अरज जब करी । लीने हाथ छबीली छुरी ॥
साहि समीप गये हैं तब । कहां जाइ पुनि कीजै अब ॥
हजरत के जक यहई हिये । होत प्रसन्न न सेवा किये ॥
करिये साहि जो करनै होय । गति न तुम्हारी जानै कोय ॥
करि तसलीम सुमिरि नरहरी । बीर सिंह तब बिनती करी ॥
जैयत हैं बेगम के हेत । आलम प्रभु के नगर निकेत ॥
जिहि सुखि होय साहि के गात । सोई कीजै तजि सब बात ॥
मोहि साहि कौ सौंपौ जाइ । जातै कुल को कलह नसाइ ॥
हौं हजरत सिर सदकै भयौ । एक गुलाम भयौ नहिं भयौ ॥
खां सरीफ बोले रिस भरे । बीरसिंह तुम राजा करे ॥
सतौ साहि अब देत न बनै । राजा दीनै पातक घनै ॥
तातै मोहिं मयाकर देहु । बढ़ै साहि सौं दिन दिन नेहु ॥
उपजावत छिति मंडल छेम । बोलि उठे तब साहि सलेम ॥
तुम्हैं देउं हज़रत हित काज । काहि बढ़ाऊं आपन राज ॥
बहुरि न मोसौं ऐसी कही । मेरे जीवत निर्भय रही ॥
साहि सलैम साहि पै गयो । साहि बहुत तिनकौं दुख दयौ ॥
दूरि सरीफ खान भगि गयौ । सबै मुलक अति दुचितैं भयौ ॥
बीरसिंह देउ भया संग्राम । देख्यौ आनि ओड़छौ ग्राम ॥

दान उवाच—चौपाई

कहौ देवि कित गयौ अभीत ।
साहि कियोजु बिक्रमाजीत ॥

श्री देव्युवाच

मेल्यो तिपुर सिंधु के तीर । भुमियाँ मिले रीध सजि भीर ॥
तबहिं तिपुर दतिया तन गये । इंद्रजीत अपने घर भये ॥
खोजा अब्दुल्लह आइयौ । मिलि भदौरिया सुख पाइयौं ॥
तिपुर सुजान साहि सौं कहै । चलौ बेतवै जल संग्र है ॥
बेहड़ काटत चल्यौ सुभाउ । रह्यो आनि खम्हरौली गाउं ॥
इंद्रजीत बीरसिंह देव आप । लीनै सुभट दरैं अरि दाप ॥

दोहा

दुहूँ कटक अरु ओड़छैं, आध कोस कौ बीच।
वेहडु काटत मिसि परयो, काटनु कटलै नीच॥

चौपही

इत कठगरु उत सरिता कूल। मारग कियो परम अनुकूल॥
तदपि न गयो ओड़छे परैं। निसि बासर सिगरौ दल डरैं॥
एक समय सिरे उमराउ। लगे बिचारन गमन उपाउ॥
जौ कोऊ कछु करै विचार। मानै नहीं तिपुरि तिहिं बार॥
राजा रामसिंह सब कह्यो। हमसो बैठें जाइ न रह्यो॥
भोर होत नहिं लाऊं बार। जारि ओड़छौं करिहौं छार॥
मारू कह्यो सुनौ नरनाथ। हौं आयौ राजा के साथ॥
तिपुर तिन्हें बहु बरजत भये। बरजत हों उठि डेरहिं गये॥
राजा जगे बड़े ही भोर। बजै दमामै जनु घनघोर॥
सकिलि सकल दल सज्जित भयौ। रह्यो न मारु हठ कौ लयौ॥
सजि चतुरंग चमू नृप चल्यो। गाजत गज चालत भुव हल्यौ॥
दुन्दुभि सुनि कासी सुर चढ्यौ। चटथोति पुर सबही बर बढ़यो॥
राजाराम साहि गल गज्यौ। बीरसिंह कौ दुंदुभि बज्यौ॥
तमकि चढ्यौ तब साहि संग्राम। ताके चित्त बस्यो संग्राम॥
इंद्रजीत अरु राउ प्रताप। बांधे कवच लिये कर चाप॥
उग्रसेन अरु केसै दाम। जानत हैं बहु युद्ध विलास॥
ठाकुर और कहां लौं कहौं। कहन लेउँ तौ अंत न लहौं॥
दोऊ दल बल सज्जित भये। बहुधा ब्योम बिमानन छये॥
राजसिंह की पीतर पद्मनी। नव दुलहिन गुन सुख सद्मनी॥
सिर सब सीसोदिया सुदेस। बानी बड़गूजर बर बेस॥
श्रुति सिर फूल सुलंकी जानु। लोचन रूचि चौहान बखानु॥
भनि भदौरिया भूषित भाल। भृकुटि मैटि भाटी भूपाल॥
कछवाहे कुल कलित कपोल। नैषध नृप नासिका अमोल॥
दीखत दसन सहाड़ा हास। बीरा बसै बनाफर बास॥
मुख रुख मारू चिबुक चंदेल। ग्रीवा गौर सुबाहु बघेल॥
कुल कनौजिया कंचुकि चारू। कुच करचुली कठोर विचारू॥
पान पवैया परम प्रवीन। नृप नाहर नउ कोर नवीन॥
कोसल कटि जादौं जुग जानु। पदप लवा कैकेय बखानु॥
तोंबर मनमथ मन पड़िहार। पद राठौर सरूप पवार॥

गूजर बेगति परम सुबेस । हाव भाव भनि भूरि नरेस ॥
कैसो मारू सखि सुखि दानि । दामोदर दासी उर जानि ॥

दोहा

राजसिंहपति पद्मनी, दुलहिनि रूप निधान ।
दुलह मधुकर साहिसुत, बीरसिंह देव सुजान ॥

चौपही

तिनको सिर स्वयंभुमय मानि । श्रवनीन को वै श्रवन बखानि ॥
भाल भलो भागीन मय मानि । वृष कंधर सुर मेव बखानि ॥
भुज जुग भनि भगवती समान । अति उदार उर तुम हिय मान ॥
कटि नर केहरि के आकार । जानु बरूनमय रूप कुमार ॥
पदकर कँवल सुबाहन बास । अयुध सक्र समान सहास ॥
जय कंगन बांधे निज हाथ । पनरथ परम पराक्रम गाथ ॥
टोपा सोहत मोर समान । बागे सम सोहै तन त्रान ॥
पावक प्रगट प्रताप प्रचंड । रच्छक नारायन नव खंड ॥
पञ्च सब्द बाजत अवदारत । सुभट बराती फौज बरात ॥
दोऊ दल बल विग्रह बढ़े । देखत देव बिमानन चढ़े ॥

दोहा

बीरसिंह नृप दूल है, नृपपति दुलहिनि देखि ।
घूंघट घाल्यौ भ्रम सहित, सभय सकंपबिसेखि ॥

चौपही

घूंघट सौं पट दुलहिन नई । बीरसिंह राजा गहिलई ॥
देखी पति का कासीसुर हाथ । कोप कियो कूरम नरनाथ ॥
जहं तहं बिक्रम भट प्रगटये । गज घोटक संघटित सुभये ॥
तुपक तीर बरछी तिहि बार । चहूँ ओर तै चलै अपार ॥
जंग जगरा जंगल जुरे । काहु के न कहूं मुँह मुरे ॥
हींसत हय गाजत गज ठाट । हांकत भट बरम्हावत भांट ॥
जहँ तहँ गिरि गिरि उठि उठि लरैं । टटै असि काढ़ैं जमधरैं ॥
भूलि न कोऊ जानै भांजि । मारत मरत सामुहैं गाजि ॥
अपने प्रभु को संकट जानि । उठ्यो दमोदर गहि असि पानि ॥
सकल जागरा जुद्ध अमोर । चमू चांपि आई चहु ओर ॥
घोरौ कट्यौ धरनि धुकि गयो । तरुब संग्राम पयादो भयो ॥
तापर आयो राउ प्रताप । संग लिये बहु सूरन आप ॥
कियो हथ्यार आपने हाथ । गावत गाथा सुर नरनाथ ॥

सकतसिंह कछवाहे आनि । गयौ अगावभतैं पहिचानि ।।
घोरनि तै दोऊ गिरि गये । भूतन लोथकपोथा भये ।।
राउ प्रतापहि देखत आसु । तिन पहँ दौरे कैसे दासु ।।
हन्यो दमोदर हाथहि हेरि । बरछ हन्यौ बरछौ लै फेरि ।।

हरिकेस उवाच कवित्त

कारी पीरी ढालैं लालैं देखियै बिसालैं अति ।
हाथिन की अटा घन घटासी अरति हैं ।।
चपला सी चमक चमूनि माँझ तरवारि ।
सारही सौ सार फूलझारी सी झरति हैं ।।
प्रबल प्रताप राउ जंग जुरै केसौदास ।
हनै रिपु करै न छिपा पनु भरति है ।।
पेस हरिकेस नहीं सुभट न जाव जहां ।
दुहूँ बाप पूतै दौड़ होड़े सी परति है ।।

चौपही

देखि पयादो बलकौ धाम । भरू संग्राम साहि संग्राम ।।
दौर्यो उग्रसेन रनजीत । दौरे इंद्रजीत सुभ गीत ।।
दल बल सहित उठे दोइ बीर । मनौ घनाघन घोर गंभीर ।।
धुंध धूरि धुवा; से गनौ । बाजत दुंदुभि गर्जत मनौ ।।
जहां तहां तरवारैं कढ़ी । तिनकी दुति जनु दामिनी बढ़ी ।।
तुपक तीर ध्रुव धारा पात । भीत भये रिपुदल भट व्रात ।।
श्रोनित जल पैरत तिहि खेत । कूरम कुल सब दलहिं समेत ।।
परम भयानक भै वह ठौर । भागि बचे मारू हरदौर ।।
जगमनि प्रोहित घोरो दिवो । चढ़ि संग्राम साहि हरखिवो ।।
जूझि पर्यो दामोदर जबै । भागि बच्यो कूरमदल तबै ।।
जगमनि दामोदर तिहिंबार । पठये सिरसाटे सिरदार ।।
राजसिंह भये अति बहबहे । जाहि ओड़छे रावर गहे ।।
अति रूरी राजति रन थली । जूझ परे तहं हय गय बली ।।
खंडनि सुंड लसै गज कुम्भ । श्रोनित भर भमकंत मुसुराड ।।
रूधिर छाँडि अँग अँग रूचि रवै । गौरिक धातु सैल जनु द्रवै ।।
धावत अंध कबंध अपार । छिदी सौं हथी उरनि उदार ।।
हीन भये भुजबल के भार । जनु हिय हरखि गहैं हथियार ।।
उठि बैठे भटतरू की छाँहि । लागी सांगि तिन्है मुंह माहि ।।
दाँतन कौ किरचन रँगरँगे । बहु बिधि रूधिर हलूका लगै ।।
भखि तमोर बिषई मनुहरै । मनहुं कपूर करूरा करै ।।

घन घाइनि घाइल घर परैं । जोगिनि जेरि जंघ सिर धरैं ॥
चंचल मुख पौछति जगमगी । कंठश्रोन पिय मारग लगी ॥
साँचहुं मृतक मानि भय दली । मानहुं सती छाड़ि सत चली ॥
गीधिनि के सुत सोभित घनैं । लीलत पल मुख श्रोनित सनैं ॥
चंद्र जानि बासर चँहुओर । चुँचनि चुनत अगार चकोर ॥
श्रोनित सोभा रचे शरीर । तहँ देखिये डरे बरबीर ॥
खेलु फागि मानौ फगुहार । सोइ रहे मदमत्त गँवार ॥
एक जूझि भूतल पर परे । एक बूड़ि सरिता महँ मरे ॥
गय घोटक करभनि को गनै । छूटे बन बन डोलत घनै ॥
ऐसो भयौ करम को जोग । तज्यौ नकारौ आलम तोग ॥
जहँ तहँ हसम खसम बिन भये । जलथल रखत बखत भागि गये ॥
माही महल मरातब साथ । आई पनि कासी सुर हाथ ॥
लीनौ खलट खजानौ लूटि । कूरम भगे चहूँ दिसि फूटि ॥
देखै तिपुर तमासौ आप । ऊपर होहि नहीं परताप ॥

कवित्त

ह्वै गयो बिहान बल मुगल पठाननि कौ ।
भभरे भदौरियाउ संभ्रम हिये छयौ ॥
सुखे मुख सेखति के खस्योई खिमान्यो खल ।
गढ़ौ गह्यौ गाढ़ पाँउ एकौ न इतै दयौ ॥
बीरसिंह लीनी जीती पति राजसिंह की ।
तुसार[1] कैसो मार्‍यो मारू केसोदास ह्वै गयो ॥
हाथीमय हयमय हसम हथ्यारमय ।
लोहमय लोथिमय भूतल सबै भयौ ॥

चौपई

बीरसिंह अति हरषित हियै । राजसिंह पति दुलहिनि लियै ॥
घेर्‍यौ नगर ओड़छो जाई । मारू केसौदास रिसाई ॥
घुर्‍यौ घूसि ज्यों घर के कोन । तजि रजपूती साधी मौन ॥
राजा राज सिंह हिय डर्‍यो । सोक छांड़ि मन संसैपर्‍यौ ॥
अमल कमल दल लोचन ऐन । स्यामल जल भरि आये नैन ॥
पति दुलहिनि करुना रस भरी । बीर सिंह सौं बिनती करी ॥
महराज जौ करहु सनेहु । इनकौ धर्मद्वार अब देहु ॥
इतनौ कहत आइयौं रोय । ह्वै गयौ करुनामय सब कोय ॥

[1] बर्फ़, (तुषार)

बीरन बोलि अभै कौ दये । बीर सिंह तब डेरहिं गये ॥
मारू सहित सोक रंग रये । राज सिंह तब कुढली गये ॥

सवैया

ओरनि लै अरू ओस उसीह,[1] उबै जब के सब जीन्ह बिभाती ।
घोरि घनौ घनसार[2] तुसार सो अंग लगावत पंकज पाती ॥
सीधि सबै सियरे उपचारिन ज्यौं ज्यौं सिरावत त्यों अति ताती ।
केसव मारु गए पुर जारन सो न जर्यौ पै जरि उठि छाती ॥

चौपही

तादिन तै सिगरे उमराऊ । चल दल कैसी गह्यो सुबाऊ ॥
आवन जान न पावे कोय । सब दल रह्यौ महाभय होय ॥

लोभ उवाच

राज सिंह मारु की हार । कहा कर्यौ सुनि साहि बिचार ॥
सो तुम कहौ जगत बंदनी । जिनके उसकी चिरचंदनी ॥

श्री देव्युवाच

राज सिंह के युद्ध विधान । सुनि सुनि सीस धुन्यो सुलतान ॥
उमराउनि की प्रगट प्रमान । यह लिखि पैठ दियो फरमान ॥
कै तुम गहियो हज को राहु । कैं उनकी बसहीनि पर जाहु ॥
उन नृपपति लीनी करि नेहु । तुमहू उनकी पतिनी लेहु ॥
जँह जँह जाइ तहाँ तुम जाउ । मेटो मेरे उरकौ दाउ ॥
यह सुनि बीर सिंह सुखपाय । बसहिनि माँझ चले अकुलाय ॥
को मन मीच अधर मधु छकै । को मेरो दासी लै सकै ॥
बरजि रहे बहु गजाराम । ऐसो करि छोड़ौ घर धाम ॥

सवैया

कालिहि बैठि गुपाचल से गढ़ सोधि सुरे सनकै गुनगाहौ ।
दान कृपान बिधानन केशव दुष्ट दरिद्रन के उर दाहौ ॥
खानि जिहान के खान करौ सब खान जमान बृथा सब गाहौ ॥
मेरे गुलामनि छै है सलाम सलामति साहि सलेमहि चाहौ ॥

चौपही

बीर सिंह राजा बर बीर । बसहा जाय लई धरि धीर ॥
तेही समय छांड़ि भुवलोक । अकबर साहि गये परलोक ॥
काशीसुर जँह तँह गल गजे । जहाँ तहाँ के थाने सजे ॥
पातिसाहि भौ साहि सलेम । मनौ छिति मंडल को छेम ॥

---

[1] ग्रास । [2] कपूर ।

कवित्त

दामबल दलबल बाहुबल बुद्धिबल ।
बंसहू कौ बल जु निधानौ जान्यौ जबही ॥
बांधि कटि तट फैंट पीत तट की निकट ।
पाइनि पचादौ उठि धायो प्रभु तबही ॥
निपट अनाथ नाथ दीनानाथ दीन बंधु ।
दयासिधु केसौदास साचें जाने अबही ॥
हाथी की पुकार लागे काननि सुन्यो है हरि ।
ओड़छे को लागत पुकार देख सब ही ॥

दोहा

दान लोभ सब आदि दै, कही जु बूझी मोंहि ।
जाहु जहां जाके गुर्नात, रही सकल मति तोहि ॥

दानउवाच

जगमाता औरौ कहौ, जो परिपूरन प्रेम ।
बीर सिंह कह का दयौ, साहिब सहि सलैम ॥

श्री देव्युवाच—चौपई

दान लोभ तुम परम सुजान । जानत है सब के परमान ॥
अकबर साहि गये परलोक । जहाँगीर प्रभु प्रगटे लोक ॥
गाजी तखत बैठियो गाजि । सोक गयो लोगनि के भाजि ॥
पारस सो सबको गिरि गयो । चिंतामनि सो कर पर गयो ॥
अद्बर सो भयौ अरिष्ट । सुरतरु सो देख्यो दग इष्ट ॥
अथै गयो ससि सो सुनु दान । सूरज से भयो उदति जहान ॥
रज, तम सत्व गुनीन के ईस । तिन करि मंडल मंडित दीस ॥
बैठे एक छत्र तर लसैं । छांह सबै छिति मंडल बसैं ॥
ऐसो राज रसा में करै । भुमियाके नाके भुवधरै ॥
गढ़न गढ़ोई के वेलदेव । सेवत कर जोरे नरदेव ॥
राजसिंह सोहत चहु पास । दिन देखन गजराज प्रकाश ॥
बैठे तख़्त सकल सुखलिये । सुधि आई हजरत के हिसये ॥
राजा बीरसिंह तब आउ । दियौ तुरंगम स्यौं सिरपाउ ॥
पठयौ लेखि अंबिका जानु । अपने हाथ लिख्यो फरमानु ॥
डांग चौंकिया पहुँचे सेख । बीरसिंह देख्यौ सुभ बेख ॥
जो पायौ प्रभु को फरमान । महा मृतक ज्यों पावै प्रान ॥
लै संग भारत बीर सुठांउ । तब प्रभु आये एरछ गांउ ॥

हिलिमिलि रामसाहि नरनाथ । ह्वै गयौ इंद्रजीत कौ साथ ॥
खेलत हँसत बहुत दिन भरे ; आये निकट नगर आगरे ॥
ऐसो मगदेख्यो बाजार । मनौ गनागन कवित बिचार ॥
देख्यो जोई सोई अपार । मनहु धनपती को ब्यवहार ॥
जाहि देखि भूल्यौ सनसार । देख्यौ अति अद्भुत बाजार ॥

कवित्त

परम बिरोधी अवरोधी है रहत सब ।
दीनन के दानि दिन हीनति कौ छेम है ॥
अधिक अनंत आप सोहत अनंत अति ।
असरन सरननि राखिवे कौ नेम है ॥
हुतभुक[1] हितमति श्रीपति बसत हिय ।
जदपि जलेस गंगा जलहीं सो नेम है ॥
केसौदास राजा बीरसिंह देव देखि कहैं ।
रूद्र है समुद्र है कि साहेब सलेम हैं ॥

चौपही

जहाँगीर जगती कौ इंद्र । देख्यो बीरसिंह देव नरिंद्र ॥
करजोरे सेवत दिगपाल । बिद्याधर गंधर्व रसाल ॥
सोभत है गजराज चरित्र । ढारत चँवर कलानिधि मित्र ॥
सकल मंजुघोषा सुंदरी । गावति सुखद सुकेसी खरी ॥
पूरब दिसि दुति दीपिंत करै । मति गति मंडित बज्रहि धरै ॥
साहि देखि राख्यौ उर लाय । ज्यौं हरि सुखद सुदामहिं पाय ॥
देखत दुःखदूर सब गयौ । पाइनि पर जब ठाढौ भयौ ॥
पूछे साहि सबन सुख पाय । नीके हैं राजन के राय ॥
अब नीकै देखे जब पाय । उज्जल अमल कमल से राय ॥
हय गय हीरा बसन हथ्यार । हजरत पहिरायौ बहु बार ॥
भारत साहि बहुरि इंद्रजीत । मिलवत भयौ साहि के मीत ॥
जब जब गयौ बीर दरबार । तब तब सोभा बढ़ै अपार ॥
खान राउ राजा मनहार । ऊपर बीर लिये हथियार ॥
कटरा कटि दावैं तरवारि । साहि समीप रहे सुखकारि ॥
कबहू हय गय हेम हथ्यार । कबहूँ खग मृग बसन अपार ॥
कबहूँ बाते मूखन छेम । दै बहु रावत साहि सलेम ॥
कौन गनै राजा अरू राउ । खोजा देखै सब उमराउ ॥
काहू को न जाय मन जहां । बीरसिंह को आसन तहां ॥

---

१ अग्नि ।

एक समय हज़रति हंसि कह्यो । बीरसिंह तू दुख सो रह्यो ।।
और बड़ौ बड़ौ परिगन सेखि । मेरौ राज अपनौ लेखि ।
जाहि भुवन त्रिभुवन सुख देखि । सबै तुमारो जो कछु पेखि ।।
सकल बुँदेल खंड है जीतो । तुमको मैं दीनो है तितो ।।
औरौ बड़े बड़े परिगने । तो कह मैं दीने बहुधने ।।
हो जुंभयो साहनि सिरताज । तुहूं होइ रायनि को राज ।।
तोहि न मानै मारौं ताहि । बिदा होय अपने घर जाहि ।।
बीरसिंह कीन्ही तसलीम । गाजी जहांगीर के भीम ।।
तब तिन बोलि इंद्रजित लये । करन बिचार सुडेरहि गये ।।
कियो बिचार बहुत बिधि जाय । एकहु भांति न जिय ठहराय ।।
कोऊ छाड़ैं कोऊ धरै । कछु बिचार नहिं जिय मैं परै ।।
जइ गही आगे आपनै । हमै जतहरा लेत न बनै ।।
कह्यों सरीफ़खान समुझाय । बीरसिंह सो अति सुखपाय ।।
अपनी मुई मैं तू प्रभु होहि । मुगल गये दुख है है तोहि ।।
कीनी बिदा बेगि पहिराय । दिये परिगने बहु सुख पाय ।।

दोहा

राजा बीरसिंह देव की, बिदाकरी सुलितान ।
एरछ गढ़ आये सुने, केशव बुद्धिनिधान ।।

अबुलफज़ल और वीरसिंह देव का युद्ध

कुंडलिया

सुख पायो बैठे हते एक समै सुलतान ।
खां सरीफ तिनि बोलि लिये बीरसिंह देव सुजान ॥
बीरसिंह देव सुजान मान मन बात कही तब ।
या प्रयाग में कुँवर सौहँ करिये मोसौ अब ॥
तोसौं करौं बिचार करहिं अपने मन भाए ।
अनत न कबहूँ जाउ रहहु मो संग सुख पाए ॥
पायनि पर तसलीम करि बोल्यो बीरसिंह राज ।
हौं गरीब तुम प्रगटही सदा गरीब निवाज ॥
सदा गरीब निवाज लाज तुमहीं लघु लामी ।
बिनती करिये कहा महा प्रभु अंतरजामी ॥
लोभ मोह भय भाजि भजै हम मन बच कायनि ।
जौ राखहु मरजाद तजौं सपनेहु नहिं पायनि ॥

चौपही

सौं हैं कीन्ही माँझ प्रयाग । बीरसिंह सुलतान सभाग ॥
तुमहीं मेरे दोई नैन । तुम हौ बुधिबल भुज सुखदैन ॥
तुमहीं आगे पीछे चित्त । तुमहीं मंत्री तुमहीं मित्त ॥
मात पिता तुम पर्‍यो पान । तुम लगि छाड़ौं अपने प्रान ॥

वीरसिंह उवाच

इक साहिब अरु कीजतु प्रीति । सब दिन चलन कहत इहि रीति ॥
तुम्हैं छोड़ि मन आवै आन । तौं भूलौ सब धर्म विधान ॥
यह सुनि साहि लह्यो सब सुख्ख । लाग्यो कहन आपनौं दुःख ॥
जितनो कुल आलम परवीन । थावर जंगम दोई दीन ॥
तामें एकै बैरी लेख । अब्बुल फजल कहावै सेख ॥
वह सालतु है मेरे चित्त । काढ़ि सके तो काढ़हि मित्त ॥
जितने कुल उमरावनि जानि । ते सब करत हमारी कानि ॥
आगे पीछे मन आपने । वह न मोहिं तिनुका करि गने ॥
हजरत को मन मोहित भयो । याके पारे अंतर पर्‍यो ॥

सत्वर साहि बुलायो राज । दक्खिन ते मेरे ही काज ॥
हजरत सों जो मिलिहैं आनि । तो तुम जानहु मेरी हानि ॥
बेगि जाउ तुम राजकुमार । बीचहि वासो कीजै रारि ॥
पकरि लेहु कैं डारो मारि । यह मन निहचै करहु बिचारि ॥
होहि काम यह तेरै हाथ । सब साहिबी तुम्हारे साथ ॥
ऐसो हुकुम साहि जब कियौ । मानि सबै सिर ऊपर लियौ ॥
राजनीति गुनि भय भ्रम तोरि । विनयो वीरसिंह कर जोरि ॥
वह गुलाम तू साहिब ईस । तासौं इतनी कीजहि रीस ॥
प्रभु सेवक की भूल विचारि । प्रभुता इहै जु लेइ सम्हारि ॥
सुनियतु है हजरत को चित्त । मंत्री लोग कहत है मित्त ॥
तो लगि साहि करै जब रोष । कहिये यो किहि लागै दोष ॥
जन[१] की जुवती कैसी रीति । सब तजि साहिब ही सों प्रीति ॥
ताते वाहि न लागै दोष । छांड़ि रोष कीजै संतोष ॥

दोहा

सहसा कछु नहिँ कीजई, कीजै सबै विचारि ।
सहसा करें ते घटि परैं, अरु आवै जग गारि ॥

साह सलीम उवाच

वरन्यो मति मते को सार । प्रभु जन को सब यहै विचार ॥
जौ लगि यह जीवतु है सेख । तौं लगि मोहि मुओ ही लेख ॥
सबै विचार दूरि करि चित्त । बिदा होहु तुम अबही मित्त ॥
कसि तुरतहि बखतर तन बेगि । लै बांधी कटि अपने तेग ॥
घोरौ दै सिर पाग पिन्हाई । कीनी बिदा तुरत सुख पाई ॥
दरखाने ते राजकुमार । चलत भई यह सोभा सार ॥
रवि मंडल तें आनँद कंद । निकसि चल्यो जनु पूरनचंद ॥
सैद मुजफ्फर लीनों साथ । चलै न जानै कोऊ गाथ ॥
बीच न एकौ कियौ मोकाम । देख्यो आनि आपनो ग्राम ॥
आनंदे जनपद सुख पाइ । नीलकंठ जनु मेघहि पाइ ॥
पठये चर नीके नर नाथ । आवत चले सेख के साथ ॥
चारन कही कुँवर सो आइ । आये नरवर सेख मिलाइ ॥
यह कहि भये सिंध[२] के पार । पल पल लखै सेख की सार ॥

---

[१] दास । सेवक ।

[२] सिंध । मध्य भारत में एक छोटी नदी ।

आये सेख मीच के लिये । पुर पराइछे डेरा किये ॥
आबुलफ़ज़ल बड़ेही भोर । चले कूंच कैं अपने जोर ॥
आगे दोनी रसद चलाइ । पीछे आपुनु चले बजाइ ॥
बीरसिंह दौरे अरि लेखि । ज्यों हरि मत्त गयंदनि देखि ॥
सुनतहि बीरसिंह को नाउँ । फिरि ठाढौ भयो सेख सुभाउ ॥
परम सरोष सो सेख बखानि । जस अपर नृसिंहहिं जानि ॥
दौरत सेख जानि बड़ भाग । एक पठान गही तब बाग ॥

पठान उवाच

नहीं नवाब पसर को ठौरु । भूलिन सत्रुहि सामुहूँ दौरु ॥
चलु चलु ज्यौं क्यौंहूँ चलि जाहि । तेहि पाइ सुख पावै साहि ॥
पुनि अपने मनमें करि नेम । जैबो चढ़ि तहँ साह सलेम ॥

सेख उवाच

जूझत सुभट ठाँवहीं ठाँव । कहियो अब कैसे चलि जाँव ॥
आनि लियो उन आलमतोग । भाजे लाज मरैगो लोग ॥

पठान उवाच

सुभटन को तो यहऊ काम । आप मरे पहुचावहि राम ॥
जो तू बहुतै आलम तोग । जौत बाचि है रचिहैं लोग ॥

सेख उवाच

मैं बल लीनौं दक्खिन देस । जीत्यौ मैं दक्खिनी नरेस ॥
साहि मुरादि स्वर्ग जब गये । मैं भुवभार आपु सिर लये ॥
मेरो साहि भरोसो करै । भाजि जाँउ मैं केसै धरै ॥
कह, यों आलम तोग गँवाइ । कहिहौं कहा साहि सौं जाइ ॥
देखत लियो नगारो आइ । कहा बजाऊँ हौं घर जाइ ॥
घर को मेरे पाइन परै । मेरे आगे हिंदू लरै ॥

पठान उवाच

सेख बिचारि चित्त मँह देखु । काजु अकाजु साहि कौ लेखु ॥
सुनु नवाब तू जूझहि तहां । अकबर साहि बिलोकै जहां ॥

सेख उवाच

प्रभु पैं जाइ जमातिहि जोर । सोक समुद्र सलीमहि बोर ॥
तू जु कहत चलि जैये भाजि । उठे चहूं दिसि बैरी गाजि ॥
भाजे जातु मरनु जौ होइ । मोकौ कहा कहै सब कोइ ॥
जौं भजि ये लरिये गुन देखि । दुहू भाँति मरिबोई लेखि ॥

भाजौ जौ तौ भाजौ जाइ । क्यौं करि दै है मोहि भजाइ ॥
पति की बैरी पाइ निहारु । सिर पर साहि भया कौ भारु ॥
लाज रही अँग अँग लपटाइ । कहु कैसे कै भाज्यो जाइ ॥
छाँड़ि दई तिहि बाग बिचारि । दौर्‌यौ सेख काढ़ि तरवारि ॥
सेख होइ जितही जित जबै । भर भराइ भागैं भट तबै ॥
काढ़े तेग सोह यों सेख । जनु तनु धरे धूमधुज[1] देख ॥
दंड धरै जनु आपुन काल । मृत्यु सहित जम मनहु कराल ॥
मारै जाहि खंड द्वै होइ । ताके सम्मुख रहै न कोइ ॥
गाजत गज हींसत हय ढारे । बिनु सूंडनि बिनु पायनि कारे ॥
नारि कमान तीर असरार । चहुँ दिसि गोला चले अपार ॥
परम भयानक यह रन भयौ । सेखहिं उर गोला लगि गयौ ॥
जूझि सेख भूतल पर परे । नैकु न पग पाछे को धरे ॥

सोरठा

अवधि धर्म को लेख द्विज प्रतिपाल तै ॥
रन में जूझे सेख अपनी पति लै साहि की ॥
जब खुरखेट निपट मिटि गई रन देखन की इच्छा भई ॥

कंहु तोग[2] कहु डारे तास । कहुं सिंदूख पताक प्रकास ॥
कहुँ डारे रेजा तरवारि । कहुँ तरकस कहुँ तीर निहारि ॥
कहूँ रूंड कहुं डारे मुंड । कहूँ चौर भुंडनि के भुंड ॥
हिलत लुढ़त कहु सुभट अपार । टूटिनि टिकि टिकि उठत तुषार ॥
देषत कुँवर गये तब तहाँ । अब्बुलफजल सेख है जहाँ ॥
परम सुगंध गंध तन मर्‌यौ । सोनित सहित धूरि धूसरयौ ॥
कछु सुख कछु दुख व्यापत भये । लै सिर कुँवर बड़ौ नहिं गये ॥

---

१ धूमधुज—धूम्रध्वज, अग्नि ।
२ तोग—नगाड़ा ।

राम चंद्रिका

लंका कांड

रामचमू वर्णन

कुंतल ललित नील भ्रकुटी धनुष नैन, कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषण, मध्य देश केशरी सुगजगति भाई है।
विग्रहानुकूल सब लक्षलक्ष ऋक्षबल, ऋक्षराज मुखी मुख केशोदास गाई है।
रामचंद्र जू की चमूराज्यश्री विभीषण की, रावण की मीचु दरकूच चलि आई है।

नंचला छंद

ताम्रकोट लोहकोट स्वर्णकोट आस पास।
देव की पुरी घिरी कि पर्वतारि के विलास।।
बीच बीच हैं कपीश बीच बीच ऋक्ष जाल।
लंका कन्या गरे कि पीत नील कंठ माल।।

मेघनाद युद्ध

दोहा—मरकत मणि के शोभि जै सबै कँगूरा चारु।
आइ गयो जनु घात को पातक को परिवारु।।

कुसुमविचित्रा छंद

तब निकसो रावण सुत शूरो। जेहि रन जीत्यो हरि बल पूरो।।
तपबल माया तम उपजायो। कपिदल के मन संभ्रम छायो।।

दोधक छंद

काहु न देखि परै वह योधा। यद्यपि हैं सिगरे बुधिबोधा।।
सायक सो अहि नायक साध्यो। सोदर स्यों रघुनायक बांध्यो।।
रामहिं बाँधि गयो जब लंका। रावण की सिगरी गइ शंका।।
देखि बँधे तब सोदर दोऊ। यूथप यूथ त्रसे सब कोऊ।।

स्वागता छंद

इंद्रजीत तेहि लै उर लायो। आजु काज सब मो मन भायो।।
कै विमान अधिरूढ़िति धाये। जानकीहि रघुनाथ दिखाये।।

दो०—कालसर्प के कवल ते छोरत जिनको नाम।
बंधे ते ब्राह्मण बचन वश माया सर्पहि राम ॥

स्वागता छंद

पन्नगारि तबहीं तहँ आए। व्याल जाल सब मारि भगाए ॥
लंक माँझ तबहीं गइ सीता। शुभ्र देह अवलोकि सुगीता ॥

वंशस्थ छंद

महाबली जूझत ही प्रहस्त को। चढ़यो तहीं रावण मींडि हस्त को ॥
अनेक भेरी बहु दुंदुभी बजें। गयंद क्रोधांध जहाँ तहाँ गजें ॥

सवैया

देखि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोष रई है।
छूटत ही हनुमंत सो बीचहिं पूंछ लपेटि के डारि दई है ॥
दूसरी ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावत ही हाइ हाइ भई है।
राख्यो भले शरणागत लक्ष्मण फूलि कै फूल सी ओडि लई है ॥

दोधक छंद

यद्यपि हैं अति निर्गुणताई। मानुषदेह धरे रघुराई ॥
लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन ते नख रह्यो जल रोक्यो ॥

षटपद

राम—करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु ॥
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउं इंद्र अब।
बिद्याधरिन अविद्य करौं बिन सिद्ध सिद्धि सब ॥
निजु होहु दास दिति की अदिति, अनिल अनल मिटजाइ जल।
सुनि सूरज सूरज उदित हो करौं असुर संहार बल ॥

हनुमंत पैज।

भुजंगप्रयात छंद

हन्यो बिघ्नकारी बली बीर बामैं। गयो शीघ्रगामी गए एक यामैं ॥
चल्यो लै सबै पर्वतैं कें प्रणामैं। न जान्यो विशल्यौषधी कौन तामैं ॥

द्रोणगिरि आनयन

लसैं औषधी चारु भो व्योमचारी। कहैं देखि यों देव देवाधिकारी ॥
पुरी भौम की सी लिये शीश राजै। महामंगलार्थी हनूमंत गाजै ॥
लगी शक्ति रामानुजै राम सार्थी। जडै ह्वै गये ज्यों गिरै हेम हाथी ॥

तिन्हैं ज्याइबे को सुनो प्रेम पाली । चल्यो जाल मालीहि लै कीर्तिमाली ॥
किधौं प्रात ही काल जी में बिचार्‌यो । चल्यो अंशु लै अंशुमाली सँहार्‌यो ॥
किधौं जात ज्वालामुखी जोर लीन्हें । महामृत्यु जामें मिटै होम कीन्हें ॥
बिनापत्र हैं यत्र पालाश फूलै । रमैं कोकिलाली भ्रमैं भौंर भूलै ॥
सखानंद रामैं महानंद को लै । हनूमंत आये बसंतै मनो लै ॥

मोटनक छंद

ठाढ़े भए लक्ष्मण मूरि छिए । दूनए शुभ शोभ शरीर लिए ॥
कौदंड लिये यह बात ररै । लंकेस न जीवत जाइ घरै ॥
श्री राम तहीं उर लाइ लियो । सूँघ्यो शिर आशिष कोटि दियो ॥
कोलाहल यूथप यूथ कियो । लंका हहली दशकंठ हियो ॥

कुंभकर्ण युद्ध

कुंभकर्ण रावणैं प्रदक्षिणाहि दै चल्यो ।
हाइ हाइ ह्वै रह्यो अकाश आशुही हल्यो ॥
मध्य क्षुद्रघंटिका किरीट शीश शोभनो ।
लक्ष पक्ष सो कलिंद्र इंद्र पै चढ़्यो मनो ॥

नाराच छंद

उड़ैं दिशा दिशा कपीश कौरि कौरि श्वासहीं ।
चपैं चपेट पेट बाहु जानु जंघ सो तहीं ॥
लिये हैं और ऐंचि ऐंचि वीर बाहु बातहीं ।
भपे ते अंतरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जातहीं ॥

भुजंगप्रयात छंद

कुंभकर्ण—नहीं ताड़का हौं सुबाहै न मानौं । नहीं शंभु को दंड साँची बखानौं ॥
न हौं ताल बाली खरै जाहि मारो । न हौं दूषणो सिंधु सूधौ निहारौ ॥
सुरी आसुरी सुंदरी भोग कर्ण । महाकाल को काल हौं कुंभकर्ण ॥
सुनौ राम संग्राम को तोहिं बोलौं । बढ़्यो गर्व लंकाहि आये सो खोलौं ॥
उठ्यो केशरी केशरी जोर छायो । बली बालि को पूत लै नील धायो ॥
हनूमंत सुग्रीव सोभैं सभागे । डसैं डाँस के अंग मातंग लागे ॥
दशग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो । चल्यो लंक में लै भले लंक लायो ॥
हनूमंत लातैं हत्यो देह भूल्यो । छुट्यो कर्ण नाशाहि लै इंद्र फूल्यो ॥
संभार्‌यो घरी एक दू में मरू कै । फिर्‌यो राम हीं सामुहैं सो गदा लै ॥
हनूमंत जू पूंछ सों लाइ लीन्हौं । न जान्यों कबै सिंधु में डारि दीन्हौं ॥
जहीं काल के केतु सों ताल लीनों । कह्यौ राम जू हस्त पादादि तीनों ॥
चल्यो लौटते बाइ बक्रै कुचाली । उड़यौं मुंड लै बाण ज्यों मुंड माली ॥

तहां स्वर्ग के दुंदुभी दीह बाजैं। कर्‌यो पुष्प की बृष्टि जै देव गाजैं॥
दशग्रीव शोक ग्रस्यो लोक हारी। भयो लंक ही मध्य आतंक भारी॥

मेघनाद बध

चंचरी छंद

रामचंद्र बिदा कर्‌यो तब बेगि लक्ष्मण वीर को।
त्यों विभीषण जामवंतहि संग अंगद धीर को॥
नील लै नल केशरी हनुमंत अंतक ज्यों चले।
बेगि जाइ निकुंभिला थल यज्ञ के सिगरे दले॥
जामवंतहि मारि द्वै शर तीनि अंगद छेदियो।
चारि मारि विभीषणैं हनुमंत पंच सुबेधियो॥
एक एक अनेक बानर जाइ लक्ष्मण सों भिर्‌यो।
अंध अंधक युद्ध ज्यों भव सों जुर्‌यो भव ही हर्‌यो॥

गीतका छंद

रण इंद्रजीत अजीत लक्ष्मण अस्त्र शस्त्रनि संहरैं।
शर एक एक अनेक मारत बुंद मंदर ज्यों परैं॥
तब कोपि राघव शत्रु को शिर बाण तीक्ष्ण उद्धर्‌यो।
दशकंध संध्यहि को कियो शिर जाइ अंजुलि में पर्‌यो॥
रण मारि लक्ष्मण मेघनादहि स्वच्छ शंख बजाइयो।
कहि साधु साधु समेत इद्रहि देवता सब आइयो॥
कछु मांगिये वर वीर सत्वर भक्ति श्री रघुनाथ की।
पहिराइ माल विशाल अर्चहि कै गए शुभ गाथ की॥

कलहंस छंद

हति इंद्रजीत कहँ लक्ष्मण आए। हंसि रामचंद्र बहुधा उर लाए॥
सुनि मित्र पुत्र शुभ सोदर मेरे। कहि कौन कौन सुमिरौं गुण तेरे॥

दो० नींद भूख अरु प्यास को जो न साधते वीर।
सीतहिं क्यों हम पावते सुनु लक्ष्मण रणवीर॥

रावण-विलाप

रावण—आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल।
चंद आनंद मय ताप जग को हरौ॥
गान किन्नर करहु नृत्य गंधर्व कुल।
यक्ष विधि लक्ष उर यक्षकर्दम धरौ॥
ब्रह्म रुद्रादि दै देव त्रैलोक के।

राज को जाय अभिषेक इंद्रहि करौ ॥
आजु सिय राम दै लंक कुल दूषणहि।
यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रनवरौ ॥

मकराक्ष-बध

भुजंगप्रयात छंद

महाराज लंका सदा राज कीजै। करौं युद्ध मेरी बिदा बेगि कीजै ॥
हतौं राम स्यों बंधु सुग्रीव मारौं। अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौं ॥

वसंततिलका छंद

विभीषण—कोदंड हाथ रघुनाथ सँभारि लीजै।
भागे सबै समर यूथप दृष्टि दीजै ॥
बेटा बलिष्ट खर को मकराक्ष आयो।
संहार काल जनु काल कराल भायो ॥
सुग्रीव अंगद बली हनुमंत रोक्यो।
रोक्यो रह्यो न रघुबीर जहीं बिलोक्यो ॥
मारयो विभीषण गदा उर जोर ठेली।
काली समान भुज लक्ष्मण कंठ मेली ॥
गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंग मारे।
काटे कटैं न बहु भाँतिन काटि हारे ॥
ब्रह्मा दियो वरहि अस्त्र न शस्त्र लागै।
लै ही चल्यौ समर सिंहहि जोर जागै ॥
गाढ़ांधकार दिवि भूतल लीलि लीन्हों।
ग्रस्तास्त मानहुँ शशी कहुँ राहु कीन्हों ॥
हाहादि शब्द सब लोग जहाँ पुकारे।
बाढ़े अशेष अँग राक्षस के बिदारे ॥
श्रीरामचंद्र पग लागत चित्त हर्षे।
देवाधिदेव मिलि सिद्धन पुष्प वर्षे ॥

रावण-यज्ञविध्वंस

चामर छंद

प्रौढ़रूढ़िकोश मूढ़ गूढ़ गेह में गयो।
शुक्रमंत्र शोधि शोधि होमि को जहीं भयो ॥
वायुपुत्र वालिपुत्र जामवंत धाइयो।
लंक में निशंक अंक लंकनाथ पाइयो ॥

मत्त दंति पंक्ति बाजिराजि छोरि कै गई।
भाँति भाँति पक्षि राजि भाजि भाजि कै गई॥
आसने बिछावने वितान तान तूरिये।
यत्रतत्र छत्र चारु चौंर चारु चूरियो॥

भुजंगप्रयात छंद

भगी देखि कै शंकि लंकेश बाला।
दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला॥
तहाँ दौरिगौ बालि को पूत फूल्यो।
सबै चित्र को पुत्रिका देखि भूल्यो॥
गहै दौरि जाको तजै ताकि ताको।
गली कै निहारी सबै चित्रसारी॥
लहै सुंदरी क्यों दरी को बिहारी।
तजै दृष्टि को चित्र की सृष्टि धन्या॥
हँसी एक ताको तहीं देवकन्या॥
तहीं हास ही देव कन्या दिखाई।
गही शंकि कै लंकरानी बताई॥

मुश्रानी गहे केश लंकेश रानी। तमश्री मनों सूर शोभा निसानी॥
गहे बांह ऐंचे चहूं ओर ताको। मनों हंस लीन्हें मृणाली लता के॥
छुटी कंठमाली लुरैं हार टूटे। खसैं फूल फूले लसैं केश छूटे॥
फटी कंचुकी किंकणी चारु छूटी। पुरी काम की सी मनों रुद्र लूटी॥
सुनी लंक रानीन की दीन बानी। तहीं छांडि दीन्हों महा मौन मानी॥
उठ्यो सो गदा लै यदा लंकवासी। गये भागि कै सर्व शाखा बिलासी॥

राम रावण युद्ध

चामर छंद

रावण चले चले ते धाम धाम ते सबै।
साजि साजि साज सुर गाजि गाजिकै तबै॥
दीह दुदुंभी अपार भाँति भाँति बाजहीं।
युद्ध भूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति राजहीं॥

चंचरी छंद

इंद्र श्री रघुनाथ को रथहीन भूतल देखिकै।
वेगि सारथि सों कहेउ रथ जाहि लै सुविशेषि कै॥
तूण अक्षय बाण स्वच्छ अभेद लै तनत्राण को।
आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय प्रणाम को॥
कोटि भाँतिन पौन ते मन ते महा लघुता लसै।

बैठिकै ध्वज अभ्र श्री हनुमंत अंतक ज्यों हँसे ॥
रामचंद्र प्रदक्षिणा करि दक्ष ह्वै जबही चढ़े ।
पुष्प बर्षि बजाय दुदुंभि देवता बहुधा बढ़े ॥
राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ़्यो ।
बीस बाहुन की शरावलि ब्योम भूतल सों मढ़्यो ॥
शैल ह्वै सिकता गई सब दृष्टि के बल संहरे ।
ऋक्ष बानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे ॥

सुंदरी छंद

बाणन साथ बिधे सब बानर । जाय परे मलयाचल की धर ॥
सूरज मंडल में एक रोवत । एक अकाशनदी मुख धोवत ॥
एक गये यमलोक सहे दुख । एक कहैं भव भूतन सों रुख ।
एकखते सागर मांझ परे मरि । एक गये बड़वानल में जरि ॥

मोटनक छंद

श्रीलक्ष्मण कोप कर्‌यो जबहीं । छोड़्यौ शर पावक को तबहीं ॥
जारयो शर पंजर छार करयो । नैकृत्यन को अति चित्त डरयो ॥
दौरे हनुमंत बली बल सों । लै अंगद संग सबै दल सों ॥
माने गिरिराज तजे डर को । घेरैं चहुँ ओर पुरंदर को ॥

हरि छंद

अंगद रणअंगन तब अंगद मुरझाइ कै ।
ऋक्षिपतिहिं अक्षरिपुहिं लक्षगति बुझाइ कै ॥
बानर गण बाणन सन केशव जबहीं मुरयो ।
रावण दुखदावन जगपावन समुहें जुरयो ॥

ब्रह्मरूपक छंद

इंद्रजीत जीति आनि रोकियो सुबाण तानि ।
छोंडिदीन वीरबानि कान के प्रमान आनि ॥
स्यों पताक काटि चाप चर्म बर्म मर्म छेदि ।
जात भो रसातलै अशेष कंठमाल भेदि ॥

दंडक छंद

सूरज मुसल नील पट्टिश परिघ नल । जामवंत असि हनू तोमर प्रहारे हैं ॥
परसा सुखेन कुंत केशरी गवय शूल । विभीषण गदा गज भिंदिपाल तारे हैं ॥
मोगरा द्वविद तीर कटरा कुमुद नेजा । अंगद शिला गवाक्ष विटप विदारे हैं ॥
अंकुश शरभ चक्र दधिमुख शेष शक्ति । बाण तिन रावण श्री रामचंद्र मारे हैं ॥

दो०— द्वैभुज श्रीरघुनाथ को बिरचे युद्ध विलास।
बाहु अठारह यूथपनि मारे केशवदास ॥

गंगोदक छंद

युद्ध जोई जहाँ भाँति जैसी करै। ताहि ताही दिशा रोकि राखै तहीं ॥
अस्त्र आपने लै शस्त्र काटै सबै। ताहि केहूं कहूँ घाव लागै नहीं ॥
दौरि सौ मित्र लै बाण को दंड ज्यों। खंड खंडी ध्वजा धीर छत्रावली ॥
शैल श्रृंगावली छोड़ि मानों उड़ी। एक ही बेर कै हंस वंशावली ॥

त्रिभंगी छंद

लक्ष्मण शुभ लक्षण बुद्धि बिचक्षण रावण सों रिस छोड़ दई।
बहु बाँणनि छंडै जे सिर खंडै ते फिर खंडै शोभ नई ॥
यद्यपि रणपंडित गुण गण मंडित रिपुबल खंडित भूल रहे।
तजि मन वच कायक सूर सहायक रघुनायक सों बचन कहे ॥
ढाढ़ौ रण गाजत केहुँ न भाजत तन मन लाजत सब लायक।
सुनि श्रीरघुनंदन मुनिजन बंदन दुष्ट निकंदन सुखदायक ॥
अब टरै न टारयो मरै न मारयो हौ हठि हारयो धरि शायक।
रावण नहिं मारत देव पुकारत ह्वै अति आरत जगनायक ॥

रावण-बध

छप्पै

राम—जेहि शर मधु मद मरदि महासुर मर्दन कीन्हेंउ।
मारेहु कर्कश नर्क शंखहति शंख जो लीन्हेंउ ॥
निष्कंटक सुर कटक करयो कैटभ बपु खंड्यो।
खर दूषण त्रिशिरा कबंध तरु खंड बिहंड्यो ॥
कुंभकरण जेहि संहरयो पल न प्रतिज्ञा ते टरों।
तेहि बाण प्राण दशकंठ के कंठ दशौं खंडित करों ॥
दो०—रघुपति पठयो आसुही असुहर बुद्धिनिधान।
दशशिर दशहू दिशन को बलि दै आयो बान ॥

मदनमनोरमन छंद

भुव भारहिं संयुत राकस को। गण जाइ रसातल में अनुराग्यो ॥
जग में जय शब्द समेतिहि केशव। राज बिभीषण के सिर जाग्यो ॥
मय दानव नंदिनि के सुख सों। मिलि के सिय के हिय को दुख भाग्यो ॥
सुर दुदुंभी सीस गजा शर राम को। रावण के शिर साथहिं लाग्यो ॥

मान

मान

मान कवि के विषय में इससे अधिक अभी तक पता नहीं चला है कि यह राजपुताने के एक कवि थे। इनका एक मात्र ग्रंथ, जिसका कि हिंदी संसार को पता है, 'राजविलास' है, और उसमें सिवाय इनके नाम के और कुछ भी व्यक्तिगत परिचय नहीं मिलता। राजपुताने के किस प्रांत या किस राजदर्बार के यह कवि थे यह भी जानने का कोई उपाय नहीं है।

कवि-परिचय

कवि मान का रचा हुआ राजविलास नामक ग्रंथ का रचना-काल सं० १७३४ से आरंभ होता है। इस ग्रंथ में सं० १७३७ तक की घटनाओं का वर्णन मिलता है, और ग्रंथ के अंतिम अंशों को देखने से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि कवि किसी प्रकार शीघ्र ग्रंथ को समाप्त करना चाहता है। इस का कारण यही हो सकता है कि सं० १७३७ में ही ग्रंथ के चरितनायक—महाराणा राजसिंह का शरीरपतन हुआ, और इस घटना के साथ ही कवि ने ग्रंथ समाप्त कर देना उचित समझा। ग्रंथारंभ का समय तो कवि ने स्वयं कहा है—

राजविलास का रचना काल

"सुभ संवत दस सात बरस चौंतीस बधाई।
उत्तम मास असाढ़ दिवस सत्तमि सुखदाई॥
विमल पाख बुधवार सिद्धि बर जोग संपतौ।
हरपकार रिषि हस्त रासि कन्या ससि रत्तौ॥
तिन द्यौस मात त्रिपुरा सुकवि कीनौ ग्रंथ मंडान कवि।
श्री राजसिंह महराण कौ रचि यहि जस जौं चंद रवि॥"

इस छंद के अतिरिक्त और कहीं भी इन्हों ने अपने या अपने ग्रंथ के संबंध में कुछ नहीं कहा है।

यह ग्रंथ—राजविलास अठारह विलासों (अध्यायों) में समाप्त हुआ है। आरंभ के कई विलासों में सिसोदिया वंश का इतिहास दिया गया है। मुख्य कथा महाराणा राजसिंह के उदयपुर के सिंहासन पर बैठने के बाद से आरंभ होती है। सिंहासनारूढ़ होते ही 'टीकादारी' की प्रथा के अनुसार यह दिग्विजय को निकले और 'मालपुर' नामक मुग़ल राज्य के एक गांव को लूटकर औरंगजेब से दुश्मनी मोल ली। औरंगजेब पहले ही से राजसिंह को पददलित करने का अवसर ढूंढ़ रहा था, इस घटना से वह अवसर इसे मिल गया। इसके साथ ही एक घटना

ग्रंथ का सारांश

और ऐसी हो गई जिससे मुग़ल सम्राट की क्रोधाग्नि भयानक रूप से प्रज्वलित हो उठी। मारवाड़ राज-वंश की एक शाखा का प्रभुत्व रूपनगर पर था, और उन दिनों राठौर राजा मानसिंह वहां की गद्दी पर विराजमान थे। उनकी पुत्री रूपकुमारी (प्रभावती) रूप और गुण में अद्वितीय समझी जाती थी, और यह समाचार बादशाह को भी मिला। उस ने रूपकुमारी को अपने शाही ज़नानख़ाने की शोभा बढ़ाने के योग्य समझ कर मानसिंह के पास दो हज़ार घुड़सवार सेना, एक मनसबदार की अधीनता में इस हुक्मनामें के साथ भेज दी कि रूपकुमारी उस के साथ कर दी जाय, और बादशाह बड़ी ख़ुशी से उसे अपनी बेगम बनाना चाहते हैं। मानसिंह को तो कुछ विशेष आपत्ति न जान पड़ी, परंतु स्वयं रूपकुमारी ने ही या तो इस अपमानसूचक प्रस्ताव से क्षुब्ध हो कर या राजसिंह की वीरता पर मुग्ध हो कर, और उन्हीं के साहस पर भरोसा कर बड़े तिरस्कार से इस शाही संबंध को अस्वीकार कर दिया। इस तिरस्कार के साथ उसने एक पत्र द्वारा राजसिंह को आत्म-समर्पण किया और अपनी लाज रखने की प्रार्थना करती हुई यह सँदेशा भेजा—"क्या हंसिनी कभी बगुले की सहचरी हो सकती है। क्या एक पवित्र कुल की राजपूतनी उस बँदरमुहें म्लेच्छ की पत्नी बनेगी?' मूलग्रंथ में यह आशय इस प्रकार वर्णित है—

"जिन आनन रूप लँगूर जिसो, पलसर्व भषें सुर सों युग सौं।
जिन नाम मलेच्छ पिशाच जनो, सुर ही रिपु होन न स्याम मनों॥
गिरि शृङ्ग उतंगनि तें यु गिरों, कुल कज्ज हलाहल पान करों।
जरतें झर पावक कुंड जरों, वरिहों सुर, आसुर हों न बरों॥"

इत्यादि।

इस पत्र में, जैसा कि ऊपर के उद्धरण से प्रतीत होता है, रूपकुमारी ने राजसिंह को यह भी धमकी दी थी कि यदि तुम मेरी रक्षा न करोगे तो मैं विषपान या और किसी उपाय से आत्म-हत्या कर लूँगी।

यह सँदेशा पाकर भी राजसिंह ऐसे वीर भला कैसे स्थिर रह सकते थे! उन्होंने तुरंत कुछ चुने हुए सैनिकों को साथ लेकर शाही फौज को तहस-नहस कर डाला और रूपकुमारी को अपने यहाँ ले जाकर उससे विवाह किया। इस धृष्टता का जो प्रभाव औरंगज़ेब पर पड़ा होगा उस का सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

इन बातों के सिवाय राजसिंह ने बादशाह की क्रोधाग्नि भड़काने के लिए एक काम और किया। औरंगज़ेब ने जो 'जज़िया' नामक एक विशेष कर हिंदू प्रजामात्र पर लगाया था उस का राजसिंह ने एक पत्रद्वारा घोर विरोध किया। यह पत्र बादशाह की क्रोधाग्नि में पूर्णाहुति का काम कर गया, और उस ने मेवाड़

को मिट्टी में मिलाने के लिए इतना महान आयोजन आरंभ किया जितना कि एक शक्तिशाली साम्राज्य से लोहा लेने के लिए पर्याप्त होता।

इस घोर संग्राम के वर्णन के पहले राजसिंह के दो एक और ऐतिहासिक कार्यों का वर्णन इस काव्य में है। उन दिनों मेवाड़ में सात वर्ष व्यापी एक घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। इसके कष्टों से प्रजा की रक्षा के निमित्त राजसिंह ने अनेक प्रशंसनीय कार्य किये थे, और सं० १७१७ में कैलपुरा के निकट 'राजसर' नामक एक विशाल सरोवर बनवाया और एक विष्णु-मंदिर भी उस के तट पर स्थापित कर तुलादान किया।

जोधपुर के महाराज यशवंत सिंह के साथ बादशाह हर तरह से बड़ा अत्याचार कर रहा था। ऐसे समय राजसिंह ने उन की सहायता की और उन के एक मात्र दुधमुहे राजपुत्र अजित सिंह को जो किसी प्रकार बादशाह के चंगुल से बाहर निकल गया था, अपने यहां शरण दिया और बादशाह के माँगने पर देने से साफ़ इनकार कर दिया।

इसके उपरांत उस सांघातिक युद्ध का सजीव वर्णन है जो बहुत दिनों तक औरंगज़ेब और राजसिह के बीच में होता रहा, और जिस में अंत तक बादशाह को सफलता नहीं प्राप्त हुई। इस युद्ध में राजस्थान के प्रायः सभी वीर, सरदार-सामंत राजसिंह के झंडे के नीचे आगए थे। 'देवसूरी' की घाटी के युद्ध में विक्रम सोलंकी और गोपीनाथ कमधज्ज ने बादशाह की रूमी सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। 'नोनवारा' के युद्ध में महा सिंह रतन सिंह, और केशरी सिंह नामक सामंतों ने गोरी सेना को परास्त किया, और केशरी सिंह के पुत्र गंगा सिंह सगतावत ने मुग़ल सेना का 'हस्ती यूथ' छीन लिया। राजसिंह के पुत्र भीमसिंह ने गुजरात को मुग़ल राज्य का एक सूबा समझ उस पर चढ़ाई कर उसे लूट लिया, परंतु पिता की आज्ञा से वे वहां से शीघ्र लौट आये। बधनौर नरेश साँवलदास ने बधनोर की ओर से आती हुई सेना को तहस-नहस करके भगा दिया। इस सेना का सर्दार सहेल खां था, और उस के साथ १२,००० सैनिक थे। इसी समय प्रधान मंत्री दयालशाह ने मालवा पर (उसे मुग़ल राज्य का एक सूबा समझ कर) चढ़ाई कर उज्जैन नगर लूट लिया और मालवा भी जीत लिया।

इस के बाद उस प्रधान युद्ध का वर्णन आता है जिस में बादशाह ने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। शाही फ़ौज में ५०,००० सैनिक थे, और उस का नायक शाहजादा अकबर था। राजसिंह के पुत्र जयसिंह ने अकबर का मुक़ाबिला किया और उसे बुरी तरह हरा कर जन-धन की अपार क्षति के साथ भगा दिया। अपनी सैन्य को राजसिंह ने तीन हिस्सों में बाँट रखा था। पहला हिस्सा राजकुमार जयसिंह की अधीनता में अरवली पहाड़ के शिखरों पर इस आशय से स्थित था कि शत्रु के पहाड़ के किसी भी ओर से निकलते ही उन पर टूट पड़े और उसे

आगे बढ़ने से रोक दे। दूसरा हिस्सा राजकुमार भीमसिंह की अधीनता में पश्चिम में गुजरात के रास्ते की देख रेख के लिए स्थित था, और उधर का मार्ग शत्रु के लिए इस प्रकार बंद था। और तीसरे हिस्से के साथ स्वयं महाराणा राजसिंह नयन की घाटी में डटे थे। औरंगज़ेब दोवरी की ओर अपनी फ़ौज के साथ बढ़ रहा था, और अकबर अपनी सेना के साथ इस मतलब से आगे बढ़ा कि उसे औरंगज़ेब की फ़ौज से मिलाने पर बीच ही में महाराणा की अपनी सेना ने उसे हरा कर मारवाड़ के मैदानों की ओर भागने पर बाध्य किया। उस की सहायता के लिए प्रसिद्ध मुग़ल-सेनापति दिलावर खां मारवाड़ के दैमूरी दर्रे से बे रोकटोक बढ़ा, और जब उस की पूरी सेना इस लंबे और बीहड़ दर्रे के अंदर पहुंच गई, तब विक्रम सोलंकी और गोपीनाथ राठौर की सम्मिलित सेना ने अचानक आक्रमण कर उस की पूरी सेना को नष्ट कर दिया। इधर राठौर वीर दुर्गादास ने भी, जो बहुत दिनों से औरंगज़ेब के अत्याचार से खिन्न होकर उसे नीचा दिखाने की चिंता में थे, जी खोल कर राजसिंह का साथ दिया। सारांश यह कि इस भयानक युद्ध में प्रत्येक बार शाही फ़ौज की गहरी हार हुई और राजपूतों के हाथ विजयलक्ष्मी के अतिरिक्त लूट का माल भी बहुत आया।

राजविलास की कविता

इस ग्रंथ की भाषा राजस्थानी होते हुए भी 'डिंगल' भाषा से इतना सादृश्य नहीं रखती जितना की बीसलदेव रासो या पृथ्वीराज रासो की भाषा। इस में माधुर्य गुण उक्त दोनों ग्रंथों की अपेक्षा कहीं अधिक है। इस का मुख्य कारण यह है कि कवि ने कर्णकटु शब्द, जिन में डकारादि मूर्धन्य वर्णों और संयुक्ताक्षरों का प्राधान्य रहता है, यथाशक्ति नहीं आने दिया है। इन का पदविन्यास अपेक्षाकृत कोमल है और अनुप्रासों का प्रयोग सहजसुंदर रूप से बराबर देखने में आता है। दो एक उदाहरण देखिये:—

"हरियाल हरित हरि हीर हंस, किरडै कुमैन चंपक सुवंस।
सुक पच्छ चास चंचल सलील, अलिरीझरंग अँबरस असील॥
"धस मसत धपत धर तोब धार, बेधंत पत्र गोरी प्रहार।
पति भक्त सक्ति सायुध सुजोध, कलहान थान के हरि सक्रोध" ॥

इस के दूसरे छंद के प्रथम चरण को देखने से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि कोमलकांत पदावलि का प्रयोग रखते हुए भी किस प्रकार ओज गुण अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

इन का काव्य वीररस-प्रधान तो है ही, और यद्यपि यह उस रस के निरूपण में उतने सफल नहीं हुए हैं जितने कि भूषण या सूदन, पर तो भी इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि माधुर्य गुण के साथ साथ वीररस के निरूपण में मान को अच्छी सफलता मिली है।

इन की कविता के संबंध में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य यह है कि जहाँ कहीं इन्हें शांत या शृंगार रस की कविता करने का अवसर मिला है वहाँ इन्हें वीररस की अपेक्षा कहीं अधिक सफलता मिली है। दो एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा। नमूने के लिए प्रस्तुत संग्रह में आरंभ के छंद नं० १०, १४ और १५ देखिए। इन छंदों में संगीत माधुर्य, अनुप्रास, और कहीं कहीं अलंकारों का भी बहुत सुंदर समावेश किया गया है।

"सुचि सुरभि सुकोमल सारी, कब्बरि मनु नागिनि कारी।
सिर मोती माग सु साजैं, राषरी कनक मय राजैं॥
लखि शीश फूल रवि लोपै, अष्ठमि शशि भाल सुओपै।
बिंदुली जराउ बखानी, अलि भृकुटि ओपमा आनी॥"

इसी प्रकार के बहुत से उदाहरण सप्तम विलास में मिलेंगे। इन छंदों में और गुणों के अतिरिक्त उपमादिक साधारण अलंकारों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया गया है।

इन बातों के देखने से यही निष्कर्ष निकलता है कि इन की प्रतिभा वीर-रस-प्रधान रचना के उतनी अनुकूल नहीं थी जितनी कि शृंगार या शांत के; और यह खेद का विषय है कि इन्होंने अपनी प्रतिभा को एक भ्रांत दिशा में प्रेरित किया।

इस ग्रंथ में वर्णित अधिकांश घटनाएँ ऐतिहासिक हैं, और प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषों से संबंध रखती हैं, परंतु ये घटनाएं ऐतिहासिक दृष्टि से कहाँ तक अक्षरशः सत्य हैं यह विचार करना व्यर्थ है। क्योंकि इस प्रकार की कविता करने वाले प्रायः अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में कविता करते थे, और जिन घटनाओं से उनकी बड़ाई हो उन्हें खूब बढ़ा चढ़ा कर लिखते थे, पर इन से विपरीत विषयों को साफ़ उड़ा जाते थे। इसके लिए उन्हें दोष देना भी कदाचित ठीक न होगा। हां, घटनाओं का आधार अवश्य ऐतिहासिक होता है, और मूलतः वे सत्य भी होती हैं। वीरगाथाओं के सभी कवियों के विषय में यही नियम है और मान इसके अपवाद नहीं हो सकते।

प्रस्तुत संग्रह में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित और लाला भगवानदीन द्वारा संपादित 'राज-विलास' से निम्न लिखित अंश संगृहीत हुए हैं—

प्रथम विलास; 'सरस्वती-विनय" छंद नं० १—३८ तक। यह संग्रह यद्यपि वीर काव्य से ही संबंध रखता है तथापि इसमें आए हुए जिन कवियों की अन्य रसों से संबंध रखने वाली श्रेष्ठ कविता जहाँ-जहाँ मिली है, उदाहरण के रूप में उनके कुछ अंश सम्मिलित कर लेना अनुचित नहीं समझा गया है। चतुर्थ विलास; इस में "ऋतु-विलास" नामक एक वाग का सुन्दर वर्णन है। कवि के प्रकृतिवर्णन की दृष्टि से यह अंश भी छोड़ा नहीं जा सका।

छठवां विलास— इस में राजसिंह के सिंहासनासीन होने पर ठीकादारी की प्रथा के अनुसार दिग्विजय को निकलने और मुग़ल राज्य के 'मालपुर' नामक गांव के लूट लेने की कथा है।

सत्रहवें और अट्ठारहवें विलास से राजसिंह और औरंगज़ेब की दो मुख्य लड़ाइयों का वर्णन है और इन्हीं में कवि के वास्तविक युद्ध वर्णन का कौशल पूर्णरूप से प्रगट हुआ है। इस की संक्षिप्त कथा पहले ही वर्णित हो चुकी है।

राजविलास

सरस्वती-विनय

दोहा

सेवत सुर नर मुनि सकल, अकल अनूप अपार ।
बिबुध मात बागेश्वरी, दिन-दिन सुख दातार ।।
देवी ज्यों तुम करि दया, कालिदास काव कीन ।
बरदायिनि त्यों देहु बर, निर्मल उक्ति नवीन ।।
पइयँ बर कविराज पद, लच्छी बंछित लील ।
तुम तुट्ठै जगतारनी, सुमति सँयोग सुसील ।।
कौन गिनै मरु रेतुकन, को घन बुंद कहंत ।
को तारायन परि कहैं, त्यों गुन आदि अनंत ।।
जपियहिं तुमकौं जगजननि, अधिक ग्रंथ आरंभ ।
कवित कथा मंगल करत, दूरि हरन दुख दंभ ।।
सांप्रत देहु सरस्वती, बानी सरस विलास ।
भारति जग पोपनि भरनि, इच्छित पूरन आस ।।
चित्रकोट पति राजचिर, राज सिंह महारान ।
सूर्य वंश वर सहस कर, पल पंडन पूमान ।।
गावत जसु जस छंद गुन, पावत सुख भरपूर ।
सुपसाएँ तुम सारदा, दुरित प्रनासहिं दूर ।।
बीणा पुस्तक कर प्रबर, बाहन बिमल मराल ।
सेत बसन भूपन सजै, रीझी देत रसाल ।।

कवित्त

रीझी देत रसाल रंग रस में सुररानी ।
गुनवंती गय गमनि[1] बाग देवी ब्रह्मानी ।।
निशपति मुख मृग नयनि कांति कोटिक दिनकर कर ।
सचराचर संचरनि अगम आगम अपरंपर ।।
भय हरनि भगत जन भगवती बचन सुधारस बरसती ।
राजेश राग गुण संवरत सुप्रसन्न हो सरस्वती ।।

---

[1] गजगामिनि ।

गीतामालती

सुप्रसन्न सरसुति मात सुमिरत कोटि मंगल कारनी ।
भारती सुभर भँडार भरनी विकट संकट वारनी ॥
देवी अबोधहिँ बोध दायक सुमति श्रुत संचारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥
आई निरंतर हसित आननि महि सुमाननि मोहनी ।
संकरी सकल सिँगार सजित रूद्र रिपुदल रोहनी ॥
वपु कनक कांति कुमारि विधिजा अजर तूं ही जारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥
पयतल प्रवाल कि लाल पल्लव दुति महावर दीपए ।
अंगुली नष दह विमल उजल जोति तारक जीपए ॥
अनवट अनोपम वीछिया अति धुनि मनोहर धारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥
झमकंति झंझर नाद रूण झुण पाय पायल पहिरना ।
कमनीय क्षुद्रावली किंकिनि अवर पय आभूषना ॥
कलधौत[1] कूरम समय मन क्रम पाप पीड़ प्रहारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥
कदली सुखंभ अधो कि करि कर जंघ जुग वरजानिए ।
शुचि सुभग सार नितंब प्रस्थल बाघ कटि बाषानिए ॥
वापिका नाभि गंभीर सुवर्णित महारिपु दल मारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥
चर नालि कटि तट लाल चरना पवर अरु पटकूलयं ।
मेषला कंचनि रतन मंडित देव दूप दुकूलयं ॥
दीपती दुति जनु भानुद्वादस अघतिमर अपहारनी ।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥
तिमितुल्ल कुखिस मध्य तिवलिय उरज उभय अनोपमांव ।
किधौं नालिकेर कि कनक कुंभ सुकुंभि-कुंभ सुऊपमा ॥
कंचुकी जरकस कसिय कोमल आदि अमियअहारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥
भुज दंड लंब विशाल श्रीभर कनक भूरि सुकंकना ।
पोंचीय गजरा बहिरषा प्रिय बाहुबंध सुबंधना ॥
महिंदीय रंगहिं पानि मंडित बेलि सोभव धारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥

---

[1] सोना ।

करसाष कमनिय रूप कोमल मुद्रिका वर मंडनं ।
उपमान मूंगफली सु उत्तम अरून नषर अषंडनं ।।
पुस्तकरु वीन सुपानि पल्लव बेदराग बिथारनी ।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ।।
कहियै निगोदर हार कठहि मुत्ति माल मनोहरं ।
मषतूल गुन चौकी कनक मनि चारू चंपकली उरं ।।
तपनीय हंसरू पोति तिलरी कंठ श्री सुख कारनी ।
अद्भुत अनूप मराल असनि जयति जय जगतारनी ।।
विधु सकल कल संजुत्त बदनी चिबुक गाड़ सुचाहियै ।
बिद्रुम की बंधूजीव[1] वर्णों महज अधर सराहियै ।।
दुति दसन बीज सुपक्क दारिम[2] भेष जन मन हारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ।।
रसना सुरंती श्रवति नव रस तालु मृदुतर तासयं ।
सतपत्र पुष्प समान सुरभित अधिक बदन उसासयं ।।
कलकंठ वचन विलास कुहकति अगम निगम उच्चारनी ।
अद्भुत् अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ।।
शुकराय चंचु कि भुवनमनिशिष नासिकावर निरखियै ।
कलधौत नथ मधि लाल मुत्तिय ऊपमा आकरषियै ।।
मनु राज दर गुरु शुक्र मंगल सोह बर संभारनी ।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ।।
अरविंद पुष्प कि मीन अच्चसु प्रचल षंजन पोषियं ।
सारंग शिशु दृग सरिस सुंदर रेह अंजन रेषियं ।।
संभृत्त जुग जनु सुधा संपुट विश्व सकल विहारनी ।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ।।
मनु कनक संपुट सुघट मंजुल पिशित पुष्ट कपोल दो ।
दीपंति श्रुत जनु दोइ रवि ससि लसत कुंडल लोल दो ।।
इन हेत अति उद्योत आनन विघन सघन बिडारनी ।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ।।
कोदंड आकृति भृकुटि कुटिलिति मानु भमहिं सुमधुकरं ।
लहिं कमल कुसुम सुवास लोयन स्त्रैर संठिय वपु सरं ।।
किं अवर[3] उपमा कहय लघु कवि शत्रु जय संहारनी ।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ।।

---

[1] लाल रंग का एक फूल [2] अनार [3] अन्य (अपर)

सुविशाल भाल कि अष्टमी सीस चरचि केसरिचंदना ।
बिन्दुली लाल सिँदूर सुवर्णित वर्ण पुष्प सुवंदना ॥
अनि तिलक जटित जराउ ऊपित सकल काम सुधारनी ।
अद्भुत् अनूप मरालआसनि जयति जय जगतारनी ॥
शिर भाल संधि सुसीसफूलह सहसकिरन समानयं ।
राषडी निरषत चित्त रंजति बेणि ब्याल बषानयं ॥
मोतिन सुमाँग जवादि मंडित अधम लोक उधारनी ।
अद्भुत् अनूप मरालआसनि जयति जय जगतारनी ॥
अंशुक कि इन्दु मयूष उज्जल भीन अति दुति झलमलं ।
सुरवरहिं निर्मित सरस सुर नित परम पावन पेसलं ॥
मन रंग ऊढ़ति महामाई बिपति कंद बिदारनी ।
अद्भुत अनूप मरालआसनि जयति जय जगतारनी ॥
चंबेलि जूही जाइ चंपक कुंद करणी केवरा ।
मचकुंद मालति दवन मुग्गर चारु कंठहिं चौसरा ॥
तंबोल मुँह महकंत त्रिपुरा ब्रह्मरूप बिचारनी ।
अद्भुत् अनूप मरालआसनि जयति जय जगतारनी ॥
अज अजर अमर अपार अवगत अग अषंड अनंतयं ।
ईश्वरी आदि अनादि अव्यय अति अनोप अचिंतयं ॥
कर जोरि कहि कवि मान किंकर अरजतं अवधारनी ।
अद्भुत अनूप मरालआसनि जयति जय जगतारनी ॥

कवित्त

जय जय जगतारनी सारदा सुमति समप्पन ।
कुमति कु कवित कुभास कठिन कलिमल दुखकप्पन ॥
अकल अनोपम अंग मात पूरन चिंतित मन ।
सदा तास सुमिरंत धवल मगल लहिये धन ॥
श्री राजसिंह राना सबल महिपतियां शिरमुकटमनि ।
गावंत तास गुण बंद गुरु भणियाँणी दिज्जै सुधुनि ॥

दोहा

भणियाँणी दीजै सुधुनि, सरसी वाँणि सुशाल ।
चित्रकोट पति जस चऊँ, रचि रचि छंद रसाल ॥
इन परि सुनि कवि कृत अरज, मात होइ सनमुक्ख ।
बोली यों अमृत बचन, सकल समर्पन मुक्ख ॥
गावहु गावहु सुकवि गुन, ढिक करि मनइक ठांउँ ।
राजा राण जस छंद रचि, हो तुम्ह पूरो हाँउँ ॥

सुबर दयौ श्री सरस्वती, आई अभिमुख आइ।
शीश चढ़ाय लयौ सुकवि, प्रत मिसु त्रिकरनपाइ॥
उद्यम ग्रंथह काज अब, दिवस महाभल देखि।
कीनौ आलसि दूरि करि, लाभ अनंत सुलेखि॥

कवित्त

सुभ संवत दस सात बरस चौतीस बधाई।
उत्तम मास असाढ़ दिवस सत्तीस सुखदाई॥
बिमल पाख बुधवार सिद्ध बर जोग संपतौ।
हरषकार रिषि हस्त रासि कन्या ससि रत्तौ॥
तिन द्योस मात त्रिपुरा सुतवि कीनौ ग्रंथ मंडान कवि।
श्री राजसिंह महाराण कौ रचि यहि जस जैं चंद रवि॥

---:o:---

'ऋतुविलास' नामक बाग़ का वर्णन

कवित्त

राजसिंह महाराण पुहविपति अप्प कुंवरपन ।
विपुल लगायो बाग बियो वसुधा नंदन-वन ॥
प्रवर कोटि तिन परधि झुंड सतपत्र कनक झर ।
वृद्धि तहां वापिका कही सनमुख दक्षन कर ॥
निज नगर उदयपुर निकट तें अगिन कोन धां अक्खियें ।
सब रितु विलास तसु नामं सति नयन सुमहल निरीक्खियें ॥

छंद विद्युन्माला

विविधि सघन वृक्ष, लुंब झुंब केउ लक्ष ।
बाग सो बहु विशाल, रितुषट हूँ रसाल ॥
जु जुई सकल जाति, वेलि गुल्ल कैं विभाति ।
भरित अठारह भार, परधि बन्यौ प्रकार ॥
सारनी वहत सार, वृक्ष वृक्ष मूलवार ।
गिनिये सदा गँभीर, सुरभि चले समीर ॥
अंबर बिलगि अब, करनी बहु कदंब ।
आंबली तरू असोक, थट्ट सु अन्नान थोक ॥
आँवरी अगल्लि ऐन, चंपकई दीप चैन ।
अति अखरोट अखि, चारू चार जीह चखि ॥
कटल बढल कुँद, मालती रु मचकुंद ।
करना कनेर केलि, राइन सु राइ वेलि ॥
केतकी रु कचनार, केवरा प्रमोद कार ।
षारिक पिंड षजूर, भाषिये अँगूर भूरि ॥
गिनती कहा गुलाब, जंभीरि जुही जवाब ।
जासूल जंबू सुजाइ, नारंगी निंबो निन्याइ ॥
ज्योंजा तूत नालिकेर, गुलतरा गिरि मेर ।
चंदन महक्क चारु, दारिम सुदेवदारु ॥
तजरु तारू तमाल, मोगरा मधुप माल ।
दमन पतंग दाष, पिसना सूराक पाख ॥
फबत तरू फरास, पारस पीपर पास ।
पाडल बहू प्रसंस, वेतस विदाम बंस ॥

बटबोर सिरिबोर, जानियै सुवर्ण जोर।
सुपारी सरोस सेव, सिंदूरी सदा सुटेव॥
संगर सरस दल, सुरभना सदाफल।
बाग में गिनै विवेक, इत्यादि तरू अनेक॥
करत विहग केल, मिथुन मिथुन मेल।
मैन मारि सुआ मोर, चंचल बहू चकोर॥
सुनिये सबद्द सारू, हरष कुही हजारू।
कोकिल करे कुहक्क, मंजरी भषैं नहक्क॥
कावरि कपोत कोरि, तूती फरू लेत तोरि।
लावारू तीतर लख, चंचु चारू मेवा चख॥
बटेर बाज बखान, सग गरूड़े सिंचान।
जोरावर जहाँ जन्त, अश्व ते न आवे अन्त॥
महल तहाँ महन्त, कनक कलस कन्त।
रायांगन बहु रूप, भले भले बैठे भूप॥
चहबचा पिखे चारु, छुट्टत नल हजारु।
दतीनिके सुडा दंड, उदक धारा अखंड॥
बगले बने विवेक, आच्छी कोरनी अनेक।
सजल तहा सुमर, कमल कनक भर॥
रच्यौ राणा सीह, अनम सदा अभीह।
सरब रितु बिलास, बगीचा सदा सुबास
कुअर पनै सुकेलि, बहू विधि वृच्छ बेलि।
गिनत न आवै गान, कहत कविंद मान॥

——:o:——

महाराणा की दिग्विजय यात्रा

कवित्त

चढ़े सेन चतुरंग राण रवि सम राजेसर ।
मनो महोदधि पूर बारि चहु ओर सुविस्तर ॥
गय बर गुञ्जत गुहिर अंग अभिनव एरावत ।
हय वर घन हीसन्त धरनि खुरतार धसक्कत ॥
सल सलिय सेस दल भार सिर कमठ पीठि उठि कल कलिय ।
हल हलिय असुर घर परि हलक रवनि सहित रिपुरलतलिय ॥

छंद पद्धरिय

सम्बत् प्रसिद्ध दह सत्तभास । बत्सर सु पञ्चदस जिठ्ठ मास ॥
सजि सेक राण श्री राज सीह । असुरेश धरा सज्जन अबीह ॥
निर्घोष घुरिय निसान नद्द । सहनाई भेरि जङ्गी सु सद्द ॥
अति बदन बदन बट्टी अवाज । सब मिले भूप सजि अप्प साज ॥
किय सेन अग्ग करि सेल काय । पिखन्त रूप पर दल पुलाय ॥
गुंजत मधुप मद झरत गच्छ । चरघी चलन्त तिन अग्ग पच्छ ॥
सोभन्त चौर सिन्दूर शीश । रस रङ्ग चङ्ग अति भरिय रीस ॥
सो झाल घटा मनु मेघ श्याम । ठनकन्त घंटा तिन कंराठ ठाम ॥
उनमत्त करत अगगग अग्राज । बहु वेग जान पावै न बाज ॥
ढलकन्त पुढि उज्जल स ढाल । बर बिविध वर्ण नेजा बिसाल ॥
बोलन्त चलत बन्दी बिरूद्द । दीपन्त धवल रूचि शुचि विरद्द ॥
गुरु गाठ गंद गिरिवर गुमान । पढ़ि धत्त धत्त मुख पीलवान ॥
एराक आरबी अश्व ऐन । सोभन्त श्रवन सुन्दर सुनैन ॥
काश्मीर देश कांबोज कच्छि । पय पन्थ पौन पथ रूप लच्छि ॥
बंगाल जाति से बाजिराज । काबिल सुकेक हय भूप काज ॥
खंधार उतन केहि खुरामान । वपु ऊँच तेज वर बिबिध बान ॥
हय हीस करत के जाति हंस । कविले सुकि हाड़े भोर बंस ॥
किरडीए खुरहडे केसु रत्त । पीलडे केकली लेप चित्त ॥
चञ्चल सुवेग रहवाल चाल । थेइ थेइ तान नचन्त थाल ॥
गुंथिय सुजान कर केस बाल । ग्रीन कंध बक्र सोभा बिसाल ॥
साकति सुबर्ण साजे समुख्ख । लीने सु सत्थ हय एक लख्ख ॥
रवि रथ तुरंग सम ले सरूप । भीन बिपुल पुट्ठि तिन चढ़े भूप ॥

पयदल सु सज्जित पोरष प्रधान । जंघालु जङ्ग जीतन जवाँन ॥
भट विकट भीम भारत भुजाल । सार्धमि सूर निज शत्रुशास ॥
निलवठ सनूर रत्ते सु नैंन । गय थाट घाट अपघट गिनैंन ॥
धमकंति धरनि चल्लत धमक्क । धर हरत कोट निज सबर धक्क ॥
बंकी सु पाघ वर भृकुटि बंक । निर्भय निरोग नाहर निसंक ॥
शिर टोप सज्जि तनु त्रान संच । प्रगटे सु बंधि हथियार पंच ॥
कटि कसे कटारी अरू कृपान । बंदूक ढाल कोदंड बान ॥
कमनीय कुंत कर तोन पुट्ठि । मारंत शद्द सुनि सबल मुट्ठि ॥
गल्हार करत गज्जंत गैन । बोलंत बंदि बहु विरुद बैन ॥
मुररंत मुंछ गुरु भरिय मान । गिनि कोन कहै पायक सुगान ॥
बहु भूह थट्ट दल मध्य वीर । सुरपति समान शोभा सरीर ॥
श्री राजसिंह राणा सरूप । गजराज ढाल आसन अनूप ॥
शीशे सु छत्र बाजंत सार । चामर ढलंत उज्जल सचार ॥
घन सजल सरिस दल घाघरट्ट । भाषंत विरुद बर बन्दि भट्ट ॥
कालंकि राय केदार कत्थ । अस कत्ति राय थप्पत समच्छ ॥
हिंदू सु राय राखन सुहद्द । मुगलाँन राय मोरन मरद्द ॥
कविलान राय कट्टन सु कन्द । दुतिबत राय हिंदू दिनंद ॥
अरि विकट राय जाड़ा उपाड । बलवन्त राय बैरी विभाड ॥
अन पुट्ठि राय पुट्ठिय पलाँन । भल हलत रूप मध्यान भान ॥
रायाधि राय राजेश रान । जगतेश नंद जय जय सुजान ॥
बाजीनि चरन खुरतार बग्ग । मह अनड कट्टि कीजंत मग्ग ॥
झलझलिय उदधि सलसलिय सेस । कल कलिय पिट्ठि कच्छप असेस ॥
रजथान सजल जलथान रेनु । धुन्धरिग भान रज चढ़ि गेगनु ॥
अति देश देश सु बढ़ी अवाज । नट्ट सु यवन करते निवाज ॥
हलहलिय असुर धर परि हलक्क । षलभलिय नैर पर पुर षलक्क ॥
थरहरैं दुर्ग मेवास थान । रचि सेन सबल राजेश रान ॥
सुलतान मान मभी ससंक । बलवंत हिंदुपति वीर बंक ॥
आयौ सुसेन अवनी अभंग । आलम सुभयौ सुनि गात भंग ॥

कवित्त

ऊचलि गयो अग्गरो दन्द मच्यौ अति दिल्लिय ।
हाजीपुर परि हक्क डहकि लाहौर सु डुल्लिय ॥
थरस लयौ रिनथम्भ भ्रसकि अजमेर सु धुजिय ।
सुनौ भयौ सिरोंज भगग मै लसा सुभजिय ॥

अहमदाबाद उज्जैनि जन थाल मूँग ज्यों थरहरिय।
राजेस राण सु पयान सुनि पिशुन नगर खरभर परिचय ॥

छंद मकुन्द डामर

चतुरंग चमू सजि सिंधुर चंचल बंक विरूद्दरू दान बहैं।
अवधूत अजेज तरंग उतंगह रगहि जे रिपु कट्टि रहै ॥
अवगाढ़ सु आयुध युद्ध अजीत सुपायक सत्थ लिये प्रचुरं।
चित्रकोट धनी सजि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ॥
अति बट्टि अवाज भगी दिसि उत्तर पंथ पुरंपुर रौरि परी।
त्रह कंत सु त्रंबक नूर त्रहं त्रह षंग महा षिति बज्जि षुरी ॥
उडि अम्बर रेनु बहूदल उम्मडि सोषि नदी दह मग्ग सरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ॥
करते बहु कूच मुकाम क्रमं क्रमि पत्त सु नागर चाल पहू।
भहराय भगे धर लोक महा भय सून भये अरि नैरस हू ॥
असुरेश कै गेह सुवट्टि उदंगल डुल्लिय दिल्लिय सन्नि डरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ॥
दल बिंटिय माल पुरा सु चहौं दिसि ऊपम चंदन जान अही।
तहँ कोन मुकाम धुरंत सु त्रंबक सोच पर्यौ सुलतान सही ॥
नर नाथ रहे तह सत्त अहो निसि सोवन मारस धीर धरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ॥
धक धूनिय घास सुकोट धकाइय गौपरु पौरि गिराइ दिये।
ढम ढेर करी हट श्रेणि ढुढारिय कंकर कंकर दूर किये ॥
पति साह सु दज्झन नैर प्रजारिय अंबर पावक झार अरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राणा यु मारि उजारिय मालपुरं ॥
तहाँ श्री फरू पुंगिय लौंग तनारह हिंगुल केसरि जायफलं।
घनसार मृगंमद लीनि अफीम अँबार जरन्त सु झारझलं ॥
उड़ि आग्गि दमग्ग स दिल्लिय उप्पर जाय परें सु डरैं असुरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ॥
धर पूरिय षोम धराधर धुंधरि धाम भरे धन धान धषैं।
रवि बिम्बति हौं दिन गोप रह्यौ लुटि लच्छि अनन्त सु कौन लषैं ॥
स्विकलात पटम्बर सूफ सु अंबर ईंधन ज्यों पंजेरें अगरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि रासी राणा यु मारि उजारिय मालपुरं ॥
अति रोसहिं कीन इलातर उप्पर कंचन रूप निधान कढ़े।
भरि ईभप जान सु खब्बर सूभर बिसहिं भृत्य अनेक बढ़े ॥

जस वाद भयौ गिरि मेरु जितौ हरषे सुर आसुर नूर हरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय मालपुरं ॥
जय हिंदु धनी यवनेशहिं जीतन मारन तूंही यु म्लेछ मही ।
अवतार तुहीं इल भार उतारन तोकर वग्ग प्रमान कहीं ॥
जगतेश सु नंद जयौ जगनायक बंस विभूषन बीर बरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय माल पुरं ॥
निज जीत करी रिपु गाढ़ नसाइय आए देत निसान खरे ।
पयसार सु कीन सिगारि उदय पुर आइ अनेक उछाह करे ॥
कवि मान दिये हय हत्थिय कंचन बुट्ठिय जानि कि बारि धरं ।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राणा यु मारि उजारिय मालपुरं ॥

कवित्त

माल पुरहिं मार्‌यौं कनक कामिनि घर-घर किय ।
गारिय आसुर गढ़ नार चढ़यौ सु बंस निय ॥
इन कुल नीति सु एह गट्ट आलम गहि मोषन ।
अनमी अनड अभंग नित्य निर्म्मल निरदूषन ॥
अज सिंह पियै जल घाट इक षग्ग तेज लियै सुषिति ।
राजेश राण जगदीश सुत पुन्यवंत मेवार पति ॥

इति श्री मन्मान कवि विरचते श्री राज विलस शास्त्रे राँणा श्री राज सिंह जी कस्य दिग्विजय वर्णन नाम पष्ठम विलासः संपूर्णः ।

जयसिंह और अकबर का युद्ध

कवित्त

प्रथम सुहोत निसान चढ़ति बजी चावद्दिशि ।
हय गय पक्खरि भर सनाह पहिरिय सुबधि असि ॥
दुतिय निसान सुहोत सहम घमसान घनारंभ ।
मिले सबल सामंत सूर ज्यों समुद सलित अँभ ॥
बाज्यो सु तृतिय निसान जब तब जय सिंह चढ़े सुहय ।
चामर ढुरंत उज्जल उभय आतपत्र नग रुप मय ॥
चंद्रसेन झाला नरिंद गजगाह बंध गुरु ।
चढे राव चहुआन सिंघ ज्यों सबर सिंह वरु ॥
बैरी सल्ल पँवार राय बीराधिबीर रण ।
सगताउत रावत सु सज्जि केहरि केहरि गुन ॥
रावत चोंडाउत रतन सी महुकम रावत बड़ सुमति ।
चहुवान केहरी सी चढ़े चपल तुरंगम चंड गति ॥
महाराय भगवंत सिंह रूपमांगद रावत ।
षीची राव सुरेण षंग चढ़ि षुरिय नषावत ॥
मानसिहं रावत सुमंत मुहकम सिंघ रावत ।
गंगदास कूँअर अभंग केहरि चोड़ाउत ॥
माधव सुसिंह चोंडा मरद कन्हा सगताउत सुकर ।
जसवंत जैत झाला प्रमुख सजे सकल सामंत भर ॥

दोहा

सबल एह सामंत भर, अनि उमराव अपार ।
मेन कुँअर जयसिंह की, करन असुर संहार ॥

छन्द गीतिमालती

गंगगड़ धोंकि निसान धों करि भद्र भंभा भरहरे ।
झननंकि ताल कँसाल झननन द्रनन दुरबरि डंबरे ॥
सहनाइ पूरि सँपूरि सिंधुअ ढनन तूर उनंकियं ।
ढम ढमकि ढोल ढमंढमं फुनि फुनि नफेरि भनंकियं ॥
संचले दल मुख सबर सिंधुर गात अंजम गिरिबरा ।
संत्तग भूमि लगंत सुंदर झरत गिरि ज्यों मदझरा ॥
सिंदूर तेल सुरंग शीशहिं मुक्ति माल मनोहरं ।

संढुरत उचल चोर सिरि भवसिंह सो बन श्रीभरं ।
मुह संड दंड उद्दंड मंडित तरुन तरु उनमूरते ॥
दृढ़ दिग्घ दंत सभार शशि दुति सकल सोभ सपूरते ।
महकंत दाँत कपोल मूलहि गुंज रव अलिगन भ्रमें ॥
ठनकंत घंट सुघंट कंठहिं चरन घुग्घर घमघमें ।
सुसुनद्ध बद्ध सनाह संकर तदपि षग गति पग धरे ॥
गरजंत ज्यौं घन गुहिर जलधर भीम ऋतु भद्दव भरे ।
सुपताक हरित सुरत्त पीतनि चिन्ह हरि रवि चंडियं ॥
कर कनक अंकुसि धत्त धत्तह पीलवाननि तंडियं ।
चर चलत अग्गरु पच्छ चरषी षून तदपि षरे षरे ॥
बहु विरद बंके बंदि बोले भूमि तब इक पय भरे ।
कहर आग करिनी केक करिवर शुद्ध चित तब संचरे ॥
पर दलनि पेलन पील दलपति विकट कोटनि जे अरे ।
ढलकंत ढाल सवास ढंकित डोल बर किन पर कसें ॥
गुरु नाहि गोर जँबूर किन पर लोह कष्क किन लसें ।
किन पिट्ठि नद्द निसान नौबत कनक के सुम्भर तरे ॥
गजराज गुरु सुर राज के से स्याम घन जनु संचरे ।
एराक आरब देश उतपति कासमीर कलिंग के ॥
कांबोज कोंकणि कच्छि कविले हय उतंग सु अंग के ।
पय पंथ सिंधश्र पवन पथ के तरणि रथ के से तुरी ॥
बहु बिबिध रंग मुरंग मजनसु बेंग बर करते घुरी ।
हंसिले हरडे हरी किरडे रंग लाषिय लीलड़े ।
रोभीय सिंहलि भेर अँब रस बोर मसकी दृग बड़े ॥
संजाब तुरजे ताजि तुरकी किलकिले अरु कातिले ।
सुकुमेत गंगाजल किहाडे गरुड गुल रँग गुण निले ॥
जिगमिगति नग युत स्वर्ण साकति बेनि वर बंधे बनी ।
सुजबादि मंडि रु पाट पँचरँग गुँथी मधि मौक्तिक मनी ॥
फबि विविधि फुंदावली रेसम लुंब झुंब बषानियें ।
बढ़ि हेष २ सघाण बज्जत जोर सोर सुजानियें ॥
नच्चन्त धृत तततान नट ज्यों थाल मध्यथलं गने ।
सकुनीन पूजतु मग्ग संगहिं गिरि उतंगहिं ना गिने ॥
पर करे नप सिष सजर पर कर ममर योग सराहिये ।
मनु मरुत मित्र कि चित्र चित्रित चाल चंचल चाहिये ॥
रग चढ़े तिन पर राव रावत अन्य गुरु लहु उम्मरा ।
बर बीर धीर समीर नृप भर सिलह पूर सडंबरा ॥

घन घाघ रट थट सुघट अबघट घाट की जत दल घने ।
बड़ि छोह जोह सकोह कंदल क्रूर वर देखे बने ॥
रथ भराति के घन कनक रूत्र अधुर्य जिन जोरा धुरा ।
गुरुनारि गंत्रिन सोर गोरिय तीर तरकस तोमरा ॥
धनु कवच त्राण कृपाण भगवति कुंत कत्ती किलकिला ।
सुसँवारि सार छत्तीस आयुध करण पल दल कंदला ॥
पयदल प्रचंड उदंड संडति मनध बद्ध समायुधा ।
रिस रोस जोस सुरत्त लोयन सद्दवेधी संयुधा ॥
पति भक्त पर दल पूर पैरत पाइ नन पच्छे परें ।
धसमसहिं धरनि न चरन घमकनि धकनि कोटति धरहरें ॥
दल मध्य दिनपति सरिस तनुद्युति कुंअर श्री जयसिंह हैं ।
आरुहे हंस सुबंस हयवर मकल चक्ख समीह हैं ॥
उतमांग चौर दुरंत उद्यल आतपत्र जराव को ।
कवि वृंद छंद वदंत कीरति देवद्रुम सदभाव को ॥
दिशि विदिशि दलदल ज्यों जलधि जल अचल चल चल ह्वै चले ।
पल ग्रहनि पल भल कुंति कलकल सलिल शेशति सलसले ॥
कल कलिय कच्छप पिट्ठि कसमस धींग धसमस धावहीं ।
पुरतार तार प्रतार वद्यत जानि विश्व जगावहीं ॥
शिव संक सकबक इन्द अकबक धीर धाता धकपके ।
सर सकल सटपट चंद चटपट अरुण अटपट हकबके ॥
झलझलिय निधि रवि परिय झंगर पह उझंमर विक्खए ।
सरसलित सलिल समूह मकुरि वर प्रयान विसिक्खए ॥
करिग पयान सकोप चमू सजिव चतुरंगनि ।
अरक बिंब आवरिय रेणु भरि गेण सार भनि ॥
उलटि जानि जल उदधि कटक भट विकट उपट थट ।
मकित मग्ग मर मुकित चकित चहुँ ओर ऊटपट ॥
उरजंत कुरंग बराह बर हरि भर बन पुर असम मम ।
जयसिंह कुंआर सुकरन जय चढ़िदल बद्दल गम अगम ॥
एक अग्ग अनुसरत एक धावंत वग्र तजि ।
एक कुदावत तुरग इक्क रहवाल चाल भजि ॥
हयनि हेष नासानिनाद प्रति साद गेंन गजि ।
पर निज सद्धि न परति भीति धरि रिपुन बन भजि ॥
उन्नत पताक पँच रँग प्रवर तिन उरझत रवि तुरगपय ।
तिनतें श्रवंत मुगतानि कन जानि राज्यश्री श्रवति जय ॥
अडग डगति डगमगति अद्रि परहरति अष्टकुल ।

चंड चक्र चकचकति उघरि यल गति मुद्रित पल ॥
अचल चलति पलभलति झलकि झलझलति जलधि सर ।
अढर ढरति ढरि परति धरनि धरहरति हयनि खुर ॥
अकबकति इंद हकबकति हर धकपकि धाता धीरनन ।
जयसिंह सेन सचि चढ़त जब तब त्रिभुवन संकत सुमन ॥

दोहा

प्रबल पयान दिसान प्रति, नाद पूरि रज पूरि ।
बन गिरि तुट्टि संघुट्टि बन, भय पर जन पद भूरि ॥
आलम के दल उप्परहि, तरो किए तुषार ।
आऐ तबही गढ़ उररि, श्री जयसिंह कुअांर ॥
दिए मलीदा मैंगलनि, रातब हयनि रसाल ।
सलिल प्याइ छंटेव मुंह, बरत्यो समय बियाल ॥
बीरा मध्य कपूर बर, लहु एलची लवंग ।
नवल जायफल नागरस, रंजे सुभट सुरंग ॥
सिंधू गोरी बजत सुर, सूरति बढत सुछोह ।
त्रिन ज्यों तन धन तिन तजे, मानिनि माया मोह ॥
पलक जात रजनी परि, बिथुर्‌यो तम सुबिसाल ।
तुरकानी दल पर तुरी, तेल न लगे भुवाल ॥
तबही बग्ग गहें तुरित, सकल सूर सामंत ।
करें बीनती कुअंर सो, शीतल भाष सुमंत ॥

अथ झाला चंद्रसेन जी की अरदास

प्रभु हम प्राक्रम पेखियहि, धरहु आप मन धीर ।
प्रथम पदाति युधंत जुधि, तदनु सांइ बरबीर ॥

अथ चहुवान राव सबलसिंह जी की अरदास

हम समान सेवक सहस, निपजे बहुरि नवीन ।
साईं सेवक लक्खकनि, पोषन कों प्रभु कीन ॥

अथ पवांर राव बैरीसाल जी की अरदास

साईं इहि सेना सकल, हय गय सुभट ससाज ।
समर समय ही को सजे, कहा और हम काज ॥

अथ सगताउत रावत केसरी सिंह जी की अरदास।

साईं काम सेवक मरे, तौतत स्वर्गहिं ठौर।
साईं पंखे संकरें, तिनहिं नरग नहिं ओर॥

अथ चौंडाउत रावत रतनसिंह जी की अरदास

साईं रक्खे सीस पर सेवक लरे सुभाइ।
अब सेवक साहस बढ़े, तहँ प्रभु करे सहाइ॥

अथ सगताउत रावत महकम सिंह जी की अरदास

मनिधर ज्यों थिर थप्पि मनि, आप तास सप्रकास।
चेजा करत सचेत चित, त्यो हम लरन उल्हास॥

अथ राव केसरी सिंह जी की अरदास

साईं सिरजे हुकम को, हुकम दिपाउनहार।
हुकमी साईं के बहुत, जंगधार जोधार॥

तदनंतर महाराजा भगवत सिंह जी की अरदास

तोरि पताका तुरक के, नोबति लेई निसान।
आवै तो उमराव तुम्ह, प्रभु हम बचन प्रमान॥

तदनु चहुवान रुषमांगद रावत की बिनती

सांइ पचारत सेवकनि, हां भल बोलि हुस्यार।
तब मन दूनों बल बढ़ें, शत्रुनि करत संहार॥

तदनु षीची राव रतन की अरदास

इह तन इह मन इह सुधन, इह सुष गेह सयान।
हैं साईं ही के सकल, परिकर संयुत प्रान॥

अथ रावत मानसिंह जी की अरदास

राखि पीठि मुरारि रिन, पंडव पंच प्रधान।
कौरव दल तिल तिल कियो, हम मन एह मंडान॥

अथ सगताउत रावत महुकम जी की अरदास

सांइ भरोसे रक्खिए हम अभंग रन हिंदु।
कहर काल करवाल गहि, मारहिं मीर मसंद॥

अथ सगताउत गंगदास कुंअर की अरदास

बिमल बंश जन के बिदित, मात पिता प्रभु एक।
ते साईं के काम ते, टरे न इह तिन टेक॥

अथ चोंडाउत रावत केसरी सिंह की अरज

देषत चंदहि दूरितें, चुनत कृसानु चकोर ।
त्यों साँई निरखत सुभट, रण सुमचावहिँ रोर ॥

अथ माधोसिंह चोंडाउत की अरदास

साईँ सुखतें हम सुखी, सकल सूर सामंत ।
ज्यों तरु सीँच्यो पेड़ तेँ, पात पात पसरंत ॥

अथ कन्ह सगताउत की अरदास

साई सकल सयान हो गुरु बंधे गजगाह ।
एक तमासो अनुग को, देषहु दंदहु वाह ॥
करयुग जोरि सुललित करि, करि निज निज अरदास ।
करि प्रसन्न जैसिंघ मन, बग्ग थंभि बरहास ॥
सहस सुभट हय बर सहस, प्रभु रक्खे निय पास ।
समर धँसे हय सहस दस, सुभट सहस दस भास ॥

कवित्त

सकल सूर सामंत अरज बित्ती सु अद्ध निशि ।
वरषागम बद्दल बियाल दग चाल बंध दिशि ॥
भेले भय भारत सुभीम पतिसाहि सेन पर ।
त्रटकि जानि घन तरित भटकि चित चक्रित असुरभर ॥
वे चूक चूक कबिला बकत जानि किसान लुनंत कृषि ।
बज्जी सुझाक झर षग्ग झट संयुग प्रलयसमीर शिषि ॥

छंद मुकुंदडामर

झननंकिय षग्ग सुबज्जि झटाझटि धाइ धसंमस धींग धसेँ ।
कर कुंत सकंति रूकंति कटारिय लोह झलंमल झाँइ लसेँ ॥
जरि जोधनि जोध जनों जम जोरिय टोप कटक्कि करी करकैं ।
झटकंत सनाह कृपान झनंकति हड्डु कटक्कि बजेँ जरकैँ ॥
मिलि कंकनि कंक सुधार पिरंतह अग्गि झरंत कि बिज्जु झला ।
तिन होत उदोत तकै उतमंगहिं कोपित सूर अनंत कला ॥
मचि कँदल मीर गँभीर कटे मधि माझिय जेइ मसंद महा ।
तनु भार सँभारिय बँध भुजा तिन भार पराक्रम षग्ग वहा ॥
बहि बज्र प्रहार गदा गुरु मुग्गर पक्खर भार सुढार ढरैँ ।
टुटि टोपनि टूक फटैँ फुनि टट्टर सैद बिकैद से सून फिरैँ ॥

लरि लुंब पठान छके छिलि लोहनि षडं बिहंड बितंड भए ।
प्रहनंत न अप्पन आन पिछानत जानि सुठाण के षंभ गए ॥
दुहुँ ओर दुबाह उछाह उमाहिय आपने ईश की आन बदै ।
सुतजि नेह देह सुगेह सुमानिनि सांइय काम सुहाम रूदै ॥

करि ताक सँभारि सँभारि सुहक्कत बेधत बान अभंग बली ।
तनु त्रान संधान सुआन स प्रानहिं बेधत आनहिं होत रली ॥
सर सोक बजंत सुढंकिय अबंर डंबर जानि की मेघ श्रवै ।
बहि रँग प्रबाह सराह प्रबालिय चोल रँगे जनु चेल चुवै ॥

फरसी हर हुल्ल गुर्पत्ति फुरंतह धीरज केइक धीर धरै ।
भननंकिय गोर सुसोर भटक्किय गेन गजैं गिर शृंग गिरैं ॥
धर पिट्ठि प्रसक्कि प्रसक्कि धराधर कायर जानि कुरंग भगे ।
घन घोष सुत्रंबक सिंधु धुरंतह ज्यों बर बीरनि बीर जगे ॥

कुननंत किते कबिला कलहंगनि रूम्मि रूहिल्ल गोहल्ल रुरैं ।
मच्चि मारहु मार सुमार मुषं मुष भारिय भारत भूप भिरैं ॥
उतमांग पतंत कहैं केइ अल्लह के रसना तें रसूल ररैं ।
घन घायल घाउ लगे घट घूमत झूमत ही धर धंसि परें ॥

हबसी उजबक्क बलोच्चिय भंभर गक्खरि भक्खरि कोन गिनें ।
परि सत्थर वित्थर चेरि रिनंगन बायक कैसे कहंत बनें ॥
कटि कंध कमंध सुअंध गहेँ असि नच्चत रूप बिरूप लगें ।
उबरंत परंत गिरंत कि गिंदुक जिंदु अटट्टहास जगें ॥

गज बाजि फिरंत रिनंगन गाहत भंजि करं कनि भूक करें ।
तरफैं अधतंग तुटे नर आसुर ज्यों जलहीन सुमीन रुरैं ॥
कर पग्ग कढ़ें शिर षंध लटक्कत आन झटक्कत झुंझि भरें ।
मुष मार बकंत हकंत हुस्यारिय झार प्रनार सुरंग झरें ॥

नट ज्यों भटकें किन बल्ल निपट्ट उलट्ट पलट्ट कुलट्ट नचें ।
अनतुंग अनोकुह अंत अलुज्झत मांस रू श्रोनित पंक मचें ॥
किन अश्व कटंब धयंत सुघाइन पाइ झरंत सुकुंत बरें ।
रहि ठट्ट सुगट्ट कुधंत इकें करपार बदंतन छोनि परें ॥

बिन हत्थ किते धषि मारत मुंडहिं ज्यों वृष मेष महीष भिरें ।
बढ़ि सत्थ लथब्बथ के हथ बाहु सुमुठ्ठिन मुठ्ठि ज्यों मल्लजुरें ॥
भभकें करि सुंड विहंड भसुंडह चच्चर रत्त प्रबाह जलें ।
उछरें अरि षंड सुजानि अजग्गर जंगल केलि करंत जलें ॥
उड़ि श्रोनितछिंछि उतंग अयासहिं संझ समान सुबान बढ़्यो ।

बलि लेन बिताल रु बीर बिनोदिय चौंसठि युग्गिनि रंग चढ़्यो ॥
लगि लुत्थिन लच्छि उलच्छि पलच्छिय हत्थिन हत्थिय व्यूह श्ररे।
हय सत्थ किते हय ग्रीव्रह बस्सिय बाढ़ बिहस्सिय भूमि ढरे ॥
टुटि टोप रु त्रान कृपान सरासन तीर तरक्कस कुंत तुटें।
बर बेरष बंबरि झंड उभ्झूरी तेज रु नारि श्रराब्र फटें ॥
बहु रूप बिलास प्रहास समीहित इशर श्रंबुज माल गुहें ।
सब केक हकारि बकारि सुउट्ठहिं गिद्धनि तुंडनि मुंड गहें ॥
प्रहनंत दुहूँ पष बीर पचारत बाहि समाहि बदंत बली ।
तिन सद्द सुनंत सुनारद तुंबर रक्खस जक्ख सुहोत रली ॥
श्ररि मुंड किते हय गय पय ठिप्पर चोट चोगान की दोट भये ।
रन रंग रलत्तल रत्त महीतल चक्क चलंचल चंड जुए ॥
रस भैरव भूत पिचास महोरग दैतरू दानव दंद चहैं ।
सुर इंद सबै मिलि सूर सराहत हो हिंदुवान की जैति कहैं ॥
रुरि रुंड रु सुंडनि नार मलेछनि सेन सुषंड बिहंड भई ।
प्रहरेक प्रमान महा झर मंडिय भारथ उद्धम भाँति ठई ॥
बरे हूर सनूर सँपूर सुसूर सनेह बहें बर माल ठवें ।
जयकार करंति बधाइ समुत्तिन मंगल गाय प्रसून श्रवें ॥

कवित्त

प्रमुदित श्रवति प्रसून गीत रंभागन गावत ।
बरत सु बर वर मीर बिव्रल मोतीन बधावत ॥
गरहिं घल्लि वर माल साषि दे सकल सूर सुर ।
पंकजनैनी पढ़त बर्‌यों मैं प्रगट एह बर ॥
बेताल फाल बिकराल बपु हास श्रट्ट हरषत हसत ।
श्रसि झरझरंत तुट्टत श्रसुर धीर वीर रिण धर धसत ॥
श्रसि श्रपार श्रकरार धार रिपुमार धपंतिय ।
जंगवार जोधार मार करतार सुमंयित ॥
झलमलंति झनकंति खिज्जि षल मत्थ बिपंतिय ।
सौदामिनि-सोदरा समल जन श्रजय जपंतिय ॥
रँगी सुरँग रलतल रुहिर सकल सत्रु संहारती ।
हिंदुवान थान रक्खन सुहृद भगवति प्रगटी भारती ॥
बिफुरि हिंदु बर वीर दान श्रसुरान ढँढोरत ।
हय गय नर संहार भार घन झंड झकोरत ॥
लुट्टत लच्छि श्रलेष कूह फुट्टी श्रकरारिय ।
सोवति सुंदरि सत्थ साहिजादा भय भारिय ॥

सु षलतिय कुल सकल अकल बिकल हिय हरबरत ।
षलभलिय भग्गो सभीति गिरि बन गहन निसि अंधियारी अरबरत ॥
हिय हहरंति हुरम्म हार तुट्टत मोतिन गन ।
परत हीर परवाल लाल श्रम भाल स्वेद कन ॥
निघटि स्वास निस्वास भरति लोचन मृगलोचनि ।
यूथभ्रष्ट मृग बधु समान चकित रस रोचनि ॥
धावंत उमग्गनि मग्ग तजि एकाकिनि गिरि गृह सजति ।
ए ए प्रताप जयसिंघ तुम अरिन बाम रन बन व्रजति ॥
लुट्टि षजान अमान लुट्टि हय गय सुबिहानिय ।
साहिगंज ढढोरि तोरि तंबू तुरकानिय ॥
नौबति लेइ निसान भार रिपु थान सुभज्यौ ।
जानी सकल जिहान सकल सज्जन मन रंज्यौ ॥
बहुरे निसंक जय करि बहुत मिल्यौ म्लेछ तिन मारयौ ।
महाराण सुभट सामंत सजि बहु असुरान बिडारयौ ॥

दोहा

भगौ साहिजादा गयौ गढ़ अजमेर अनिट्ठ ।
रहे न आसुर और रन नृपत बाब सब नट्ठ ॥
करैं सुमुजरो कुँअर सों सकल सूर सामंत ।
छवि छिलते रन छोहले बहु सुष पाय अनंत ॥
लहे सु जिन जिन लुट्टि के हय बर हच्छी हेम ।
कुँअर अग्गते भेट करि पोषिय प्रबर सुप्रेम ॥
रक्खन जोगे रक्खि के सनमाने सब सूर ।
ग्राम ग्राम तिन देइ गुरु सज शिरपाव सनूर ॥
आए निज ग्रह जीति अरि करि बहु कंदल काम ।
उथपि थान असुरेश को हृदय सु पूरिय हाम ॥
इहि परि रक्खें निज अवनि राजसिंघ महाराण ।
और हिंदु सेवे असुर षल षंडन षूमान ॥

अथ कलस कवित्त

अजमेरह अग्गारो काध दिल्ली धर धुज्जै ।
रिनथंभह रलतले लच्छि लाहौरे लुटिज्जै ॥
षुरासान षंधार थटा मुलतान थरक्कै ।
चंदेरी चलचलय भीति ऊज्जैनि भरक्कै ॥
मंडवह धार धरनी मिलय डुलय देस गुजराज डर ।
श्रौ दकै साहि औरंग अति राण सबल राजेश बर ॥

अचल युद्ध धर अकल अखल अज्जेज अभंगह ।
अद्भुत अनम अनंत आदि अवनीस सु अंगह ॥
कालकिन केदार पापि कज्जे प्रयाग पहु ।
महि सु गगन मदवान विरुद इहिं भाँति जास बहु ॥
जगतेश राण सु अ जगत जस अच्छि देत बिलसंति अति ।
कहि मान राण राजेस यौं छत्रीपन रक्खंत षिति ॥
सज्जन सौं सनमान दंड भरि थक्के दुज्जन ।
जसकारक जाचकनि देत हय हृन्छि दिनं दिन ॥
न्याउ बेद वर नीति दूध कौ दूध जलं जल ।
अजा सिंह थल इक्क सलिल ढुक्कत बिन संकल ॥
ध्रुवर अजास जौं लौं धरा प्रगट बिरुद जिन हिंदु पति ।
कहिमान राण राजेश यों छत्रीपन रक्खंत षिति ॥
इंद्र रूप ऐश्वर्य्य दान जलधर ज्यौं दिज्जै ।
राज तेज रवि रूप क्रोध रिपुकाल कहिज्जै ॥
लीला ज्यौं लच्छीस न्याय श्री राम निरंतर ।
अर्जुन ज्यौं सर अचल बिक्रमादित्य बचन वर ॥
कल्युग कलंक कप्पन विरुद मलन असुरपति बिमल मति[1] ।
एँ उत्तम आचार निबल आधार सबल नृप ॥
सुरहिं संत जन सरन जग्य धन दान होम जप ।
विस्तारन बिधि बेद ईश प्रसाद उद्धरन ॥
असुरायन उत्थपन सु कवि धन बित्त समप्पन ।
दिन दिनहिं सदा ब्रत षट दरस भुँजाई यदुनाथ मति ॥
कहि मान राण राजेश यों छत्रीपन रक्खंत षिति ।

[1] इस छंद का अंतिम चरण हस्त लिखित पुस्तक में नहीं लिखा है, परंतु अनुमान से जान पड़ता है कि इसका भी अंतिम चरण वही होगा जो इसके पहिले और पीछे वाले छंदों का है अर्थात् "कहि मान राण राजेश यों छत्रीपन रक्खंत षिति ॥

जोधराज

जोधराज

हम्मीर रासो के रचयिता जोधराज का व्यक्तिगत परिचय बहुत संक्षिप्त रूप से इसी रासो (हम्मीर रासो) में ही मिलता है और उस की प्रामाणिकता में संदेह करने का कोई कारण भी नहीं देख पड़ता। इस ग्रंथ के अनुसार जोधराज, पृथ्वीराज के एक वंशधर चंद्रभानु नामक एक राजा (राठ पतिसाह) के आश्रित थे। यह चंद्रभान निम्बराणा (नीमराणा) नामक एक गाँव का जागीरदार था और इस ने एक बार अपने दरबारी कवि जोधराज से हम्मीर की कथा कहने को कहा था और उस के आज्ञानुसार कवि ने इस काव्यग्रंथ की रचना की। ग्रंथ के आरंभ में वंदना के बाद कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

कवि का परिचय

पृथिराज राज जग भौ प्रसिद्ध, भृगु वंश मध्य प्रगटे सुसिद्ध।
नृप चंद्रभानु तिहि वंश मध्य, किरवान दान दोऊ प्रसिद्ध॥
पिच निम्बराण जग ग्राम नाम, जुत वर्णाश्रम निज धर्म धाम।
जय कीरति भुवमंडल उदार, अरु तेज प्रतापी बल अपार॥
सब कहैं राठ को पातिशाह, जस श्रवन सुनन की सदा चाह।
द्विजराज गौड़कुल जग प्रसिद्धि, विद्या विनीत हरिधर्म वृद्धि॥
सब दया दान उद्दार बीर, गुण सागर नागर परम धीर।
कुल पंच वृक्ष के मूल जान, द्विज आदि गौड़ जानत जहान॥
सौ चौदह सै चालीस च्यार, जन सासन सागर अति उदार।
अब सब को किंकर मोहि जानि, ऋषि अत्रि गोत्र में जन्म मानि॥
डिडवरिया राव कहि विरद ताहि, शुभ राठ देश में उदित आहि।
तिहिं नाम ग्राम भल बीज वार, सब प्रजा सुखी जुत वरण चार॥
जहँ बालकृष्ण सुत जोधराज, गुन जोतिष पंडित कवि समाज।
नृप करी कृपा तिहिं पर अपार, धन धरा बाजि गृह बसन सार॥
बाहन अनेक सतकार थूरि, सब भाँति अजाजी कियो मूरि।
नृप एक समय दरबार माँहि, रासो हमीर कहि सुन्यो नाहिं॥
नृप प्रश्न करिय यह उभै बात, सब कहौ वंश उत्पति सुतात।
अरु कहौ साहि हम्मीर बैर, किहि भाँति कंक बढ्यौ सुफेर॥

इस उद्धरण से यह मालूम हो जाता है कि जोधराज आदि गौड़ कुलोत्पन्न अत्रि गोत्रीय ब्राह्मण थे, और इन के पिता का नाम बालकृष्ण था। जोधराज अपने समय के प्रसिद्ध कवि होने के अतिरिक्त एक अच्छे ज्योतिषी भी थे, और विद्वानों

में 'डिङवरिया राव' के नाम से प्रसिद्ध थे। यह भारतवर्ष के अंतिम हिंदू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज कुलोत्पन्न नीमराणा के अधीश चन्द्रभानु के आश्रित थे और उन्हीं के कहने से इन्होंने हम्मीर की कथा रची थी। इस के अतिरिक्त इन्होंने अपने संबंध में और कुछ भी नहीं कहा है। इन के जन्म या मरण-काल का निश्चय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। अन्य ग्रंथों से भी इस कवि के संबंध में कोई बात नहीं मालूम होती।

कवि की रचना

इस कवि का रचा हुआ केवल एक ग्रंथ 'हम्मीर-रासो' मिलता है जिसे कि अभी थोड़े दिन हुए बाबू श्यामसुंदर दास ने संपादित किया है। यह एक वीररसप्रधान काव्यग्रंथ है और लगभग १,००० छंदों में समाप्त हो गया है। इस की कथा संक्षेप से इस प्रकार है—

दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन खिलजी एक बार शिकार खेलने निकला। उस के साथ उस की खास बेगम रूपविचित्रा भी थी। जिस समय बादशाह अपने साथियों के साथ शिकार की टोह में कुछ दूर निकल गया था उस समय रूपविचित्रा अपनी सहेलियों के साथ एक सरोवर में जलक्रीड़ा कर रही थी। इस समय बड़े ज़ोर का तूफ़ान उठा। ऐसे ज़ोर की आँधी चली कि सब लोग तितर-बितर हो गए। पानी भी आया। जिसे जिधर सूझा भाग चला। रानी रूपविचित्रा अकेली पड़ गई और भागते भागते थक कर जंगल में एक पेड़ के नीचे बैठ गई। भीगी हुई तो वह थी ही, ठंडी हवा भी बड़े ज़ोरों से बहने लगी। और वह एक साथ ही सर्दी और भय से विह्वल हो उठी। ठीक इसी समय अलाउद्दीन का प्रधान मुग़ल सरदार मीर महिमा शाह भटकता हुआ उधर आ पहुँचा, और रानी का परिचय पाने पर उसे अपने घोड़े पर बिठा कर शाही खीमें में पहुँचा देने को कहा, पर रानी ने उससे उसी समय अपने साथ भोग विलास करने की इच्छा प्रगट की। महिमा शाह किसी तरह इस बात पर राज़ी नहीं होता था पर अंत में उसे रानी की प्रबल बासना के सामने सिर झुकाना पड़ा। इस के थोड़ी ही देर बाद वहां अकस्मात् एक शेर आ पहुंचा पर महिमा शाह ने आनन-फानन उसे एक ही तीर से मार गिराया। इस के बाद वह रानी को सकुशल खीमे में पहुंचा आया।

इस घटना के कुछ दिन बाद जब रानी रूपविचित्रा के महल में अलाउद्दीन आराम कर रहा था, यकायक एक चूहा निकल पड़ा और उसे देखते ही पहले तो बादशाह सलामत एक दम घबरा उठे। पर अंत में उन्होंने उसे मार ही डाला और इस पर अपनी डींग भी हाँकने लगे। रानी ने इस पर मुस्करा कर कहा कि यह तो क्या, ऐसे भी लोग हैं जो ऐसी ही परिस्थिति में शेर को भी बिना विचलित हुए मार डालते हैं और कभी भी डींग नहीं हांकते। बादशाह यह सुन कर बड़े आग्रह से उस का नाम जानने का आग्रह करने लगा और रानी ने भी पहले इस बात का

बचन लेकर कि उस मनुष्य को किसी प्रकार की हानि न होने पावेगी, अपने और महिमा शाह के संबंध की उस दिन की सारी बातें जोश में आकर कह डाली। बादशाह यह सुन कर आग बबूला हो गया, और महिमा शाह को बुलवा कर उसी समय सदा के लिए अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी।

महिमा शाह बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकता फिरा, कोई भी उसे आश्रय देकर अलाउद्दीन से दुश्मनी मोल लेने की हिम्मत नहीं कर सकता था। अंत में वह रंथभोर के राजा हम्मीर देव चौहान की शरण में पहुँचा जिन्होंने अलाउद्दीन की तनिक भी परवाह न कर महिमा शाह को अपने यहां आश्रय दिया और आजीवन प्राण देकर भी उस की रक्षा करने का वचन दिया। अलाउद्दीन ने यह खबर पाते ही हम्मीर को उसी समय महिमा शाह को अपने यहां भेज देने को कहा पर हम्मीर ने इस संबंध की अपनी अटल प्रतिज्ञा की सूचना बादशाह को दे दी। बादशाह ने पहले तो छल बल से महिमा शाह को अपने हाथ में करने की कोशिश की पर अपनी इन चालों को असफल होते देख कर अंत में उसे युद्ध घोषणा करनी पड़ी। कहते हैं कि यह लड़ाई बारह साल तक होती रही और प्रायः सभों में शाही फौज को नीचा देखना पड़ा था। बीच-बीच में प्रायः अलाउद्दीन इस आशय का प्रस्ताव हम्मीर के पास भेज दिया करता था कि "हम तुम्हारी बहादुरी और अपनी बात पर अटल रहने पर बहुत खुश हैं और बेहतर होगा कि मीर महिमा को अब तुम हमारे हवाले कर दो और यह व्यर्थ का ख़ून खराबा बंद कर दिया जाय।" पर ऐसे प्रस्तावों के बड़े कड़े जवाब उधर से मिलते थे। अंतिम युद्ध में जब हम्मीर शाह को गहरी हार देकर उस के झंडों को विजय चिन्ह की भाँति आगे कर रंथभोर को लौट रहा था तो रानियों ने दूर से शत्रु के झंडों को आगे देख कर यह समझा कि शाही फ़ौज सब को परास्त कर क़िले के अंदर घुसने आ रही है। यह सोच कर सब एक साथ ही चिता बना कर भस्म हो गईं। हम्मीर ने लौट कर जब यह हृदय-विदारक दृश्य देखा तो उसे इतना क्षोभ हुआ कि उस ने अपनी आत्म-हत्या कर डाली। अंत में यह कहा है कि अलाउद्दीन जब वहां पहुंचा तो राजा के कटे सिर ने उस से कहा कि तुम भी जाकर जल में अपना प्राण दो। और उस ने ऐसा ही किया भी।

इस काव्य के आरंभ में रंथभोर दुर्ग के बनने के संबंध में एक बड़ी रोचक कथा दी गई है। उस का सारांश यह है कि चहुवान क्षत्रियों के आदि-पुरुष जैतराव जी ने एक पद्म ऋषि की आज्ञा से इस रंथभोर गढ़ को बनवाया और बन जाने पर पद्म ऋषि ने तप करने के लिए उस गढ़ को राजा से माँग लिया था। कालांतर में जब उन की उग्र तपस्या के प्रभाव से इंद्र का आसन डाँवाँडोल होने लगा तो उस ने अप्सराओं को भेज कर पद्म ऋषि का तपोभंग करा दिया और वे कुछ दिन तक विषय भोग का सुख लूटते रहे पर अंत में जब उन की मोह-निद्रा टूटी तो उन्हें ऐसी ग्लानि हुई कि इन्हों ने अपना शरीर ही त्याग कर दिया और उन

के सिर से अलाउद्दीन वक्षस्थल से हम्मीर, दोनों भुजाओं से मीर बंधु महिमा और गबरू शाह, और चरणों से उर्वसी की अवतार रूपविचित्रा बेगम जो कि इस काव्य की नायिका है, उत्पन्न हुई, और अंत में साथ ही सब की मृत्यु भी हुई, और तब सब जाकर स्वर्ग में मिल गए।

इस ग्रंथ के पूरे होने का समय जोधराज ने सं० १७८५ दिया है—

रचना काल

चंद्र नाग वसु पंच गिनि। संवत माधव मास।
शुक्ल सत्रतिया जीव जुत। ता दिन ग्रंथ प्रकास॥

इस ग्रंथ में दी हुई अधिकतर तिथियां इतिहास से मिलान करने पर ठीक नहीं उतरतीं और इस के साथ ही साथ जिन ऐतिहासिक घटनाओं का इस काव्य में उल्लेख किया गया है उन में भी प्रामाणिकता बहुत कम है। अधिकतर घटनाएँ कपोलकल्पित सी जान पड़ती हैं। और जिन में सत्य का आधार है भी वे कवि के इच्छानुसार बहुत घटा बढ़ा कर लिखी गई हैं।

ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व

नयनचंद्र सूरि नामक एक जैन-ग्रंथकार ने भी इसी कथा को लेकर संस्कृत में एक ग्रंथ 'हम्मीर-महाकाव्य' नामक लिखा है जो कि पंद्रहवीं शताब्दी का लिखा हुआ जान पड़ता है। इस ग्रंथ में दी हुई तिथियां अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक हैं, और घटनाक्रम में भी हम्मीर रासो से कई प्रधान स्थलों पर विभिन्नता है। ऐसी अवस्था में इस ग्रंथ को ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक प्रामाणिक मानना आवश्यक है, और साथ ही इस के जिन स्थलों पर दोनों ग्रंथकारों में मतभेद नहीं है उन्हें अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक मानना अनुचित न होगा; यद्यपि दोनों को मिला कर देखने से मुख्य बातों में आकाश पाताल का अंतर दिखाई पड़ता है, और ऐसी अवस्था में किस में कहाँ तक सत्यता है इस का ठीक-ठीक निर्णय करना इस प्रकार के असंभव सा है। अस्तु

दोनों ही ग्रंथों में जैत्रसिंह को हम्मीर का पिता कहा गया है, अतएव इस कथन को प्रामाणिक मान लेने में कोई हानि नहीं जान पड़ती।

हम्मीर रासो में हम्मीर का जन्म सम्वत् ११४१, और शाके १००८ लिखा हुआ है, और अलाउद्दीन, मीर महिमा, गबरू और रूपविचित्रा का जन्म भी हम्मीर के जन्म के साथ ही होना कहा गया है, अतः इस हिसाब से अलाउद्दीन का जन्म १०८४ ई० में हुआ, परंतु इतिहास से यह तिथि अशुद्ध सिद्ध होती है। किंतु हम्मीर महाकाव्य में अलाउद्दीन के गद्दी पर बैठने का समय सं० १३३० अर्थात् १२७३ ई० दिया हुआ है और यह तिथि ठीक भी जान पड़ती है। इसी प्रकार का हेर-फेर प्रायः सब तिथियों और घटनाओं में है।

हम्मीर रासो में अलाउद्दीन और हम्मीर में युद्ध का कारण हम्मीर का महिमा शाह को आश्रय देना कहा है पर इतिहासों में इस बात की कहीं चर्चा भी नहीं है, हां इस बात का प्रमाण अवश्य मिलता है कि महिमा नाम का एक मुग़ल वीर हम्मीर की सेना में था। युद्ध वास्तव में स्त्री के निमित्त हुआ था जैसा कि सभी इतिहास-प्रेमी जानते हैं।

एक मुख्य ऐतिहासिक घटना मूल रासो में हम्मीर की मृत्यु के संबंध में दी हुई है। हम्मीर रासो तथा हम्मीर महाकाव्य दोनों में हम्मीर की मृत्यु आत्महत्या से कही गई है पर प्रामाणिक इतिहासों से विदित होता है कि अंतिम युद्ध के १५ वर्ष बाद तक वह जीता रहा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐतिहासिक दृष्टि से हम्मीर रासो का कुछ अधिक मूल्य नहीं है पर साथ ही इस के यह बात भी माननी पड़ेगी कि जोधराज ने जो कुछ निरंकुशता तथा इतिहास-विमुखता दिखाई है उस से उन के काव्य की सरसता या रोचकता में कोई कमी नहीं होने पाई है।

जोधराज की कविता

जोधराज की कविता बड़ी सरस है। भाषा में ब्रजभाषा का पुट अधिक है। इन के शब्द सदा सरल और सुप्रयुक्त होते हैं। कवि को वीर और शृंगार दोनों ही सुंदर रसों पर अधिकार है। प्रकृति-वर्णन और ऋतु-वर्णन भी इन्होंने अच्छा किया है। अलंकारों के विशेष पक्षपाती तो यह नहीं जान पड़ते पर कहीं कहीं अनुप्रासादिक शब्दालंकार, अर्थ-चमत्कार तथा अर्थश्लेष आदि का इन्होंने अच्छा व्यवहार किया है।

इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि इस कवि को शृंगार और वीर दोनों ही रसों पर समान अधिकार था, प्रस्तुत संग्रह में दोनों ही रसों के उदाहरण देना उचित समझा गया है। पहले उद्धरण में उस कथानक का वर्णन है जब पद्मऋषि के उग्र तप से घबरा कर इंद्र ने उन की तपस्या भंग करने के लिए कामदेव, बसंतादिक ऋतु, और रम्भादिक अप्सराओं को भेजा था। इस प्रसंग में कवि का प्रकृति-निरीक्षण और शृंगार, वर्णन दोनों का परिचय प्राप्त हो सकेगा। दूसरे उद्धरण में वीर-रस की कविता है और प्रसंगवश उस में अवांतर रूप से रौद्र, बीभत्स और करुण रस का भी समावेश हो गया है। इस उद्धरण में हम्मीर और अलाउद्दीन के बीच के युद्ध के अंतिम दिनों के दृश्य का सजीव वर्णन है। इस में कवि की प्रतिभा की पूरी छटा देखने में आती है। उद्धरण के आरंभ ही में युद्ध के भयानक दृश्य संबंधी उपमाओं का सुंदर और सजीव प्रयोग देखने योग्य है।

हम्मीर रासो

अथ पद्मऋषि-तनपात प्रसंग

छप्पय

रणत भँवर ऋषिपद्म, उग्र तप तेज कराये[1]।
इंद्रासन डिगमिगिय[2], देवपनि शंका खाये॥
तब कामदिक बोलि, शक्र ऋषि पास पठाये।
करो बिघ्न तब जाय, भंग पर काज नसाये[3]॥
तब चल्यव मार निज सेन युत[4], ऋतु बसंत प्रगटिय तुरित।
बह त्रिविध पवन अद्‌भुत महा, करहिं गान रंभा सुरति॥

बसंत-ऋतु-वर्णन

छंद पद्धरी

तिहि समय काम प्रेर्‌यौ सुरिंद्र। जुह हारि इंद्र उठि पाव बंदि॥
सब परिकर बोले[6] चढ़ि सुमार। ऋतु छहूं संग धनु सुमन हार॥
रति परम प्रिया ऋतुराज जानि। नित रहत निरंतर रूप मानि॥
बहु किन्नर गावत देव नारि। गंधर्व संग अति बल उदार॥
संगीत भाव गावैं अनंत। सुर नर सुनंत बसि होत मंत॥
बन उपबन।फुल्लहिं अति कठोर। रहे जौंर भौंर रस अंब मौर॥
कल कूंजत कोकिल ऋतु बसंन। सुनि मोहत जहँ तहँ सकल जंत॥
नर नारि भये कामांध अंध। तजि लाज काज परिकाम फंद॥
पहुँच्यौ सुमारि ऋषि निकट आय। प्रेर्‌यौ सुपरम भट अग्ग जाय॥
ऋषि लखे सुभट सेना सुकाम। ऋषि कह्यौ कहा करिहै सुबाम॥
करि कठिन आप लाई समाधि। तिहिं रहत काम क्रोधारि व्याधि॥
ऋतु ग्रीषम को आज्ञा सु दिन्न। तिहिँ अति प्रताप जाज्वल्लि किन्न॥
रबि तपै बिषम अति किरन धूप। रबि नैन खुल्लि दिक्खिय अनूप॥
बट इक्क महा गह्वर सुजानि। तिहिँ निकट सरोवर सुर स्मानि॥
इक आश्रम सुंदर अति अनूप। तिय गान करत सुंदर सरूप॥

---

[1]करायो [2]इंद्र मन मांहि (मांझि) डरायौ। [3]मठाये [4]जुरि [5]जुग [6]बुल्ले

सोरभ अपार मिलि मंद पौन । मृग मद कपूर मिल करत गौन ॥
श्रीखंड मेरु[1] केसर उशीर । तिहिँ परसि ताप मिट्टत सरीर ॥
गंधर्व और किन्नर सुबाल । मिलि अंग रंग पहिरें सुभाल ॥
चित चल्यो नाहिं ऋषि बज्रमान । रहि ग्रीष्म[2] ऋतू हिय हारि मान ॥

दोहरा छंद

लग्यौ न ग्रीषम कौ कछू । ऋषि प्रताप तप धीर ॥
तब पावस परनाम करि । अयस काम गहीर ॥

छंद भुजंगप्रयात

उठें बद्दल घोर आकाश भारी । भई एक बारं अपारं अँध्यारी ॥
बहै पौन चाह्यों महासीत कारी । चहूँ ओर कोधंत दामिनि अँध्यारी ॥
घने घोर गज्जंत बर्षंत पानी । कलापी पपीहा रहैं भूरि बानी ॥
तहाँ बाल झूलंत गावंत झीनी । रही जाय आश्रम भई काम भीनी ॥
उड़ैं चीर सम्मीर लग्गंत अंगं । लसै गात देखत जग्गै अनंगं ॥
करैं सोर झिल्ली घने दद्दुरंगे । तहां बाल लीला करैं काम संगे ॥
निकट्टं उघट्टंत संगीत बाला । बरं अंग अंगं रची फूल माला ॥
कटाच्छं करैं मंद हासं प्रहारैं[3] । तहां पद्म अंगं लगैं ना निहारैं ॥

दोहरा छंद

पावस हारि बिचारि जिय । ऋषि न तज्यो तप आप ॥
तब सु मैन मन में कहिय । उपजे शरद सुताप ॥

छंद त्रोटक

तजिये तप पावस बित्ति सबं । ऋतु शारद बादर दीस अबं ॥
सरिता सर निम्मल नीर[4] बहैं । रस रंग सरोज सु फुल्लि रहैं ॥
बहु खंजन रंजन भृंग भ्रमैं । कल हंस कला निधि बेद भ्रमैं ॥
बसुधा सब उज्जल रूप कियं । सित बासन जानि बिछाय दियं ॥
बहु भाँति चमेलिय फूलि रही । लषि मार सुमार सुदेह दही ॥
बन रास बिलास सुबास भरैं । तिय काम[5] कमान सुतानि धरैं ॥
भ्रमणों पर तैं नर काम जगै । बिरही सुनि कै उर घाव[6] लगै ॥
घर अंधर दीपक जोति जगी । नर नारि लखैं उर प्रीति पगी ॥
ऋषि पास त्रिया सर न्हान रच्यो । जल केलि अनेक[7] प्रकार मच्यो ॥
बिन चीर अधीर लखै नरवै । कुच पीन नितंब सुकाम तबै ॥

---

[1] मेद [2] ग्रीष्म [3] प्रसारैं [4] वारि [5] बान [6] घ्याव [7] अपुब्ब

दोहरा छंद

हारि मानि सारद गइय । उठि हेमंत सकोपि ॥
महासीत प्रगटिय जगत । सबै लाज तजि लोप ॥

हेमंत ऋतु वर्णन

छप्पय छंद

तब सु हेम करि कोप । सीत अति जगत प्रकास्यौ ॥
बिषम तुखार अपार । मार उपचार सुभास्यौ ॥
कंपत[1] चैतन रूप । कहा जर जरत समूरे ॥
तिय हिय लगि लगि बचन । चरत मुख सैन सरूरे ॥
तिहि समय जीव सब जगत के । भये इक्क नर नारि सब ॥
उरबसी आय ऋषि निकट तक । हिये लाय मोहि सरन अब ॥

दोहरा छंद

खुली न कठिन समाधि ऋषि । चली हिमंत सुहारि ॥
सिसिर परस मन बरनि करि । उठी सुकाम जुहारि ॥

सिसिर ऋतु वर्णन

छंद मोतीदाम

कियो तब मार हुक्कम सु हेरि । उठी ससियो[2] तब आयसु फेरि ॥
किये नव पल्लव जे तरु वृंद । प्रफुल्लित अम्ब कदम्ब स्वछंद ॥
बहै बहु भाँति त्रिविद्ध समीर । रहै नहिं धीरज होत अधीर ॥
लता तरु भेंटत संकुल भूरि । भये तृण गुल्म हरे जड़ मूरि ॥
मिटै जग सीत न ताप न तोय । सबै सुख दायक जीवन सोय ॥
झुके फल फूल लताबर भार । भ्रमैं बहु भृंग जगावत मार ॥
लगी लखि वायु सबै तिहिँ बार । सुनै डफ ताज तजैं नर नार ॥
बजावत गावत नाचत संग । अबीर गुलालरु केसरि रंग ॥
भये मतवार सु खेलत[3] फाग । महा सुख संग सँजोगनि[4] भाग ॥
वियोगनि जारत मारत मार । अनेक सुगंध अनेक विहार ॥

बसंत ऋतु वर्णन

छंद लघुनाराच

असंत संत मोहियं । बसंत खोलि जोहियं ॥
बजंत बीन बांसुरी । मृदंग संग आसुरी[5] ॥

---

[1] नचै [2] ससिसिरौ [3] खिल्लत [4] जुगानि [5] सुदंग ताल खंजरी । उपंग संग अंसुरी

लियं सुग्राल वृंदयं । जगत्त काम द्वंदयं ॥
अनेक रूप सुंदरी । मनोज राव की छुरी ॥
स्वबेस केस पासयं । मनो कि मैन फाँसयं ॥
गुही त्रिविद्धि बैनियं । कि मोह किन्न सैनियं ॥
महा सुघट्ट पट्टियं । सिँगार भूमि फट्टियं ॥
विचै सुमंद[1] रेखयं । महा विशुद्ध देखयं ॥
विशाल भाल सोभियं । छपा सुनाथ लोभियं[2] ॥
सु मध्य सीस फूलयं । दिनेश तेज तूलयं[3] ॥
भरी सुमुक्त मंगयं । मनो नछत्र संगयं ॥
विशाल लाल विंदयं । मिले सुभोम चंदयं ॥
जराव आड भाइयं[4] । मनो मिलंत आइयं ॥
दिनेस भौम बुद्धयं । शशी ग्रहे सु शुद्धय ॥
कपोल गोल आदसं । कि भौँहि भौँर सादसं ॥
प्रफुल्लि कंज लोचनं । मृगच्छि गर्व्व मोचनं ॥
त्रिविद्धि रंग गातयं । सु स्याम स्वेत राजयं[5] ॥
बनी कि कीर नासिका । सु गथ्थ नथ्थ भासिका ॥
मनो सुकाम ओपयं[6] । दयो सुचक्र[7] कोपयं ॥
करन्न फूल राजयं । उभै कि भाँनि साजयं ॥
सुहंत स्याम अल्लकं । भ्रमत्त मौंर बल्लकं ॥
अरुन्न रेख बेसयं । पियूप कोस देखयं ॥
अनार दंत कुंदयं । लसंत वज्र दंतयं[8] ॥
बुलंत बाँणि कोकिला । विपंचकी सुरंमिला ॥
कपोति पोति कंठयं । सुढार हार गंठयं[9] ॥

छप्पय छंद

कुच कंचन घट प्रगट । नाभि सरवर वर सोहै ॥
त्रिबली तापहँ ललित । रोम राजी मन मोहै ॥
पंचानन मधि देस । रहत सोभा हिय हारी ॥
मनहुँ काम के चक्र । उलटि दुंदुभि दोउ डारी[10] ॥
दोउ जंघ रंभ कंचन दिपत[11] । धरी कमल हाटक[12] तनै ॥
गति हंस लखत मोहत जगत । सुर नर मुनि धीरज हनै ॥

---

[1] सुमंग, मांग [2] लोभियं [3] तुल्लयं [4] भाजयं [5] रातयं [6] बोपयं [7] चक्र [8] द्वन्दय [9] तट्ठय [10] निसान सुधारी [11] उलटि [12] हारक

जिती उब्बसी संग । सकल सम्मूह मिलिय वर ॥
चिच्चि सुमैन सहसैन गये । ऋषि निकट मरूकर ॥
गावत विविधि प्रकार । करत लीला मम भाइय ॥
हाव भाव परभाव । करत आश्रम मैं आइय ॥
ऋषि निकट आय होरिय रची । वर्षत रंग अनंग गति ॥
नन[1] चलौ चित ज्यौं भौ अचल । करत कृपा त्यों त्यों अमित ॥

दोहा छंद

करि विचार त्रिय कृत कृपा । कुसुम कुंद गहि लीन ॥
लीला ललित सु विथ्थरिय । चंचल[2] बय सु नवीन ॥
शशि मुख वृंद[3] स्वछंद मिलि । रति सम रूप अनूप ॥
ऋषि समीप क्रीड़ा करति । हरति धीर मुनि भूप ॥

चौपाई छंद

बर्षत रंग अनंग सु बाला । मनहुँ अनेक कमल की माला ॥
चंचल नैन चलैं चहुँ आसा । रूप सिंधु मनुमीन सु पासा ॥
घूंघट ओट दुरत प्रगटत यों । मनु ससि घटा दब्बि उघटत ज्यों ॥
बिलुलित बसन अंग दुति सोहै । निरखत सुर नर मुनि मन मोहै ॥
अलक सलक[4] अति सै चटकारी । अमी पियत शशि नाग निकारी ॥
छुटै गुलाल मुठी मृदु मसकै । चुवै अधर[5] बिंब रस चमकै ॥
करैं गान पशु पच्छी मोहै । कहो जगत इन पटतर को है ॥
लै लै गेंद परसपर मेलैं । बाल वृंद मिलि मिलि सुख भेलैं ॥
अध[6] ऊरध चहुँ ओर सुमारैं । लजति खिजति लगि[7] प्रेम प्रहारैं ॥
मंद पवन लगि चीर पज्यो धर । कुच अंकुर डर मनहुँ उभै हर ॥
दमकति दिपति सलोनी दीपति । कामलता विहरैं मनु गज गति[8] ॥
लगत गेंद कंपित उर भागी । मंद मुसकि ऋषि निकट सुपागी[9] ॥
सुमन वृन्द सौरभ उठ भारी । भ्रमर पुनीति गुँजार उचारी ॥
शरद उन्माद सँधान सु किन्नौं । अति रिसि तानि श्रवन उर दिन्नौं ॥
छुटि समाधि ऋषि नैन उघारे । अति सकोप सम्मर उर मारे ॥

---

[1] चम [2] बिस्तरि [3] बोह [4] चिलक [5] अधर बिंब रमकै चसकै [6] अद्ध उद्ध [7] मिलि [8] झींन लंक अंग झलकत वर, नाभि गभीर त्रिवलि अति सुंदर । [9] सुनि वादित्र गान कल कीला, काम कोपि सर धनुष सुमीला ।

चहुँ दिसि चितै चकित ऋषि भयऊ । लखि तिय वृन्द अनंद सु भयऊ ॥
लीला गेंद फागु मिसि दौरी[1] । ही हो करत उठी बर जोरी[2] ॥
बन अकेलि तिय पुरुष न कोऊ । लीला अमित देखि दृग दोऊ ॥
रंग अपारि डारि ऋषि ऊपर । कल कल हंस बजत पद नूपुर ॥
करैं कटाक्ष अनेक सुबाला । नैन सैन सर लगि चित चाला ॥
अंग अंग गहि फाग[3] सु मग्गै । परसि गात तब काम सु जग्गै ॥
मुख मींड़त[4] अंजन गहि दिन्नौं । जग्यो काम ऋषि काम सु भिन्नौं ॥
लखि मुसकानि भई मति भोरी । जीति सरस ऋषि कामनि हेरी ॥

दोहरा छंद

का नहिं पावक जरि सकै, का नहिं सिंधु समाय ।
का न करै अबला प्रबल, किहिं जग काल न खाय ॥
कबि लाखन अबला कहत, सबला जोध कहंत ।
दुबला तन मैं प्रगट जिहिं मोहत संत असंत[5] ॥
जीति सशिर वित्तिय[6] तबै, फिरि आयब ऋतुराज ।
मिले उर्बसी पद्म ऋषि, सरे शक्र के काज ॥
विवम भये मुनि अप्सरा[7], भुल्लिय तप व्रत नेम ।
निसि बासर क्रीड़ा करत, बढ़्यो जु तन मन प्रेम ॥
सुरति बढ़ी चित में चढ़ी, मढ़ी मोह मति भूरि ।
छिन छिन तिय ऋषि रजत[8] दोउ, भयउ[9] प्रेम परि पूरि ॥
हृदय पुरंदर त्रास गनि, गइय उर्बसी त्यागि ।
बिन माया ऋषिराज तब, मन सुत्तो सो[10] लागि[11] ॥
जाय जुहारे इंद्र को, काम उर्बसी संग ।
काज[12] संवार्‌यो रावरो, कर्‌यो कठिन तप भंग ॥

दोहरा छंद

तिय वियोग ऋषि तन तज्यौ, ग्यारा सै चालीस ।
माघ शुक्ल द्वादशि सुतिथि, वार बरनि रजनीस ॥

---

[1] मिलि [2] कंउक केलि और मिसि होरी। भोरी निपट लेत चित चोरी। डारि मोहिनिय सोहिव बाला माया बीस भो ऋषि तिहिं काला। [3] फाग, सुभौग जागै [4] माडत [5] अनन्त [6] बीता [7] अच्छरिय [8] राज [9] भरे [10] सोवत सो [11] जागि [12] कज्ज।

हम्मीर और अलाउद्दीन का युद्ध वर्णन

भुजगप्रयात छंद

चढ़े बीर कोपे दुहूँ ओर धाये । मानो काल के दूत अद्भुत्त आये ॥
इतै राव हम्मीर के बीर छुट्टे । उतै मीर धीरं गहीर सु जुट्टे ॥
उड़ी रैन सैनं न दीखंत भानं । दुहूँ ओर घोरं सु बज्जे निसानं ॥
छुटै तोप बानं दुहूँ ओर जोरं । धरा अम्मरं बीच मच्चे सु शोरं ॥
उठी ज्वाल माला धरा वै उपट्टै । धुवाँ घोर घोरं सुजोरं प्रगट्टै ॥
मनो दोय सिंधू तजैं आय वेला । प्रलै काल के काल कीनो समेला ॥
दुहूँ ओर घोरं सुगोलं बरष्षैं । मनो मेघ ओला अतोलं करष्षैं ॥
उड़ै अग्रपब्बय ढहैं गढ कोटं । परै गज्ज बाजं धरा धूरि लोटं ॥
प्रलै पावकं जानि उठी लपट्टैं । बरं उभकरं सूफरं यों झपट्टैं ॥
लगै गोल में गोल गोला सु गज्जै । भए वारपारं उपम्मा सु रज्जै ॥
मनो स्याम कै वास ह्वै वारपारं । चहूँ ओर राजंत है चारू वारं ॥
रहे गिद्ध तामें घने बैठि अद्धं[1] । करै ध्यान बैठे गुफा में मुनिद्धं ॥
उड़े साथि गोलान के बीर ऐसैं । मनों फाटिका तै उड़ै नट्ट जैसै ॥
चलें तोप जोरं करैं सोर भारी । परै बिज्जुरी सी घने[2] एक बारी ॥
छुटै एक बारै[3] घनी चादरं यों । मनो भार भूंजै बनै यों घनै यों ॥
बँदूकैं हजारं चलै एमि राजै । मनो मेघ गोला परै भूमि गाजै ॥
चलै बान बेगं मचै सोर भारी । मनो आतसँ बाज खेलंतकारी ॥
छुटैं बान कम्मान ज्यों मेघ धारा । लगै बाज गज्जं हुवै वार पारा ॥
मनो नाग छोना उड़ैं होड़ मंडी । उसै अंग अंगं करैं सेन खंडी ॥
बहै तोमरं सेल औ सक्ति ऐनं । करै वार पारं बहै उच्च बैनं ॥
बहै खड्ग बेहद्द देखंत सूरं । करै दोय टूकं मडुक्कै समूरं ॥
बहै तेग कंधं परै गज्ज राजं । लगै आयुधं यों डरं सर्ब साजं ॥
कहैं कंगलं अंग आजीन बाजी । तबै सूर रीझै करे माल साजी ॥
कटारी बहै वार पारं निहारै । मनों स्याम उर माँझ कौस्तुभ सम्हारै ॥
कहूँ पंजरं पिंजरं बेगि फारं । मनो हाथ वाला अहारी निकारं ॥
छुरी हत्थ जोरं करै सूर हाँकैं । कहूँ मल्लयुद्धं करैं बीर खाँकैं ।
परै सीस भूमै[4] उठै रुंड[5] घोरं । दुहूँ सेन देखंत कौतुक्क जोरं ॥
किती अंत उरझंत लटकंत[6] भूमै । किते घायलं घाव लग्गे सुभूमैं[7] ॥
भरे योगिनी[8] पत्र पीवंत पूरं । परैं ज्यों मलेच्छं बरैं आय हूरं ॥
किलक्कै जो काली हसैं बार बारं । करैं भैरवं घोर सोरं अपारं ॥

---

[1] अर्द्धं [2] घनी [3] वार । [4] भुम्मी [5] सीस [6] लरकंत [7] घूमे [8] जुग्गनी

भगी साह की सेन देखंत दोई। कहै बैन कोपं वकं सीस सोई ॥
कितै भागि जैहो अरे मूढ़ आजं। जिते[1] वीर चहुवान हम्मीर गाजं ॥
भम्यो साह संगं तज्यो जंग भारी। कहै साह उज्जीर सो जो हँकारी ॥

दोहरा छंद

कहा राव हम्मीर के, सूर वीर बलवान।
सबै[2] सुखाय हमारिये, जंग समय प्रिय पान ॥

छप्पय छंद

कहै साह उज्जीर सुनो। आपन मन लाई ॥
जिते राव के वीर। सबै[3] छत्री प्रन[4] पाई ॥
लरत भिरत नहिं टरत। करत अद्भुत रस सीतो[5] ॥
करत जंग अन भंग। अंग छिन भंग है नीतो[6] ॥
नहि सहत सार ओपन[7] सपन[8]। सबै मीर उमराव भर ॥
किज्जे सु कौन मत तंत अब। कहो बुद्धि आपन समर ॥
कहि उजीर[9] कर जोरि। सुनो हजरत यह किज्जे ॥
च्यारि सेन चतुरंग। संग नामी कर[10] दिज्जे ॥
एक सेन दिवान[11]। एक बकसी मड बंके ॥
एक गोल मोहि जानि। आप एकन कर हंके ॥
यह भाँति सेन चतुरंग के। अनी च्यारि करि जुट्टिये[12] ॥
हम्मीर राव चहुवान तें। फते आप लहि हट्टिये ॥

दोहरा छंद

करि-करि मंत्र उजीर तब। चढ़े संग ले मीर
च्यारि अनी करि साहि दल। जुरे जंग सब[13] मीर

त्रिभंगी छंद

करि मंत्र असेसं सूर सु देसं। बंके वेसं सज्जायं ॥
हय गय चढ़ि वीरं फिरे सु मीरं। धरि-धरि धीरं लज्जायं ॥
गजराजन सज्जै अग्गों रज्जै। वीरं गज्जै लखि लज्जै ॥
नीसान[14] फरक्कै धीर धरक्कै। हर हर बक्कै गल गज्जै ॥
दोउ ओर उमग्गै[15] समर सु रड्डै[16]। बढ़ि-बढ़ि तड्डै नख खड्डै ॥
बहु तोपन छुट्टै वीर अहुट्टै। फिरि फिरि जुट्टै बल चड्डै ॥
बाजे बहु बज्जैं जनु घनु गज्जै। सूर समज्जैं बल रज्जैं ॥
पद रुथ्थ पतालं अरि उर सालं। उट्ठत भालं रण सज्जैं ॥

---

[1] जिने चाहुआनं हमीरं सुगानं [2] सर्वस्व [3] धर्म [4] पन [5] जीते [6] निस्ते [7] आपन [8] सपन [9] वजीर [10] नर [11] दीवान [12] जुट्टिए [13] फिर [14] निस्सान [15] उमट्टै [16] हट्टै

छुट्टैं बहु वानं सन्धि कमानं । अरि उरि प्रान बहु कढ्ढैं ॥
लग्गैं उर सेलं अरि दल पेलं । विग्रह झलं बल ढढ्ढैं ॥
किरवान दुधारं हय गय पारं । सूर सँहारं उर फारं ॥
करि जोर कुठारं बहुत करारं । भिरत जुझारं रन भारं ॥
गिद्धय पल भष्षैं रत बल चष्षैं । जंबू अष्षैं हिय हर्षैं ॥
बहु पत्र भरावैं मिलि मिलि गावैं । धरि धरि धावैं मन भावैं ॥
पल अस्ति नचोरैं बसन निचोरैं । लुथ्थि टटोरैं गुन गावैं ॥

दोहरा छंद

यहि विधि दुहु दल आहुरे । भिरे [1]दोउ दल ऐन ॥
रहे अहल चहुआन हू । खान सकल हठि सैन ॥
अबदल मीर जु साहिके । परे खेत मैं [2]धाय ॥
पकरै राव हमीर को । पकरै [3]अस पति पाय ॥
ल्याऊं गहि हम्मीर को । रीझ दिज्जिये मोहि ॥
जितनो हिन्दू को वतन । पाऊं अब कर जोहि ॥
बीस सहस अब दल पिले । इत हमीर के बीर ॥
आप आप जै स्वामि की । चाहत मंगल धीर ॥

छंद रसावल

नीर पिल्ले तबै, बीर अबदुल जबै । कहै बैन बाहं, सुनो आप साहं ॥
गहूँ राव ल्याऊं, रणत्थंभ पाऊं । कमानस्सुग्रीवं, गरै डरि जीवं ॥
लगूँ साह पग्गै, उठै कोप जग्गै । हजूरं मु बीसं, नमाये सु सीसं ॥
गजं साज [4]तीसं, करै जीव रीसं । उतैं राव कोपे, पिले बीर ओपे ॥
उठी बंक मुच्छं, लगी जाय चच्छं । मनों बीर मग्गै, अकासं सुलग्गै ॥
मिले बीर दोऊ, करें जोर सोऊ । भिरे गज्जि गज्जं, बजे बीर बज्जं ॥
तुरंगं तुरंगं मचै जोर जंगं । पयद्दं पयद्दं बकै कोप वद्दं ॥
भभक्कंत बानं उड़ै, लग्गि ज्वानं । लगै तेग सीसं, उभै फाँक दीसं ॥
लगै जम्म दढ्ढं, करै पान गढ्ढं । परी लुत्थि जुत्थं, करी जो अकत्थं ॥
करी जूह लौटें, पबै जानि कोटै[5] । तुरंगं धरन्नी, सु लढ्ढै बरन्नी ॥
नच्चै रुंड[6] बीरं, धरंती सरीरं[7] । सिरं हक्क मारै धरैं अत्र धारैं ॥
उरझ्झंत अंतं, मनो ग्राह तंतं । गहैं अंत चिल्ली,[8] अकासं समिल्ली ॥
मनों बाल मंडी, उड़ावंत गुड्डी[9] । उड़ैं [10]श्रोण छिच्छं फुवारे[11] सु अच्छं ॥
बहैं श्रोण नद्दं, मनों नीर भद्दं । भरैं पग्ग अथ्थं, तरबूज्ज मथ्थं ॥
पलक्की चमच्ची, उठै वीर नच्ची । कियो अट्टहासं, सुकाली प्रकासं ॥

---

[1]भिरग, भिरिऊ [2]पै [3]पसरै [4]सज्जं [5]लुट्टै, कुट्टै [6]रुद्र [7]सुधीरं [8]चिल्ही मिल्ही [9]उड़ी [10]उठै [11]फवारे फुहारे

जहां चेत्रपालं, गुहै शंभु मालं । भषै गिद्ध बोटी, फटै तासु फोटी ॥
षटं स स सूरं, परे जाय हूरं । गजं तीस पारे, पहारं करारे ॥
सतं दोये आजी परे खेत साजी । तहाँ पच्च सैनं, रहै देखि[1] नैनं ॥
तबै सेख सीसं, नवाये सरीसं । हमीरं सुरावं, कहै बैन चावं ॥
दुहूं सैन मध्ये, महिम्मा सु वध्ये । कहै उच्च वाचं, सुनो राव साचं ॥
लखो हथ्थ मेरे, बदे बैन टेरे । सुनो साहि बैनं, लखो अप्प नैनं ॥
खरो मैं जुखूनी, रहे क्यों जमूनी । गहो क्यों न अब्बं, कहै बैन तब्बं ॥
यहीं सेस सीसं, रहयो मैं जु दीसं । करो सत्य वाचं, ततो आप साचं ॥
तबै पातसाहं, खुरासान नाहं । करे[2] कोप पिल्लं, तहां सेख मिल्लं ॥
कहै साह बैनं, सुनो सब्ब सैनं[3] । गहै सेख ल्यावै, इतो हश्म पावै ॥
जु वारा हजारं, मनं[4] सब्ब भारं । नोबति निसानं, अरू तेग मानं ॥
सुने बैन ऐसे, खुरासान रेसे । हजारं सतीसं, निवाये[5] सु सीसं ॥
सदक्कीज बानं, पिले सेख पानं । तबै सेख धाये, राव को सीस नाये ॥

दोहरा छंद

करि सल्लाम हामीर को । सेख लई बड़ बग्ग
दुहूँ[6] सेन देखत[7] नयन । रिस करि कढ्ढ[8] खग्ग

चोपाई छंद

कहे साहि सुनि सद की बैनं । यह कुट्टम[9] कों गहो सु ऐनं ॥
जीवत पकरि याहि अब लीजै[10] । मन सब द्वादस सहस करीजै[11] ॥
सद्दकि[12] संग मीर खुरसानी । तीस सहस चढ़ि चले अमानी ॥
गहन सेख महिमा के काजै । कुप्पिय[13] मीर खेत चढ़ि बाजै ॥
इतै सुसेख राव पद बंदे । गहै तेग मन माँहि अनंदे ॥
इतै सेख सदकी उत आए । आप आप जय सद्द सुनाये ॥
कहै सदकि[14] सुनि साह सुजानं । ढढा भषर यसि करिये पानं ॥
कहा सेख हम्मीर सु रावं । उठे उद्ध कों करि जिय चावं ॥

छप्पय छंद

जुटे वीर दुहु जंग । अंग अनभंग महाबल ॥
चढ़े जान अम्मान । बढ़े निस्सान[15] बरद्दल ॥
करि कमान करि पान । कान लों करिखह रष्षे ॥
धरि नराच गुन राखि । धाव करि बेगि बरष्षे ॥
निज संग वीर सत पंच जुत । सेख भेखरौ यह धरिव ॥
उत खुरासान खट सहस लै । सदकी सद हाँकी करिव ॥

---

[1] दिक्ख पिष्ष [2] करी कुप्पि [3] एनं [4] मनों [5] नमाये [6] दोऊ [7] दिष्षत पिक्खत [8] काढे कढ्ढे [9] कुट्टम [10] लिज्जिय [11] करिज्जय जुकिज्जिय [12] सद्की [13] कोपे [14] सदकी सहस [15] निसान

तेग बेग बहु कढ़ी । मनो पावक लपट्टी ॥
करो बाज रन जुट्ट । कटे सिर पाँव झपट्टी ॥
परै धरनि धर नचै । उदर कटि अंत भभक्कै ॥
चली रक्त धर धार । लुत्थ पर लुत्थ धधक्कै ॥
षट सहस खिसे षुरसान दल । लिय निसान बानै सुबर ॥
किए नजर राव हम्मीर के । फखी फते महिमा समर ॥
आइ सेख सिर नाय । राव कूँ बचन सुनाए ॥
धनि छत्री चहुवान । सरन पन जग जस छाए ॥
तेज राज धन धाम । तात तिय हठ नहिं छंडै ॥
राखि धर्म दृढ़ सत्य । कीर्ति जस जुग जुग मंडै ॥
भरि नीर नैन महिमा कहै । अब जननी कब जन्म दे ॥
जब मिलो राव हम्मीर तुम । बहुरि समैं व्है है कदे ॥
कहै राव हम्मीर । धीर नहिं हीन उचारो ॥
सूर न करैं सनेह । देह छिन भंग विचारो ॥
विछुरन मिलन संजोग । आदि ऐसी चलि आई ॥
ज्यों जीवन[१] ज्यों मरन । सकल[२] बेदन यह गाई ॥
कीजे न भर्म अनभंग चित । मिलैं सूर के लोक सब ॥
हम तुम जु साह बहुरों[३] तिया । हुँहि एक[४] तन तजि सु अब ॥
तजिय स्वारथ लोभ । मोह काहू नहि करिये ॥
देह धरे परवान[५] । स्वामी को कारज सरिये ॥
को इतसौं लै जात । कहा उत सौं लै आयौ ॥
रहै अमर कीरत्ति । पाग नर देह सु गायो ॥
सुनि सेख देखि थिर नाहिं कछु । तन मिट्टी मिलि जाइये ॥
का सोच मरन जीवन तणो । यह लाभ सुजस सौं पाइये ॥
सुनि हमीर के बचन । साह पर सनमुख धाये ॥
मीर गाभरू बीर । आनि तिन[६] सीस नवाये ॥
अलादीन पतिसाह । इते सिर ऊपरि राजै ॥
तुम सिर राव हमीर । स्वामि आपन कुल लाजै ॥
नन तजौ नोन की सरत दोउ । यह तन तिल तिल खंडिये ॥
मिलिये जु भिस्त[७] में जाय अब । धर्म न अपनौ छंडिये ॥
हँसि अलावदी साह । शेख कौं बचन सुनाये ॥
दिली छांड़ि करि सीस । बहुरि मुझको नहि नाये ॥
मिलो मुझे तजि रोस । हुरम मैं तुम को दीनी ॥
अर गोरखपुर देश । देहु तुम कौ सत चीन्हीं[८] ॥

---

[१]जामन [२]वक [३]गवरू [४]इक [५]मान [६]रिस [७]विहस्त [८]चीनी

मुसकाय साहि महिमा कहै। बचन यादि वे किज्जिये ॥
जननी न जन्म फिर आनि भुव। जबै मिलन गन लिज्जिये ॥

दोहरा छंद

जब[1] जननी जनमै बहुरि। धरूँ देह कहुँ आनि ॥
तऊ न तजौं हमीर सँग। सत्य बचन मम जानि ॥
तब सु राव हम्मीर सुनि। कीनी मदति सु सेख ॥
हजरति महिमा साह को। बात लगावत देखि ॥
कह हमीर यह बचन पर। गही साह सौं तेग[2] ॥
लोभ न करिये जीव का। गहौ[3] साह सों बेग ॥

चौपाई छंद

कहै मीर गभरू ये बातैं। गहै[4] सार नहिं करिये घातैं ॥
हुक्म धनी के कौ प्रतिपालौ। आई अदलि सीस पर चालौ ॥
सुनि गभरू के बचन सुभाये। महिमा फूल खेत में आये ॥
सनमुख सार सम्हाय सु बढ्ढै। माया मोह त्यागि खग कढ्ढै ॥

दोहरा छंद

दोऊ बंधु रिसाय कै। लई बाग इम संग ॥
उतरि खेत में मिलि उभै। कीनौं हरष उमंग ॥
मीर गाभरू पाँय परि। हुकुम माँगि करि जोरि ॥
स्वामि काज तन खंडिये। लग्गौ[5] तनक न खोरि ॥

हनूफाल छंद

मिले बंधु दोउ धाय। बहु हरख कीन[6] सुभाय ॥
अब स्वामि धर्म सुधारि। दोउ उठे बीर हँकारि ॥
असमान[7] लग्गिय सीस। मनौं उभै काल सदीस ॥
इत कोप महिमा कीन्ह। हम्मीर नौन सु चीन्ह ॥
उत मीर गभरू आय। मिलि सेख के परि पाँय ॥
कर तेग बेग समाहि। रहि दुहूँ सेन सचाहि ॥
कम्मान लीन सु हत्थ। जनु[8] सार कार सुपत्थ ॥
धरि स्वामि[9] काज समत्थ। दोउ[10] उभै जुद्ध स पत्थ ॥
दुहुँ द्वंद जुद्ध सुकीन। मनु जुटे मल्ल नवीन ॥
तरवारि बज्जिय ताय। मनु लगी ग्रीषम लाय ॥

---

[1] अब [2] तेक [3] सो रहै हमारी टेक [4] गहौ सार नर कौ रच यातें [5] लपकत कबहूँ षोरि [6] कियउ [7] आसमान सीस सुलग्ग [8] वर सार धार सुपत्थ [9] धर्म्म [10] मनु

कटि चरण सीसरू हत्थ । परि लुत्थ जुत्थ सुतत्थ ॥
घमसान थान मु धीर । घर धरनि खेलत बीर ॥
गजराज लुट्टत भुम्मि । बहु तुरँग परत सु भुम्मि ॥
बिय वीर बज्जिय सार । तरवारि बरसहु धार ॥
दोऊ भ्रात स्वामि सकाम । जग में किये अति नाम ॥
दोहुं बीर देखत दूर । चढ़ि गये मुख अति नूर ॥
दल दोय दिष्षत बीर । पहुँचे बिहस्त गहीर ॥

दोहरा छंद

तिल तिल भे अँग दुहुन के । हनै बाजि गजराज ॥
हजरत राव हमीर के । सबै सँवारे काज ॥
मुसलमान हिन्दवान[1] को । चले सेख सिर नाय ॥
चढ़ि विमान दोऊ तहाँ । भिस्तहि पहुँचे जाय ॥

छप्पय छंद

कहै साह मुख बचन[2] । सुनौ हम्मीर महाबल ॥
अब न गहो तुम सार । फिरैं हम सकल दिली दल ॥
तुम्हें माफ तकसीर । राज रणथंभ करो थिर ॥
हम तुम बीच कुरान । मुहिम नहिं करो दिलीसुर ॥
परगने पाँच दीने अवर । रणत भँवर भुगतो सदा ॥
जब लग सुराज हमरौ रहै । तुम सुराज राजौ तदा ॥

चौपाई छंद

कहै राव हम्मीर सु बानी । सुनि दिल्लीस सत्य जिय जानी ॥
जाकी अदलि होय किमि मिट्टै । नर तैं होनहार किम घट्टै ॥
तुम्हरौ दयो राज किन पायौ । तुम्ह को राज कहो किन ध्यायो ॥
बेर बेर कह मुखै[3] उचारौ । कोटि स्यानपन क्यों न विचारौ ॥
कीरति अमर अमर नहिं कोई । दुर्जोधन दसकध सुजोई ॥
काको गढ़ काकी यह दिल्ली । हरि की दई हमै तुम मिल्ली ॥
हम तुम अंश एक उपजाये । आदि पदम रिषि अंग उपाये ॥
देव दोय उर धर भये न्यारे । हम हिन्दू तुम यवन हँकारे ॥
तजिये भोग भूमि के सबही । चलिए सुर पुर बसिए अबही ॥
संग हमारो पहुँच्यो जाई । हम तुम रहै सबहिं पहुँचाई ॥
गहो हथियार राज सब छंडौ । राषो जस तन षंडि विहंडौ ॥
अबै चालि सुरपुर सुप मंडौ । मृत्यु लोक के भोग सु छंडौ ॥

---

[1] हितवान [2] बच्चवैन [3] मुक्ख

छंद त्रोटक

यह बात कही चहुवान तबै । सुनि साह सबै भर पेलि जबै ॥
करि साज सबै रण मंडि महा । तिन भारत पारथ जुद्ध सुहा ॥
दल संग चढ़े सब सूर असी । सब तोप सु बान कमान कसी ॥
गजराज अनेक बनाय घनै । मनौ पावस बद्दल मेघ तनै ॥
हय कंद अमंद सु पौन मनौ । बहु दामनि सार चंमकि भनौ ॥
घन गौर[1] सदायन देखतयं । ध्वज बैरष मंडल लूरतयं ॥
बिरदावत वृंद कविंद घनै । मनौ चत्रक मोर अनंद बनै ॥
बगपंति सुदंति अनंत रजे । धुरवा फिर सुंड छुटे भरजे ॥
बह[2] धार अपार जुधार बही । घन घोर सु नौवति नाद वही[3] ॥
कर सोर समोर नकवि चलै । यहि भांति दोउ दिसि[4]वीर[5]मिलै ॥
करिये हङ्कार सु वीर चलै । ... ...
कहि मीर सिकंदर नेम कियं । सिर नाय सुभाय हुकुम्म लियं ॥
पहलै पुर जाय सु बीर भगं । रणथंभ कहा हजरत्ति अगं ॥
तुम सेर करयो वह आप जंथा । अब देखहु मोर सुहाथ जथा ॥
सु जमीति षदार लई सबही । अरु मीर सिकंदर आय[6] सही ॥
करि कोप सिकंदर मीर चढ़े । तब राव हमीर के भील कढ़े ॥
तब भोज कही अब मोहि कहौ । इतने अब हत्थ हमार लहौ ॥
तब राव कही रणथंभ अगै । दुइ जैत अगै सिर भील तगै ॥
अर जैत सरंति सुराखि तबै । करि कौन करै तुम्हरी जु अबै ॥
तुम संग रतन्न चीतोर गढ़ं । चढ़ि जाउ हमार सुकाज बढ़ं ॥
सुनि भोज इसे कहि बैन तबै । यह सीस तुम्हार निमित्त[7] अबै ॥
रणथंभहि हेत जु सीस दिवै । अब और कहा बिन राव जिवै ॥
यह अवसर फेरि बनै कबही । हजरत्ति हमीर मिले जबही ॥
कहि बत्त इती जु सलाम करी । अपनो सब लीन जमीन खरी ॥
सब भील कसे हथियार जबै । निकसे कढ़ि भोज अमान तबै ॥
कमठा कर तीर सम्हार उठे । उत मीर सिकंदर आय जुटे[8] ॥
बजि घोर निसान प्रमान[9] मिले । दल कोप करे बहु तोप चले ॥
घमसान जुवान कियो तबहीं । दुहु सैन सुऐन बनै जबहीं ॥
गजराज हरौल करे बलयं । उत सार अपार कढ़े दलयं ॥
सजि भलि अनी सुघनी हलकौ । कसि गातिय[10]कोप कियो बलकौ ॥

---

[1] घन घोर [2] बह सार अपार सुधार हुई [3] जुई [4] दल [5] बोर [6] पठई [7] निभंत
[8] इटे [9] अमान [10] कागति

कमठा कर धार अपार बलं । तब भोज मिल्यो तहँ साह दलं ॥
नट कूदत जानि सुढोल सुरं । बहै तीर अमीर सुजानि छुरं ॥
करि कोप तबै गजदंत कढ़े । मुरि मूरिय धूरि उपारि बढ़े ॥
सब भीलन मत्त सुकोप कियं । जनु भाल बली मुख लक लियं ॥
जनु मार अपार कटार चलैं । बहु मीर अमीर रु भील मिलैं ॥
हज्जरत्ति सराहत भोज बलं । जनु मानव रिच्छ भिरत्त दलं ॥
दोउ भोज सिकंदर भील जुटे । मुख बानिय मीर अमीर रटे ॥
जब भोज कहै करिवार तुहीं । है क मीर सिकंदर बूढ़ तुहीं ॥
अब तो पर वार कहा करिये । सब लोक अलोक महा भरिये ॥
तब भोज सकोप कियो रण में । करि कोप कटार दियो तन में ॥
तन कंगल भेदि धरंति पर्यो । किर बान चलाय समीर हर्यो ॥
सर भोज पर्यो धरनी[1] तिल में । धर धावत[2] रुंड लरै बल में ॥
उत मीर सिकंदर भूमि परे[3] । वह हूर[4] सुदूर सुआनि परे ॥
परि खेत सधार अपार सबै । बिन सीस पराक्रम भोज अबै ॥
भजि साह अनी तजि खेत तबै । परि भोज समाज सबीर सबै ॥
कसमीर अमीर सहस्र पची । सुमिली[5]धरि धार सची सुअची ॥
तहाँ भोज ससाथि हजार भले । वरि बाल सबै सुर लोक चलै ॥

दोहरा छंद

तब हमीर हर ध्यान करि । हर हर हर उच्चारि ॥
गज निज सनमुख[6] पेलिकैं । जुरे[7] साह सों रारि ॥

त्रोटक छंद

गजराज हमीर सु पेलि बरं । मुख तै उचरंत सु भाव हरं ॥
किरवान कढ़ी[8] बलवान हथं । सनमुक्ख सुसाहि सु बोलि[9]जथं ॥
सुनिये सु अलावदि बैन अथं । करि द्वन्द सु उद्ध सु जुद्ध धयं ॥
सब सेन कहा करिहै सु सुधं । हम आपन[10]इक्क[11]करैं सु जुधं ॥
दुहूँ ओर उछाह अथाह सजे । हजरत्ति सु कोप अकथ्थ[12]रजे ॥
सनमुक्ख हमीर सुआए[13] जुटे । सब सथ्थ जथारथ बेग[14] हटे ॥
तिहिं खेत खरे[15] चहुवान नरं । पति साह सबै दल भंज्जि[16]भरं ॥
रहि भीर उजरि कछूक तबै । चहवानन के दल देख जबै ॥
पतिसाह कही यह कौन बनी । सब सैन बड़ी चहुवान तनी ॥

---

[1] धरनि, थथल [2] भुम्मि लरै चल में [3] गिरे [4] हूरन [5]उलटी भरै सैन दिलीस बची [6] सम्मुख पिल्लिकैं [7] जुरिग जुरेउ [8] कम्मान चढ़ी [9] वुल्लिय गथं [10] अप्पन [11]एक [12]अगत्थ [13] आनि [14]रेख देख [15] अस्त, अर्थ अरे [16] भाजि

तब मंत्र वजीर सु एमि कह्यो । तुम मित्र सदा गुन जानि लह्यो ।।
अब बिग्रह छाड़ि सु संधि करो । चाहुवानन सों हित जानि डारो ।।
अपराध हमैं सब दूरि करौ । तुम दोहु अभै हम कूच धरौ ।।
नृप सो चर जाय कही तबही[1] । सुनि राव चहै मुख बत्त कही ।।
अब खेत चढे कछु संधि नहीं । यह बत्त हमारि सुजानि सही ।।
रिपु तैं विनती सुइ कातरता । अब बृत्त कहै छल चातुरता ।।
अब जाहु यहां हम सेन सजी । बिन साह को जुद्ध करंत लजी ।।

त्रोटक छंद

कछु जंत्र न तोपन कंत[2] नहीं । तजि चापन चक्रन बान जिहीं ।।
किरवान[3] लई करि बाजि चढ़े । चहुवान अमानि सु खेत चढ़े ।।
उत मीर वजीर रु साहि निजं । करि कोप तबै पति साह सजं ।।
तरवारि अपार दुधार बहै । सब साहि सु सैन समूह दहै ।।
कटि ग्रीव भुजा धर सो विफरे[4] । मनु काटि करे रस कुत्त हरे ।।
उड़ि मथ्थ परे धर रुंड उठै । चहुवान धरासह धार उठै ।।
सिर मारत हाक परे धर में । धर जुज्झत जुद्ध करै अरमैं ।।
कर जोर कटार सु अंग बहैं । बहु खंजर पंजर देह दहैं ।।
बहु रंचक[5] मुष्ट कबथ्थ परैं[6] । मल जुद्ध समुद्ध सु बीर करैं ।।
पचरंग अनग्गिय खेत बन्यौ । बकसी[7] तब साह सो बैन भन्यौ ।।
भयभीतं सु साह की फौज भगी । घमसान मसान सु ज्योति जगी ।।
परियो बकसी लखि नैन तबै । उलटो गज कीन सु साह जबै ।।
इक संग उजीर[8] न और नरं । फिरि रोकिय[9] साह अनंत भरं ।।
चहुवान धरम्म सु जानि कहै । यह भारत साहि सु पाप अहै ।।
अभिषेक ललाट कियो इन कै । महि ईस कहावत है तिनकै ।।
धरि अग्र सु साह को पील जबै । जहँ राव हमीर सु लाये पगै ।।
अब साहि सु राव कही तबहीं । तुम जाहु दिली न डरो अबहीं ।।
लखि साह को लोग मुरक्कि चल्यौ । नृप आप हमीर सु खेत झिल्यौ ।।

पद्धरी छंद

भगि साह सेन जुत उलटि आय । तजि विविधि भाँति बाना[10] जु ताहि ।।
सब साह हसम लीनी छिनाय । नृप सकल खेत सोधो कराय ।।
बजि दुंदुभि जय जय धुनि सु आय । सब घायल नृप लीने उठाय[11] ।।
करि अग्ग[12] साह नीसान भुल्लि । लखि भूप हसम कर कह्यो फुल्लि ।।

---

[1] अबहीं [2] रूकंत [3] कम्मान [4] बिहरै [5] रंजक [6] भरै [7] वकसी नृप सांह कौ आप हन्यो [8] वजीर [9] रुक्किय [10] नाना [11] उचाय [12] अग्र ।

सब राज लोक तिय जिती जानि । सब सार परस्पर हरी[1] आनि[2] ॥
चाहुवान दुग्ग किन्नो प्रवेस । यह सुनिय राव तिय मरन सेस ॥
चहुवान आनि देख्यो सु गेह । शिव बचन यादि कीनो सु येह ॥
नृप सकल संग को सीख दीन । रावत्त राण मंत्री प्रवीन ॥
तुम जाहु जहां रतनेस आय । किज्जे न सोच नृपता बनाय ॥
चहुवान राय हम्मीर आय । हर मंदिर मँह प्रविसंत जाय ॥
करि पूजन भव[3] गणपति मनाय । बहु धूप दीप आरति बनाय ॥
हो गिरजा गणपति सु मम देव । तुम जानत हो मम सकल भेव ॥
अपवर्ग देहु तुम नाथ सिद्धि । तन छुत्र धर्म्म दीजे[4] प्रसिद्धि ॥
करि ध्यान शंभु निज सीस हथ्थ[5] । नृप तोरि कमल ज्यों किय अकथ्थ ॥
यह सुनिय साह निज श्रवण बात । चलि हर मंदिर कों साह आत ॥
जलधार नैन लखि राव कर्म्म । कहि साहि मोहि दीनो न मर्म ॥
कछु दियो हमें उपदेश नाहिं । तुम चले आप बैकुंठ माहिं ॥
तुम अभय बाँह दीनी जु शेष । जुग जुग नाम राख्यौ विशेष ॥
अरु महा दानि तुम भये भूप । इच्छा सदान दीने अनूप ॥
जगदेव मोरध्वज तैं विशेष । जस लयो लोक तुम रक्खि सेख ॥

दोहरा छंद

साह कहत हम्मीर सों । लेहु मोहि अब संग ॥
धर्म रीति जानो सु तुम । सूर उदार अभंग ॥

पद्धरी छंद

मुसकाय सीस बोल्यो सु बानि । तुम करो साह मम बचन कानि ॥
हम तुम सु एक जानो न और । तजि मोह देह त्यागो सु तौर ॥
लीजे सुझाँफ सागर सु जाय । तब मिलै आप अप्पै सु आय ॥
यह कहिस सीस सुख मूँदि होत । तब साहि ग्यान हृद भो उदोत ॥
उठि साह सीस वंदन सु कीन । करि प्रणाम संभु को ध्यान लीन ॥
हजरत्त आय डेरै सु तब्ब । उज्जीर मीर बोले सु सब्ब ॥
तुम जाहु सकल दिल्ली सथान । अलवूतहि राज दीजे सु आन ॥
नहिं करो मोर अर्ज़ाँ सु भंग । सेवक धर्म्म यह है अभंग ॥

दोहरा छंद

आयसु पाय सु साह को । चढ़े सकल सजि सैन ॥
महरम खाँ उज्जीर तब । आये दिली सु ऐन ॥

---

[1] हनी [2] पानि [3] बहु [4] दिज्जिय [5] मत्थ

दयो राज सिर छत्र धरि । अलावृत्त तिहि काल ॥
घर घर अति आनंद जुत । यह विधि प्रजा सुपाल ॥
रणत भँवर के खेत को । कीनो सकल प्रमान ॥
प्रथम हने रणधीर ने । बहुरि सेन परिवान ॥
दोय लक्ख रूमीं परे । दोऊ कुँवर उदार ॥
सेन आरबी की जिती । हनी जु असी हजार ॥
हने मीर द्वै सत सतरि । और सिकंदर साह ॥
अट्ठ लक्ख पंधार के । हने मीर निज आह ॥
सवा सहस गजराज परि । दो लप बाजि प्रसिद्ध ॥
द्वादस लख सेना प्रबल । हनी हमीर सुसिद्ध ॥

मस्तक राव हमीर को किय सुमेर हर आप ।
मुक्ति द्वार सबई खुले बिना बर्प सुथाप ॥

छप्पय छंद

विदा कीन उज्जीर । कूँच दिल्ली को कीनो ॥
तब सुसाह तजि संग । बचन हजरत को लीनो ॥
सेतबंद घर जाय । पूजि रामेश्वर नीकै ॥
परे सिंधु में जाय । करे मन भाते जीके ॥
उर्वसी साह हम्मीर नृप । सेख मीर सब नाक गय ॥
करि लोकपाल आदर अखिल । जय जय जय हम्मीर किय ॥
मिले स्वर्ग में जाय । साह हम्मीर हरप्षे ॥
महिमा मीर ऽरुबाल । बिबिध मिलि सुमन बरष्षे ॥
जय जय जय हमीर । सकल देवन मुख गाये ॥
लोक अमर कीरत्ति । मुक्ति परलोक सुपाये ॥
माणिक्क राव चहुवान कुल । दैन खङ्ग दोऊ धरत ॥
कहि जोधराज यह वंश में । ननकारी नाहिन करत ॥

दोहरा छंद

सुनत राव हम्मीर जस । प्रीति सहित नृप चंद ॥
मनसा वाचा कर्मना । हरे जोध के द्वंद ॥
चन्द्रनाग वसु पंच गिनि । संवत माधव मास ॥
शुक्ल सुत्रतिया जीव जुत । ता दिन ग्रंथ प्रकास ॥
भूपति नीवागढ़ प्रगट । चंद्रभान चहुवान ॥
साम दाम अरु भेद जुत । दंडहि करत खलान ॥

———

सबलसिंह चौहान

दोहा चौपाई छंदों में महाभारत भाषा के रचयिता सबलसिंह चौहान के बारे में बहुत थोड़ी बातें मालूम हो सकी हैं। शिवसिंह सरोज के लेखक अनुमान से केवल इतना ही बता सके हैं कि ये इटावे के पास के किसी गाँव के जमींदार थे। फिर कोई इन्हें चंद्रागढ़ का राजा और कोई सबलगढ़ का राजा बतलाते हैं। सबलसिंह स्वयं अपने को औरंगजेब के एक दरबारी राजा मित्रसेन का संबंधी बतलाते हैं। इनके पिता माता या वंश आदि के विषय में और कुछ जानने का कोई उपाय नहीं है।

महाभारत के अतिरिक्त इनके रचे हुए दो और ग्रंथों का पता चला है। इनमें से एक तो ऋतु-संहार का भाषानुवाद 'रूप-विलास' और दूसरा एक पिंगल ग्रंथ है। पर इनका नाम महाभारत के कारण ही हुआ। पश्चिम के रहने वाले होने पर भी इन्होंने महाभारत अवधी में लिखा यह ज़रा सोचने की बात है। इस बृहत ग्रंथ का रचनाकाल सं० १७१८ और सं० १७८१ के बीच बताया गया है।

इनकी कविता के संबंध में कुछ विशेष नहीं कहना है। उच्चकोटि के कलाकार तो ये थे नहीं पर सीधी सादी भाषा में लंबे चौड़े वर्णन लिखने की इन में अच्छी शक्ति थी। वास्तविक युद्ध का वर्णन भी इन्होंने अच्छा किया है।

इस संग्रह में इनको स्थान देने का एक विशेष कारण यही है कि इतना विशाल और वीररसप्रधान प्रबंध-काव्य का निर्वाह सफलता-पूर्वक हिंदी के दो ही एक कवि कर सके हैं। काशिराज वाली महाभारत के रचयिता गोकुलनाथ आदि का भी संक्षिप्त संग्रह इसी दृष्टि से करना पड़ा है।

संग्रह बंबई के खेमराज श्री कृष्णदास द्वारा प्रकाशित संस्करण से ही किया गया है।

महाभारत भाषा

भीष्म पर्व (भीष्म-प्रतिज्ञा)

दो०—धर्मराज कुरुपति सुनौ भीषम भाषेउ बैन।
आज गहावौं अस्त्र हरि देखत दोनों सैन ॥

गंगा गर्भ जनम जो लीन्ह्यो। तो यह प्रण भारत में कीन्ह्यो ॥
प्रभु को प्रण टारौं परतक्ष। आज करौं आपन प्रण रक्ष ॥
यहि विधि बाणबुंद झरिलावो। शोणित नदी अथाह बहावों ॥
कृष्ण हाथ नहिं अस्त्र गहावों। तो मैं बास अधोगति पावों ॥
कठिन बाण शारँग गुण जोरौं। शर सागर पांडव दल बोरौं ॥
भीषम यही प्रतिज्ञा ठान्यों। दोउ दल अति अचरज करि मान्यो ॥

यह सुनि देव लोक सब आए। कौतुक को विमान नभ छाए ॥
प्रथम कियो है प्रण जग तारण। हम नहिं करें अस्त्र कर धारण ॥
प्रभु पारथ को सारथ अहई। भीषम अस्त्र गहावन कहई ॥
यह चरित्र देखत सब मुनिगण। रणमहिं आजु रहै काको प्रण ॥

भीषम तब यहि विधि कह्यो करिहौं युद्ध अनंत।
पारथ रण अस्थिर रही, सारथि श्री भगवंत ॥

यह कहि लगे चलावन सायक। दोऊ भट रण मह सब लायक ॥
अर्जुन बाण हाथ तें छूटहिं। मानहुँ बज्र गगन तें छूटहिं ॥
लघु संधान कियो तब पारथ। निज सायक छाया सब भारत ॥
दश दिशि सब बानन मय सूझै। निज पर नाहिं न कोऊ बूझै ॥
यहि विधि शर अकाश में छायो। रवि मंडल देखत नहिं पायो ॥
दुख युद्ध भीषम रिस बाढ्यो। तीक्ष्ण सर निषंगते काढ़्यो ॥
ऐसे सबल बाण गुण जोरे। क्षणमह अर्जुन के शर तोड़े ॥
लाखन अर्ब खर्ब शर कोप्यो। पांडवदल बाणन ते तोप्यो ॥
बीर सकल शर छाँह समानें। दृष्टि न परत जात नहिं जानें ॥
क्रुद्धित यहि विधि कृतसंधानहिं। जल थल सूझि परत सब बानहिं ॥

महाघोर संग्राम में, अर्जुन धनु संधान।
सब शर काटे निमिष महं, तब खंड्यो जिमि भान ॥

अर्जुन पाणि निशित शर छूटत। भेदि सनाह वपुपमहँ फूटत ॥
सारथि उर शत सायक मारे। विंशति विशिख केतु ध्वज पारे ॥
अश्वन तन यहि विधि शर लागे। थकित भए पग चलत न आगे ॥
लक्ष नराच कटक पर डारेउ। ते शर चोटि मौलि अनुसारेउ ॥
तब भीषम निज तेज सँभारे। सहस बाण अर्जुन उर मारे ॥
कोटि विशिख लाग्यो हनुमानहिं। षष्टि नराच हन्यो भगवानहिं ॥
गंगनतनय शर अपर सु जोरे। घायल नंदिघोष के घोरे ॥
शर अनेक सेना पर प्रेरा। पांडव कटक हतेउ बहुतेरा ॥

सहस एक राजा गिरे, सेन सु बधी अनंत ॥
अरुण वर्ण सब देखिये, खेलत मनहुँ बसंत ॥

भीषम अमित तेज महि साचो। रुंड मुंड महिं भारत माचो ॥
महाशूर रण जूझत घायल। मनहुँ नाद मोहे कर शायल ॥
यहि विधि कृत अतिरण भयकारी। अर्जुन सो सब कह्यो मुरारी ॥
अब अपनो दल रक्षन कीजै। दृढ़ है शर कोदंडहि लीजै ॥
सुनि पारथ लीन्हयो कर धनु शर। प्रात समय जनु उदय दिवाकर ॥

अति क्रुद्धित ह्वै कृतसंधानहिं । हृदय ताकि मारे बहु बानहिं ॥
भेदि सनाह अंग में लाग्यो । क्रोध अनल उर अन्तर जाग्यो ॥
भीषम विशिख निशित अति छूटे । अर्जुन बपुष भेदि कै फूटे ॥
घायल भयो सह्यो सब बानहिं । ब्रह्म अस्त्र तब कृत संधानहिं ॥
बाण उदात तेज महि छायो । देव लोक लखि अतिभय पायो ॥

पारथ अतिशय बल कियो, कृष्ण अस्त्र संधान ।
चलत तेज अति उदित कृत, मनहुँ दूसरो भान ॥

कौरव दल अति देखि सकान्यो । भीषम ब्रह्म अस्त्र संधान्यो ॥
अस्त्र अस्त्र सों भयो निवारण । तब लागे तीक्ष्ण सर मारण ॥
अयुत बाण हनुमंतहिं मार्‍यो । गरुड़ध्वज तन सहस प्रहार्‍यो ॥
अर्जुन अंग बाण बहु मारे । शर ते तन झाँझर करि डारे ॥
सहित बाजि स्यंदन करि घायल । थकित भये पद चलत न पायल ॥
भीषम बाण बृष्टि अति लायो । नंदिघोष रथ शर ते छायो ॥
तीक्ष्ण बाण श्याम उर मारे । पीत बसन रँग अरुण सँवारे ॥
रथ से उतरि चले नारायण । धाये आप उघारे पायन ॥
सजल श्यामघन अंग सुहायो । मर्कत मणि पटतर नहिं पायो ॥
मकराकृत कुँडल मन मोहै । डोलत झलक कपोलन सोहैं ॥

गहे चक्रवर चक्र कर, चक्कृत चाहत खेत ।
चंचल धावनि चरण की, भीषम के प्रण हेत ॥

कर में चक्र सुदर्शन राजत । कोटि भानुद्युति सरिस विराजत ॥
श्रम जल रुधिर चलत एक संगहि । शोभित अंग अनूपम रंगहि ॥
विश्वम्भर क्रोधित ह्वै धाये । भूमि हली फण शेष उठाये ॥
यहि विधि प्रभु आतुर किय गवनहिं । फहरत पीत अस्त्र लगि पवनहिं ॥
गिरेउ छूटि अम्बर रण धरणी । कवि पै छवि कछु जात न बरणी ॥
कौरव दल देखत सब डरप्यो । मानहु बाज बिहग पर फरक्यो ॥
तब अर्जुन छाड़ेउ निज स्यंदन । धाइ जाय पकरेउ जगवंदन ॥
अहो नाथ अस्थिर ह्वै रहिये । आप अस्त्र केहि कारण गहिये ॥
मोते अघ कह भो जगतारण । कर गहि चक्र चल्यो तुम मारण ॥
येही अयश जगत में पायो । प्रभु कर भीषम अस्त्र गहायो ॥

प्रभु अपनी प्रण टारि के, कियो मोर अपमान ।
भीषम प्रण पूरन कियो, भक्ति वश्य भगवान ॥

चरण कमल गहि पारथ फेर्‍यो । देखि पीठ गंगासुत टेर्‍यो ॥
साधु साधु श्रीपति बनवारी । सदा भक्त प्रण रक्षाकारी ॥

धनुष डारि कर कियो प्रणामहिं । अस्तुति करन लगे घनश्यामहिं ॥
तब भीषम यहि विधि ते भाख्यो । दीनबंधु मेरे प्रण राख्यो ॥
विप्र सुदामा दारिद भंजन । भक्तबछल गोपिन मन रंजन ॥
गणिका व्याध गीध जगतारण । गोरक्षक गोबर्धन धारण ।
ध्रुव को अचल कियो परतक्षक । द्रुपदसुता के लज्जा रक्षक ॥
महा कष्ट प्रह्लाद उबारयो । निकसि खंभ दनुजेशहि मारयो ॥
रावण कुल समेत बध कीन्ह्यो । लंका राज्य विभीषण दीन्ह्यो ॥
शाप शिला गौतम की नारी । परसत चरण अहल्या तारी ॥

ब्रह्मा शंकर देव मुनि, करत चरण नित ध्यान ।
सबलसिंह चौहान कह, भीषम कियो बखान ॥

द्रोणपर्व (अभिमन्यु-वध)

उत सेना सरदार सब, इत अर्जुन सुत एक ।
सबै बीर घायल किए, पारथ सुत रखि टेक ॥

कुरुपति तबहिं क्रोध अति कीन्हें । मार मार करि आज्ञा दीन्हें ॥
सुनिकै कर्ण बाण कर लीन्हें । पढ़ि कै मंत्र फोंक शर दीन्हें ॥
जो शर परशुराम ते पाए । क्रोधित ह्वै सो बाण चलाए ॥
दैकै हांक बाण तब छाँटे । करते धनुष कुँवर को काटे ॥
टूटे धनुप कुँवर तब डारे । करगहि शक्ति तबहि परिहारे ॥
तुम हम ऊपर बाणहि छाँटे । बीचहि कर्ण धनुष मम काटे ॥
यह कहि कुँवर शक्ति परिहारे । कर्णहि हृदय ताकि कै मारे ॥
मूर्छित किए कर्ण ते छत्री । अर्जुन पुत्र महाबल ते अत्री ॥
बिनु धनु पाणि कुँवर को पाए । घेरि वीर सब निकटहि आए ॥

बालक घेरेउ आइ सब, मारत अस्त्र अनेक ।
जिमि मृगगण के यूथ महँ, डरत न केहरि एक ॥

लै कै शूल कियो परिहारा । वीर अनेक खेत महँ मारा ॥
जूझी अनी भभरि कै भागे । हसिकै द्रोण कहन अस लागे ॥
धन्य धन्य अभिमनु गुणसागर । सब छत्रिन महँ परम उजागर ॥
धन्य सुभद्रा जग में जाई । वैसे बीर जठर जनमाई ॥
धन्य धन्य जग में पितु पारथ । अभिमनु धन्य धन्य पुरुषारथ ॥
एक वीर लाखन दल मारे । अरु अनेक राजा संहारे ॥

धनु काटे शंका नहिं मन में । रुधिर प्रवाह चलत सब तनमें ॥
यहि अंतर बोले कुरुराजा । धनुष नाहिं भाजत केहि काजा ॥
एक वीर को सबै डरत हैं । घेरि क्यों न रथ धाइ धरत हैं ॥
बालक देखि करी यह करणी । सेना जूझि परी सब धरणी ॥

दुर्योधन या विधि कह्यो, कर्ण द्रोण सो बैन ।
बालक सब सेना वधी, तुम सब देखत नैन ॥

यह कहिकै दुर्योधन आए । सबै वीर आगे ह्वै धाए ॥
छत्रिन घेरो बालक रन में । मानहु रवि अच्छादित घन में ॥
लैकै खंग फरी गहि हाथा । काटो बहु छत्रिन कै माथा ॥
अभिमनु धाइ खंग परिहारा । सन्मुख जेहि पावै तेहि मारा ॥
भूरिश्रवा बाण दश छाँटे । कुँवर हाथ को खंगहि काटे ॥
तीनि बाण सर रथ उर मारे । आठ बाण ते अश्व सँहारे ॥
सारथि जूझि गिरेउ मैदाना । अभिमनुवीर चित्त अनुमाना ॥
यहि अंतर सेना सब धाए । मार मार करि मारन धाए ॥
रथ को खैंचि कुँवर करि लीन्हें । ताते मार भयानक कीन्हें ॥
अभिमनु कोपि खंभ परिहारे । एक एक घाव वीर सब मारे ॥

अर्जुन सुत इमि मार किय, महावीर परचंड ।
रूप भयानक देखियत, जिमि लीन्हें यमदंड ॥

क्रोधित होइ चहूँ दिशि धाए । मारि सबै सेना बिचलाए ॥
यहि विधि किये भयानक भारत । साहस धन्य धन्य पुरुषारथ ॥
ऐसी मार खंभ सो कीन्हें । दश सहस्र राजा बधि लीन्हें ॥
मारि सबै राजा बिचलाये । कर लै गदा कुरुपति धाये ॥
शत बांधव नृप संगहि आए । अरु अनेक राजा मिलि धाए ॥
चहुँदिशि महारथी सब घेरे । छत्री सबै बीर बहुतेरे ॥
नाना अस्त्र सबहिं परिहारे । निकट न जाहिं दूरि ते मारे ॥
दुर्योधन कहँ देखन पाए । गहे खंभ अभिमनु तब आए ॥
जुरे वीर छत्री बहुतेरे । खंभ घात ते वधेउ घनेरे ॥
जब नरेश के निकटहिं आए । द्रोण गुरू दश बाण चलाए ॥

गुरू द्रोण अति क्रोध करि, मारे बाण अचूक ।
कुँवर हाथ को खंभ तब, काटि कियो दुइ टूक ॥

खंभ कटे अभिमनु भा कैसे । मणि बिनफणिक बिकल हुव जैसे ॥
क्रोधित भये सुभद्रा-नन्दन । चरणघात सों तोरेउ स्यंदन ॥
रथ तें कूदि कुँवर कर लीन्हें । चाक उठाय रणहिं शुभ कीन्हें ॥

चाक कुँवर कर शोभित कैसे । हरि कर चक्र सुदर्शन जैसे ॥
रुधिर प्रवाह चलत सब अंगा । महाशूर मन नेक न भंगा ॥
गहि कै चाक चहूँ दिशि धावै । जेहि पावै तेहि मारि गिरावै ॥
दुर्योधन पर चाक चलाये । गदा रोपि कुरुनाथ बचाये ॥
क्षत्री घेरि लगे शर मारन । जुरे आइ कोता हथियारन ॥
दुश्शासन सुत गदा प्रहारे । अभिमनु के शिर ऊपर मारे ॥
जूझे कुँवर परे तब धरणी । जगमहँ रही सदा यह करणी ॥

धन्य धन्य सब कोउ कहै, कुँवर रहो मैदान ।
पै गुरु द्रोण मलीन मुख, कहे बचन परमान ॥

गुरू द्रोण यहि भाँति बखाने । हर्षि नरेश सबै सुख माने ॥
अभिमनु मरण सुनैगे पारथ । करिहै महा भयानक भारत ॥
इन्द्र बरुण यम हाँइ सहायक । कोइ नहिं अर्जुन जीतन लायक ॥
भीमादिक यह युद्ध विचारे । पै जयदर्थ सबहिं शर मारे ॥
क्रोधित भये पांडु के नन्दन । फेंको सिंधुराज के स्यंदन ॥
गिरे दूरि उठि निकटहि आए । भीम उपर शत बाण चलाए ॥
धर्मराज तब कीन्ह दरेरी । पै जयदर्थ मारि मुख फेरी ॥
लै अनीक सब कुरुपति धाए । जहँ जयदर्थ लरत तह आए ॥
कौरव दल जय शंख बजाये । अभिमनु गिरे भूप सुनि पाये ॥
धर्मराज सुनि मौनहिं गहेउ । संध्या भई युद्ध तब रहेऊ ॥

कुरुपांडव फिरि कै चले, भयो युद्ध को शेष ।
भीमादिक क्षत्रिय सबै, रोवत धर्म नरेश ॥

कर्णपर्व (कर्णार्जुन-युद्ध)

अर्जुन करणहिं रण मचेउ, छूटत तीक्षण बाण ।
कौतुक त्याग्यो सुरगणन, भागे छाँड़ि विमान ॥

शल्यहि कह्यो कर्ण तब ऐसी । चाक भूमि परसै नहिं जैसी ॥
जेहि दिन मैं विराट पुर वेरी । बैठी गाइ अहीरन केरी ॥
तब सहदेव बुद्धि उपराजो । खुर दै बाँधि आप उठि भाजो ॥
लाठी छांड़ि बहू विधि मारो । अचल गाइ त्तनु टरत न टारो ॥
मैथुनि नाम गाय एक रहेऊ । क्रोधित है अस मोसन कहेऊ ॥
जैसे अचल भयो तनु मोरा । रथ अँटकै भारत में तोरा ॥
चाकै चारि ग्रसै जब धरणी । तब न बनै कछु तोसों करणी ॥
यहि सुधि मेरे मन में आई । सावधान हाँको रथ भाई ॥
शल्य सारथी कीन्हेंउ करणी । चाक छुवै नहिं पावत धरणी ॥

अर्जुन कर्ण करत संग्रामा । पल भरि नहिं पावत विश्रामा ॥
देव अस्त्र दोउ दिशि परिहारहिं । एकहि एक क्रोध करि मारहिं ॥
गज रथ पैदल जूझे लाखन । महामार कोउ सकै न भाषन ॥

नदी भयंकर रुधिर की, गजन करारे जान ।
भरत मास जल फेन सम, लहरी चमकैं बान ॥

ढाल मनहुँ कच्छप उतराने । बार सेवार सरिस अरुझाने ॥
बख्तर सहित परे वर जेते । ग्राह समान देखियत तेते ॥
गज भुशुंडि टूटे कस जाने । मनहुँ सूसि जल में उतराने ॥
चकृत फरी लसत हैं कैसे । रुचिर पत्र पुरइनि के जैसे ॥
शूर शीश देखत दिग भूले । जैसे कमल सहस दल फूले ॥
मांस बहुत सम सरस सुहावा । नाव चलत जिमि रथ उतरावा ॥
परि जँजीर जल शोभा पावहिं । धीवर मनहुँ जाल छिटकावहिं ॥
भूत प्रेत तहँ करत नहाना । योगिनि मनहुँ करैं सो पाना ॥
जंबुक गीध काकगण गावहिं । मांस खांहि मन मोल चुकावहिं ॥
नंदी चढ़ि डोलत हैं शंकर । मुंडमाल गर रूप भयंकर ॥
गजशुंडाह लै योगिनि आवहिं । दै मुख बिच करताल बजावहिं ॥
नाचि कबंध देहिं करतारी । कौतुक रचि रण भूमिहि मारी ॥

आँत लपेटे गज-चरण, किये पखाउज साज ।
भैरवगण या विधि फिरत, खेत भयंकर लाज ॥

यहि विधि युद्ध भयंकर भारी । दोऊ भिरे खेत परचारी ॥
क्रोधित अरुण नैन भये कैसे । भोरहि उदित दिवाकर जैसे ॥
कर्ण वीर ऐसे शर जोरे । घायल नंदिघोष के घोरे ॥
तीक्ष्ण बाण कृष्ण उर दीन्हें । हनूमान तनु जरजर कीन्हें ॥
तब अर्जुन कीन्हेंउ संधाना । कर्ण-हृदय तकि मारेउ बाना ॥
घायल किये शल्य से सारथ । एक ते एक सरस पुरुषारथ ॥
बाणहिं त्यागत यहि व्यवहारा । जिमि वर्षा बरषै जल धारा ॥
रविमंडल महं शब्द सुनावहिं । अर्जुन मारि कर्ण यश पावहिं ॥
सुरपति कही जीति है पारथ । मारौ कर्ण करहु पुरुषारथ ॥
यहि बिधि कहहिं देवगण बानी । सुनिकै शल्य अचंभव मानी ॥
कोऊ कहूँ लरो नहिं ऐसी । अर्जुन कर्ण भयो रण जैसी ॥
रुधिर प्रवाह चलै सब अंगा । महाशूर मन नेक न भंगा ॥

घोर युद्ध यहि बिधि करत, दोऊ वीर समान ।
शल्य सारथी करण रथ, पारथ रथ भगवान ॥

भीमसेन कीन्हीं बहु करणी । परे वीर लोटत सब धरणी ॥
गजते गज हयते हय मारे । रथहि पकरि रथ ऊपर डारे ॥
सन्मुख जुरे गिरे रण जेते । गगन पंथ कहँ फेंकत तेते ॥
जे अभिरे ते सबहि पछारे । बहुतक भींजि चरणते डारे ॥
लागे वीर गदा सों मारण । दुर्योधन के बंधु संहारण ॥
ते सब बहुरि कठिन शर मारे । मुग्दर गदा .शल्य परिहारे ॥
भूमि परे पर भीम न डरपै । मनहुँ बाज पच्छिन पर झरपै ॥
क्रोधित भये पांडु के नंदन । यहि विधि कीन्हेंउ सैन निकंदन ॥
अब अर्जुन छाँड़े शर पायल । शल्य सहित रविनंदन घायल ॥
कर्ण बाण ऐसे परिहारे । अर्जुन हृदय ताकि के मारे ॥
कहेउ कृष्ण सुनिए जब पारथ । प्रण कहँ सुमिरि करहु पुरुषारथ ॥
कर्ण वीर ऐसे शर जोरे । हाँकत पद ठहरात न घोरे ॥

अर्जुन कर्णहि रण मचेउ, उपमा और न तासु ।
मारत शर के अग्रते, उड़त गगन मँ माँसु ॥

सखा साथ धरणी के ऊपर । ग्रस्यो चाक गाड़ो रथ भूपर ॥
होनहार सो होय निदाना । विधि चरित्र कोऊ नहिं जाना ॥
भाषेउ शल्य कर्ण सों ऐसा । अटका चाक चलत रथ कैसा ॥
सुनि के कर्ण कियो हग ठाना । मारी नंदिघोष तकि बाना ॥
सहस बाण अश्वन उर मारे । थकित भए पग टरत न टारे ॥
असी बाण मारहु हनुमानहिं । शर अनेक घाले भगवानहिं ॥
तीनि बाण पारथ उर मारे । नंदिघोष रथ टरत न टारे ॥
कृष्णदेव हांकी रथ बांकी । जैसे फिरत कुम्हार की चाकी ॥
चहूं ओर शर बरषत कैसे । भाद्र वृष्टि मन्दर पर जैसे ॥
जेहि दिशि अर्जुन को रथ धावै । तेहि दिशि कर्ण बाण झरि लावै ॥
छूटत बाण कर्ण के कर सों । नंदिघोष रथ घेंउ शर सों ॥
हाँक देत हाँकत रथ घोरे । अर्जुन कठिन बाण गुण जोरे ॥

मारेउ पारथ क्रोध करि, चलेउ बाण परचंड ।
कर्ण धनुर्धर श्री प्रबल, काटि किये शतखंड ॥

अश्वन शल्य बहुत विधि हांकी । छूटत नाहिं भूमि ते चाकी ॥
कूदि कर्ण रथ के ढिग आए । गहि चाका तेहि चहत उठाए ॥
कर्ण वीर कीन्हेंउ बल भारी । अर्जुन सों भाषेउ बनवारी ॥
मारहु बाण गहरु जनि लावहु । कर्ण शीश अब मारि गिरावहु ॥
पारथ कहेउ उचित नहिं होई । बिना अस्त्र नहिं मारहि कोई ॥
यह अधर्म करिये केहि कारण । यह सुनि कह्यो जगत के तारण ॥

चक्रव्यूह महं अभिमनु मारे। ता दिन कर्ण न धर्म बिचारे॥
आज धर्म तुम सोची पारथ। तौ भारत रण कियौ अकारथ॥
कुंती दिये बाण सो लीजै। अर्जुन कर्ण बधन तेहि कीजै॥
मारहु तुरत गहरु जनि लावहु। बहुरि न ऐसो अवसर पावहु॥
रथ उठाइ करिहै धनु धारण। तब अर्जुन तुम सकहु न मारण॥
सुनि अर्जुन कीन्हेंउ संधाना। श्रवण प्रयंत शरासन ताना॥

दीन्हीं हांकि प्रचारि के, चलेउ बज्र सन बान।
कर्ण पर्व भाषा रचेउ, सबलसिंह चौहान॥

लागेउ बाण कर्ण के कैसे। इन्द्र बज्र पर्वत पर जैसे॥
काटो शीश परो तब धरणी। जग में रही सदा यह करणी॥
कृष्ण आप जय संख बजाये। पांडव सैन्य देखि सुख पाये॥
हर्षि इन्द्र तब आज्ञा दीन्हीं। पुष्प वृष्टि सब देवन कीन्हीं॥
जय जय शब्द गगन महं बोल्यो। चढ़ि बिमान आनंदित डोल्यो॥
जूझेउ कर्ण जगत यश पायो। निसरो रथमहि ऊपर आयो॥
छूटी चक्र धरणि ते जबहीं। फेरेउ शल्य हांकि रथ तबहीं॥
छूछो रथ दुर्योधन पेखा। जूझेउ कर्ण सत्य करि लेखा॥
बिचलि सैन कौरवपति जान्यो। आगे ह्वै के शारँग तान्यो॥
शरसों मार भयंकर दीन्हें। सेना सबै निवारण कीन्हें॥
संध्या जानि किये तब गवना। दोउ सेना आई निज भवना॥
अस अहमिति अर्जुन मन कीन्हें। कर्ण मारि जग में यश लीन्हें॥

महावीर रविसुत निरखि, कही कृष्ण यह बात।
अर्जुन सुनिये श्रवण दे, षटजन किये निपात॥

गदापर्व (दुर्योधन-वध)

दुर्योधन कह भीम सों, क्रोधवंत ह्वै बैन॥
गदायुद्ध हम तुम करहिं, सब मिल देखें नैन॥

गहि कै गदा दोउ भे ठाढ़े। क्रोध अनल उर अंतर बाढ़े॥
मंडल फिरहिं घात दोउ ताकहिं। कोउ कोउ कहं यतन न पावहिं॥
रोकत गदा गदा सों टारत। एकहि एक क्रोध करि मारत॥
गदा प्रहार शब्द भा कैसे। छूटत बज्र इंद्र कर जैसे॥
सरस निरखि कहि जात न काहू। पंडित गदा युद्ध भल बाहू॥

धावत गदा हाँक दे हाँकत। पद के भार मेदिनी काँपत ॥
कुरुपति भाषेउ भीम सँभारो। आज जानिहौ तेज हमारो ॥
कहेउ भीम सब जानत भाई। गाल मारि जनि बरहु बड़ाई ॥
मोते आज पर्यो है कामा। देखौ को जीतै संग्रामा ॥

दुर्योधन तब क्रोध करि, घालेउ घाव प्रचंड।
गदा रोकि संभारि कै, भीम महा बलवंड ॥

कोपि भीम तब गदा प्रहारा। महाबीर कुरुनाथ सँभारा ॥
दोऊ बीर जोर ते झपटत। महाबीर मन नेक न डरपत ॥
यहि विधि करत युद्ध की करणी। भूमिपाल डोलत है धरणी ॥
महामत्त तनु उरझ्यौ दोऊ। प्रलय युद्ध देखत सब कोऊ ॥
गदा गदा सों लागत जबहीं। निकरत अग्नि भभूका तबहीं ॥
गदा हाथ रण शोभा पावत। पत्त संहत पर्वत जनु धावत ॥
दोऊ जुरे युद्ध महँ कैसे। सतयुग मह बलि बाँधेउ जैसे ॥
चढ़े विमान देव गण देखत। अपने मन अचरज करि लेखत ॥
गौर श्याम दोउ सोहैं कैसे। कुंकुम अरु कज्जल गिरि कैसे ॥
कल बल करत भीम फिरि आवत। गदा पवन ते पच्छि उड़ावत ॥

अयुत नाग बल दुहुँन के, महाबीर परचंड।
मारत गदा जु कोप करि, ज्यों टूटत यमदंड ॥

लागत गदा दोउ के तन में। धमकत घाव शब्द जनु घन में ॥
चंचल चपल फिरत दोउ बाँके। घूमत मनहुँ कुम्हार के चाके ॥
दोउ बीर युद्ध मन लाये। तीरथ फिरि बलभद्रहि आये।
देखी तहां महारण धीरा। परंउ भीम दुर्योधन जोरा ॥
हलधर बिहँसि कही यह बाता। कुरुपति सहत गदा के घाता ॥
बल कछु अधिक भीम के तन में। हार जीत नहिं देखत मन में ॥
अजहुँ प्रीति करहु दुहु भाई। केहि कारण अब रचहु लराई ॥
करि के गदा ऊर्ध्व परिहारन। कोउ न सकहि काहु को मारन ॥
अजहूँ दोनहुँ प्रीति विचारहु। जो मानहु हित बचन हमारहु ॥
युद्ध गात दोऊ अरुझाने। हलधर बचन हृदय नहिं आने ॥
कहि बलभद्र कियो तब गवना। कुरुक्षेत्र परि रक्षक कवना ॥
कृष्ण भीम कहँ जंघ बताई। निरखि वृकोदर घात लगाई ॥

भीमसेन तब क्रोध करि मारेउ घात बचाइ।
दोउ जंघ भंगन भयेउ, परइ धरणि पर आय ॥

गिरि कुरुपति धरणी में ऐसे। काटत मूल परत द्रुम जैसे ॥
पूर्व वैर मन महँ सुधि आई। भीम सेन तब लात उठाई ॥
हा हा शब्द युधिष्ठिर कीन्हा। रहहु भीम कहिबे अस लीन्हा ॥
अष्टादश क्षोहिणी भुवारा। भनत गोविंद जानु सब सारा ॥
कृष्ण सहित भाखेउ सब राजा। चरण प्रहार करत केहि काजा ॥
करते चरण समेटन कीन्ह्यो। बैठ सम्हारि कहै तब लीन्ह्यो ॥
क्षत्री धर्म न भीम बिचारयो। गदा घाव जंघन पर मारयो ॥
कहेउ भीम दुर्योधन वीरहि। जा दिन हरी द्रौपदी चीरहि ॥
ता दिन मैं सब सों प्रण भाख्यो। तोरों जंघ प्रतिज्ञा राख्यो ॥
श्रीपति कहेउ कुरुपती राजहि। जब हम गये वसीठी काजहि ॥
ता दिन हमरो कहा न कीन्हा। कटुक बचन हमसों कहि दीन्हा ॥
सेना संपति सकल गँवायो। जेहि तृण कर गहि मोहिँ उठायो ॥

दुर्योधन कह कृष्ण सौं, मैं हौं जंतु समान।
हमैं लगावत दोष अब, तुम प्रेरक भगवान ॥

गोरेलाल

गोरेलाल (लाल कवि)

गोरेलाल उपनाम 'लाल' कवि ने अपने संबंध में कुछ भी नहीं कहा है। इनके कुल, निवासस्थान आदि के विषय में अभी तक जो कुछ सूचनाएँ मिल सकी हैं वह सब वाह्य प्रमाणों के आधार पर स्थित हैं। इस प्रकार की इनके जीवन से संबंध रखनेवाली सूचनाओं में सब से अधिक प्रामाणिक बीकानेर-निवासी भट्ट उत्तमलाल गोस्वामी से मिश्रबंधुओं को प्राप्त हुई है। यह महाशय गोरेलाल के प्रपौत्र के प्रपौत्र अर्थात् सातवें वंशधर हैं अतः कवि के संबंध में इनकी बातें माननीय हैं। इनके अनुसार गोरेलाल का जन्म सं० १७१५ के लगभग हुआ था। इनके पूर्वज आंध्र देश में राज महेंद्री 'जले के नृसिंह क्षेत्र धर्मपुरी में रहते थे। यह मुद्गल गोत्रीय भट्ट तैलंग ब्राह्मण थे। इनके कोई पूर्वज भट्ट काशीनाथ थे जिनकी एक कन्या महाप्रभु वल्लभाचार्य को ब्याही गई थी। भट्ट काशीनाथ के पुत्र जगन्नाथ हुए जिनके छै पुत्र थे और इनको बादशाह बहलोल लोधी ने छै गांव दिए थे। (प्रत्येक को एक-एक) कालांतर में ये छहो भाई इन गाँवों के नामों से ही प्रसिद्ध हुये, इनके असली नाम लोग भूल गए। इन गांवों के नाम गिट्टा, लंबुक, जोगिया, तिघरा, गिरधन तथा भरस थे। इनमें श्री गिट्टा के नागनाथ नाम के पुत्र हुये। इन्हीं नागनाथ की दसवीं पीढ़ी में गोरेलाल उपनाम 'लाल' कवि का जन्म हुआ। अभी तक इन गिट्टा आदि छै भाइयों के वंशधर 'छवैया' अर्थात् छ-भैया कहलाते हैं।

प्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् गंगाधर शास्त्री तैलंग के पुत्र कृष्ण शास्त्री के 'वल्लभ-दिग्विजय' में दिए हुए अपने परिचय से भी गोरेलाल के वंश विषयक उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

> बह्वृक् मौद्गल्य गोत्रे प्रथिततरयशा नागनाथान्वयेभूत्।
> बुंदेलाधीश पूज्यः कविकुलतिलको गौरिलालाख्य भट्टः॥
> शास्त्री गंगाधरस्तत्कुलजनिरभवत् तत्कुले शास्त्रि कृष्णः।
> तेनेदं लिख्यते श्री गुरुवर चरितं स्रग्धराणां मतेन॥

इस श्लोक की प्रथम दो पंक्तियों का सारांश यह है कि मुद्गल गोत्रोत्पन्न यशस्वी नागनाथ के वंश में कविकुल तिलक गोरेलाल भट्ट हुए जिन्हें बुंदेलखंड के अधीश्वर बड़ी पूज्य दृष्टि से देखते थे। यह भी प्रसिद्ध है कि सं० १५२५ में बुंदेलखंड की रानी दुर्गावती ने नागनाथ को दमोह के पास 'सकालि' नाम का कोई गाँव दिया था। तभी से ये तथा इनके वंशधर बुंदेलखंड में आये। इन्हीं नागनाथ के वंश में जैसा कि ऊपर के श्लोक में कहा गया है, गोरेलाल उत्पन्न

हुए। महाराज छत्रसाल ने लाल को बढ़ई, पठारा, अभानगंज, सगेरा और दगधा नाम के पाँच गाँव दिये थे और यह दगधा में रहने लगे। इनके वंशज आज भी वहाँ मिलते हैं।

इनकी मृत्यु कब हुई इसका कुछ ठीक पता नहीं है। छत्र-प्रकाश में सं० १७६४ तक की घटनाओं का वर्णन मिलता है; इसके पीछे ग्रंथ अपूर्ण जान पड़ता है, और अंतिम अंश पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रंथ यकायक यहीं समाप्त हो गया है। महाराज छत्रसाल का स्वर्गवास सं० १७९० में हुआ था। इससे एक यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सं० १७६४ या ६५ के आस पास गोरेलाल की मृत्यु हो गई होगी या कोई ऐसी बात हो गई होगी जिससे आगे लिखना उनके लिये असंभव हो गया हो। इन्होंने जो कुछ लिखा छत्रसाल ही के लिये लिखा और उनके विषय में भी यथासंभव सच्ची बातें ही कहीं। पद्माकर या मुरलीधर आदि की भाँति ये चापलूस कवियों में से न थे कि जिस आश्रयदाता के यहां कुछ अधिक मिलने की आशा हुई उसकी बिरुदावली बखानने लगे, और पहले आश्रयदाता से शत्रुता तक करने पर उद्यत हो गये। लाल कवि ने आदि से अंत तक छत्रसाल का साथ निबाहा और अन्य कवियों की भाँति झूठ मूठ की अतिशयोक्ति-पूर्ण अनुचित प्रशंसा करना इनका पेशा कभी नहीं रहा। इन्होंने अपने चरित्रनायक की त्रुटियों का भी उल्लेख किया है। एक बार इन्होंने छत्रसाल के रण भूमि से भागने तक का वृत्तांत लिखा है। इस लिये यथार्थवादिता की दृष्टि से इनका स्थान इस श्रेणी के अन्य कवियों से बहुत ऊँचा हो जाता है।

इनके रचे हुये १० ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—

लाल के ग्रंथ

(१) छत्र-प्रशस्ति, (२) छत्र-छाया, (३) छत्र कीर्ति, (४) छत्र-छंद, (५) छत्रसाल-शतक, (६) छत्र-हजारा (७) छत्रदंड, (८) छत्र-प्रकाश, (९) राजविनोद तथा (१०) विष्णु-विलास।

छत्रप्रकाश के अतिरिक्त 'विष्णुविलास' और 'राजविनोद' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। यह सभी ग्रंथ उन्होंने महाराज छत्रसाल के लिए ही बनाए थे। इनके ग्रंथों में से कुछ शृंगार और भक्ति अथवा शांतरसप्रधान भी हैं। राजविनोद में विविध छंदों में ब्रजवासी कृष्ण का वर्णन है और यह ग्रंथ उन्होंने छत्रसाल के मनोरंजन के लिए ही लिखा था। इस ग्रंथ का कुछ भाग नागरी प्रचारिणी सभा की प्रथम त्रैमासिक रिपोर्ट में छप चुका है। इनके दूसरे प्रसिद्ध ग्रंथ विष्णुविलास के संबंध में मिश्र बंधुओं का कहना है कि उसकी रचना बरवै छंदों में हुई है और उसमें नायिका भेद का वर्णन है और उसकी कविता भी साधारण है पर यह ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया है।

छत्र-प्रकाश

प्रस्तुत संग्रह में केवल छत्रप्रकाश से उद्धरण लिये गये हैं। इस ग्रंथ में छत्रसाल का संक्षिप्त जीवन-चरित तो है ही साथ ही बुँदेलखंड के इतिहास के संबंध में भी बहुत सी घटनाएँ वर्णित हैं, और छत्रसाल के मुख्य मुख्य पूर्वपुरुषों के विषय में भी कुछ सूचना दे दी गई है। इसलिए इस ग्रंथ की कविता को भली भाँति समझने के लिए बुँदेलखंड के इतिहास के संबंध में दो चार बातें जान लेना आवश्यक है।

बुँदेलखंड का इतिहास नियमित रूप से एक राजा वीरभद्र के समय से मिलता है। इनके पाँच पुत्र थे जिनमें पांचवें का नाम जगदास उपनाम 'पंचम' था। वीरभद्र का यह सब से प्रिय पुत्र था और इसीलिए राजा ने मरते समय आधा राज्य पंचम को और शेष आधा अन्य चारों पुत्रों में बराबर बराबर बांट दिया। सं० १२२७ में वीरभद्र के मरने पर अन्य पुत्रों ने ईर्ष्या-द्वेष के वशीभूत होकर पंचम से उसका राज्य छीन लिया जिससे बिगड़कर वह जंगल में जाकर देवी की बड़ी उग्र तपस्या करने लगा और यहाँ तक कि अंत में देवी के साक्षात् दर्शन न देने पर खिन्न हो उसने अपनी गर्दन भेंट कर देने के लिए तलवार उठा अपने ऊपर चलाने ही वाला था कि देवी ने प्रगट होकर उसका हाथ थांभ लिया और कहा—"जा तू राजा होगा"। पर तलवार गर्दन तक पहुँच चुकी थी, एक बूँद रक्त नीचे टपक ही पड़ा, और इसीसे इसके वंशधर 'वीर बुँदेला' और उनका प्रांत 'बुँदेलखंड' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वरदान के अनुसार पंचम ने अपना राज्य फिर से प्राप्त किया और उसे बहुत कुछ बढ़ाया। इसकी मृत्यु सं० १२८१ में हुई। इसके बाद इस वंश में कई प्रतापी राजा हुए जिनमें एक अर्जुन देव थे जो सं० १५०० में गद्दी पर बैठे थे। यही वही अर्जुन देव हैं जिनकी कविप्रिया में महाकवि केशव ने बड़ी प्रशंसा की है। इनके बाद सबसे प्रसिद्ध मधुकरसाहि हुए जो सं० १६२९ में गद्दी पर बैठे थे। महाकवि केशव इनके और इनके पुत्र इंद्रजीत के दरबार में बहुत दिन तक रहे और वहीं उन्होंने इनके एक वंशधर वीरसिंहदेव का वृत्तांत "वीरसिंहदेव-चरित" नामक ग्रंथ में लिखा। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर अकबर विद्यमान था। मधुकरसाहि के समय में अकबर ने बुँदेलखंड जीतने का कई बार प्रयत्न किया पर पूर्ण सफलता उसे एक बार भी नहीं मिली। मधुकरसाहि के पीछे उनके वंश का राज्य ओड़छे में चला। इन्हीं के पुत्र इंद्रजीत उपनाम 'धीरजनरिंद' हुए थे जो एक अच्छे कवि भी थे, और जिनका महाकवि केशव के साथ बहुत दिन तक सत्संग रहा।

मधुकरसाहि के पीछे उनके वंश का राज्य ओड़छे में चला, और इनके वंशधर वीरसिंह देव यहाँ के राजा हुए। महाकवि केशव ने इन्हीं की प्रशंसा में 'वीरसिंह देव चरित' नामक उपर्युक्त ग्रंथ की रचना की थी। इनकी मृत्यु के उपरांत इनके पुत्र जुझारसिंह सिंहासनारूढ़ हुए। इनके संबंध में कहा जाता है कि ये बड़े शक्की थे। इनके एक छोटे भाई का नाम हरदेवसिंह था जो बाद में 'हरदेओल बाबा'

के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक बार सं० १६८८ में जुझारसिंह बादशाह की आज्ञा से छोरागढ़ के युद्ध में सम्मिलित होने के लिये बुलाए गए थे और वह जाते समय राज्यभार हरदेवसिंह के ऊपर छोड़ गए थे। लौटने पर उन्हें अपनी रानी और हरदेवसिंह के बीच अनुचित संबंध का संदेह हुआ पर रानी हरदेवसिंह से जो प्रेम करती थी वह इसी नाते कि वह उसके पति के छोटे भाई थे। उस प्रेम में किसी प्रकार का स्वार्थ अथवा कपट न था, और रानी ने जुझारसिंह को इस बात का विश्वास दिलाने की भी चेष्टा की पर वह शक्की तो थे ही, उन्होंने अपना संदेह निवृत्त करने के लिये रानी के सतीत्व की परीक्षा करनी चाही और उससे कहा कि यदि तुम्हारे सतीत्व में अंतर नहीं पड़ा और तुम्हारा हरदेवसिंह से घृणित संबंध नहीं है तो तुम अपने हाथ से उसे विष दो। राजमहिषी ने ऐसा ही किया और दुःख से अभिभूत होकर स्वयं भी विषमान कर लिया। जुझार को अंत में अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई और सं० १६८९ में उन्होंने अघमर्षण यज्ञ से अपना पाप धो डालना चाहा। मुंशी हरनारायण नाम के एक इतिहास-लेखक का कहना है कि मृत्यु के पश्चात् हरदेवसिंह की आत्मा प्रगट होकर प्रायः लोगों को यह संवाद दे जाती थी कि जुझारसिंह ने स्वयं निस्संतान होने के कारण इसलिए मुझे विष दिलाया जिससे कि मैं उनका उत्तराधिकारी न हो सकूँ। शाहजहाँ ने यह सुनते ही घोषणापत्र निकाल कर जुझारसिंह को सिंहासन छोड़ने की और हरदेवसिंह की पवित्र आत्मा के प्रति सम्मानसूचक स्मृति चिन्ह बनवाने की आज्ञा दी। इस घोषणा को कार्यरूप में परिणत करवाने के निमित्त बाकी खाँ भेजा गया पर उसे सफलता नहीं मिली और उसे दिल्ली लौट जाना पड़ा। सं० १६९० में शाहजहाँ ने मुहम्मद शाह, वलीबहादुर खाँ, नौ शेर खाँ, और अब्दुल्ला खाँ की अधीनता में एक प्रबल सैन्य भेजी पर इन्हें भी नाम ही मात्र की सफलता मिली और इन लोगों को एक संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े जिसके अनुसार पहाड़सिंह ओड़छा के राजा घोषित हुए। मुग़लों को बार बार असफल-प्रयत्न करने में वीरसिंह देव के छोटे भाई उदयाजीत के प्रपौत्र चंपतराय का प्रबल हाथ था। वे प्रत्येक बार मुसलमानों को किसी न किसी प्रकार भारी हानि पहुँचा देते थे। अंत में सं० १६९० वाले युद्ध में ये एक क़िले में घिर गये पर अपने बुद्धिबल और वीरता से वहाँ से साफ निकल गए और शिवा जी की भाँति ये भी पर्वतीय युद्ध-कला में निपुण होने के कारण समय समय पर शाही फ़ौज को बड़ी कठिनता में डाल दिया करते थे। अंत में एक बार मुसलमानों के साथ युद्ध करते हुए अपने देश वालों को अपने विरुद्ध पाकर उन्होंने आत्महत्या कर ली।

इन्हीं चंपतराय के पुत्र छत्रसाल हुए जो इस ग्रंथ (छत्र प्रकाश) के चरित्र-नायक हैं और इन्हीं के कहने से लाल कवि ने छत्रप्रकाश की रचना की थी। इस ग्रंथ में सं० १७६४ तक छत्रसाल की जीवनी का वर्णन किया गया है, पर उसके पीछे ग्रंथ अपूर्ण जान पड़ता है। उनके जीवन संबंधी २७-२८ साल का हाल

इसमें नहीं मिलता। आरंभ के दो अध्यायों में बुँदेल और बुँदेल-वंश का संक्षिप्त इतिहास है। इसके बाद तीसरे और चौथे में छत्रसाल के पूर्व जन्म और बाल-चरित्र का वर्णन है। गोरेलाल ने छत्रसाल का जन्म सं० १७०६ कहा है जो कि बुँदेलखंड गजेटियर से मिलता है।

गोरेलाल ने बुँदेला के पूर्वजों में हरिब्रह्म से लेकर छत्रसाल तक सब के नाम लिखे हैं। इनके अनुसार बुँदेला क्षत्री महाराज रामचंद्र के पुत्र कुश के वंश में हैं, और उनकी उपाधियाँ 'काशीश्वर' और 'गहिवार' हैं। ओड़छे के प्रसिद्ध महाराज मधुकरसाहि की भी चर्चा इन्होंने की है। इसके उपरांत चंपतिराय और छत्रसाल के विजयों के वर्णन विस्तार और बड़ी सजीवता के साथ किए गए हैं। इन्होंने अपने ग्रंथ में दिखला दिया है कि तत्कालीन भारतवर्ष के इतिहास पर चंपतिराय का कितना प्रभाव पड़ा। चंपतिराय चार भाई थे और चारों के संबंध में इन्होंने कुछ न कुछ कहा है। चंपतिराय के बाद छत्रसाल ने भी अपने पिता के दिखाए हुए पथ का अवलंबन करते हुए मुसलमानों से विरोध करने और बुँदेल-खंड से उनकी हस्ती उठा देने पर कमर कसी। पहले तो उन्होंने दो एक छोटी लड़ाइयाँ लड़कर अपना बल बढ़ाया और फिर क्रमशः दागी, रणदूलह, रूमी, तहौवर खाँ, शेख़ अनवर सदरुद्दीन, अब्दुलसमद, शेर अफ़गन खाँ और शाहअली खाँ को नीचा दिखाया। ये सब शाही फ़ौज के अफसर थे और इन सब के साथ प्रबल मुग़लसेना थी, यहाँ तक कि अकेले रणदूलह के साथ ३० हजार सैनिक थे। इन सभों के युद्ध का बड़ा सजीव और रोचक चित्र छत्रप्रकाश में खींचा गया है और इनमें से समरुद्दीन और अब्दुल समद के युद्ध का वर्णन बड़ा ही विशद है। शेर अफ़ग़ान नामक एक सेनापति के सामने छत्रसाल को भागना पड़ा था और इसका वर्णन लाल ने कर दिया है। इससे कवि की सत्य प्रियता का पता चलता है और यह भी मालूम हो जाता है कि इनको इस बात की अधिक चिंता न थी कि चरित-नायक के विरुद्ध कोई बात लिखने से इनकी जीविका में बाधा पड़ेगी। सं० १७६३ में औरंगजेब की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र बहादुर शाह ने छत्रसाल को मित्रभाव से बुलाकर उनसे लोहरगढ़ जीत देने को कहा और उन्होंने ऐसा ही किया भी। इस पर बादशाह ने इन्हें दो करोड़ रुपये वार्षिक आय के राज्य का (जो इनके अधिकार में था) स्वतंत्र राजा मान लिया। बस इसी विषय के वर्णन के बाद छत्रप्रकाश (२६ वें अध्याय में) समाप्त हो गया है। इसके कुछ ही पहिले (२४ वें अध्याय में) किसी प्रसंग से कृष्ण-कथा का १० पृष्ठ में उत्तम वर्णन किया गया है।

लाल ने केवल दोहे चौपाइयों में ही कविता की है, और प्रायः डेढ़ सौ पृष्ठों के इस ग्रंथ में किसी भी अन्य छंद का प्रयोग नहीं किया गया है। दोहे चौपाई में काव्य रचना करने में तुलसी और जायसी के बाद इन्हीं का स्थान हैं।

गोरेलाल की कविता

भाषा इनकी मिश्रित है। दोहा चौपाई में रचना करनेवाले पहले के सभी कवियों ने एक मत से अवधी भाषा का ही प्रयोग किया है पर गोरेलाल की भाषा मिश्रित है, इसमें ब्रजभाषा, बुँदेलखंडी और अवधी तीनों का अपूर्व सम्मिश्रण देख पड़ता है। इनकी भाषा में प्रसाद गुण का प्राधान्य है। इनके भावों या शब्दों में दुरूहता कहीं भी नहीं आने पाई है। हिंदी का साधारण ज्ञान रखने वालों को भी इनकी कविता समझने में कुछ विशेष कठिनाई न प्रतीत होगी। इसका यह तात्पर्य न लगाना चाहिए कि इनकी कविता में अर्थगौरव या भावगांभीर्य नहीं है। बात यह है कि इन्होंने अपनी रचना में एक विशेष सीमा तक सरलता और प्रसाद गुण को अक्षुण्ण रखते हुए भी गंभीर भावों और अर्थों का समावेश करने की असफल चेष्टा नहीं की है। उदाहरण के लिए दो एक छंद देखिये:—

सुनि बाइस उमराइ उमंडे। थाने छोड़ ओड़छे मंडे।
बिरम्यौ चंपतिराइ बुँदेला। फौजन पर कीन्हों बगमेला॥
जबै कमान कुंडलित कीहीं। कठिन मार तीरनि की दीन्हीं।
तीछन तीर बज्ज से छूटे। बखतर पोस पान से फूटे॥

इत्यादि

इन चौपाइयों में संभवतः कोई भी शब्द ऐसा नहीं है जिसका अर्थ देखते ही समझ में न आ जाय पर साथ ही इसके उक्ति में अनूठापन भी है। अब 'बगमेला' शब्द को ही लीजिये। 'मेल' देना बुँदेलखंडी में छोड़ देने, डाल देने, या मिला देने को कहते हैं और 'बाग़' कहते हैं लगाम को। इस तरह फ़ौजों पर बगमेला किया का अर्थ यह हुआ कि घोड़ों को सरपट छोड़ कर शाही फ़ौज पर भीषण आक्रमण किया। क्या इस उक्ति में चमत्कार नहीं है? इसी प्रकार अंतिम पंक्ति में—'बखतर पोस पान से फूटे' में कितनी सुखद भावना है। महोबे के पुराने पान में किसी नुकीली चीज से खोंचा मारने पर आप देखेंगे कि उसके रेशे रेशे छितरा जायँगे। उसी तरह यहां कवि का तात्पर्य है कि बज्र की भांति कठोर बाणों के आघात से बख्तर-पोशों के बख्तर जोड़ जोड़ से अलग हो जाते थे। इससे बाणों के वेग से छूटने और उनके बहुत तीक्ष्ण होने की ध्वनि भी निकलती है। अलंकारों के फेर में गोरे लाल कभी नहीं पड़ते थे। अर्थालंकारों में कभी कभी उपमा उत्प्रेक्षा या रूपक आदि के उदाहरण मिल जाते हैं पर उन्हें देखने से यह भी ज्ञात हो जाता है कि कवि ने उनको लाने के लिए जान बूझ कर कोई चेष्टा नहीं की थी। शब्दालंकारों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। कहीं कहीं अनुप्रासों की छटा देखने में आ जाती है पर ऐसा जान पड़ता है कि वे स्वाभाविक रूप से ही आ गए हैं, कवि ने इनको लाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया और पद्माकर की भाँति अनुप्रास या नादसाम्य या शाब्दिक

इंद्रजाल को कविता का प्रधान सौंदर्य सा मान कर भाव या अर्थ की अवलेहना करने की बात तो कदाचित उन्होंने स्वप्न में भी न सोची होगी।

इनका ग्रंथ छत्रप्रकाश वीररसप्रधान है, और इस रस के लेखक अन्य कवियों में यह प्रधान प्रवृति साधारण रूप से देखने में आती है कि वे इसके उद्रेक करने में प्राय: नाद से अधिक सहायता लेते हैं। टकार, डकार, रेफ आदि लोमहर्षण वर्णों से शिलष्ट संयुक्ताक्षर पूर्ण शब्दों से युक्त वाक्यों के प्रयोग से ही वीर रस का उद्रेक संभव है ऐसा उनका विश्वास सा प्रतीत होता है। पर लाल इस विचार के कवियों में अपवाद स्वरूप कहे जा सकते हैं। इन्होंने इस प्रकार के शब्दों से कहीं भी सहायता नहीं ली है। दूसरे शब्दों में भड़ाभड़, धड़ाधड़, 'विघट्ट घट्ट सुघट्ट' ऐसे बीहड़ शब्दों से वीर, भयानक, या रौद्र रस का संचार करने की कुचेष्टा इन्होंने कभी नहीं की। पर तब भी इन रसों का समावेश इनकी कविता में हुआ ही है, और सो भी बहुतों से उत्तम। बस यही गोरे लाल की कला की विशेषता है।

वर्णन की सजीवता की दृष्टि से भी लाल कवि एक निराला स्थान रखते हैं। इसका मुख्य कारण यह तो है ही कि यह युद्धस्थल में स्वयं उपस्थित रहते थे क्योंकि यह कवि होने के साथ ही साथ योद्धा भी थे और इसलिए वर्णन कपोल-कल्पित नहीं बरन् आँखों देखी घटनाओं के होते थे, फिर उनमें सजीवता क्यों न आवे ? इसके अतिरिक्त इनकी कविता वाह्याडंबर और कृत्रिमता से शून्य रहती है और इसी से स्वाभाविकता का परिमाण इनकी कविता में बहुत अधिक होता है। आधुनिक समालोचक को कविता में वाह्याडंबरों, शब्दालंकारों तथा ऐसी ही अन्य बनावटीपन के गुणों से अरुचि या चिढ़ सी हो गई है और सभी बातों में उसे स्वाभाविकता और सरलता से नैसर्गिक प्रेम सा हो गया है। ऐसा होना उचित भी है। इस दृष्टि से गोरे लाल की कविता आधुनिक समालोचना की कसौटी पर बहुत कुछ खरी उतरती है, कम से कम इसी श्रेणी के अन्य ग्रंथों से कहीं अधिक खरी।

लाल की विशेषता

लाल कवि ने एक विशेष प्रकार की काव्य-कुशलता इस विषय में दिखाई है कि आरंभ में उन्होंने स्तुतिसूचक रचना के साथ ही साथ मुख्य विषय को बड़ी सुंदरता से मिला दिया है। उदाहरण देखिए—

भूमिनाह को बंस बखानौ। सबही आदि भान को जानौ ॥
बड़ौ बंस बरनौ जौ चाहौ। कैसे सुमति सिंधु अवगाहौ ॥
चहूँ ओर चंचल चितु धावै। विमल बुद्धि ठहरान न पावै ॥
कविता रीति कठिन रे भाई। बाहिन समुद पहिर नहिं जाई ॥

इत्यादि

स्तुति के संबंध की कविता इन्होंने इस ढंग से रखी है कि स्तुति के साथ वंशावली का वर्णन भी होता जाता है।

अपने ग्रंथ के चरितनायक के गुणों के वर्णन करने का ढंग भी इनका अनोखा है। ये पहले सर्वमान्य गुणों को सिद्धांत रूप से वर्णन कर फिर नायक के गुणों या कर्म्मों को उसी के उदाहरणरूप में दिखला देते हैं जैसे—

दान दया घमसान मैं, जाके हिये उछाह।
सोई वीर बखानिये, ज्यों छत्ता छितिनाह॥

इन बातों के सिवा इनकी एक विशेषता और है, और वह है उद्दंडता या निरंकुशता। ये कभी कभी बड़े दून की कह जाते हैं। इस विषय में कदाचित ही कोई हिंदी का कवि इनसे बढ़ा हो, उदाहरण देखिए—

काटि कटक किरावन दल, बाँटि जंबुकनि देहु।
ठाटि जुद्ध यहि रीति सों, बाँटि धरनि धरिलेहु॥

× × ×

आठ पातसाही झकझोरै, सूबनि बकरि दंड लै छोरै।
ऐंड़ एक सिवराज निबाही, करै आपने चितकी चाही॥

इत्यादि

सारांश यह कि लाल ने अपनी कविता बहुत सरल, सुंदर सुरुचिपूर्ण रची, वाह्याडंबर के लिये उनके हृदय में रत्ती भर भी स्थान नहीं था, युद्ध के वर्णन इनके बड़े ही सजीव और ज्वलंत हुए, और इन्हीं गुणों के कारण कथाप्रासंगिक वीरकाव्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा हो जाता है।

'लाल' कवि रचित

छत्र-प्रकाश (पाँचवाँ अध्याय)

छंद

एक जीभ हौं कहा गनाऊँ । कछू कथा संक्षेप सुनाऊँ ॥
एक समय दिल्लीपति कोप्यौ । पग न जुझार सिंह नै रोप्यौ ॥
अरब खरब लौं हुते खजाने । सो न जानियै कहाँ बिलाने ॥
साठि हजार सुभट दल फूट्यौ । कोऊ कहूँ न मारिउ छूट्यो ॥
साहि जहान देश सब लीनौ । कियौ बुँदेलखंड बलहीनौ ॥

दोहा

हीनौ देखि बुँदेल बल, दीन प्रजन के काज ।
चंपत राइ सुजान मिलि, कियौ मंत्र तिहि राज ॥

छंद

कछू काल गति जानि न जाई । सब तैं कठिन कालगति गाई ॥
रीती भरी भरे ढरकावै । जो मनु करै तो फेर भरावै ॥
कीजै कहा नृपति नहिं बूझै । काल ख्याल काहू नाहिं सूझै ॥
साठि हजार सुभट लै भागे । काहू के न जगाये जागे ॥
फिरे मुल्क में मुगल गदेले । सिंहन की सुथरी गज खेले ॥
जाको बैरी करै बचाई । सो काहे कौ जनम्यौ भाई ॥
अब उठि कै यह मंत्र बिचारो । मुलकु उजार लक्ष संहारो ॥
शान गनंता पौरुष हारे । सो जीते जो पहिले मारे ॥

दोहा

यहै मंत्र ठहराइ कै, उमड़े दोऊ बीर ॥
दीनों मुलकु उजारि कै, ऐसे अति रनधीर ॥

छंद

लाये मुलक उठाये थाने । सुनि सुनि साहि बहुत मुरझाने ॥
नौसेरी सूबा पहिरायौ । पीठल गौर सहाइक आयौ ॥
सुनि बाइस उमराइ उमंडे । थाने छोड़ ओंछड़े मंडे ॥
बिरझ्यौ[1] चंपतिराइ बुंदेला । फौजन पर कीन्हौ बगमेला[2] ॥

---

[1] बिरझाना ; बिगड़ खड़ा हुआ । [2] जोर का आक्रमण ।

जबै कमान कुंडलित कीन्ही । कठिन मार तीरन की दीन्ही ॥
तीछन तीर बज्ज से छूटे । बख्तरपोस पान से फूटें ॥
फौज फारि चंपति रन जीत्यौ । अरिपर प्रलय काल सम बीत्यौ ॥
मोर गौर की फौज हराई । मुगल सँहारि करी मन भाई ॥

दोहा

मारयौ ढिल सहिबाजि खां , दियौ ओंड़छौ[१] बारि[२] ।
फते फतेखां सो लई , बाकी खान संहारि ॥

छंद

मारि लूट सब फौज हराई । सूबा दिल में दहसत खाई ॥
चहुँ ओर तैं सूबा घेरौ । दिसनि अलात चक्र सौ फेरौ ॥
जरी सिरौंज[३] भेलसा[४] भाग्यौ । धर[५] उज्जेन धरधरा[६] लाग्यौ ॥
ह्यां तै धमकि[७] धमौनी[८] मारी । गौपाचल[९] में खलभल पारी ।
सकल मुलक नहिं जात गनाये । चामिल[१०] तै रेवा लौं लाये ॥
पजरे[११] सहर साहि के बाँके । धूम धूम में दिन कर ढाँके ॥
सब उमराइन चौथ चुकाई । ओड़ै[१२] कौ चंपत की धाई[१३] ॥
लिखी खबर बाकिन ठिठकाई[१४] । पातशाह कौ बाँच सुनाई ॥

दोहा

चंपति के परताप तै , पानिप गयौ ससाइ ।
पौसेरी भरि रहि गयौ , नौसेरी उमराइ ॥

छंद

सुनत साहि फिर भेजी फौजें । उमड़ी दरिया कैसी मौजें[१५] ॥
खान जहाँ सूबा चढ़ि आयौ । त्योंही सैदमहम्मद[१६] धायौ ॥
बली बहादुरखान हँकायौ । अरु अब्दुल्लहखाँ पग धायौ ॥
और संग उमराइ घनेरे । आये उमड़ि काल के पेरे ॥

---

[१] ओड़छा नगर । [२] जला दिया । [3] सिरौंज मध्यभारत का एक नगर है । [४] एक नगर का नाम । [५] वर्तमान धार अथवा धारा नगरी । [६] कँपकँपी लगना, थर्राना । [७] धावा करके । [८] शुद्ध नाम धमौन है यह नगर सागर के निकट मध्य भारत में है । [९] गोपाचल-ग्वालियर का प्राचीन नाम है । [१०] चम्बल नदी । [११] निकट के समीपस्थ । [१२] सम्हालना । [13] धाईधावा, प्रहार । [१४] ठीक ठीक । [१५] तरंगें, लहरें । [१६] सैयद मुहम्मद ।

डंका आइ देस में कीनो । मुग़ल पठान जुद्ध रस भीनो ॥
छाइ छाइ रविमंडल लीन्हौ । नौसेरीखां कौं बल दीन्हौं[1] ।
बल कौं पाइ मुग़ल दल गाजे । पिले बजाइ जुद्ध के बाजे ॥
बड़ी फौज लखि चंपति फूले । श्रीपति सगुन भये अनुकूले ॥

दोहा

सगुन भये अनुकूल सब , फूले चंपति राइ ।
अति अद्भुत बिक्रम रच्यो , कासों बरनौ जाइ ।

छंद

कबहूँ प्रगटि जुद्ध में हांकै । मुगलन मारि पुहुमि तल ढाकै ॥
बाननि बरषि गायंदनि फोरे । तुरकनि तमकि तेग तर तोरे ॥
कबहूँ जुरै फौज सौं आछै । लेइ लगाइ चालु दै पाछै ॥
बांके ठौर ठौर रन मंडे । हाहा[2] करे डाडु लै छंडे ॥
कबहूँ उमड़ि अचानक आवै । घन से उमड़ि लोह बरषावै ॥
कबहूँ हाँकि हरौलनि[3] कूटै । कबहूँ चाँपि चदालनि लूटै ॥
कबहूँ देस दौरि कैं लावै । रसद कहूँ की कढ़न न पावै ॥
चौकी कहै कहाँ है जैहौ । जित देखौं तित चंपति है हौ ॥

दोहा

चौंकि चौंकि चौकी उठै , दौकि दौकि उमराइ ॥
फाके लसकर में परे , थाके सबै उपाइ ॥

छंद

जब उपाइ सूबनि के थाके । सुनि सुनि साहि सबनि कौं ताके ।
अब कीजै कैसो मनसूबा । हैं हैरान सीगरे सूबा ॥
तब मंत्रिन मिलि मंत्र विचार्यौ । चंपति उर नहिं ये सब हार्यौ ॥
जो अनेक जुद्धन कौं जीतै । सौ फल पावै जो चित चीतै ॥
तासौं भूल बिरोध न कीजै । जो कीजै तौ तन धन छीजै ॥
चंपति कै चित की हम जानैं । औरन बैठ न पावै थानै ॥
राज ओड़छे कौ सुनि लीजै । प्रबल पहारसिंह को दीजै ॥

दोहा

पायौ राज प्रहार नृप , चली चाह सब ठाइ ।
गई भूमि भुजदंड बल , फेरी चंपतिराइ ॥

---

[1] बल दीन्हौं = सहायता पहुँचाई [2] हाहा करना — बिनती करना [3] हरौल — फार्सी हरावल = सेना का अग्रभाग ।

छंद

गई भूमि चंपति फिरि फेरी। मेटी फिकिर दाहिनी डेरी ॥
नगर ओंड़छे बजी बधाई। भई देस के मन की भाई ॥
मैड[१] बुंदेलखंड की राखी। रही मैड अपनी अभिलाषी ॥
नृपति पहारसिंह सुख पायौ। चंपतिराय मिलनि कौ आयौ ॥
तब नृप कलस पाँवड़े कीनै। आदर करि आगैसर लीनै ॥
भुजा पसारि मिले छबि छाये। उमगि अंगननि[२] गंडल गाये ॥
मुकताहलन अतुल भुज पूजे। चंपति के सबही जस कूजे ॥
धन चंपति फिरि भूमि बहोरी। भुजन पातसाही झकझोरी ॥

दोहा

प्रलय पयोधि उमंड में, ज्यौं गोकुल जदुराइ।
त्यौं बूड़त बुंदेल कुल, राख्यौ चंपतिराइ ॥

छंद

राज पहारसिंह को राख्यौ। उन उर दोष धरयौ गुन नाख्यौ[3] ॥
सब जग चंपत के जस गावै। सुनि सुनि अनख[४] भूप उर आवै ॥
बढ़ी ईरषा उर में ऐसी। कथा भीम दुर्योधन कैसी ॥
उर में छई[५] कपट कुटलाई। करन लगे अपनी मन भाई ॥
नृप मन में यह मंत्र बिचारयौ। इन चंपति अरि कौ दल झारयौ ॥
इनकौ मन तबही ते बाढ्यौ। त्यौंही सुजसु जगत मुख काढ्यौ ॥
अब जौ लौं इनके जस फैले। तब लौं बदन हमारे मैले ॥
अरु जौ कहूँ फिसाद उठावै। तौ हम पै दिल्लीस रुठावै ॥

दोहा

तातैं जौ चढ़ि मारियौ, तौ अपजसु बिस्तारु ॥
न्यौति गुपित[६] कछु[७] दीजियै, यहै मंत्र है सारु ॥

छंद

सार मंत्र ऐसौ ठहरायौ। पाप पहारसिंह उर आयो ॥
बिसर गई जो करो निकाई। उगल्यौ गरल दूध की थाई[८] ॥
एक समय न्यौते सब भाई। आदर सों ज्यौंनार बनाई ॥
उमग भरे सब बंधु बुलाये। चंपतिराय सहित सब आये ॥
जथा उचित हित सौं बैठारे। परसन लगे बिसद पनवारे[९] ॥

---

[१] मैड़ = प्रतिष्ठा बात, [२] अंगननि = स्त्रियों ने। [3] नाख्यौ = नाश्यौ, मेंट दिया [४] अनख = डाह 'ईर्षा' [५] छई = फैली [६] गुपति = गुप्त रूप से [७] कछु दीजिये = कोई विष खिला देना चाहिये [८] थाई = ठौर बदले [९] पनवारे = पत्तलें

तहाँ भूप जे कुल के माने । ते हित में काहू नहिं जाने ॥
पनबारी चंपति को आनौ । देखि सुवा सारो[1] किररानौ[2] ॥
लोचन मूँदि चकोर डेराने । जानि गये जे चतुर सयाने ॥

दोहा

जानन हारे जानियौ, भोजन के आरंभ।
भिंम बुंदेला कौं भयौ, प्रगट भूप कौ दंभ ॥

छद

भिंम दंभ भूपति को जान्यौ । अपनौ प्रान त्याग उर आन्यौ ॥
चंपति कौ पनवारौ लीनौं । अपनौ बदल चंपतिह दीनौं ॥
भोजन करि डेरन को आये । गुपति मंत्र काहू न जनाये ॥
लगी भिंम कौं अतुल दिनाई[3] । तुरत ही मीच समै बिन आई ॥
भिंम लोक आनँद में पायौ । बंधु हेतु निज प्रान गँवायौ ॥
गुपित हती नृप की कुटिलाई । प्रगट भिंम की मीच बताई ॥
कोऊ करौ किती चतुराई । पाप रीत नहिं छिपै छिपाई ॥
जो विधि रची होत है सोई । जस अपजसै लेहु किनि कोई ॥

दोहा

यह उपाइ निरफल भयौ, नृप पहिराई[4] चोर ॥
चटक चपट पट में चढै, दयै बीर पर बोर ॥

छंद

नृपति पहार चोर पहिराये । चंपति के मारन कौं आए ॥
जबही रैन अँधेरी आई । चले करन तसकर मन भाई ॥
स्याम रंग कुलही[5] सिर दीन्हे । स्याम रंग कछनी कछ लीन्हे ॥
बाढ़ि धरै बगुदा[6] कटि बाँधे । स्याम कमान स्याम सर साँधे ॥
होत न आहट मौ पग धारे । बिन घंटन ज्यौं गज मतवारे ॥
स्याम[7] रंग तन मांह समाने । चौकीदारन जान न जाने ॥
चोर पैठि महलन में आये । तहां ब्यौंत हैं बने बनाये ॥
और भौन में दीपक दीन्हौं । निज घर को चंपति घर कीन्हौ[8] ॥

दोहा

और दीप परगास में, लख्यौ छांह तें चोर।
तानि कनपटी में हन्यौ, कढ्यौ बान उहि ओर ॥

---

[1] सारो = मैना [2] किररानो = चिड़चिड़ाने लगा, किरकराने लगा । [3] विष (बुंदेलखंडी शब्द) । [4] पहिराई = पहरा देने वाला [5] कुलही = टोपी [6] बगुदा (बगुरदा) एक प्रकार का शस्त्र है जो पेशक़ब्ज़ की भाँति बना होता है । [7] स्यामरंग तन मांह समाने, अर्थात् काले वस्त्रों में छिपे हुए [8] घर कीन्हौं = बुझा दिया

छंद

गिर्‌यो चोर चंपति को मार्‌यौ । औरनि लियो उठाइ निहार्‌यौ ॥
चले चोर सब लोग जगाये । सोरसार करि दूर भगाये ॥
सदा प्रबुद्ध बुद्ध है जाकी । तासौं कैसे चलै कजाकी[1] ॥
यह सुनिकै चंपति की माता । दानविधान ज्ञान गुन ज्ञाता ॥
निकट आपने पुत्र बुलाये । सुखद मंत्र के बचन सुनाये ॥
तुम कीन्ही नृप को हित ऐडे । अब नृप पर्‌यौ तुम्हारे पैंडे[2] ॥
तातें अब यह मंत्र विचारो । दिल्लीपति मिलबो अखत्यारो ॥
मिलै दिलीस बहुत सुख पैहै । मन मान्यौ मनसब[3] कर दैहै ॥

दोहा

ऐसे मंत्र विचारिकै , पठ्यौ दिली उकील[4] ।
सुनत साहि उमग्यौ हियो , कब देखौं वह डील[5] ॥

छंद

सुनत साहि चंपति चित चाहे । देखन के उर लगे उमाहे ॥
पहुँच्यौ चंपतिराइ बुँदेला । मानी साहि धन्य वह बेला ॥
दै मन सब खंधार पठाये । दारा की ताबीन लगाये ॥
गढ़ खंधार[6] जाइ कै घेर्‌यौ । मुलकिन हुकुम साहिकौ फेर्‌यौ ॥
जब उमराइ घेरि गढ़ लागे । चंपति राइ युद्ध रस पागे ॥
गढ़ के निकट मोरचा[7] रोपे । सब उमराइन के जस लोपे ॥
ढिकल करी[8] सबतें अधिकाई । ओड़िन[9] गुरु गोलिन की धाई ॥
डाले हलनि हलाइ गढ़ोई[10] । अरि के हिय की हिम्मत खोई ॥

दोहा

दारा गढ़ खंदार की , पाई फतै अचूक ।
चंपति की हिम्मत लखे , उठी हिये में हूक ॥

छंद

चंपति की हिम्मत उर आनै । रीझ ढौर दारा अनखानै[11] ॥
फते पाइ दिल्ली फिरि आये । मुजरा करिकै साहि मिलाये ॥

---

[1] कजाकी—शुद्ध कज्ज़ाकी है=कपट, छल चालाकी [2] पैंडे परना पीछे पड़ना [3] मनसब-पद, अधिकार [4] उकील—इसका शुद्ध रूप वकील है – दूत [5] डील=महानुभाव=प्रतिष्ठित पुरुष । [6] खंधार=शुद्ध शब्द कंदहार है [7] मोरचा रोपना=सैन्य भाग को आक्रमण कराने के लिये टिकाना [8] ढकील करी=प्रचंड रूप से धावा करना [9] ओड़ी-सहन की [10] गढ़ोई=गढ़ के लोग [11] अनखानै=क्रोधित हुए ।

सिंह पहार अनषू उर आनै। ठान प्रपंचनि के उर ठानै॥
चारी करै आप चहुँ फेरा। खोज[1] डारि चंपति के डेरा॥
खोज पाइ जग इन्हैं लगावै। निरनौ[2] देत अनुष उर आवै॥
यहि बिधि डौर भेद के डारै। चतुरन हूँ नहिँ परत निहारै॥
कपट प्रपंच जो है करि आवै। झूठि ढौरि ते सांच बतावै॥
लिखै चितेर्‌यौ[3] ज्यों जल बीची। सम कागद में ऊंची नीची॥

दोहा

दुहू ओर अंतर पर्‌यौ, क्रम ही क्रम यह रीति।
हियै अनषु[4] उनकै बढ्यौ, इनके धरी प्रतीति॥

छंद

दुहूँ ओर अंतर जब जान्यौ। पिसुन[5]प्रवेस तबै उर आन्यौ॥
भूप कह्यौ दारा सौं ऐसे। सुनौ भाग चंपति को जैसे॥
तीन लाख की कौंच[6] सुहाई। दई साहि इनकौ मन भाई॥
हाल जमा नौ लाख गनाई। बिना तफावत अबलौं खाई॥
तातैं कौंच हमैं जौ दीजै। तौ नौ लाख रूपैया लीजै॥
यह सुनि कै दारा सुख पायौ। पहिलौ अनषु हिये चढ़ि आयौ॥
जहाँ न गुन की बूझ बड़ाई। चुगली सुनै चित्त दै साँई॥
रीझ ठौर प्रभु खीज जनावै। तहाँ कौन गुन गुनी चलावै॥

दोहा

रीझ फूलि खंडन करै, डारि खीझ कै डौर।
ऐसो स्वामी सेइये, ताते दुःख न और॥

छंद

दारा साहि लोभ उर आन्यौ। सेवा को सिगरो फल मान्यौ॥
चंपति को यह बात सुनाई। तू जागीर तीगुनी पाई॥
कौंच पहारसिंह मन भाई। देता हौं मेरे मन आई॥
तीन हुकुम दारा जो बोले। चंपतिराइ बचन त्यौं खोले॥
कौंच जाइ चंडालनि दीजै। वृथा हमारो छोर न छीजै॥
यह सुनि कै दारा अनखान्यौ। अरुन रंग आनन में आन्यौ॥
चंपतिराइ समर उर ठान्यौ। दिग्गज से दोऊ ऐड़ान्यौ[7]॥
दिगपालन को दहसत बाढ़ी। मजलिस रही चित्र ज्यौं काढ़ी॥

---

[1]खोज = चिन्ह [2]निरनौ = समाधान [3]चितेरयौ = चित्रकार। [4]अनषु = झुंझलाहट
[5]पिशुन = छली चुगुलखोर [6]एक नगर का नाम [7]ऐडान्यौ = ऐंठे

दोहा

दिगपालन दहसत बढ़ी, कठिन देखि वह काल।
तुरत आनि आड़ाभयौ[1], हाड़ा श्री छत्रसाल ॥

छंद

हाड़ा चंपति के ढिग आयौ। दारा कौ न भयो मन भायौ ॥
दारा अंदर को पग धारे। चंपति के इत बजे नगारे ॥
डंका प्रगट बिसर[2] के बाजे। चंपति राइ देश में गाजे ॥
छोड़ि पातसाहन की सेवा। कियो अंलकृत आइ महेवा ॥
पुत्र कलत्र मित्र सब भेटे। दिल के दुःख सबन के मेटे ॥
चहूं चक्र फौजैं फरमाई। अरि की बदन जोति मैलाई ॥
धनिकनि गढ़ि धरि रहे लुकाई। सूबन सौं हठि चौथ चुकाई ॥
दै हयवृन्द कबिन्दन गाजै। निर्मल सुजस जगत छवि छाजै ॥

दोहा

फैले चंपतिराई के, जग में सुजस बिलंद।
उदै भये तिहुँ लोक जनु, कैयक कोटिन चंद ॥

छंद

तिहूँ लोक चंपति जसु जाग्यौ। सुनि सुनि को न हिये अनुराग्यौ ॥
नृपति पहार करी जे घातैं। ते प्रगटी कहिबे कौ बातैं ॥
जग में करो जे न कृतु मानै। नीकी करी लटी[3] उर आनै ॥
तिनके थल जे बनै बनाये। नृपति पहारसिंह ते पाये ॥
सदा न जग में जीवै कोई। जस अपजस कहिबे कौ होई ॥
जग जबतै अपजस जस छावै। क्रम तै अध ऊरधि गति पावै ॥
खोदे कुआ पधारे खालै[4]। महल उठावै ऊचै चालै ॥
इहि बिधि करमन की गति गाई। वेद पुरानन सुनी सुनाई ॥

दोहा

जैसी मति उपजै हिये, तैसे मनु ठहराइ।
होनहार जैसी कछू, तैसी मिले सहाइ ॥

---

[1] आड़ा होना = बीच बचाव करना [2] बिसर = कूच [3] लटी = खोटी बुरी [4] खाले = नीचे की ओर।

छठाँ अध्याय

छंद

एक और अब सुनौ कहानी। होनहार गति जान न जाई।
साहिजहां दिल्लीपति गायौ। जाकौ हुकुम चहूँ दिसि छायौ॥
चारि पुत्र ताके मरदानै[1]। दारासाह साहि मन मानै[2]॥
और मुरादसाह अरु सूजा[3]। औरँगसाह समान न दूजा॥
बत्तिस बरस साह मन भीनै। भोग पातसाही के कीनै॥
जबै अवस्था उतरन लागी। पुत्र प्रीत मन में अनुरागी॥
साहिजहाँ एक चित्त बिचारी। दारा कौ दीन्हीं सिरदारी॥
दारा अपनौ हुकुम चलायौ। सब भाइन कौ हियौ हलायौ॥

दोहा

हुकुमनु कै दिल्लीस कौ, भई और की और।
उमड़ि साहजादिन किये, तखत लैन के डौर[4]॥

छंद

त्यौंत बिमल बुद्धिन के डारे। तखत लेन के चित्त बिचारे॥
साह मुराद हियौ हुलसायौ। गज सिक्का चलिबौ फरमायौ॥
औरँगसाह चाहि सुनि लीनी। बिलसाई बर बुद्धि प्रबीनी॥
इच्छा प्रगट तखत की छाँड़ी। प्रीत मुरादसाह सौं माँडी॥
चित दै हित के लिखे लिखाये। अति प्रबीन उमराइ पठाये॥
कह्यौ मुरादसाह सौं ऐसौ। सरस बिचार मंत्र है जैसौ॥
बिन ही दिली तखत लै वैसे[5]। आन[6] चलै गज सिक्का कैसे॥
पेल[7] तखत पर बैठे जोई। दिल्ली पातसाह सो होई॥

दोहा

हमैं न इच्छा तखत की, यह जानै सब कोइ।
चलो तुम्है लै देहिँगे, होनी होइ सो होइ॥

छंद

औरँगसाह मंत्र तब कीनौ। साह मुराद हियै धरि लीनौ॥
डिढ़ ठहराव यहै ठहरायौ। बाढ़ी प्रीति कुरान उठायौ॥

---

[1] मरदानै=वीर [2] मानै=प्रिय था [3]सूजा=शुद्ध शब्द शुजाअहै [4]डौर=डौल ढंग
[5] वैसे=बैठे [6] आन=और भाँति [7] पेल=घुसकर, बरजोरी

दच्छिन तैं उमड़े दोउ भाई। ढिले दीह दल पहुमि हलाई ॥
पूरब तैं सूजा दल साजे। प्रगट जुद्ध के धौंसा बाजे ॥
दारा घाट धौरुपुर[१] बाँध्यौ। रौपि[२] अराबे[३] कलहै काँध्यौ ॥
सूबन के दिल दहसत ऐसी। अवधौं दई करत है कैसी ॥
हलचल मची चहूँ दिस ऐसी। खलभल प्रलय काल की जैसी ॥
प्रगटी चाह सीढरा[४] ढरक्यौ। चंपति कौ दच्छिन भुज फरक्यौ ॥

दोहा

फरक्यौ चंपतिराइ कौ, दच्छिन भुज अनुकूल।
बड़ी फौज उमड़ी सुनी, भई जुद्ध की फूल[५] ॥

छंद

बड़ी फूल चंपति सुख पायौ। औरँग उमड़ि अवंती आयौ ॥
सिंह मुकुंद हतौ तहँ हाड़ा। दल कौ भयो ऐंड़ धर आड़ा ॥
उमग्यौ औरँग कौ दल गाढ़ौ। हाड़ा भयौ समर में ढाढ़ौ ॥
बिकट सार समसेरन माची। बाजत मारु कालिका नाची ॥
हाड़ा हरषि बिमानन बैठ्यौ। तब औरंग अवंती पैठ्यौ ॥
नौरँगसाह तखत कौ उमड़्यौ। दारा जहाँ मेघ सौ घुमड़्यौ ॥
सुनी खबर दारा अति कोप्यौ। चामिल घाट अराबौ रोप्यौ ॥
फिकिर बढ़ी सब के दिल ऐसी। अवधौं दई होति है कैसी ॥

दोहा

कैसी धौं अब होति है, कीजै कौन विचार।
उड़ैं अराबे में सबै, भयौ सुभट संहार ॥

छंद

तब औरंग सबनि तन ताके। बल बौसाउ[६] सबन के थाके ॥
चकृत चित्त चारहुँ दिस दौरे। कछु न बुद्धि काहू की औरे[७] ॥
तब औरंग मतौ यह कीनौ। बिमल चित्त में चंपति दीनौ ॥
हिति सौं लिखि फरमान पठायौ। चंपतिराइ सुनत सुख पायौ ॥
उमग भरे दल साज उमंडे। नरबर[८] ढिग नौरँग जहँ मंडे ॥
तहँ अलगारन[९] धाइ पहूँचे। देखे दल के झंडा ऊँचे ॥
चहुँ दिसि सोर कटक में छायौ। चंपतिराइ बुंदेला आयौ ॥
सुनि औरँग उर उमँग बढ़ाई। मनौ फते दिल्ली की पाई ॥

---

[१]धौरुपुर=धौलापुर [२] रौपि=स्थापित करके, सम्मुख जमाकर [३] अराबे=तोपखाने तोपें।
[४] सीढरा=सिंगड़ा, बारूद भरने की कुप्पी [५] फूल=उत्साह, उमंग [६] बौसाउ=व्यवसाय, पुरुष [७]औरे=समझ में आना [८] एक प्राचीन नगर राजा नल की राजधानी
[९] कूच पर कूछ करते हुए

दोहा

आनन औरँगसाह कौ, चढ़्यौ चौगुनो चाव।
ल्यावो चंपतिराइ कौं, हम सौं मिलै सिताव[1]॥

छंद

धावत एक सहस जन धाये। चंपति कौं हित बचन सुनाये॥
नौरँगसाह तुम्हें चित चाहै। सबै तुम्हारे भाग सराहै॥
तातैं अब बड़ बिलम[2] न कीजे। चलि दिलीस कौं दरसन दीजे॥
तौलगि नौरँगसाह पठायौ। तुरत बहादुरखाँ चलि आयौ॥
कह्यौ आइ चंपति सौं भाई। तुम इतनी क्यौं बिलम लगाई॥
अब यह समै बिलम कौ नाहीं। भई तिहारे चित की चाही॥
अब यह हाजिर है असवारी। चढ़ौ पालकी करौ तयारी॥
चढ़ि पालकी पयानौ कीन्हौ। दरस प्रसन्न साह कौ लीन्हौ॥

दोहा

मुजरा करि ऊभौ[3] भयौ, पंचम चंपति राइ।
लखि आँखिन औरंग की, आनंद झलक्यौ आइ॥

छंद

औरँग अति आदर सौं बोले। मिलतहिँ बचन मंत्र के खोले॥
दारा उमड़ि युद्ध कौ आयौ। कटक अडोल धौरपुर छायौ॥
बिकट अरावौ सनमुख दीनौ। चामिल घाट बाँधि उन लीनौ॥
छुटै समुद्र सूखै चहूँ धाकै। उड़े मेरु मंदर से बाँके॥
जौ समसेरन होइ लराई। ओड़ैं सुभट सुभट की घाई॥
उमगे सूर साह के बाजे। ठेलै कौन प्रलय की गाजे॥
चामिल पार कौन बिधि हूजै। जैसे मन की इच्छा पूजै॥
आइ भयौ समयौ यह ऐसौ। चंपतिराइ कीजियै कैसौ॥

दोहा

कैसौ अब कीजौ कहौ, पंचम चंपतिराइ।
अब आदर औरंग कौ, थक्यौ चौगुनो चाइ॥

छंद

बोल्यौ चंपतिराइ बुंदेला। और घाट है कीजे हेला[4]॥
जौ दारा उत आड़ौ आवै। तौ रन हमसौं बिजै न पावै॥
सुनि औरँग अचरज उर आन्यौ। और घाट चंपति तुम जान्यौ॥
चंपति कही घाट हम जानै। तखत काज तुम करौ पयानै॥

---

[1] शीघ्रता से [2] बिलम = बिलंब, अबेर, देरी [3] ऊभौ भयौ = प्रदीप्तमान हुआ [4] हेला = उतारा, फौज को धँसा कर नदी को पार करना,

सुनि औरंग तखत रस भीनै । चौदह लाख खरच कौ दीनै ॥
कीनौ कूच राति उठि जागै । चंपति भयौ सबन के आगै ॥
उमड़ि चलै दारा के सोहैं[1] । चढ़ी उदंड जुद्ध रस भौहैं ॥
चामिल उतरि सुभट गन गाजे । पार जाइ संधानै[2] बाजे ॥

दोहा

चंपति मुख औरंग के, भली चढ़ाई ओप ।
नातर उड़ि जातै सबै, छुटै तोप पर तोप ॥

छंद

चामिल पार भई सब फौजैं । तब नौरँग मन मानी मौजैं ॥
दारा साह खबर यह पाई । चामिल पार फौज सब आई ॥
आगे चंपतिराइ बुंदेला । ह्वै हरौल[3] कीन्हौ बगमेला ॥
चामिल पार भये सब आछे । तजे अडोल[4] अरावे पाछे ॥
दारा के दिल दहसत बाढ़ी । चूमन लगे सबनि कै डाढ़ी ॥
को भुजदंड समर में ढोकै । उमड्यौ प्रलै सिंधु कौ रोकै ॥
छत्रसाल हाड़ा तहँ आयौ । अरुन रंग आननि छवि छायौ ।
भयौ हरौल बजाइ नगारौ । सार धार कौ पैरन हारौ ॥

दोहा

ह्वै हरोल हाड़ा चल्यौ, पैरनि साहसमुद्र ।
दारा अरु औरँग मड़े, मनो त्रिपुर अरु रुद्र ॥

छंद

दारा अरु औरंग उमंडे । मनों प्रलै घन घोर घमंडे ॥
बजै जुद्ध में निबिड़ नगारे । दुहु दिसि बजै अराबे भारे ॥
गुर गंभीर घोर धुनि छाई । फटि ब्रह्मांड परै जनि भाई ॥
त्यौं बोले उमराउनि हल्ला । जम के भये कटीले कल्ला ॥
हय गय रथ पैदल रन जूटे । छाइन सहित कवच घर फूटे ॥
चंपति की जब बजी बदूखैं । मसहारिन[5] की मेटी भूखैं ॥
दारासाह बजत रन छाज्यौ । जबत[6] पादसाही कौ भाज्यौ ॥
हाड़ा सार[7] धार में पैठ्यौ । सूरज भेद बिमाननि बैठ्यौ ॥

---

[1] सोहैं=सम्मुख, मुकाबले में [2] संधाने बाजे=बाजे सँभाले और बजाने प्रारंभ किये [3] हरौल=शुद्ध-हरावल=सेना का अग्र भाग, सेनाग्रणी, नायक [4] अडोल=जो हिल न सकै, अचल [5] मसहारिन=मांसाहारी जंतु, यथा गीध शृगाल आदि [6] जबत=जाबता, नियम [7] सार=लोह

दोहा

सूरन कौं सुरपुर मिल्यौ, चंद्रचूड़ को हारु।
तख़्त मिल्यौ औरंग कौ, चंपति कौं जस चारु॥

छंद

चंपतिराइ सुजस जग गायौ। है हरौल दारा बिचलायौ॥
हरवल है दारा कौ बाँकौ। बेटा बली बहादुर खाँ कौ॥
जुद्ध बुँदेलनि सौं जब साच्यौ। हय हथयार छाड़ि भगि माच्यौ॥
पाई फतै भयौ मनभायौ। औरंग उमड़ि आगरे आयौ॥
दारा पकरि पठाननि लीन्हौ। साह मुराद क़ैद में कीन्हौ॥
धरनी लोक दुहुनि तैं छूट्यौ। नौरँगसाह तखत सुख लूट्यौ॥
बैठे तखत बजे संधानै। चंपतिराइ साह मन मानै॥
नौरँगसाह कृपा करि भारी। मनसब[1] दीन्हौ दुसह हजारी[2]॥

दोहा

ऐरछ अरु सहिजादपुर, कौंच कनार समूल।
मिली बड़ी जागीर सब, धरि[3] जमुना को कूल॥

छंद

मिली बड़ी जागीर सुहाई। जरै[4] समीप[5] भतीजे भाई॥
मुसकी तुरग लूट जौ आनौ। खोज बहादुरखां सो जानौ॥
कहि पठई चंपति कौं भाई। घर की लूट तिहारै आई॥
दल में लुट्यौ भतीजौ तेरौ। सो सब साज प्रीति में फेरौ॥
वह करवाल ढाल अरु घोरा। दीजौ राखि आपनौ तोरा॥
चंपति कौं यह बात सुनाई। बैठे एंड प्रीत सों पाई॥
तब चंपति ऊपर यह दीनौ। करि घमसान तुरंग हम लीनौ॥
ताकी अब चरचा न चलावो। घर ही यह मन को समुझावो॥

दोहा

सुनत बहादुर खां बली, उत्तर दियौ न और।
अनखु हियै में धरि रह्यौ, डारि बुद्धि के डौर॥

छंद

तौ लगि सोर कटकु में छायौ। पूरब तैं सूबा चढ़ि धायौ॥
गंगा उतरि प्रयाग पछेल्यौ। औरँगसाह सुनत दल पेल्यौ॥

---

[1] मनसब = पद [2] हजारी = द्वाज़दहहजारी [3] धरि = पकड़े हुए, गहे हुए
[4] जरना = ईर्षा करना [5] समीप = समीपी, संबंधी।

हुकुम बाहदुर खाँ कौ कीन्हौ । उनि सुख मानि सीस धरि लीन्हौ ॥
उमड़ि फौज पूरब कौं धाई । हयखुर गरद गगन में छाई ॥
और हुकुम चंपति पै आयौ । बैठे साह कहा फरमायौ ॥
गैर हाजिरी लिखि है कोई । मनसब घटै तगीरी होई ॥
आलमगीर आप फरमायौ । हुकुम न मानै सो दुख पायौ ॥
उद्दित बचन उकील सुनायौ । चंपति हियै अनखि बढ़ि आयौ ॥

दोहा

अनखु बढ़्यौ मन सब तज्यौ, सेवा कछु न सुहाइ ।
डंका दै चंपति चल्यौ, आग अगारै लाइ ॥

सातवाँ अध्याय

छंद

चंपतिराइ देस में आये । चंड प्रताप चहूं दिस छाये ॥
फौज पेलि भाँड़ैर[1] उजारी । भुमियावट[2] उर में अखत्यारी ॥
ऐरछ आइ कोट में बैठे । सूबन के उर में डर बैठे ॥
पहुँची खबर साह कौं ऐसी । चंपतिराइ करी उत जैसी ॥
सो औरंग चित्त धर लीनी । पहिल फिकिर सूजा की कीनी ॥
नौरंगसाह साज दल धायो । जूझ जीत सूजा बिचलायौ[3] ॥
दावादार रह्यौ नहिँ कोई । बैठ्यौ तखत साहिबी जोई ॥

दोहा

गज सिक्का औरंग को, चल्यौ हुकुम लै संग ।
देसनि देसनि कौं चले, सूबा तेज अभंग ॥

छंद

सूबा ह्वै सुभकरन सिधायौ । हित सौं पातसाह पहिरायौ ॥
सँग बाइस उमराउ पठाये । लै मुहीम चंपति पै आये ॥
जोरि फौज सुभकरन बुदेला । ऐरछ पर कीन्हौ बगमेला ॥
बाजत सुने जूझ के डंका । उमड़ि चल्यौ चंपति रन बंका ॥
माँची मार दुहूँ दिस भारी । रचनहार कौं मुसकिल पारी ॥
चले हाथ चंपति के ऐसे । छूटै बान धनंजय कैसे ॥
उतकट भट बखतर धर मारे । कूटे हय गय पक्खरवारे[4] ॥
सूखे कढ़े रूधिर नहि छीवै । लागत प्रान परन के पीवै ॥

दोहा

ढिल्यौ कटक सुभकरन कौ, ढिल्यौ खवास अडोल ।
रन उमंग में उमड़ि कै, नच्यौ तुरँग अमोल ॥

छंद

तबहिँ बान चंपति को छूट्यो । हठुआ लग्यौ पुठी ह्वै फूट्यौ ॥
गिरौ तुरंग खवास हकार्यौ । सो कासिमखाँ बरछी मार्यौ ॥
उगरसाह तहँ मार मचाई । साहि गढैं अति ओप चढ़ाई ॥

---

[1] एक नगर [2] भुमियावट=बरेऊ रीत पर अपने भूमि स्वत्व पर अधिकार करना
[3] बिचलायौ=भगा दिया [4] पक्खर=पाखर, हाथी घोड़ों का कवच

चंपतिराइ बिजै तहँ लीनौ। मुह मुरकाइ[1] अरिन कौ दीनौ ॥
बिकट कटक झुकझोरि झुलायौ। ह्याँ तै उमड़ि धरौनी[2] धायौ ॥
निकट रायगिरि तैं तहँ आयौ। तहाँ खोज बंका दल छायौ ॥
जानि कटक उमराइ करेरौ। दीनौ राति उमंडि दरेरौ ॥
सुभट बान गोलिन सौं कूटे। अरि के बिकट मोरचा छूटे ॥

दोहा

पैठे उदभट कटक में, कपटे बिकट पठान।
धाइन घालत[3] चाव सौं, करि चंपति की आन ॥

छंद

तहाँ मार माची अतिभारी। चंपतिराइ तेग झुकि झारी ॥
उमड़ि बैरि कौं चल दल कीन्हौ। कटक युद्ध कौं पैदल लीन्हौ ॥
समर बीर बैरिन पग रोपे। जो न जिहाज ओट धरि कोपे ॥
वर्षत अस्त्र कवच धर फूटे। मघा मेघ मानौ झर जूटे ॥
तहाँ चौदहा मेघ सिधार्यौ। सुनि सरदार समान हकार्यौ ॥
कहै चौदहा मुजरा मेरौ। हौं मारौं सरदार अनेरौ ॥
चंपत लख्यौ बचन सुनि प्यारौ। औचक आनि कियौ उजियारौ ॥
छुट्यौ बान बैरी कौ भूख्यौ। छाती लग्यौ कढ्यौ अति रूख्यौ ॥

दोहा

पंचम चंपतिराइ कै, लग्यौ बान कौ घाइ।
अधिक युद्ध के रस भयौ, बढ़्यौ चौगुनो चाइ ॥

छंद

हला बोलि बैरी महि आयो। चंपतिराइ युद्ध रस छायौ ॥
रन चंपति की नची कृपानी। धरी भीम जनु कीचक घानी ॥
फौज फारि चंपति जस लीन्हौ। अमृत हरत ज्यौं सुपरन कीन्हौ ॥
कटकु खोज बंका कौ कूट्यौ। चंपतिराई बिजै सुख लूट्यौ ॥
जीति पाइ अनघोरी[4] आये। चाल दई सुभ करन सिधाये ॥
तहँ शिकार खेलन अभिलाषी। देबी सिंह नृपति की राखी ॥
आइ अजीतराइ तहँ रोके। बरभुजदंड समर में ठोके ॥
रहो अजीतराइ कै ऍंड़े। पैठि सक्यौ सुभकरन न मैंड़े[5] ॥

---

[1] मुरकाना = फेर देना, भगा देना [2] धरौनी = स्थान विशेष. [3] घालना = मारना, चलाना [4] अनघोरी = चुपचाप, अचानक [5] मैंड़े = सीमा।

दोहा

राजा देवी सिंह कौं, डेरौं दीनौ देस।
उमड़्यौ चंपतिराइ पै, श्री सुभकरन नरेस ॥

छंद

सुनि सुभकरन जुद्ध रस भीनौ । मंत्र सुजानराइ सौं कीनौ ॥
लरत भिरत बहु काल बितीते । घने जुद्ध सूबन सौं जीते ॥
ऐंड पातसाहिन सौं कीनी । गई भूमि बंधुन लै दीनी ॥
कठिन ठौर मसलहत बताई । नौरंगसाह दिली तब पाई ॥
दारा दल जीते मुहरा तै । बड़ी कौन अब हमकौं बातै ॥
घाइल भये हमारे भाई । और अवस्था सी कछु आई ॥
ऐ सुभकरन पिलै दल साजै । बंधु बिरोध करत हम लाजै ॥
जो कीजै अब उमड़ि लराई । जीते हू जग में न बड़ाई ॥

दोहा

गोतघाउ[1] तैं आज लौं, हमैं बचायो ईस।
अब सलाह इन सौं करैं, कछू न ह्वै है खीस[2] ॥

छंद

ज्यौं मन आनि लगाई बातैं । होइ सलाह कटक बिन जातैं ॥
सुनि सुधकरन घनौ सुख पायौ । मन मिलाइ मिलिवौ ठहरायौ ॥
त्यौं चंपति कहि कुशल सुहाती । लिखी सुजान राइ कौं पाती ॥
सुरझ्यौ[3] घाइ देह बल आयौ । खेल सिकार तुरंग दौरायौ ॥
बाँचत चिठी जान वह लीनी । चंपतिराइ सलाह न कीनी ॥
मिलिवे काज बोल हम बोल्यौ । हित सौं हियौ सुभकरन खोल्यौ ॥
बोल बोलि जौ मिलन न जैयै । तो झूठे जग में ठहरैयै ॥
तातैं बनै मिलै निरधारै । चंपति हमैं न झूठे पारै ॥

दोहा

मिलिवौ राइ सुजान कै, हियै रह्यौ ठहराइ।
इत अनघोरी ले चलै, घर कौं चंपतिराइ ॥

छंद

घर कौ चंपतिराइ सिधाये । दल लै दुवन दलीपुर आये ॥
तहँ छत्रसाल भगति रस भीनै । उमगि पिता के दरसन कीनै ॥

---

[1] गोतघाउ = बंधु-विरोध, वंश-हत्या, [2] खीस = हानि, [3] सुरझ्यौ = घाव भर आया।

पहुँचि बेदुपुर में छवि छाये। मिलै सुजानराइ मन भाये ॥
दोऊ बीर मंत्र को बैठे। दिगपालनि के उर भय पैठै ॥
तहाँ सुजानराई जो बोले। बचन सलाह करन के खोले ॥
ते चंपति के चित्त न लागे। उद्दित जुद्ध बुद्धि रस पागे ॥
जब हम बिरस[1] साह सौं कीनौ। तब इन बचन कह्यौ रस भीनौ ॥
हम न साह कौं मनसब छैहैं। भुमियावट में सामिल रैहै ॥

दोहा

जब हम भुमियावट करी, तब इन करी मुहीम।
हमे जीति ऐ औंडछो, चाहत है सब सीम ॥

छंद

चंपतिराइ सलाह न मानी। राह सुजान वहै ठिक ठानी ॥
मन बच कर्म संधिरस राचे। मिलै न चंपति जब है साचे ॥
तँह सुभकरन साजि दल धाये। समर ठानि चंपति पै आये ॥
फौजैं उमड़ि निकट जब आईं। तब कीन्ही चंपति मन भाई ॥
दल पर बान बज्र से बरषे। कौतुक लखैं देवता हरषे ॥
हलनि हलाइ फौज बँध फोरै। घन झुंडा[2] ज्यौं पवन झकोरै ॥
खल भल परी दुवन दल भानै। कित धौं गयौ कौन नहिं जानै ॥
जब न ब्यौंत कछु चलै चलाये। तब सुभकरन हजूर बुलाये ॥

दोहा

संग लै राइ सुजान कौं, मुजरा कीन्हौ जाइ।
देखि साह सुभकरन को, अनतहि दियौ पठाइ ॥

छंद

त्यौंही साह कियो मनसूबा। दच्छिण को भेजो करि सूबा ॥
नामदार खाँ नाम बखानौ। दिल्लीपति के अति मन मानौ ॥
रतन साह तिन संग पठाये। चंपति रहे देस में छाये ॥
लिखी नवाब साह कौं ऐसी। चाहे करन बड़ाई जैसी ॥
रतनसाह चंपति कौ जायौ। मिल्यौ मोहि सेवा में आयौ ॥
ऊतर साह न दूजो दीन्हो। बाँचत लिखौ कैद करि लीन्हो ॥

दोहा

दिल्ली पति की ओर को, जब ही सुन्यौ जुवाब।
रतन साह को तुरत ही, बिदा कियो जु नवाब ॥

---

[1] बिरस = बिगाड़, विरोध [2] घन झुंडा = दल, बादल।

छंद

राइ सुजान करी जे घातैं। ते न भई सब मन की बातैं ॥
है उदास ह्याँ तै उठि आये। ए विचार मन में ठहराये ॥
जहाँ न आदर बूझ बड़ाई। जहाँ न प्रापति[1] बंधु न भाई ॥
जहाँ न कोई गुन कौ पूजै। तहाँ न पल भर ठाढ़ै हूजै ॥
सेवा पातसाह की छाड़ी। फेरि सलाह औड़छे माड़ी ॥
तब बिनई हीरादे रानी। हम सेवा नृप की उर आनी ॥
कछु न कपट जानौ हम माही। निहचै चंपति में हम नाही ॥
तब रानी जग फूट्यौ जान्यौ। उर विश्वास करिवो ठिक ठान्यौ ॥

दोहा

त्यौं ही राइ सुजान सौं, हितुन कही समुझाइ।
तुम अपनी रच्छा करौ, रचियतु इहाँ उपाइ ॥

छंद

यह सुनि राइ सुजान सिधाये। तज औड़छौ बेदपुर आये ॥
अंगदराइ रतन गुन भारे। छत्रसाल जग दग के तारे ॥
तीनौं कुवँर महेवा छाये। समाचार फौजन के आये ॥
तिनमें छत्रसाल परबीने। खेलत आखेटक रस भीने ॥
हेलहि बरष ग्यारही लागी। प्रगट साल सोरह की दागी ॥
अंगदराइ मंत्र तहँ कीन्हौ। ढिग बुलाई छत्रसालहि लीन्हौ ॥
हित सौ कहे बचन निरधारे। मामनि[2] के तुम जब छतारे[3] ॥
और मंत्र मत उर में आनौ। हुकुम मानि तुम करौ पयानौ ॥

दोहा

ज्यौं खरदूखन के समैं, धरे धनुष तूनीर।
आज्ञा श्री रघुनाथ की, मानी लछमन बीर ॥

छंद

जो छत्रसाल तहां पगु धारे। जहाँ सुनै मामा अनियारे ॥
समाचार चंपति सब लीन्है। डेरा जाइ बेरछा कीन्है ॥
हीरादे[4] फौजै फरमाई। डंका देत जतारह आई ॥
तहं तें दो फौजैं करि धाये। दुहु दिसि दोऊ बीर दबाये ॥

---

[1] प्रापति = प्राप्ति [2] मामनि = मामाओं के यहां [3] छतारे = छत्रसाल का प्यार का नाम [4] हीरादे = हीरादेवी

औचक फौज वेदपुर आई। भीर[1] सुजान न जोरन पाई ॥
तीन सुभट सँग लीन्हे बैठे। प्रति भट उमड़ि जाइ कर पैठे ॥
इत सुजान की छुटी बंदूखैं। फूटी बर बैरिन की कूखैं ॥
झिलझिल फौज ढिलाढिल धावै। चहुँ दिस छोर छुवन नहिं पावै ॥

दोहा

दारू[2] गोली के घटै, तीरन माची मार।
छूछे[3] भये तुनीर सब, पर्‌यौ फौज कौ भार ॥

छंद

परयौ भार मारू सुर बाजैं। तीनौं सुभट समर सुभ छाजैं ॥
उमड़ि मनौला हरी जसौधी। दल में तेग तड़ित सी कौंधी ॥
मार करै रन सिन्धु बिलौरै[4]। तेगनि तमकि ताल सो तोरै ॥
लर्‌यौ उलटि रन पंडित पांडे। झुक झपेटि खंडे अरि चाँडे ॥
रुचि सौं सार खात ज्यौं मेवा। घाइन कै धरि कंजा नेवा ॥
पाइ दुहुँ के परे न पाछे। पैरै सार धार में आछै[5] ॥
स्वामि हेत तिल तिल तन टूटे। भानु हेत सुर पुर सुख लूटे ॥
फौजैं पिली रुकत नहिं जानी। सुरपुर कौं उमगी ठकुरानी ॥

दोहा

सब ठकुरानिन उमगि कै, कीन्हौ अग्नि प्रवेस।
देखत साहस थकि रह्यौ, देबिन सहित दिनेस ॥

छंद

लख्यौ सुजान राइ ठिक ठायौ। सब ही कौ बिक्रम मन भायौ ॥
यह संसार तुच्छ करि जानौ। राखौ रजपूती कौ बानौ ॥
तन कौ कियौ न लोभ न जी कौ। धर्‌यौ लिलाट राज कौ टीकौ ॥
सब के संग अमरपुर लीनौ। काढ़ि कटार पेट में दीनौ ॥
मर्‌यौ सुजानराइ कै जायौ। लर्‌यौ अरुन आनन छबि छायौ ॥
ओड़ी अरि अस्त्रनि की घाई। जूझौ मनै मार कै माई ॥
समिटि फौज ह्यांतै फिरि आई। जहां खबरि चंपति की पाई ॥
चंपति जहां जुद्धरस भीनै। रोगन आनि सिथिल करि लीनै ॥

दोहा

बल धरि धाये खल सबै, खबर ज्यान[6] की पाइ।
नातर कौ बचतौ कहां, बिचरै चंपति राइ ॥

---

[1] भीर = फौज [2] दारू = बारूद [3] छूछे = रिक्त, खाली [4] बिलौरै = हिलावै
[5] आछे = भले [6] ज्यान = निर्बलता ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

लागी चमू चढ़न चतुरंगै । ज्यौं जल निधि की तरल तरंगै ॥
ऐड़दार[1] जितही सुन पावै । फौजें उमड़ि तहां को धावैं ॥
बासा अरु बृन्दाबन बारयौ । प्रलै पथरिया ऊपर पारयौ ॥
दीनी लाइ निदर निदराई । फौज बहुत राई पर आई ॥
पहिली पसर रनेही टूट्यौ । कोटा कूट दमोयौ लूट्यौ ॥
धामौनी मैं धूम मचाई । जब न और कों बचै बचाई ॥
तब खालिक ऐसी मति कीनी । वाकन खबर साह को दीनी ॥
लिखी बहादुर खां कौ ऐसैं । बादर फट्यौ ढाकियै कैसैं ॥

दोहा

चहूँ चक्क गमड़े फिरत, बड़े बुंदेला बीर ।
अमल गये उठि साह के, थके जूझ कर मीर ॥

छंद

कोका खबर हजूर जनाई । वहै लिखी वाकन में आई ॥
सुनत साह मन में अनखानै । भेजे रन दूलह मरदाने ॥
सँग बाइस उमराइ पठाये । आठक लिखे मद्दती ठाये ॥
बिदा भये मुजरा करि ज्यौंही । बजे निशान कूच कर त्यौंही ॥
दतिया अरु ओंडछो बगौनी । सजी सिरौज कौंच धामौनी ॥
उमड़ि इँदुरखी चढ़ी चँदेरी । पिलि पाडौर जुद्ध की टेरी ॥
ये मुद्दती उमड़ि चढ़ि आये । मनसिबदार तीस ठिक ठाये ॥
करयौ गढ़ा[2] कोटा पर पेला[3] । जहां सुनै छत्रसाल बुंदेला ॥

दोहा

उमड़्यौ रनदूलह सजे, तीस हजार तुरंग ।
बजे नगारे जूझ के, गाजे मत्त मतंग ॥

छंद

दिन के पहर तीन तब बाजे । लागी लाग मीर गल गाजे ॥
त्यौं छत्रसाल चढ़ाई भौहैं । अड़े बम्ब दै भये भिरौहैं ॥
उमड़ि रारि तुरकन त्यौं मौंड़ी । छूटे तीर उड़ति ज्यौं टौंड़ी[4] ॥

---

[1] ऐड़दार=विरोधी, विमुख [2] गढ़ा=यह दुर्ग्ग दुर्गनसागर के निकट है [3] पेला=आक्रमण [4] टौंडी=टिड्डी, ढीढीं

त्यों रन उमड़ि बुंदेला हाँके । रंजक[1] धुँवन घामनिधि[2] ढाँके ॥
बाजन लगी बंदूखें सोई । गिरे तुरक जो लगे[3] अगोई ॥
गिरत हरौल गोल के साऊ । कढ़ि कतार तें ढिले अगाऊ ॥
लगे खान गोलिन की चोटै । नट ज्यौ उछल लाग लै लोटै ॥
समर बिलोकि सुरन भय कीनौ । सूरज सरक अस्तगिरि लीनौ ॥

दोहा

जोत जामगिन में जगी, लागें नखत दिखान ।
रन असमान समान भौ, रन समान असमान ॥

छंद

पहर रात भर भई लराई । गोलिन सर सैथिन झर लाई ॥
खाइ घाइ सब स्वान अघानै । लोह मानि तजि कोह परानै ॥
डेरा कोस द्वैक पर पारे । हिम्मत रही हियै सब हारे ॥
अड़े बुंदेला टरै न टारे । जीते जूझ बजाइ नगारे ॥
रनदूलह रन तै बिचलाये । ह्वाँ तै हनूकूट कौ आये ॥
मारि गुनाह मरोरी टोरी । खग्गा झार झागर झखझोरी ॥
फिर मवास रतनाकर मारयौ । औड़ेरा में डेरा पारयौ ॥
दल दौरन हरथौन उजारी । धामौनी में खलबल पारी ॥

दोहा

चौंकि चौंकि चहुँ दिस उठै, सूबाखान सुमान ।
अबधौ धावै कौन पर, छत्रसाल बलवान ॥

---

[1] रंजक = [2] घामनिधि = सूर्य [3] लगे अगोई = आगे थे ।

सोलहवाँ अध्याय

छंद

त्यौंही दौर करकरा कूट्यौ । आसपास नरबर कौ लूट्यौ ॥
सौ गाड़ी सकलात[1] सलौनी । पातसाह कौ जात पठौनी ॥
सो ताकी छत्रसाल बुँदेला । लई लुटाइ फौज सौ पेला ॥
सबही लूट छूट कर पाई । लुंगी[2] मोल मौधुबन लाई ॥
लूटी रसद साह की ज्यौंही । वाकन लिखी हकीकत त्यौंही ॥
सुनी दिलीस खबर ठिकठाई । सूबा दल कौं मालस आई ॥
रनदूलह डांड़े रएऊमी । पठये साह रोस करि रूमी ॥
लै मुहीम रूमी रिस कीनी । मोट[3] उठाइ अरे[4] की लीनी ॥

दोहा

फौज जोरि रूमी बढ़्यौ, बाजे तबल निसान ।
छत्रसाल तासौं कर्‌यौ, बसिया घमसान ॥

छंद

बसिया में माच्यौ रन खेला । उत रूमी इत बीर बुंदेला ॥
तुपक तीर सैथी तरवारे । खात खवावत बीर हँकारै ॥
उमगे भिरत युद्धरस पागे । कटि कटि गिरन परस्पर लागे ॥
कढ़्यौ कल्यान साह मन आछै । पग परिहार न दीनै पाछै ॥
मीर बहबहे उमड़त आये । सनमुख कुटै हटै न हटाये ॥
गना रूम के तके बुँदेला । कियौ तुपकदारीन कौ पेला[5] ॥
तिन चोटैं कीन्ही चित चीती[6] । साखै भई सबनि की रीती ॥
गनी रूम कौ समर पहारू । बाटन लाग्यौ सबनि कौ दारू ॥

दोहा

भई भीर गलबल मच्यो, दारू बाँटत लेत ।
लग्यौ पलीता सीठरन[7], उठ्यौ धूम उहि खेत ॥

छंद

त्यौंही हला बुँदेलनि बोले । समर खेत खग्गीन के खोले ॥
लागे मुँह ते मार गिराये । पिलिवन बीर धुवाँ पर धाये ॥

---

[1] सकलात = सौगात भेंट [2] लुंगी = फौज की भीड़ [3] मोट = गठरी [4] अरा = झगड़ा [5] पेला = धावा [6] चितचीती = मनचाही [7] सीठरा

दारू उड़ै उड़ै अरि ज्योंही। मारे बीर बुँदेलनि त्यौंही ॥
रूमी बिडरि खेत तैं भाग्यौ। छत्रसाल जस जग में जाग्यौ ॥
ज्यों रँग मच्यौ दिली में औरै। दुदिलौ[1] भये साह कित दौरै ॥
नृप जसवंतसिंह के बेटा। कढ़ै दिली कौं मारिब बेटा ॥
फिरि जोधापुर धनी अन्यारे। अंतिसाह अजमेर पधारे ॥
त्यौं अकबर सहिजादौ साऊ। राठौरन पर पिल्यौ अगाऊ ॥'

दोहा

त्यौं प्रपंच रचि बुद्धिबल, दुरगदास राठौर।
सहिजादे सौ मिलि किये, तखत लैन के डौर ॥

छंद

तखत लैन के लोभ बढ़ाये। पुत्रहिं पितहिं बैर उपजाये ॥
सहिजादौ संगी कर पायौ। तब दच्छिन कौ वाहि चलायौ ॥
ताकी पीठ साह उठ लागे। दच्छिन कौं उमगे रिस पागे ॥
रूमी भगे साह त्यौं जानै। कारी परी कुल्ल तुरकानै ॥
बल व्यवसाइ सबनि कै थाके। तब दिलीस तहवर मन ताके ॥
जानि जुद्ध अमनैक अठायौ। तरवरखाँ इहि देस पठायौ ॥
चढ़ी चमू तहबर की बाँकी। दिसा धूरि घँघरि सो ढांकी ॥
ज्यौं तहवर की सुनी अवाई। त्यौंही लगन ब्याह की आई ॥

दोहा

साबर तै आई लगन, मिले बोल बंधान।
दबादवे[2] बीरा[3] दियो, अब हितु भयौ निदान ॥

छंद

जब दिन निकट ब्याह के आये। मंगल गीत दुहूं दिस गाये ॥
तब दल बलदाऊ सँग राखे। लागै करन काज अभिलाषे ॥
छुरी बरात ब्याह कौ साजी। तीस सवार बंब अरू बांजी ॥
दूलह छत्रसाल छबि छाये। करन ब्याह साबरहि सिधाये ॥
तहँ बिधि सो अगौनी कीनो। बाँध्यौ मौर इंद्र छबि लीनी ॥
लागी परन भाँउरैं ज्यौंही। परी फौज तहवर की त्यौंही ॥
अनी बनी दोई बनि आई। दोऊ बरी करी मन भाई ॥
इतहि भाँउरैं सजी सुहाई। उत तुरकनि सौ मची लराई ॥

---

[1] दुदिलौ = दुचित्ता, चिंतित [2] दबादवे = चुपके से [3] बीरा = पान

दोहा

रन रुपि तहवर खान कौ, मुह मुरकायौ मारि ।
पूरन वेद विधान सौ, लई भाँउरैं पारि ॥

छंद

मारी फौज तुरक मुरकाये[1] । तहँ सब धाये बाजे बधाये ॥
ब्याही बरी जीति अरि लीनौ । कंकन छोड़ि तुरंगम दीनौ ॥
धामौनी दौरन झकझोरी । फिरि पिछौरि सब खरी पिछौरी[2] ॥
बारी बार मवासी कूटें । गाँउ कलींजर के सब लूटें ॥
रामनगर . मार्यो करि डेरा । कालिंजर कौं पार्यौ घेरा ॥
रोज अठारह गढ़ सौं लागे । चैकिन तहाँ हुस निस जागे ॥
बाहिर कढ़न न पावै कोई । रहे संक सकराइ गढोई[3] ॥
लई रोकि चारिउ दिसि गैलै । गढ़ पर परै रैन दिन ऐलै ॥

दोहा

चिंतामनि सुर की तहाँ, कीनौ आइ सुदेस ।
अति आदर सौं लै चले, न्योतौ करि निज देस ॥

छंद

न्यौतौ करि कीनी महिमानी । धन्य घरी सबही वह मानी ॥
तातैं तुरी तिलक में दीनौ । उर आनंद परस्पर लीनौ ॥
ह्यांतै कूच बिदा ह्वै कीनौ । कालिंजरहिं दाहिनौ दीनौ ॥
लरे उमडि तँह सुभट अन्यारे । घाटी रोकि बीर गड़वारे ॥
छत्रसाल त्यौं हल्ला बोल्यौ । खग्गन खेल बुंदेलन खोल्यौ ॥
समर भूमि अरिलोथिन पाटी । रोकी रुकै कौन की घाटी ॥
बारि बनहरी लूट मचाई । धामौनी सौं लई लराई ॥
पटना अरु पारौलि उजारै । तहवर खाँ पर परी पकारै ॥

दोहा

फौज जोर तहवर तहाँ, ठने जूझ के ठान ।
गौने में छत्रसाल के, दल कौ पर्यौ मिलान ॥

छंद

परयौ मिलान जाइ जब गौने । करकै तंबू तनै सलौने ॥
दहिनी दिस उतरे बलदाऊ । जँह गोली पहुँचे पहुँचाऊ ॥

---

[1] मुरकाये = लौटा दिये, भगा दिये । [2] पिछौरी = पीछे [3] गढोई = गढ़वाले

थई अपनी अपनी पाली[1] । पर्यौ पहार पीठ[2] तन खाली ॥
ऊपर सिखर चौपरा[3] जान्यौ । सो देखन छत्ता उर आन्यौ ॥
छरी भीड़ कौतुक मन बाढै । चढ़ि करि भये शिखर पर ठाढै ॥
ज्यौं यह खबर जसूसन दीनी । त्यौ तहवर खाँ बागै लीनी[4] ॥
बखतर पोस सहस दस धाये । प्रलै मेघ से उमड़त आये ॥
निकट आइ धौंसा घहराने । हयखुरथार छटा छहराने ॥

दोहा

बड़ी फौज उमड़ी निरखि, रच्यौ छता घमसान ।
चढ़ि सनमुख रनमुख तहाँ, बरषन लाग्यौ बान ।

छंद

बरषन लाग्यौ बान बुँदेला । कियौ तुरक दै ढाल ढकेला ॥
बखतरपोस बान सों फूटै । नलसे छतज छौंछ के छूटै ॥
कौतुक देखि जौगिनी गाई । खप्पर जटनि माजती धाई ॥
बिसुनदास तहँ मार मचाई । ओप कटेरहि[5] भली चढ़ाई ॥
गह्यौ पहार बुँदेला गाढ़े । त्यौ पठान पैठे मन बाढ़े ॥
चंड लेहु दुहँ दिस ठहराने । सूरज गगन मध्य ठहिराने ॥
सोर सिंहनादन के माचे । भूत बिताल ताल दै नाचै ॥
डेरन खबर जूझ की पाई । सुभट भरि त्यौं उमड़त आई ॥

दोहा

चढ़े रंग सफजंग के, हिन्दू तुरक अमान ।
उमड़ि उमड़ि दुहुँ दिस लगे, कौरन लोहौ खान ॥

छंद

कौरन लोह खान भट लागे । दुहूँ ओर रन में रस पागे ॥
सुतरनाल[6] हथनाले[7] छूटी । गरजि गरजि गाजै सी टूटी ॥
गोलिन तीरन की झर लाई । माची सेल्ह[8] सेरन धाई ॥
त्यौं लच्छे रावत प्रभु आगै । सेल्हन मार करी रिस पागै ॥
प्रबल पठान मारि कै साऊ । कढ्यौ मिश्र हरि कृष्ण अगाऊ ॥
उमड़ि लोह लपटन मन दीनौ । तन कै होम स्वामि हित कीनौ ॥
बावराज परिहार पचार्यौ । सार पैर रवि मंडल फार्यौ ॥
जूझ्यौ नंदन छिपी[4] सभागौ । ब्यौतन लग्यौ इन्द्र कौ बागौ ॥

---

[1] पाली = दल [2] तन = ओर [3] तालाब [4] वागैं लीन्हीं = अश्वारूढ होकर आक्रमण किया [5] कटेरहि = कटेरावाले को [6] सुतरनाल = तोपें [7] हथनाल = वे तोपें जिनके खल हाथी खींचैं [8] सेल्ह = भारी सींग

दोहा

कृपाराम सिरदार त्यों, कह्यौ बँघेरो भीर।
बैठेगौ जाइ बिमान चढ़ि, भानु भेदि वह बीर ॥

छंद

उतहि पठान चढ़त गिरि आवैं। इत छत्रसाल बान बरसावै ॥
इक इक बान दुद्वै भट फूटै। झुक झुक तऊ झपट रन जूटै ॥
बान बेग जगतेस हँकायौ। त्यौं करवान झरप झुक झारयौ ॥
घाउ ओढ़ि भुज ऊपर लीनै। उमड़ि घाउ रम सनमुख दीनै ॥
गिरे पठान डील त्यौं भारे। गोलनि सेल्ह सरनि के मारे ॥
जंघा घाउ छतारे ओढ़यौ। भुजडंडन रंनसिंधु बिलोड़्यौ ॥
पिले तुरक जे बखतरवारे। ते रन गिरे छता के मारे ॥
बढ़े गिरिन स्रोनित के नाले। घर धमकन धरनीतल हाले ॥

दोहा

कहर[५] जूझ द्वै पहर भौ, झरयौ[६] सार सौ सारू।
तेज अरिन कौ त्यौं घट्यौ, लोथन पट्यौ पहारू ॥

छंद

बारह बीर खेत इत आये। सत्ताइस घाइल छबि छाये ॥
तुरक तीन सै खेत खपाये। घाइल द्वै सै बीस गनाये ॥
मारि तुरक कौ मुँह मुरकायौ। रन में बिजै बुँदेला पायौ ॥
मुरके तुरक खग्ग फिर खोल्यौ। बल दिवान पर हल्ला बोल्यौ ॥
बजे नगारे फेर जुझाऊ। रन में रुप्यौ उमड़ि बलदाऊ ॥
पहर राति भर मार मचाई। मुरक्यौ तुरक उहाँ खम खाई[१] ॥
ओढ़ि अरिन के ढाल ढकेला। भलौ लरयौ बल करन बुँदेला ॥
खभरि खेत तहवर बिचलायौ। सूबन के उर साल सलायौ ॥

दोहा

सले साल सूबानि कै, धक्कनि हलै पटान।
दियौ भाल छत्रसाल कै, राजतिलक भगवान ॥

---

[१] छिपी = छीपा जाति विशेष जो कपड़े पर बेल बूटे रंग से छापते हैं [२] कहर = कठिन
[३] झरयौ = लोहा से लोहा बजा [४] खम खाई = हार गये

भूषण

भूषण

भूषण का हिंदी के महाकवियों में एक विशेष स्थान है, और इन की जीवनी के संबंध में बहुत कुछ अनुसंधान भी हो चुका है और हो रहा है। इसके संबंध में सब से अधिक अनुसंधान मिश्रबधुओं ने किया है और अभी तक इन्हीं के निर्णय प्रमाण माने जा रहे हैं। परंतु अभी थोड़े दिनों से नागरी-प्रचारिणी-सभा को खोज में मिले हुए 'वृत्तकौमुदी' नामक ग्रंथ प्राप्त होने के बाद से मिश्रबंधुओं के निर्णयों के भ्रांत सिद्ध होने की संभावना हो गई है। यह ग्रंथ 'वृत्तकौमुदी' एक मतिराम कवि की लिखी हुई है और इसमें इसका रचनाकाल सं० १७५८ दिया हुआ है। यदि यह वही मतिराम हैं जिन्होंने ललित-ललाम आदि ग्रंथों की रचना की है और जो अभी तक भूषण के भाई माने जाते हैं, तो इसमे संदेह नहीं कि भूषण की जीवनी और समय के संबंध में मिश्रबंधुओं तथा कम से कम भूषण के संबंध में उनके मतानुयायी अन्य विद्वानों की धारणा भ्रांतिमूलक सिद्ध हो सकती है। वृत्तकौमुदो के रचयिता मतिराम अपने को वत्सगोत्री त्रिपाठी, विश्वनाथ का पुत्र तथा श्रुतिधर का भतीजा बतलाते हैं, और भूषण आदि के विषय में अपना कोई संबंध नहीं प्रकट करते, परंतु केवल इसी कथन के आधार पर मिश्रबंधुओं के निर्णय को अभी से भ्रांत मान लेना उचित नहीं। वृत्तकौमुदी के रचयिता मतिराम और ललति-ललाम, रस-राज आदि ग्रंथों के प्रणेता मतिराम वास्तव में एक ही व्यक्ति हैं या दो, इस विषय में संदेह करने का अभी पर्याप्त कारण है, और फिर तर्क के लिये यदि मान भी लिया जाय कि वृत्तकौमुदी और रसराज के रचयिता एक ही व्यक्ति थे तो भी भूषण के मतिराम के सहोदर भाई नहीं तो 'बंधु' होने में तो कोई खास अड़चन नहीं पड़ती, अर्थात् वे मतिराम के ममेरे, फुफेरे, या मौसेले भाई हो सकते हैं; और यह भी कुछ आवश्यक नहीं कि वृत्तकौमुदी के रचयिता. मतिराम भूषण का उल्लेख करते ही, क्योंकि इन्होंने अपने पिता और चाचा के नामोल्लेख किए हैं। वृत्तकौमुदी के रचयिता मतिराम के रस-राज और ललित-ललाम के रचयिता मतिराम से भिन्न होने का अनुमान इन उपर्युक्त ग्रंथों की रचनाशैली के आधार पर किया जाता है। वृत्तकौमुदी का रचनाकाल सं० १७५८, ललित-ललाम का सं० १७३८ और रसराज का सं० १७६७ के लगभग है। साहित्य-प्रौढ़ता की दृष्टि से रसराज ललित-ललाम से कहीं उच्च कोटि का ग्रंथ है और ऐसा होना साहित्यकला में समय और क्रमो-

कवि का परिचय

प्रोति के नियमानुसार स्वाभाविक भी है और इसी स्वाभाविक नियम के अनुसार वृत्तकौमुदी की रचना ललित-ललाम की रचना से कहीं अधिक प्रौढ़ और रसराज से कुछ ही कम होनी चाहिए थी, पर ऐसा न होकर वृत्तकौमुदी की रचना साहित्य-कला की कसौटी में ललित-ललाम की रचना से भी खोटी ठहरती है।

ऐसी अवस्था में वृत्तकौमुदी को लेकर साहित्यिकों में आज जो मत-भेद उपस्थित हो गया है उसको कोई विशेष महत्त्व देना उचित नहीं जान पड़ता और अब तक भूषण के संबंध में समष्टि रूप से विद्वानों की जो धारणा रही है उसी को प्राधान्य देकर नीचे संक्षिप्त रूप से उनका परिचय दिया जाता है, हाँ, जिस आधार पर मत-भेद उपस्थित हो गया है उसका आरंभ में ही उल्लेख कर देना और कोई विशेष महत्त्व न देने के कारणों का भी निर्देश कर देना ठीक समझा गया। अस्तु--

भूषण का जन्म कानपुर जिले में यमुना नदी के बाएँ किनारे पर स्थित टिकवाँपुर नाम के एक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था जिनके चार पुत्र थे—चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ (उपनाम जटाशंकर)। यह टिकवांपुर (त्रिविक्रम पुर) परगना व डाकखाना घाटमपुर में अकबरपुर बीरबल नामक गांव से दो मील की दूरी पर बसा है। कानपुर-हमीरपुर पक्की सड़क पर कानपुर से ३० वें और घाटमपुर तहसील से ७ वें मील पर 'सलेती' नाम के गाँव से टिकवांपुर केवल दो मील पड़ता है। अपना और अपने जन्मस्थान का परिचय कवि ने शिवराजभूषण में इस प्रकार दिया है--

> देसन देसन ते गुनी, आवत जाचन ताहि।
> तिनमें आयो एक कवि, भूषन कहियतु ताहि॥
> दुज कौनज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
> बसत तिविक्रम पुर सदा, तरनि तनूजा तीर॥
> बीर बीरबर से जहाँ, उपजे कवि अरु भूप।
> देव बिहारीश्वर जहाँ, विश्वेश्वर तद्रूप॥
> कुज सुलंक चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र।
> कवि भूषन पदवी दई, हृदयराम-सुत रुद्र॥

इस उद्धरण से और बातों के अतिरिक्त यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 'भूषण' यथार्थ में इनकी पदवी थी जो इन्हें चित्रकूटाधिपति हृदयराम सुत रुद्रराम सोलंकी ने दी थी। इनका वास्तविक नाम कुछ और ही रहा होगा। जिसका अभी तक हिंदी संसार को कुछ पता नहीं चला। अनुमान से पता चलता

है कि यह सं० १७२३ के लगभग रुद्रराम सोलंकी के दरबार में रहे होंगे। यह अनुमान गणना के आधार पर स्थित है और यह गणना भूषण की जन्म-तिथि के अनुसार होती है। यह जन्मतिथि भी बहुत कुछ अनुमान से ही स्थिर की गई है जैसा कि नीचे कहा जाता है।

खेद का विषय है कि भूषण के ग्रंथों से इनके जन्मकाल का कुछ पता नहीं चलता, और न मतिराम कृत रसराज या ललित-ललाम अथवा चिंतामणि कृत कविकुल-कल्पतरु से ही कुछ सहायता मिलती है। मतिराम और चिंतामणि कृत (अपूर्ण) पिंगल ग्रंथों से भी इस विषय पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता। ऐसी अवस्था में अनुमान के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

अन्य ग्रंथों से इस संबंध में कुछ सूचना नहीं मिलती, और जो मिलती भी है वह प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती। शिवसिंह-सरोज में भूषण का जन्म-काल सं० १७३८ लिखा है, परंतु यह असंभव है। शिवसिंह जी भूषण का शिवाजी के दरबार में रहना मानते हैं, परंतु प्रामाणिक इतिहासों के अनुसार शिवाजी का स्वर्गवास सं० १७३७ में ही हो गया था। ऐसी अवस्था में यदि शिवसिंह जी को दी हुई तिथि ठीक मानी जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि भूषण अपने जन्म के साल डेढ़ साल पहले ही शिवाजी के दरबार में पहुँच गए थे।

मिश्रबंधुओं का अनुमान है कि इनका जन्म सं० १६७० में हुआ होगा। परंतु इस अनुमान की आधारभित्ति नितांत दुर्बल है। वे भूषण-ग्रंथावली की बंगवासी वाली प्रति की भूमिका के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचते हैं। इस भूमिका में लिखा है कि भूषण के बड़े भाई चिंतामणि त्रिपाठी के ग्रंथ सं० १६८४-१७१३ तक बने, परंतु इस कथन की पुष्टि के लिये कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। जो हो, परंतु यदि यह कथन यथार्थ मान लिया जाय तो चिंतामणि का जन्म-काल सं० १६६८ के बाद का नहीं मानना चाहिये, क्योंकि १६ वर्ष की अवस्था के पहले साधारणतया कदाचित् ही कोई काव्य ग्रंथ रच सकता हो। चारों भाइयों में चिंतामणि सब से बड़े थे और उनके बाद ही भूषण का नंबर आता है। ऐसी अवस्था में भूषण का जन्म सं० १६६८ के दो या तीन साल बाद मानना चाहिये। इसी प्रकार के तर्क और अनुमान के आधार पर इनका जन्म सं० १६७० के आस पास माना जाता है।

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने द्वारा संपादित भूषण-ग्रंथावली में जो भूषण की जीवनी लिखी है उसमें वे लिखते हैं*--"मिश्रबंधुओं ने अनुमान लगा कर यह निश्चय किया है कि भूषण का जन्मकाल सं० १६९२ के लगभग हुआ।" मालूम नहीं त्रिपाठी जी ने मिश्रबंधुओं की कौन सी पुस्तक या लेख के

* रामनरेश त्रिपाठी ; भूषण-ग्रंथावली ; भूषण की जीवनी ; पृष्ट १।

आधार पर यह कहा है। मिश्रबंधु-विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४६६ में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि 'अनुमान से भूषण का जन्मकाल सं० १६७० है।" हिंदी-नवरत्न (नवीन संस्करण) पृ० ३८८ में वे लिखते हैं—"हम ने "भूषण-ग्रंथावली" की नवीन भूमिका में सप्रमाण लिखा है कि भूषण का जन्मकाल सं० १६७० के आस पास है और सं० १७७२ के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ मालूम होता है।" यद्यपि ग्रंथावली की भूमिका में जिस प्रकार के तर्क के आधार पर वह भूषण की जन्मतिथि निश्चित करते हैं उसे 'सप्रमाण' कहना युक्तिसंगत नहीं है। वे अपनी ग्रंथावली की भूमिका में भूषण-ग्रंथावली की बंगवासी वाली प्रति की भूमिका का हवाला देते हुए पृ० ९ में लिखते हैं—"इस 'हिसाब' से भूषण का जन्म सन् १६१४ ईसवी (अर्थात् सं० १६७१) के आस पास या उससे पहले का मानना पड़ेगा।" और यह 'हिसाब', जिससे मिश्रबंधु भूषण की जन्मतिथि सं० १६७० के लगभग स्थिर करते हैं, जैसा है, उसके विषय में ऊपर पर्याप्त विचार हो चुका है। ऐसी अवस्था में त्रिपाठी जी ने मिश्रबंधु ही के आधार पर भूषण की जन्मतिथि सं० १६९२ में कैसे स्थिर की यह समझ में नहीं आता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि प्रेस की असावधानी से त्रिपाठी जी की भूमिका में कुछ का कुछ छप गया हो क्योंकि वे भूषण की जीवनी पृ० १० में लिखते हैं—"अनुमान से सं० १७७२ में ८० वर्ष की अवस्था में भूषण ने शरीर त्याग कर अमरधाम की यात्रा की।" परंतु मिश्रबंधु की गणना के अनुसार भूषण का स्वर्गवास १०२ वर्ष की अवस्था में हुआ।

परंतु यह सब होते हुए भी यदि केवल अनुमान ही को सहारे भूषण की जन्मतिथि निश्चय करनी है तो यह कहना पड़ता है कि सं० १६७० में उनका जन्म और सं० १७७५ में मृत्यु मानने में कई प्रकार की अड़चनें पड़ती हैं जिनकी कदाचित मिश्रबंधुओं ने जान बूझ कर उपेक्षा कर दी है और जिनका कि आगे हम समय समय पर उल्लेख करते चलेंगे।

भूषण की जीवनी के संबंध में बहुत सी बातें हिंदी संसार को किंवदंतियों और जनश्रुतियों के आधार पर मालूम हुई हैं, परंतु उनके अतिरिक्त कवि के विषय में आभ्यंतरिक अथवा ऐतिहासिक प्रमाणों से भी कुछ विशेष जानने की सभी चेष्टाएँ अभी तक व्यर्थ हुई हैं। और यह भी कोई अच्छा तर्क नहीं है कि कोई भी बात किंवदंती अथवा जनश्रुति होने ही के कारण असत्य या अविश्वसनीय हो।

कहा जाता है कि भूषण पहले बिलकुल निकम्मे और मूर्ख थे और अपने बड़े भाई चिंतामणि की कमाई से ही ये घर बैठे मौज उड़ाते थे। एक बार खाते समय इन्हें नमक की आवश्यकता हुई और इन्होंने अपनी भौजाई से नमक माँगा, पर उन्होंने ताने से कहा 'नमक तो बहुत सा कमाकर रक्खे हो न जो तुम्हें जब जरूरत पड़े दे दिया करें।' यह बात इन्हें कुछ ऐसी लग गई कि बिना खाए ही

उठ खड़े हुए और बाहर निकल पड़े। चलते समय उन्होंने भावज से कह दिया कि 'अब नमक कमा के रख देंगे तभी भोजन करेंगे।' कहा जाता है कि इन्हें भावज के इस ताने से अपने निकम्मेपन पर बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई और ये किसी गुरु के पास जाकर बड़ी तत्परता से अध्ययन में लग गये। कुछ दिन बाद इन्होंने साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया और अच्छी कविता भी करने लगे। इस अध्ययन में इन्होंने कितना समय लगाया इसका कुछ ठीक नहीं, पर एक बात निश्चय रूप से यह कही जा सकती है कि इनका वास्तविक रचना-काल उस समय से आरंभ होता है जब ये हृदयराम सोलंकी के पुत्र रुद्रराम सोलंकी के दरबार में गए थे। क्योंकि इन्होंने शिवराज-भूषण में इनके यहां जाकर कविता सुनाने के उपलक्ष में कवि 'भूषन' को पदवी पाने का उल्लेख किया है। यह छंद ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। यह भी निश्चित है कि यहां से ये फिर रायगढ़, शिवाजी के दरबार में गए। कुछ लोगों का कहना है रुद्रराम के यहां से ये पहले दिल्ली, औरंगजेब के दरबार में गये जहां इनके बड़े भाई चिंतामणि पहले ही से रहते थे और जिन्हें बादशाह का छोटा भाई शाह शुजा विशेष रूप से मानता था। वहाँ ये वीर-रस की कविता करने वाले अकेले थे। कहते हैं कुछ दिन तक बादशाह के यहां इनका यथोचित सम्मान भी हुआ परंतु एक दिन बादशाह के यह कहने पर कि सब कवि मेरी प्रशंसा ही किया करते हैं, क्या मुझमें कोई दोष है ही नहीं? और यदि हैं तो कोई कहता क्यों नहीं? इस पर कहा जाता है कि भूषण ने बादशाह से अप्रसन्न न होने का वचन लेकर निम्नलिखित छंद पढ़ा—

किबले के ठौर बाप बादसाह साहजहाँ, ताको कैद कियो मानों मक्के आगि लाई है।
बड़ों भाई दारा बाको पकरि कै कैद कियो मेहर हू नाहि माँ को जायो सगो भाई है॥
बंधु तौ मुरादबक्स बादि चूक करिबे को बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है।
भूषन सुकवि कहै सुनौ नवरंगजेब एते काम कीन्हें फेरि पातसाही पाई है॥

इसे सुनते ही औरंगजेब अपने अभयदान का वचन भूल कर भूषण को वहीं मारने उठा था पर मंत्रियों ने समझा बुझा कर शांत किया। पर इसके बाद भूषण को उस दरबार से घृणा हो गई और औरंगजेब के घोर शत्रु शिवाजी के यहाँ चल पड़े।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि ये दिल्ली दरबार न जाकर सोलंकी के यहाँ से सीधे शिवाजी के यहां गए। परंतु इनका औरंगजेब के यहाँ जाना कई कारणों से सत्य जान पड़ता है, और उनमें सब से मुख्य यह है कि दिल्ली दरबार का, औरंगजेब के उठने बैठने की जगहों का तथा उसके स्नानागार (गुसलखाना) आदि का वर्णन कई बार इस प्रकार से किया है जैसा कि किसी अन्य कवि के द्वारा, जिसने उस दरबार को भली भांति देखा न हो, असंभव है। फिर ऊपर वाले

छंद में कवि प्रत्यक्ष रूप से औरंगजेब को संबोधन करके कहता हुआ प्रतीत होता है—"भूषन सुकवि कहै सुनौ नवरंगजेब।" हाँ एक बात अवश्य माननी पड़ेगी। यदि भूषण औरंगजेब के यहाँ गए भी तो बहुत थोड़े दिनों तक वहाँ रहे होंगे, कम से कम उस समय वे अवश्य दिल्ली दरबार में उपस्थित थे जब शिवाजी की उस दरबार में औरंगजेब की बात चीत हुई थी। क्योंकि दोनों महापुरुषों की उस ऐतिहासिक साक्षात्कार का इतना सजीव वर्णन जिसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण भी न छूटने पाए हों, वही कर सकता है जो वहां उपस्थित हो और जिसके नेत्र खुले हों। स्वजाति-प्रेम, सत्य-प्रियता, और स्पष्ट-वादिता आदि गुण तो इनमें (भूषण में) प्रचुर परिमाण में थे ही। जितने दिन भी ये औरंगजेब के यहाँ रहे हों ये इसी बीच में समझ गए होंगे कि उनके ऐसे स्वतंत्र विचार के और केवल उच्च भावों की ही क़दर करने वाले कवि के लिये औरंगजेब के दरबार में स्थान नहीं था। ऐसे ही अवसर पर उन्हें शिवाजी और औरंगजेब का साक्षात्कार देखने का सुयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने दोनों के स्वभाव की परख की ही होगी और ऐसी स्थिति में शिवाजी के प्रति उनकी भक्ति और सहानुभूति होनी स्वाभाविक थी और फिर शिवाजी के अपमान ने भूषण को और भी उत्तेजित कर दिया होगा। शिवाजी के दरबार से जाते ही इन्होंने भी दक्षिण जाने का निश्चय कर लिया होगा। या शिवाजी के जाने के बाद उमंग में आकर उनकी प्रशंसा में कुछ छंद इन्होंने औरंगजेब के दरबार में सुनाया हो जिन्हें सुन कर उसने क्रोध में आकर इन्हें अपमानसूचक कुछ वाक्य कह दिया हो या इन्हें अपने दरबार से चले जाने का हुक्म दे दिया हो और तब इन्होंने रायगढ़ की राह पकड़ी हो। परंतु मिश्रबंधु चिटणीस बखर के आधार पर यह नहीं मानते कि भूषण पहले औरंगजेब के यहां जाकर तब शिवाजी के यहां गए। चिटणीस की बखर हमारे देखने में नहीं आई है, परतु मिश्रबंधु कहते हैं कि उसमें लिखा है कि भूषण शिवाजी के ही यहां कुछ दिन तक रहे और फिर घर लौटे, और घर पर भी कुछ दिन तक रह कर तब चिंतामणि के कहने पर दिल्ली गये और वहां उन्होंने वीर-रस पूर्ण कुछ छंद शिवाजी की प्रशंसा में कहे और वे छंद कुछ ऐसे प्रभाव-शाली थे कि उनमें शत्रु की प्रशंसा रहते हुये भी उन्हें सुन कर बादशाह को सचमुच जोश आ गया और वह वीर-रस से प्रभावित हो मूछों पर ताव देने लगा। इस घटना की खबर शिवाजी के कानों तक पहुँची और उन्होंने भूषण को फिर अपने यहां बुलवा लिया। चिटणीस की बखर कहां तक प्रामाणिक ग्रंथ है अथवा कहां तक हम उसके विवरण को मानने के लिये बाध्य हैं इस विषय में यहां कुछ कहा नहीं जा सकता। परंतु इतना अवश्य कहा जायगा कि यदि इसके कथन को सत्य मान लिया जाय तो भूषण की जीवनी के संबंध में अब तक जो कुछ दो चार बातें आभ्यंतरिक प्रमाण, अनुमान, जनश्रुति या स्वाभाविकता आदि के आधार पर स्थिर हो चुकी हैं उन सभों में बड़ा उलट-फेर करना पड़ेगा। यद्यपि किसी अकाट्य या प्रबल प्रमाण के

सन्मुख अनुमान आदि की बातों का कोई मूल्य नहीं हो सकता परंतु इसके पहले बखर को अपनी अकाट्यता सिद्ध करनी है। बखर के कथन मान लेने से जिन बातों की गड़बड़ी हो सकती है उनका अनुमान ऊपर जो कहा गया है इससे सहज ही में लगाया जा सकता है। यहाँ अधिक पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं है, फिर भी एक मुख्य बात का संकेत कर दिया जाता है। यदि भूषण सीधे पहले शिवाजी ही के यहाँ गये तो यह तो मानना ही पड़ेगा कि वह वहाँ सूरत दिखाने नहीं गए थे। कुछ न कुछ कविता उन्होंने शिवाजी की प्रशंसा में अवश्य की होगी और तब घर लौटे होंगे। बखर का कहना है कि "कुछ दिन" रह कर तब भूषण घर लौटे थे। इस विषय पर सभी एक मत हैं कि भूषण का पहला उपलब्ध ग्रंथ 'शिवराज-भूषण' ही है, और इस ग्रंथ के आरंभ में ही रायगढ़ का वर्णन है। रायगढ़ में शिवाजी ने अपनी राजधानी औरंगजेब के यहां से लौटने के बाद स्थापित की थी। यह समय सं० १७२३ का है। इस समय के पहले ही शिवाजी और औरंगजेब का वह ऐतिहासिक साक्षात्कार, जिसका आंखों देखा सा वर्णन भूषण ने किया है, हो चुका था। और फिर मिश्रबंधु स्वयं निश्चय करके सप्रमाण दिखाते हैं भूषण सन् १६६७ ई० के अंत में अर्थात् सं० १७२४ में पहले पहल शिवाजी के दरबार में आए। अब यदि बखर की बात मानी जाती है तो यह भी मानना पड़ेगा कि भूषण शिवाजी और औरंगजेब की मुलाकात के समय में वहां उपस्थित नहीं थे और उनका उस समय का इतना सच्चा या सजीव वर्णन या तो काल्पनिक है या किसी से सुना हुआ। और फिर भूषण ऐसा स्वाभिमानी, स्वदेश-प्रेमी और राष्ट्रीय कवि एक बार शिवाजी के गुणों से परिचित होकर उनके यहां अश्रुतपूर्व सत्कार और सम्मान पाकर फिर औरंगजेब के यहां कैसे जाने पर तैयार होगा यह बात समझ में नहीं आती। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए यह मानना पड़ता है कि यदि भूषण कभी औरंगजेब के यहां गए तो शिवाजी के यहां जाने से पहले ही गए होंगे।

शिवाजी की और भूषण की पहली मुलाकात के संबंध में कई जनश्रुतियां प्रचलित हैं और उनमें सब से अधिक प्रचलित यह है। शिवाजी की राजधानी में भूषण संध्या समय पहुँचे और शहर के किनारे एक देवालय के पास एक कुएँ पर विश्राम करने के लिये ठहरे। महाराज शिवाजी की आदत थी वे प्रायः वेश बदल कर अपने राज्य में घूमने निकला करते थे और राज्य और प्रजा संबंधी बहुत सी उन गुप्त बातों का पता लगा लिया करते थे जो अन्यथा उनके कर्णगोचर न हो सकती थी। इसी रूप में संयोग से वह भी उसी समय घूमते फिरते वहां आ पहुँचे जहां भूषण विश्राम कर रहे थे। उन्होंने भूषण का परिचय प्राप्त करने या उनसे शिवाजी के संबंध की कुछ कविता सुनाने को कहा जिस पर उन्होंने शिवराज-भूषण का निम्न लिखित छंद सुनाया—

इंद्र जिमि जंभ पर, बाडव सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज हैं।
पौन बारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर, राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुम दंड पर, चीता मृग झुंड पर,
भूषन बितुंड पर, जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर, सेर सिवराज हैं।

यह छंद शिवाजी को इतना अच्छा लगा कि उन्होंने बार बार भूषण से पढ़वाया। अंत में अठारह बार पढ़ कर भूषण थक गए और आग्रह करने पर भी फिर पढ़ने से क्षमा मांगी। इस पर छद्मवेशी शिवाजी ने अपना परिचय देते हुए कहा—मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा कर ली थी कि जितनी बार आप इस छंद को पढ़ेंगे उतने ही लक्ष मुद्रा, उतने ही हाथी, और उतने ही गांव देकर मैं आपको सम्मानित करूँगा, परंतु आपके भाग्य में इतना ही बदा था। भूषण ने उनका परिचय प्राप्त कर बड़ा आनंद प्रगट किया और इसी एक छंद पर जो कुछ इन्हें दिया गया उस पर पूरा संतोष प्रगट किया। इसी समय से वे शिवाजी के राजकवि हो गए।

इसी समय (सं० १७२४) के आस पास भूषण ने 'शिवराज-भूषण' नामक ग्रंथ की रचना आरंभ की होगी जो अलकारों के क्रम से धीरे धीरे और क्रमशः हुई और सं० १७३० में समाप्त हुई। भूषण के समय में यही एक निश्चित तिथि है जिस का कि हम लोगों को पता है। इस का भूषण ने स्वयं अपने ग्रंथ की समाप्ति के समय इस प्रकार उल्लेख किया है—

सम सत्रह सै तीस पर, सुचि बदि तेरसि भान।
भूषन सिव भूषन कियो, पढ़ियो सकल सुजान॥

इस ग्रंथ को समाप्ति के उपरांत भूषण कुछ दिनों के लिये घर लौटे और लौटते समय छत्रसाल बुँदेला का भी आतिथ्य स्वीकार किया और कुछ छंद इनकी प्रशंसा में भी बनाए जो 'छत्रसाल-दशक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। और प्रस्तुत संग्रह में दिए गए हैं। छत्रसाल शिवाजी की वीरता और स्वदेश-प्रेम का बड़ा सम्मान करते थे और भूषण को कितना मानते थे यह भी उनसे छिपा नहीं था। यही सब सोच कर उन्होंने भूषण का असाधारण सम्मान किया। यहां तक कि कहा जाता है जब भूषण उन के यहां से बिदा हो पालकी पर सवार होकर चलने लगे तो छत्रसाल ने अपूर्व प्रेमभाव से प्रेरित हो, अपनी मान-मर्यादा आदि का कुछ ख्याल न कर कहारों के साथ स्वयं भी इनकी पालकी में अपना कंधा लगा

दिया था। पर भूषण यह देखते ही तुरत यह कहते हुए कि 'बस महाराज बहुत हुआ', पालकी पर से कूद पड़े। इस से पता चलता है कि उस समय के राजे-महराजे कवि और कविता का कितना आदर करते थे।

भूषण जब घर लौटे तो उन के पास प्रचुर धनसंपत्ति इकट्ठा हो गई थी और कहा जाता है कि इन का रहन-सहन और ठाट-बाट राजा-महाराजां से कम न था। फिर भी कदाचित् केवल यही जानने के लिये कि देखें अन्य दरबारों में मेरा कैसा सम्मान होता है, दो एक बार और रजवाड़ों में भी गए थे।

शिवाजी के यहां से लौट कर कुछ दिन आराम से घर रह कर भूषण कुमायूँ महाराज के दरबार में गए और वहां निम्न-लिखित छंद पढ़ा--

उदलत मद अनुमद ज्यों जलधि जल,
बलहद भीम कद काहू के न आह के।
प्रबल प्रचंड गंड मंडित मधुप वृंद,
विंध्य से बुलंद सिंधु सात हू के थाह के।
भूषन भनत झूल झंपति झपान झुकि,
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के।
मेघ से घमंडित मजेजदार तेज पुंज,
गुंजरत कुंजर कुमाऊँ नरनाह के॥

पर कुमायूँ महाराज ने कदाचित यह नहीं सुना था कि भूषण का शिवाजी और छत्रसाल के यहां कितना अधिक सम्मान हुआ है, और शायद सुनने पर भी उन्होंने इसे कोरी गप्प ही समझते हो। संभवतः इसी कारण से वे कुछ वैसा सम्मान दिखाना ठीक न समझ कर एक लाख रुपया देने लगे। पर भूषण को रुपयों की आवश्यकता नहीं थी, वे केवल आदर और स्नेह के भूखे थे, इसी से वे कुमायूँ महाराज की दानशीलता पर उन्हें बधाई देते हुए वहां से उक्त दान को सहर्ष अस्वीकार कर चले आए। किवदंती है कि उन्होंने चलते समय महाराज से कहा था कि अब मुझे रुपये की चाह नहीं, मैं तो केवल यह देखने यहाँ आया था कि महाराज शिवाजी का यश यहाँ तक पहुँचा है कि नहीं।

थोड़े दिनों के बाद यह फिर शिवाजी के यहां गए और समय समय पर उनके संबंध की रचना करते रहे होंगे। यह कथन भी अनुमान ही के आधार पर है। यह तो निश्चय है ही कि शिवराज-भूषण के अतिरिक्त भूषण ने और भी बहुत सी स्फुट कविता शिवाजी के संबंध में की थी और उनमें से अधिकांश शिवाबावनी में संग्रहीत हैं। और यह बात सभी धारणाओं के प्रतिकूल जान पड़ती है कि भूषण ने पहली ही यात्रा में शिवाजी संबंधी अपनी सभी रचनाएँ पूरी कर डाली हों।

इतिहास से भी इसी मत की पुष्टि होती है। इस दूसरी यात्रा में शायद भूषण जी शिवाजी के मृत्युकाल तक (सं० १७३७) उनके दरबार में रहे और फिर घर लौट आए। परंतु छत्रसाल के यहां इनका आना जाना बीच बीच में अवश्य होता रहा होगा क्योंकि इनके (छत्रसाल के) संबंध की इनकी कविता शिवाजी के उत्तराधिकारी साहुजी के समय तक की मिलती है।

स० १७६४ में साहुजी को दिल्ली से छुटकारा मिला और जान पड़ता कि उस समय भूषण जी अवश्य इनके पास गये होंगे। भूषण के उस प्रसिद्ध छंद से जिसमें वे इस दुविधा में पड़े हुए दिखाई पड़ते हैं कि साहू की सराहना करें या छत्रसाल की, उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। वह छंद इस प्रकार है:—

राजत अखंड-तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन उर साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मनमैं न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥

इस छंद से यह स्पष्ट है कि शिवाजी के द्वारा किए गए भूषण के सम्मान का स्मरण रखते हुए साहु जी ने भी इनका यथोचित सम्मान किया होगा।

इस उपर्युक्त छंद की रचना के पहले भूषण मतिराम के कहने से बूँदी-नरेश राव बुद्धसिंह के दरबार में भी गए थे, और वहाँ उन्होंने उनके वृद्ध प्रपितामह सुप्रसिद्ध महाराज छत्रसाल हाड़ा के संबंध में दो छंद (छत्रसाल-दशक छंद नं० १ व २) कहे थे और राव बुद्धसिंह की प्रशंसा में निम्नलिखित छंद कहा था:—

रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जु नाँगी डार काहूके डरै नहीं।
भोजन बनावै नित चोखे खानखानन के,
सोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं।
उगिलत आसौ तऊ सुकल समर बीच,
राजै राव बुद्ध कर विमुख परै नहीं।
तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौ लौं,
जौ लौं राज राजन की गजक करै नहीं।

राव बुद्धसिंह जी हिंदी कविता के रसिक थे और इन्हीं के दरबार में भूषण के भाई मतिराम रहते थे और जान पड़ता है इन्हीं के आग्रह से भूषण जी ने वृद्धावस्था में इतनी दूर जाने का कष्ट उठाया होगा। परंतु जहाँ तक प्रतीत होता है राव साहब का सम्मान भूषण को पसंद नहीं आया और वे वहां से मन ही मन असंतुष्ट होकर लौटे। यदि मतिराम का ख्याल न होता तो वे उन्हें कुछ फटकार भी सुना दिए होते, परंतु बहुत कुछ सोच समझ कर वहाँ उन्हों ने कुछ कहना ठीक नहीं समझा। ऊपर जो साहू जी के संबंध का छंद उद्धृत किया गया है उसमें जान पड़ता है "और 'राव राजा' एक मन मैं न ल्याऊँ अब" कहते समय इन्हें राव बुद्धसिंह का ही अपने प्रति किया हुआ अपर्याप्त सम्मान उनके मन में था। यों तो 'राव राजा' शब्द बहुतों पर लागू हो सकता है, परंतु स्मरण रखना चाहिए कि सं० १७६४ में जाजमऊ की लड़ाई जीतने पर औरंगजेब के पुत्र बहादुर शाह ने बुद्धसिंह जी को 'राव राजा' की पदवी दी थी और ये १७६३ में गद्दी पर बैठे थे और इन घटनाओं के थोड़े दिन बाद ही (सं० १७६७ के लगभग) भूषण दरबार में गए होंगे। उक्त छंद की रचना इसी समय के आस पास हुई जब ये बूँदी दरबार से असंतुष्ट से होकर छत्रसाल के यहाँ होते हुए घर लौटे। इन्हीं सब बातों से यह अनुमान दृढ़ होता है कि उक्त छंद में 'राव राजा' शब्द से बुद्धसिंह की ही ओर भूषण का संकेत था।

इसी समय के आस पास भूषण का रचना-काल भी प्रायः समाप्त होता है। इस धारणा का आधार यह है कि बुद्धसिंह और साहू के संबंध के जो दो छंद ऊपर उद्धृत किए गए हैं उनमें जिस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है उनके बाद की किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन इनके अन्य किसी छंद में नहीं मिलता। राव बुद्धसिंह के यहां वह सं० १७६४ के पहले न गए होंगे क्योंकि सं० १७६३ में ही वे राजगद्दी पर बैठे थे। इसी से अनुमान किया जाता है कि इस समय (१७६४) बूँदी से लौटने के कुछ समय बाद ही उस 'रावराजा' वाले छंद की रचना हुई होगी और यह समय सं० १७६७ के आस पास मानना चाहिए। इसके बाद के समय से संबंध रखने वाली भूषण की कोई प्रामाणिक कविता नहीं मिलती। मिश्रबंधुओं का कथन है कि सं० १७७२ तक भूषण के जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। और वह प्रमाण भूषण का साहु जी के संबंध का वह छंद है जिसमें उनके राज्य के भली भाँति स्थापित हो जाने के बाद उनके ऊपर धावे का वर्णन है। वह इस प्रकार है:—

बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारे,
कपि लौं पुकारै कोऊ धरत न सार है।
रूम रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै खाक,
खादर लौं झरै ऐसी साहु की बहार है।

फक्कर लौं बक्खर लौं मक्कर लौं चले जात,
तक्कर लेवैया कोऊ वार है न पार है।
भूषन सिरोज लौं परावने परत फेरि,
दिल्ली पर परति परिंदन की छार है।

मिश्रबंधुओं का कहना है कि यह छंद उस समय का है कि जब साहू जी का राज्य भली भाँति स्थापित हो चुका था और उन्होंने उत्तर का धावा किया था। परंतु प्रथम तो इतिहास से कभी भी साहूजी के बलख बुखारे या रूम पर चढ़ाई के वृत्तांत की पुष्टि नहीं होती और भूषण ने यद्यपि अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन बहुत किए हैं पर उनके मूलकथन इतिहासविरुद्ध कदाचित ही कभी हुए होंगे और इस विचार से इस छंद के भूषण के होने में भी संदेह हो सकता है। यह बहुत से उन स्फुट छंदों में से है जो भूषण के कहे जाते हैं और यदि इसी प्रकार के छंदों को प्रमाण माना जाय तो भूषण का रचना काल सं० १७९७ तक मानना चाहिए क्योंकि असोथर के महाराज भगवंत राय खींची की मृत्यु पर शोक प्रगट करनेवाला निम्नलिखित छंद भूषण कृत कहा जाता है:—

उठि गयो आलम सों रुजुक सिपाहिन को,
उठि गो बँधैया सब बीरता के बाने को।
भूषन भनत उठि गयो है धरा सो धर्म,
उठि गो सिँगार सबै राजा, राव राने को।
उठि गो सुकवि सील, उठिगो जसीलो डील,
फैलो मध्य देश में समूह तुरकाने को।
फूटे भाल भिच्छुक के जूझे भगवंत राय,
अरराय टूट्यो कुल खंभ हिंदुआने को।

भगवंत राय खीची सं० १७९७ में मरे थे, और यदि भूषण का जन्म सं० १६७० में होना ठीक है तो इस हिसाब से उनकी मृत्यु १२७ वर्ष की अवस्था में माननी पड़ेगी। मिश्रबंधुओं ने उपर्युक्त छंद को जिस प्रकार के तर्क से अप्रामाणिक सिद्ध करने का कष्ट उठाया है उसी ढंग से, बल्कि उनसे भी प्रबल तर्क बलख बुखारे की चढ़ाई वाले छंद को अविश्वसनीय सिद्ध करने के लिए काम में लाए जा सकते हैं।

इस समय (सं० १७६७) के बाद संभव है भूषण कुछ दिन और जीवित रहे हों पर इस समय उनकी अवस्था सौ वर्ष के करीब पहुँच चुकी थी और यह हम निश्चित रूप से जानते हैं कि भूषण को जीविका या धन के लिए रजवाड़ों में घूमने की आवश्यकता का अंत महाराज शिवाजी बहुत पहले ही कर चुके थे।

केवल स्नेह के वशीभूत होकर भी इस अवस्था में भूषण ऐसे स्वतंत्र प्रकृति और ठाट-बाट से रहने वाले कवि के लिए किसी दूर देश की यात्रा करना एक प्रकार से असंभव ही था।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए भूषण के रचना-काल का अंत १७६७ के पहले पहले ही मानना उचित जान पड़ता है। रह गया यह प्रश्न कि उनकी मृत्यु किस संवत् में हुई। मिश्रबंधु के अनुसार उनकी मृत्यु सं० १७७२ में हुई। यद्यपि उनके मरण के वास्तविक सन्-संवत् का निर्णय करने के लिये अभी तक कोई प्रमाण किसी को नहीं मिल सका है, तथापि यह मान लेने में कोई विशेष आशंका नहीं है कि इसी समय के आस पास, संभवतः कुछ पहले ही भूषण की मृत्यु हुई होगी। बलख बुखारे की चढ़ाई वाले छंद को 'प्रमाण' मानने पर भी केवल यही सिद्ध होता है कि सं० १७७२ में भूषण जीवित थे, और कविता करते थे। संभव है कि इस के बाद भी, साहित्यसेवा से विदा लेकर, वे कुछ वर्ष जीवित रहे हों। ऐसी अवस्था में सं० १७७२ को भूषण का मृत्युसंवत् मानना और उसे प्रमाणों से सिद्ध किया हुआ न कह कर यही कहना समीचीन हो सकता है कि इसी समय (सं० १७७२) के आस पास उनकी मृत्यु हुई। इनके जन्म और मरण दोनों का समय सदिग्ध है और जो कुछ अभी तक इस संबंध में निर्धारित हो सका है वह दुर्बल प्रमाणों के आधार पर अवलंबित है। हाँ इतना निश्चय रूप से मानने में कोई भय नहीं है कि भूषण की मृत्यु के संबंध में जो तिथि (सं० १७७२) मानी जाती है वह सत्य के अधिक निकट है। जन्मतिथि (सं० १६७०) के अनुमान के आधार तो नितांत निर्बल हैं। इस तिथि के अनुसार भूषण का रचना-काल उन की पचास वर्ष की अवस्था से आरंभ होता है। यद्यपि भूषण के बारे में यह प्रसिद्धि है कि वह पहले बहुत निकम्मे थे और पढ़े लिखे न थे पर तो भी पचास वर्ष का समय बहुत होता है। इस अवस्था में प्रायः लोग बूढ़े हो चलते हैं। और फिर भूषण के संबंध में यह भी प्रसिद्धि है कि वह बहुधा रण-क्षेत्र में शिवाजी के साथ भी जाया करते थे। राजसी ठाट से रहने वाले भूषण ऐसे कवि के लिये साठ या सत्तर वर्ष की अवस्था में लड़ाई के मैदान की सैर करना भी कुछ अस्वाभाविक सा जँचता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए भूषण की निर्धारित जन्मतिथि (सं० १६७०) इनकी वास्तविक जन्मतिथि के बहुत पहले की जान पड़ती है।

भूषण के परिवार के संबंध में कुछ विशेष नहीं ज्ञात हो सका है। मतिराम और चिंतामणि इनके भाई थे और इस के यथेष्ट प्रमाण भी मिलते हैं। यद्यपि ये प्रमाण आभ्यंतरिक नहीं हैं तो भी इनकी सत्यता में संदेह न होना चाहिए। 'वंश-भास्कर' सं० १७९७ का ग्रंथ है। इसमें लिखा है कि "जेठो भ्राता भूपनरु मध्य मतिराम तीजो चिंतामनि विदित भये ये कविता प्राचीन", 'मनोहर-प्रकाश'

नामक सं० १९५२ के एक ग्रंथ से भी, चिंतामणि, भूषण, मतिराम, और जटाशंकर का भाई होना सिद्ध होता है। मीर .गुलाम अली ने 'तज़करए सर्व आज़ाद' में लिखा है--"चिंतामणि कविता विचार का कर्त्ता कोड़े--जहानाबाद का रहने वाला था। इसके बाद दो भाई भूषण और मतिराम थे जो अच्छे शायर थे। चिंतामणि संस्कृत का बड़ा पंडित था और शाहजहां के बेटे शाहशुजा की सरकार में बड़ी इज्ज़त से रहता था।" 'तज़करए सर्व आज़ाद' सं० १८०८ में बना था।

भूषण के ग्रंथ

'शिवसिंह-सरोज' के अनुसार भूषण ने चार ग्रंथ लिखे--(१) शिवराज भूषण (२) भूषण हजारा (३) भूषण उल्लास (४) दूषण उल्लास। परंतु अभी तक इन में से 'शिवराज भूषण' के अतिरिक्त अन्य किसी का पता नहीं चला है। 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल दसक' कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है।

शिवाबावनी के संबंध में यह कथा प्रचलित है। भूषण जब शिवाजी से मिलने के लिये पहले पहल रायगढ़ गए थे तो संध्या समय इनसे और 'छद्म वेशी शिवाजी से शहर के एक किनारे एक देवालय के पास साक्षात्कार हुआ था। इस समय इन्होंने शिवाजी को जो कविता सुनाई थी उसके संबंध में दो भिन्न भिन्न किंवदंतियाँ हैं। एक के अनुसार तो इन्होंने "इंद्रजिमि जंभ पर······" वाला छंद अठारह बार पढ़ा था। इस के संबंध में ऊपर कहा जा चुका है। दूसरी के अनुसार इन्होंने भिन्न भिन्न बावन छंद सुनाए और वही आगे चल कर 'शिवा बावनी' के नाम से प्रसिद्ध हुए। परंतु इन छंदों में वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं के समय पर विचार करने से यह किंवदंती अप्रामाणिक सिद्ध होती है। इन्होंने 'शिवराज भूषण' सं० १७३० में समाप्त किया था, और इस किंवदंती के अनुसार 'शिवा बावनी' के छंदों की रचना 'शिवराज-भूषण' के रचनाकाल के पहले माननी पड़ेगी और ऐसी अवस्था में इस में सं० १७३० के बाद की घटनाओं का वर्णन तथा शिवाजी के अतिरिक्त अन्य राजाओं का यशगान असंभव तथा अस्वाभाविक होगा। परंतु इस में करनाटक की चढ़ाई (जो सं० १७३५ में हुई थी) का वर्णन और शिवाजी से भिन्न दो एक राजाओं का कीर्तिगान है। और फिर इस में स्वतंत्र ग्रंथ के कोई भी चिन्ह नहीं हैं। इस में आद्योपांत न कोई प्रबंध है और न एक छंद से दूसरे छंद का घटनाक्रम के अनुसार कोई पूर्वापर संबंध ही है। इस का वंदना वाला छंद शिवराज भूषण से लिया गया है। 'शिवा बावनी' के और भी कई छंद शिवराज भूषण में तथा इन के स्फुट छंदों में मिलते हैं। मिश्रबंधुओं ने इस प्रकार के तथा उन छंदों को जो शिवाजी से संबंध नहीं रखते, शिवाबावनी से निकाल उन के स्थान पर स्फुट छंदों में से अन्य उपयुक्त छंदों को लेकर 'बावनी' पूरी कर दी है। मिश्रबंधुओं ने बड़े परिश्रम से घटनाक्रम के अनुसार छंदों को क्रम से सजा कर रख दिया है। प्रस्तुत संग्रह भी मिश्रबंधुओं की 'ग्रंथावली' से ही संगृहीत है।

वास्तव में 'शिवा-बावनी' नाम पहले पहल किसने रखा यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। यह तो निश्चय है कि भूषण ने इस नाम से कोई ग्रंथ नहीं लिखा और न तो उन्होंने अपनी किसी भी रचना विशेष को ही यह नाम दिया; और न भूषण के किसी आधुनिक संपादक ने ही ऐसा किया है। 'शिवसिंह-सरोज' में भी इसका उल्लेख नहीं है, और इससे यह अनुमान किया जा सकता है किसी अज्ञात सज्जन ने 'सरोज' के रचना काल के बाद 'बावनी' का संग्रह किया होगा।

छत्रसाल-दशक

'शिवा-बावनी' की तरह 'छत्रसाल-दशक' भी भूषण का कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। यह छत्रसाल संबंधी दस स्फुट छंदों का संग्रह मात्र है। पहले पहल किसने संग्रह करके इसको इसका वर्तमान रूप दिया इसका कुछ पता नहीं है। भूषण के समय में छत्रसाल नाम के दो राजा थे—एक बुँदेलखंड के छत्रसाल बुँदेला और दूसरे बूँदी के छत्रसाल हाड़ा। भूषण के छंद छत्रसाल बुँदेला से संबंध रखते हैं। मिश्रबंधुओं के संग्रह में कुछ छंद ऐसे हैं जो छत्रसाल हाड़ा से संबंध रखते हैं परंतु वे भूषण के छंद नहीं जान पड़ते। पं० रामनरेश त्रिपाठी का कहना है कि वे बूँदी के 'लाल' कवि के हैं ('छत्र-प्रकाश' के रचयिता गोरेलाल नहीं) भूषण ने अपने छंदों में अपना नाम डाल कर उनमें मुहर लगा दी है, पर इन छंदों में उनका नाम नहीं है। वे छंद ये हैं:—

(१)

चले चंदवान घनबान औ कुहूकबान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।
चली जम डाढैं बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ,
लोह आँच जेठ के तरनि मान है रहो।
ऐसे समै फौजें बिचलाईं छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाये पायँ बीर रस च्वै रहो।
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चला चली में अचल हाड़ा है रहो।

(२)

निकसत म्यान ते मयूखैं प्रलै भानु कैसी,
फारैं तमतोम ज्यों गयंदन के जाल को।
लागत लपटि कंठ बैरिन के नागिन सी,
रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन के माल को।

लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देत काल को।

(३)

दारा और औरंग लरें हैं दोऊ दिल्लीवाल,
एक भाजि गयो एक मारे गये चाल में।
बाजी करि दगाबाजी जीवन न राखत है,
जीवन बचाये ऐसे महाप्रलै काल में।
हाथी ते उतरि हाड़ा लड़्यो लोह लंगर दै,
कहै लाल वीरता विराजै छत्रसाल में।
तन तरवारिन में मन परमेसुर में,
प्रान स्वामि कारज में माथो हर माल में।

इनमें से पहला तो न जाने किस कवि का है। दूसरे और तीसरे के रचयिता त्रिपाठी जी के अनुसार 'लाल' कवि हैं। परंतु यह निश्चय रूप से नहीं कहना चाहिए कि ये लाल ही के हैं। त्रिपाठी जी के पाठ में ऊपर के नं० ३ वाले छंद में "कहै 'लाल'" पाठ है परंतु मिश्रबंधुओं के पाठ में 'लाल' शब्द नहीं आया है, उसमें यह पंक्ति इस प्रकार है—"एती लाज का में जेती लाज छत्रसाल में।" पाठांतर प्राय: एकाध शब्दों का हुआ करता है। यहाँ तो पूरी आधी पंक्ति ही के पाठ भिन्न-भिन्न हैं। त्रिपाठी जी के उद्धरण में—'एती लाज का में जेती लाज छत्रसाल में' के स्थान पर 'कहै 'लाल' वीरता विराजै छत्रसाल में' से केवल पाठांतर का ही बोध नहीं होता बल्कि उससे स्पष्ट हो जाता है कि यह छंद 'भूषण' का न होकर 'लाल' नामक किसी कवि का है। यहाँ पर सब गड़बड़ी इस कारण से हुई कि इस छंद में 'भूषण' का नाम नहीं है। यह निर्णय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है कि पाठ किस का शुद्ध है, त्रिपाठी जी का अथवा मिश्रबंधुओं का। परंतु कुछ छंदों में भूषण का नाम न होने के कारण से ही यदि इस प्रकार की विच्छृंखलता उपस्थित की जाने लगे तो पुराने कवियों का संपादन कठिन ही नहीं असंभव हो जायगा। ऊपर उद्धृत छंद नं० २ में भी 'लाल' शब्द आया है और त्रिपाठी जी के पाठ में यह शब्द इनवर्टेड कामा (' ') के अंदर है और मिश्रबंधुओं की प्रति में साधारण शब्दों की तरह। मिश्रबंधु इसे इसके साधारण अर्थ में लेते हैं और त्रिपाठी जी इस किसी 'लाल' कवि का नाम समझ कर छत्रसाल दशक से इसे

निकाल देते हैं। यह दूसरी समस्या है। प्रायः सभी छंदों में ऐसा कोई न कोई शब्द मिल ही जायगा जिसे यदि कोई चाहे तो किसी मनुष्य का नाम कह सकता है। बूँदी के दरबार के किसी 'लाल' कवि के ग्रंथ हमने नहीं देखे हैं। और फिर त्रिपाठी जी के इस कथन की सत्यता में कि 'मेरी जानकारी में बूँदी के छत्रसाल के लिये भूषण ने कोई छंद नहीं बनाया' संदेह है। इस बात को तो सभी मानते हैं कि भूषण अपने भाई मतिराम के साथ बूँदी दरबार में गए थे और फिर वहाँ उन्होंने रावराजा बुद्धसिंह के विषय में छंद बनाए थे। और फिर बूँदी के छत्रसाल हाड़ा से संबंध रखने वाले दो दोहे त्रिपाठी जी ने भी अपने छत्रसाल-दशक में क्यों रक्खे हैं? यदि उन्हें निश्चय था कि भूषण ने छत्रसाल हाड़ा के संबंध में कुछ नहीं लिखा तो शिवसिंह-सरोज में उन दो दोहों का होना ही उन्हें संग्रह में सम्मिलित कर लेने का कोई कारण नहीं होना चाहिए था। यदि मिश्रबंधु भ्रांति कर सकते हैं तो शिवसिंह सेंगर भी भ्रांति कर सकते हैं।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमने प्रस्तुत संग्रह में छत्रसाल-दशक में मिश्रबंधुओं के ही छंद रखे हैं।

भूषण की कविता

भूषण की भाषा विशेषतया ब्रजभाषा है। कभी कभी इनकी भाषा में अपभ्रंश, बुँदेलखंडी और खड़ी बोली के शब्द या मुहाविरे भी देखने में आजाते हैं, पर बहुत कम। इसके अतिरिक्त इनकी भाषा में कहीं कहीं फ़ारसी या अरबी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं परंतु बहुत विकृत रूप में। जैसे 'जापता', 'गाली', 'गुसुलखाना', 'सिलहखाना', 'दरियाव' इत्यादि। यह फ़ारसी के विद्वान् तो शायद नहीं थे क्योंकि प्रायः इनके फ़ारसी आदि के प्रयोग मुहाविरे की दृष्टि से असंगत हैं। परंतु उस समय का वातावरण ही ऐसा था कि सर्वसाधारण का इस भाषा के बहुत से चलते शब्दों से परिचय हो गया था।

इनकी कविता में मुख्य रस 'वीर' है और उसी के सहायक के रूप में रौद्र, वीभत्स और भयानक रसों के भी बहुत से उदाहरण मिलते हैं। भूषण के संबंध में सब से विचित्र बात यही है कि इन्होंने ऐसे समय में वीररस और केवल वीर-रस की कविता की जब कि हिंदी कविता में शृंगार और उसमें भी नायक-नायिका-भेद और नख-सिख के सिवा और कुछ कोई लिखता ही न था। भूषण ने यद्यपि उस समय की प्रथा के अनुसार एक अलंकार-ग्रंथ लिखा पर उसमें उदाहरण सभी वीर-रस से संबंध रखने वाले हैं। इन्होंने शायद कसम खाने के लिए ही एक छंद शृंगार-रस से संबंध रखने वाला लिखा है पर उसमें भी रूपक वीर-रस का ही बांधा गया है! वह छंद देखियेः—

नैन जुग नैनन सों प्रथमैं लड़े हैं धाय,
अधर कपोल तेऊ टारे नाहिं टरि हैं।

अड़ि अड़ि पिलि पिलि लड़े हैं उरोज वीर,
देखो लगे सीसन पै घाव ये घनेरे हैं।
पिय को चखायो स्वाद कैसो रति-संगर को,
मचे अंग अंगनि ते केते मुठभेरे हैं।
पाछे परे बारन कौ बाँधि कहै आलिन सों,
भूषन सुभट ये ही पाछे परे मेरे हैं॥

भूषण के समय के अधिकतर कवि, आचार्य और कवि दोनों ही बनने की चेष्टा करते थे। उस समय कुछ प्रथा ही ऐसी चल पड़ी थी कि बिना कोई अलंकार ग्रंथ लिखे किसी कवि का रंग जमता ही न था। इसी प्रथा के अनुसार भूषण ने भी एक अलंकार ग्रंथ ('शिवराज-भूषण') लिखा। परंतु केवल कविता की दृष्टि से 'शिवा-बावनी' के छंद 'शिवराज-भूषण' के छंदों से कहीं अधिक प्रौढ़ हैं। दूसरे शब्दों में भूषण की गिनती हिंदी के महाकवियों में 'शिवराज-भूषण' के गुणों से नहीं बल्कि उनके वीर रस के उन स्फुट छंदों के प्रभाव से हुई है जो शिवा-बावनी और 'छत्रसाल-दशक' में संगृहीत हैं। 'दशक' के छंद 'बावनी' के छंदों से भी अधिक ओजपूर्ण हैं, और कुछ फुटकर छंद जो अभी तक संगृहीत नहीं हैं, वीर-रस की रचना के सर्वोत्कृष्ट नमूने कहे जा सकते हैं। इन्हीं छंदों के कारण भूषण हिंदी कविता के 'भूषण' हो सके हैं। एक अलंकारी कवि की हैसियत से तो इनका स्थान साधारण है। इनके कई एक अलंकारों की परिभाषा चिंत्य और उदाहरण असंगत जान पड़ते हैं। जान पड़ता है अलंकार-ग्रंथ लिखने में इनकी वीर-रस की ओर झुकी हुई प्रतिभा को अपना विकसित रूप दिखाने का अवसर नहीं मिला। वह विषय इनकी अंतःप्रकृति के प्रतिकूल था। हिंदी के कवियों में यही एक इतने स्वदेश और स्वजातिप्रेमी हुए हैं। इन्होंने उदाहरणों में प्रायः सर्वत्र ऐसे छंदों को रखने की चेष्टा की है जिनसे इनके देश (हिंदुआने') जाति और आदर्श वीरों का गौरव सूचित हो। परंतु सभी अलंकारों के निरूपण में इस प्रकार के छंद देना बहुत असुविधाजनक था। इसी कारण से अपने अलंकार-ग्रंथ को भूषण इतना उत्कृष्ट नहीं बना सके जितना कि वह चाहते थे।

भूषण का स्वदेश और स्वजातिप्रेम कभी कभी औचित्य की सीमा को लाँघ जाता था। प्राय: इनकी कविता में मुसलमानों के विरुद्ध ऐसी उक्तियां मिलती हैं जो आज कल बहुत आपत्तिजनक कही जा सकती हैं। परंतु इतिहास के जानने वालों को यह मालूम है कि औरंगजेब के समय में इन दोनों जातियों में वैमनस्य और द्वेष की मात्रा कितनी बढ़ गई थी। भूषण तो कवि थे, और एक कवि की हैसियत से इन में निरंकुशता और उद्दंडता किसी सीमा तक क्षमा की जा सकती है। परंतु किसी भी इतिहास-लेखक में यह दोष कदापि

क्षम्य नहीं हो सकता। इस समय के अधिकांश मुसलमान इतिहास-लेखकों के पास हिंदू राजाओं के लिए 'कुत्ते', 'चोर' चूहे' और रानियों के लिए 'कुतिया' आदि से अच्छे कोई शब्द नहीं थे। परंतु भूषण की उक्तियां कहीं भी इस प्रकार जान बूझ कर अपमानसूचक आक्षेप के रूप में नहीं दिखाई पड़तीं। इन्हें केवल एक प्रकार की 'मीठी चुटकी' कहना ही हम ज्यादा ठीक समझते हैं।

ऐतिहासिक महत्त्व

भूषण की कविता में बहुत सी तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख हुआ है और काव्योचित अतिशयोक्ति और निरंकुशता को बाद देने पर वे अधिकांश में सत्य हैं। इस में सब से अधिक महत्त्व पूर्ण घटना शिवाजी द्वारा अफ़ज़ल खां का बध है। इस घटना के संबंध में दो मत हैं। आज कल के अधिकतर प्रचलित इतिहासों में यही लिखा जाता है कि शिवाजी ने धोखे से अफ़ज़ल खां को मार डाला। परंतु किसी ने इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता न समझी कि शिवाजी के दरबारी कवि भूषण ने इस घटना के संबंध में क्या कहा है। भूषण के अनुसार अफ़ज़ल खां ने ही पहले धोखे से कटार मारी थी। पर शिवाजी कपड़ों के नीचे एक पतला मगर मज़बूत बख़्तर सदा पहने रहते थे। इस से कटारी अपना काम न कर सकी पर इसके बाद ही शिवाजी ने क्रुद्ध होकर 'बीछू' से उसका पेट फाड़ डाला। भूषण के इस कथन को बंगाल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक डाक्टर सरकार ने अपने 'शिवाजी' नामक अंग्रेज़ी ग्रंथ में प्रमाण रूप से उद्धृत किया है। डाक्टर सरकार स्वीकार करते हैं कि भूषण शिवाजी के दरबारी कवि थे और उन्होंने अफ़ज़ल खां की मृत्यु का वर्णन ठीक ठीक किया है। हमारा विश्वास है कि भूषण के छंदों से और भी कितनी ही संदिग्ध ऐतिहासिक घटनाओं के सत्यासत्य का निर्णय हो सकता है। परंतु बड़े खेद का विषय है कि न जाने क्यों हिंदी के प्रायः सभी कवियों के सम-कालीन इतिहास से संबंध रखने वाले वर्णन प्रायः अविश्वास की दृष्टि से देखे जाते हैं। इस देश के भी इतिहास-लेखक अधिकतर इस प्रकार के वर्णनों की परीक्षा करना समय नष्ट करना समझते हैं।

छंद

भूषण की कविता में दस प्रकार के छंद व्यवहृत हुए हैं। उनके नाम ये हैं :— (१) मनहरण, (२) छप्पय, (३) रोला, (४) दोहा, (५) हरिगीतिका, (६) मालती सवैया, (७) किरीटी, (८) माधवी, (९) अमृत ध्वनि, (१०) गीतिका।

इन में मनहरण' और 'मालती सवैया' की संख्या सब से अधिक है। 'बावनी', 'दशक' और फुट कर छंद प्रायः सब इन्हीं दोनों में हैं। और प्रकार के छंद शिवराज भूषण में काम में लाए गए हैं।

प्रस्तुत संग्रह में हमने शिवराज-भूषण से छंद नहीं लिए हैं। उनका संग्रह अलंकृत-काल के कवियों के संग्रह के साथ दूसरी जिल्द में होगा। संगृहीत अंश मिश्रबंधुओं की काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित भूषणग्रंथावली से लिए गए हैं। पाठ के लिए हमने पं० रामनरेश त्रिपाठी की ग्रंथावली भी मिलाई है।

शिवा-बावनी

छप्पय

कौन करै बस वस्तु, कौन यहि लोक बड़ो अति ।
को साहस को सिंधु, कौन रज लाज धरे मति ॥
को चकवा को सुखद, बसै को सकल सुमन महि ।
अष्ट सिद्धि नवनिद्धि, देत माँगे को सो कहि ॥
जग बूझत उत्तर देत इमि कवि भूषन कवि कुल सचिव ।
दच्छिन नरेस सरजा[1] सुभट साहिनंद मकरंद सिव ॥ १ ॥

कवित्त मनहरण

साजि चतुरंग वीर रंग मैं तुरंग चढ़ि ।
सरजा सिवा जी जंग जीतन चलत है ॥
भूषन भनत नाद बिहद[2] नगारन के ।
नदी नद मद गब्बरन[3] के रलत हैं[4] ॥
ऐल[5] फैल[6] खैल-भैल[7] खलक[8] मैं गैल गैल ।
गजन की ठेल पेल सैल उसलत है[9] ॥
तारा सो तरनि[10] धूरि धारा मैं लगत जिमि ।
थरा पर[11] पारा पारावार[12] यों हलत है ॥ २ ॥
बाने फहराने घहराने घंटा गजन के ।
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के ॥
नग[13] भहराने ग्राम नगर पराने[14] सुनि ।
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के ॥

---

[1] शिवाजी की पदवी (सरजाह) । [2] बहुत बड़ा, बेहद । [3] हाथियों के (गय + बरन) [4] मिलते हैं । [5] झुंड । [6] फैलने से । [7] खलभल । [8] संसार । [9] उथल पुथल हो जाते हैं । [10] सूर्य । [11] धरती । [12] समुद्र । [13] पहाड़ । [14] भागे ।

हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के ।
भौन को भजाने अलि[1] छूटे लट केस के ॥
दल के दरारे हुते कमठ[2] करारे फूटे ।
केरा कैसे पात बिहाने फन सेस के ॥ ३ ॥
प्रेतनी पिसाचरू निसाचर निसाचरिहु ।
मिलि मिलि आपुस मैं गावत बधाई है ॥
भैरौं भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से ।
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जुरि आई है ॥
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली ।
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है ॥
सिवा पूँछैं सिव सो समाज आजु कहां चली ।
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई हैं ॥ ४ ॥
बद्दल न होहिँ दल दच्छिन घमंड माहिं ।
घटा हू न होहिं दल सिवा जी हँकारी के ॥
दामिनी दमंक नाहिं खुले खग्ग[3] बीरन के ।
बीर सिर छाप लखु तीजा असवारी[4] के ॥
देखि देखि मुगलों की हरमै[5] भवन त्यागैं ।
उझकि उझकि उठैं बहत बयारी के ॥
दिल्ली मति भूली कहैं बात घन घोर घोर ।
बाजत नगारे जे सितारे गढ़ धारी के ॥ ५ ॥
बाजि गजराज सिवराज सैन साजतहि ।
दिल्ली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की ॥
तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न ।
घामै घुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की ॥
भूषन भनत पतिबाँह बहियाँ न तेऊ ।
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की ॥

---

[1] भौंरा । [2] कच्छप । [3] तलवार (खड्ग) । [4] भादौं की तीज (हरितालिका) जिस दिन राजाओं की सवारी निकलती है । [5] अंतःपुर की स्त्रियां ।

बालियाँ[१] बिथुरि जिमि आलियाँ[२] नलिन[३] पर।
लालियाँ[४] मलिन मुगलानियाँ मुखन की ॥ ६ ॥
कत्ता[५] की कराकनि चकत्ता[६] को कटक[७] काटि।
कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ ॥
भूषन भनत तिहु लोक मैं तिहारी धाक।
दिल्ली औ बिलाइति सकल बिललानियाँ ॥
आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन ह्वै।
बाँधती न बारन मुखन कुम्हलानियाँ ॥
कीबी[८] कहैं कहा औ गरीबी गहे भागे जाहिँ।
बाबी गहे सूथनी सुनीबी[९] गहे रानियाँ ॥ ७ ॥
ऊँचे घोर मंदर[१०] के अंदर रहन वारी।
ऊँचे घोर मंदर[११] के अंदर रहाती हैं ॥
कंद मूल[१२] भोग करैं कंद मूल[१३] भोग करैं।
तीनि बेर[१४] खातीं सो तो तीनि बेर[१५] खाती हैं ॥
भूषन[१६] सिथिल अंग[१७] भूषन[१८] सिथिल अंग।
बिजन[१९] डुलाती तेब बिजन[२०] डुलाती हैं[२१] ॥
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास।
नगन जड़ातीं[२२] ते वै नगन जड़ाती हैं[२३] ॥ ८ ॥
उतरि पलंग ते न दियो है धरा[२४] पै पग।
तेऊ सगबग निसिदिन चली जाती हैं ॥
अति अकुलातीं मुरझातीं ना छिपाती गात।
बात ना सोहाती बोले अति अनखाती हैं ॥
भूषन भनत सिंह साही के सपूत सिवा।
तेरी धाक सुने अरि नारी बिललाती हैं ॥
कोऊ करैं घातीं[२५] कोऊ रोतीं पीटि छाती।
धरै तीनि बेर खातीं ते वै बीनि बेर खाती हैं ॥ ६ ॥
अंदर ते निकसीं न मंदिर को देख्यो द्वार।
बिनरथ पथ ते[२६] उघारें पाँव जाती हैं ॥

---

[१] बालों की लटें। [२] भौंरे। [३] कमल [४] लालिमा, रंगत। [५] बाँका, एक तरह का हँथियार। [६] चग़ताई वंश का (औरंगज़ेब) [७] सेना। [८] करेंगी। [९] फुफँदी, कोंछी। [१०] मंदिर। [११] पर्वत। [१२] उत्तम मिष्टान्न। [१३] साग पात। [१४] दफे, बार [१५] बैर के फल। [१६] गहना। [१७] गहनों के भार से दबी हुई। [१८] भूख से (भूखन) [१९] पंखा। [२०] जंगल। [२१] मारी मारी फिरती हैं। [२२] ज़ेवरों में नगीने जड़वातीं थीं। [२३] नगीं जड़ाती हैं (वस्त्र न होने के कारण से) [२४] ज़मीन। [२५] आत्मघात। [२६] रास्ते से।

हवा हू न लागती ते हवा ते बिहाल भईं ।
लाखन की भीर मैं सम्हारतीं न छाती हैं ॥
भूषन भनत सिवराज तेरी धाक सुनि ।
हयादारी चीर फारि मन झुँझलाती हैं ॥
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की ।
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं ॥ १० ॥
अतर गुलाब रस चोवा घनसार सब ।
सहज सुबास की सुरति बिसराती हैं ॥
पल भरि पलँग ते भूमि न धरति पाँव ।
भूली खान पान फिरैं बन बिललाती हैं ॥
भूषन भनत सिवराज तेरी धाक सुनि ।
दारा[1] हार बार न सम्हार अकुलाती हैं ॥
ऐसी परी नरम हरम बादशाहन की ।
नासपाती खातीं तें बनासपाती[2] खाती हैं ॥ ११ ॥
सोंधे[3] को अधार किसमिस जिनको अहार ।
चारि को सो अंक लंक चंद सरमाती हैं ॥
ऐसी अरिनारी सिवराज बीर तेरे त्रास ।
पायन मैं छाले परे कंद मूल खाती हैं ॥
ग्रीषम तपन एती तपती न सुनी कान ।
कंज कीसी कली बिनु पानी मुरझाती हैं ॥
तोरि तोरि आछे से पिछोरा सों निचोरि मुख ।
कहैं अब कहाँ पानी मुकतौं[4] मैं पातीं हैं ? ॥ १२ ॥
साहि सिरताज औ सिपाहिन मैं पातसाह ।
अचल सुसिंध के से जिनके सुभाव हैं ॥
भूषन भनत परो शस्त्र न सिवा धाक ।
काँपत रहत न गहत चित चाव हैं ॥
अथह बिमल जल कालिंदी के तट के ते ।
परे युद्ध विपति के मारे उमराव हैं ॥
नाव भरि बेगम उतारैं बाँदी डोंगा भरि ।
मक्का मिस साह उतरत दरियाव हैं ॥ १३ ॥
किबले[5] के ठौर बाप बादसाह साहिजहाँ ।
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई हैं ॥

---

[1] स्त्रियाँ । [2] घास पात । [3] सुगन्ध । [4] मोती । [5] क़िबला, पूजा का पात्र ।

बड़ो भाई दारा वाको पकरि कै कैद कियो ।
मेहरहु [1]नाहिं वाको जायो सगो भाई है ॥
बंधु तौ मुरादबक्स बादि चूक करिबे को ।
बीच लै कुरान खुदा की कसम खाई है ॥
भूषन सुकवि कहै सुनो नवरंगजेब ।
एते काम कीन्हे फेरि पादसाही पाई है ॥ १४ ॥
हाथ तसबीह लिए प्रात उठि बंदगी को ।
आपही कपट रूप कपट सुजप के ॥
आगरे में जाय दारा चौक मैं चुनाय लीन्हों ।
छत्र ही छिनायो मनो बूढ़े मरे बाप के ॥
कीन्हों हैं सगोत घात सो मैं नाहिं कहौं फेरि ।
पील पै तोरायो चार चुगुल के गप के ॥
भूषन भनत छरछंदी मतिमंद महा ।
सौ सौ चूहे खाय कै बिलारी बैठी तप के ॥ १५ ॥
कैयक हजार जहाँ गुर्जबर्दार ठाढ़े ।
करिकै हुसियार नीति पकरि समाज की ॥
राजा जसवंत को बुलाइ कै निकट राखे ।
तखत के नीरे जिन्हैं लाज स्वामिकाज की ॥
भूषन तबहुँ ठठकत ही गुसुलखाने ।
सिंह लौं झपट गुनि सराहि महराज की ॥
हटकि हथ्यार फड़ बाँधि उमरावन की ।
लीन्हों तब नौरंग नें भेंट सिवराज की ॥ १६ ॥
सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग ।
ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे ॥
जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धरि उर ।
कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे ॥
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो ।
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे ॥
तमक के लाल मुख सिवा को निरखि भये ।
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ॥ १७ ॥
राना भो चमेली और बेला सब राजा भये ।
ठौर ठौर रस लेत नित यह काज है ॥

---

[1] वृथा ।

सिगरे अमीर आनि कुंद होत घर घर ।
भ्रमत भ्रमर जैसे फूलन की साज है ॥
भूषन भनत सिवराज वीर तैंही देस ।
देसन में राखी सब दच्छिन की लाज है ॥
त्यागे सदा षटपद-पद अनुमानि यह ।
अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है ॥ १८ ॥

कूरम[1] कमल कमधुज है[2] कदम फूल ।
गौर है[3] गुलाब राना केतकी बिराज है ॥
पाँडरि[4] पँवार जुही सोहत है चंद्रावत[5] ।
सरस बुँदेला सो चमेली साज बाज है ॥
भूषन भनत मुचकुंद बड़गूजर हैं ।
बघेले बसंत सब कुसुम समाज है ॥
लेइ रस एतेन को बैठि न सकत अहै ।
अलि नवरंग जेब चंपा सिवराज है ॥ १९ ॥

देवल[6] गिरावते फिरावते निसान अली[7] ।
ऐसे डूबे राव राने सबी गए लबकी[8] ॥
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप ।
आप के मकान सब मारि गये दबकी[9] ॥
पीरा पयगंबरा दिगंबरा दिखाई देत ।
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी[10] ॥
कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती ।
सिवाजी ने हो तो तौ सुनति[11] होत सब की ॥ २० ॥

साँच को न मानै देवी देवता न जानै अरु ।
ऐसी उर आनै मैं कहत बात जब की ॥
और पातसाहन के हुती चाह हिंदुन की ।
अकबर साहजहाँ कहैं साखि तब की ॥
बब्बर के तिब्बर[12] हुमायूँ हद्द बाँधि गये ।
दो मैं एक करी ना कुरान बेद ढब की ॥

---

[1] कछुवाहावंश के जयपुर के राजा । [2] कबंधई (जोधपुर राजवंश) [3] गौड़ क्षत्रिय । [4] एक तरह का फूल । [5] चंद्रावत राजपूत । [6] मंदिर, देवालय । [7] मुहम्मद साहब के दामाद, मुसलमानों के चौथे ख़लीफ़ा । [8] खिसक गए । [9] छिप गए । [10] मुसलमानी मत—अमूर्त उपासना का प्राधान्य हुआ । [11] सुन्नत, ख़तना—मुसलमानों का मुख्य संस्कार जिसमें जननेंद्रिय के अग्रभाग का ढीला चमड़ा कटवा डाला जाता है । [12] टाबर, लड़का, पुत्र ।

कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती ।
सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी ॥ २१ ॥
कुंभकर्न असुर औतारी अवरंगजेब ।
कीन्हों कत्ल मथुरा[1] दोहाई फेरी रबकी[2] ॥
खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाँके ।
लाखन तुरुक कीन्हें छूटि गई तबकी[3] ॥
भूषन भनत भाग्यो कासीपति विश्वनाथ ।
और कौन गिनती मैं भूली गति भव की ॥
चारौं वर्ण धर्म छोड़ि कलमा नेवाज पढ़ि ।
सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी ॥ २२ ॥
दावा पातसाहन सों कीन्हों सिवराज बीर ।
जेर कीन्हों देस हद्द बांध्यो दरबारे से ॥
हठी मरहठी तामैं राख्यो ना मवास[4] कोऊ ।
छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से ॥
अमिष अहारी माँसहारी दै दै तारी नाचै ।
खांडे तोड़ किरचै उड़ाये सब तारे से ॥
पील[5] सम डील जहाँ गिरि से गिरन लागे ।
मुंड मतवारे गिरैं भुंड मतवारे से ॥ २३ ॥
छूटत कमान और तीर गोली बानन के ।
मुसकिल होत मुरचान हू की ओट मैं ॥
ताही समय सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो ।
दावा बाँधि पर हला बीर भट जोट मैं ॥
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहां लौं कहौं ।
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट भोट मैं ॥
ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पांव दै दै ।
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट मैं ॥ २४ ॥
उतै पातसाह जू के गजन के ठट्ट छुटे ।
उमड़ि-घुमड़ि मतवारे घन कारे हैं ॥

---

[1] मथुरा में कत्ल आम कराया । सन् १६६६ में औरंगजेब ने वीर वीरसिंह के बनवाये हुये केशवदेव के मंदिर को, जिसके बनवाने में ३३ लाख रुपये ख़र्च हुए थे, तोड़वा डाला था । [2] निराकार ईश्वर । [3] सांप्रदायिक उपासना (तबकाबंदी) अर्थात् सभी भिन्न भिन्न सम्प्रदाय वालों को मुसलमानी मत के अनुसार उपासना करने पर विवश किया गया । [4] क़िला । [5] हाथी ।

इतै सिवराज जू के छूटे सिंहराज और ।
बिदारे कुंभ करिन[1] के चिक्करत भारे हैं ॥
फौजैं सेख सैयद मुगल औ पठानन की ।
मिलि इखलास[2] काहू मीर न सम्हारे हैं ॥
हद्द हिंदुवान की विहद्द तरवारि राखि ।
कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं ॥ २५ ॥
जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि ।
सुनि असुरन के सु सीने धरकत है ॥
देवलोक नाकलोक नरलोक गावैं जस ।
अजहूँ लौं परे खग्ग दाँत खरकत हैं ॥
कटक कटक काटि कोट से उड़ाय केते ।
भूसन भनत मुख मोरे सरकत है ॥
रनभूमि लेटे अधकटे फर लेट परे ।
रूधिर लपेटे पठनेटे[3] फरकत हैं ॥ २६ ॥

मालती सवैया

कोतिक देस दल्यो दल के बल ।
दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यो ॥
रूप गुमान हस्यो गुजरात को ।
सूरति को रस चूसि कै नाख्यो[4] ॥
पंजन पेलि मलिच्छ मल्यो सब ।
सोई बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो ॥
सो रंग है सिवराज बली जेहिं ।
नैरंग मैंरंग एक न राख्यो ॥ २७ ॥
सूबा निरानँद बादरखान गे ।
लोगन बूझत ब्योंत बखानो ॥
दुग्ग सबै सिवराज लिये धरि ।
चारु विचारु हिये यह आनो ॥
भूषन बोलि उठे सिगरे हुतो ।
पूना मैं साइतखान[5] को थानो ॥
जाहिर है जग में जसवंत ।
लियो गढ़ सिंह मैं गीदर बानो ॥ २८ ॥

---

[1] हाथियों। [2] इखलास खां (सलहेरि के युद्ध में मुग़लों का सेनापति) [3] पठान-युवक। [4] फेंक दिया। [5] शाइस्ता खां।

कवित्त मनहरन

जोरि करि जै हैं जुमिला हू के नरेस पर ।
तोरि अरि खंड खंड सुभट समाज पै ॥
भूषन असाम रूप बलख बुखारे जै हैं ।
चीन सिलहट तरि जलधि जहाज पै ॥
सब उमरावन की हठ कूरताई देखौ ।
कहें नवरंगजेब साहि सिरताज पै ॥
भीखि मांगि खैहैं बिनु मन सब रैहैं पै न ।
जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै ॥
चंद्रावल चूर करि जाहिली जपत कीन्हों ।
मारे सब भूप औ सँघारे पुर धाय कै ॥
भूषन भनत सुरकान दलथंभ काटि ।
अफ़जल मारि डाले तबल बजाय के ॥
एदिल सो बेदिल हरम कहैं बार बार ।
अब कहा सोवो सुख सिंहहि जगाय कै ॥
भेजना है भेजौ सो रिसालैं सिवराज जू की ।
बाजी करनालैं [1] परनाले पर [2] आय कै ॥ ३० ॥

मालती सवैया

साजि चमू जनि जाहु सिवा ।
पर सोवत जाय न सिंह जगावो ॥
तासों न जंग जुरौ न भुजंग ।
महा बिष के मुख मैं कर नावो ॥
भूषन भाषत बैरि बधू जनि ।
एदिल औरंग लौं दुख पावो ॥
तासु सलाह कि राह तजौ ।
मति नाह दिवाल कि राह न धावो ॥ ३१ ॥

छप्पय

विजपूर[3] बिदनूर[4] सूर सर धनुष न संधहिं ।
मंगल बिनु मल्लारि नारि [5] धम्मिल[6] नहिं बंधहिं ॥

---

[1] तोपें। [2] बीजापूर राज्य का प्रसिद्ध किला। [3] बीजा पूर। [4] गुजरात में है। [5] मलावार की स्त्रियाँ। [6] केस।

गिरत गब्भ कोटै गरब्भ[१] चिंजी चिंजा[२] डर।
चालकुंड दलकुंड गोलकुंडा संका उर॥
भूषन प्रताप सिवराज तब इमि दच्छिन दिसि संचरहि।
मधुरा[3] धरेस धकधकत सो द्रविड़ निबिड़ डर दबि डरहि॥ ३२॥

कवित्त मनहरण

अफ़जल खान को जिन्हों ने मयदान मारा।
बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है॥
भूषन भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि।
हबसी तुरक डारे उलटि जहाज है॥
देखत मैं रूसतम खाँ को जिन खाक किया।
सालकी सुरति आजु सुनी जो अवाज है॥
चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँघा ते यारो।
लेत रहौ खबरि कहां लौं सिवराज है॥ ३३॥
फिरंगाने फिकिरि औ हद्द सुनि[४] हबसाने[५]।
भूषन भनत कोऊ सोवत न घरी है॥
बीजापुर बिपति बिड़रि सुनि भाज्यो सब।
दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है॥
राजन के राज सब साहिन के सिरताज।
आज सिवराज पातसाही चित धरी है॥
बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार।
धाम धाम धूम धाम रूम साम परी है॥ ३४॥
गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर।
दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को॥
दावा पुरहूत[६] को पहारन के कुलपर।
पच्छिन के गोलपर दावा सदा बाज को॥
भूषन अखंड नव खंड महिमंडल मैं।
तम पर दावा रबिकिरन समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लौं॥
जहाँ पादसाही तहां दावा सिवराज को॥ ३५॥
दारा की न दौर यह रारि नहिं खजुबे[७] की।
बाँधिबो नहीं है कैधौं भीर सहबाल को॥

---

[१] कोट के भीतर ही। [२] लड़का लड़की (चिरंजीव, चिरंजीवा) [3] मदुरा। [४] भय। [५] हबशियों का देश। [६] इंद्र। [७] यहीं पर औरंगज़ेब ने १६५९ में शाहशुजा को पराजित किया था। यह जगह फतेहपुर ज़िले में है।

मठ बिश्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को ।
देवी को न देहरा न मंदिर गोपाल को ॥
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें ।
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को ॥
बूड़ति है दिल्ली सो सम्हारै क्यों न दिल्लीपति ।
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ॥ ३६ ॥

सक्र[1] जिमि सैल पर अर्क[2] तम फैल पर ।
बिघन की रैल पर लंबोदर लेखिये ॥
राम दसकंध पर भीम जरासंध पर ।
भूषन ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिये ॥
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर ।
कौरव के अंग पर पारथ[3] ज्यों पेखिये ॥
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर ।
म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिये ॥ ३७ ॥

बारिध के कुंभ भंव घन बन दावानल ।
तरुन तिमिरहू के किरन समाज हौ ॥
कंस के कन्हैया कामधेनु हू के कंटकाल ।
कैटभ के कालिका बिहंगम के बाज हौ ॥
भूषन भनत जग जालिम के सचीपात[4] ।
पन्नग[5] के कुल के प्रबल पच्छिराज हो ॥
रावन के राम कार्तबीज के परसुराम ।
दिल्लीपति दिग्गज के सेर सिवराज हौ ॥ ३८ ॥

दर बर दौरि करि नगर उजारि डारि ।
कटक कटाई कोटि दुज्जन दरब की ॥
जाहिर जहान जंग जालिम है जोरावर ।
चलै न कछूक अब एक राजा रब की ॥
सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप ।
थर थर काँपत बिलायति अरब की ॥
हालत दहलि जात काबुल कँधार वीर ।
रोष करि काढ़ै समसेर ज्यों गरब[6] की ॥ ४० ॥

सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों ।
कहत बार बार कहि पातसाह गरजा ॥

---

[1] इंद्र [2] सूर्य [3] अर्जुन [4] इंद्र [5] सर्प [6] मग़रिबी, पश्चिमी ।

सुनिये खुमान हरि तुरुक गुमान महि ।
देवन[1] जेंवायो कवि भूषन यों अरजा ॥
तुम वाको पायकै जरूर रन छोरो वह ।
रावरे वजीर छोरि देत करि परजा ।
मालुम तिहारो होत याहि मैं निवारो रनु ।
कायर सों कायर औ सरजा सों सरजा ॥ ४१ ॥

कोट गढ़ ढाहियतु एकै पातसाहन कै ।
एकै पातसाहन के देस दाहियतु है ।
भूषन भनत महाराज सिवराज एकै ॥
साहन की फौज पर खग्ग बाहियतु है ।
क्यों न होहि बैरनि की बौरी सुनि बैरि बधू ॥
दौरनि[2] तिहारे कहौ क्यों निबाहियतु है ।
रावरे नगारे सुने बैरवारे नगरनि ॥
नैनवारे नदन[3] निवारे चाहियतु है ॥ ४२ ॥

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार बार ।
दिल्ली दहसति चित चाहै खरकत है ॥
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर पति ।
फिरत फिरंगिनि की नारी फरकति है ॥
थर थर काँपत कुतुब साहि गोलकुंडा ।
हहरि हबस भूप भीर भरकति है ॥
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि ।
केते पातसाहन की छाती धरकति है ॥ ४३ ॥

मोरँग कुमाउँवौ पलाऊ बाँधे एक पल ।
कहा लौं गनाऊँ जेऊब भूपन के गोत[4] है ॥
भूषन भनत गिरि विकट निवासी लोग ।
बावनी बवंजा नव कोटि धुंध जोत[5] हैं ॥
काबुल कँधार खुरासान जेर कीन्हों जिन ।
मुगल पठान सेख सैयदहु रोन हैं ॥
अब लगि जानत हे बड़े होत पातसाह ।
सिवराज प्रगटे ते राजा बड़े होत हैं ॥ ४४ ॥

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी ।
डग्ग नाचे डग्ग पर रुंड मुंड फरके ॥

---

[1] ब्राह्मणों को । [2] धावा । [3] नद, नाला । [4] समूह । [5] श्रीहीन

भूषन भनत बाजे जीति के नगारे भारे
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके ॥
मारे सुनि सुभट पनारे भारे उदभट ।
तारे लगे फिर न सितारे गढ़धर के ॥
बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के ।
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके ॥ ४५ ॥

मालवा उज्जैन भरि भूपन भेलासा[1] ऐन ।
सहर सिरोज लौं परावने परत हैं ॥
गोंडवानों तिलगानों फिलगानों करनाट ।
रूहिलानां रुहिलन हिये हहरत है ॥
साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि ।
गढ़पति बीर तेऊ धीर न धरत है ॥
बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिली के कोट ।
बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत है ॥ ४६ ॥

मारि करि पातसाही खाकसाही कीन्हीं जिन ।
जेर कीन्हों जोर सों लै हद्द सब मारे की ॥
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब ।
हिसि गई हिम्मति हजारों लोग सारे की ॥
बाजत दमामे लाखों धौंसा आगे घहरात ।
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की ॥
दूल्हो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे ।
दिली दुलहिन भई सहर सितारे की ॥ ४७ ॥

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी[2] सी रहत छाती ।
बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिंदुआने की ॥
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब ।
मिटि गई ठसक तमाम तुरकानै की ॥
भूपन भनत दिलीपति दिल धकधका ।
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की ॥
मोटी भई चंडी बिनु चोटी के चबाय सीस ।
खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की ॥ ४८ ॥
जिन फन फुतकार उड़त पहार भार ॥

---

[1] भेलसा, ग्वालियर राज्य का एक स्थान [2] जलती हुई सी ।

कूरम कठिन जनु कमल बिदलि गो।
बिषजाल ज्वालमुखी लवलीन होत जिन॥
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलि गो।
कीन्हों जेहि पान पयपान सो जहान कुल॥
कोल हू उछलि जलसिंधु खल भलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को॥
अखिल भुजंग मुगलद्दल निगलि गो॥ ४६॥
सुमन मैं मकरंद रहत है साहि नंद।
मकरंद सुमन रहत ज्ञान बोध है॥
मानस मैं हंस बंस रहत है तेरे जस।
हंस में रहत करि मानस बिसोध है॥
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भूमि तेरी।
करतूति रही अद्भुत रस ओध है॥
पानि मैं जहाज रहे लाज कै जहाज महा—।
राज सिवराज तेरे पानिप पयोध है॥ ५०॥*
बेद राखे बिदित पुरान राखे सारयुत।
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं॥
हिंदुन की चोटी, रोटी राखो है सिपाहिन की।
काँधे मैं जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं॥
मीड़ि राखै मुगल मरोड़ि राखै पातसाह।
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं॥
राजन की हद्द राखो तेग बल सिवराज।
देव राखे देवल सुधर्म राख्यो घर मैं॥ ५१॥
सपत नगेस[1] चारों ककुभ गजेस[2] कोल[3]।
कच्छप दिनेस धरैं धरनि अखंड को॥
पापी घालैं धरम सुपथ चालैं मारतंड।
करतार प्रन पालैं प्रानिन के चंड को॥
भूषन भनत सदा सरजा सिवाजी गाजी।
म्लेच्छन को मारै करि कीरति घमंड को॥
जगकाज वारे निहचिंत करि डारे सब।
भोर देत आसिष तिहारे भुजदंड को॥ ५२॥

---

* यह छंद स्फुट कविता से आया है।

[1] (सप्त नगेश) सातो पहाड़। [2] दिग्गज। [3] बराह।

श्री छत्रसाल-दशक

दोहा

इक हाड़ा बूँदी धनी मरद महेवा वाल[1] ।
सालत नौरँगजेब को ये दोनों छतसाल ॥
वै देखौ छत्ता पता यै देखौ छतसाल ।
वै दिल्ली की ढाल यै दिल्ली ढाहन वाल ॥

कवित्त मनहरण (छत्रसाल हाड़ा-बूँदीनरेश विषयक)

चले चंदबान घन बान औ कुहूकबान ।
चलैत कमान धूम आसमान छ्वै रहो ॥
चली उमडाढैं बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ ।
लोह आँच जेठ के तरनि मान है रहो ॥
ऐसे समय फौजें बिचलाई छत्रसाल सिंह ।
अरि के चलाये पायँ वीर रस च्वै रहो ॥
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले ।
ऐसी चलचली मैं अचल हाड़ा ह्वै रहो ॥ १ ॥

दारा साहि नौरंग जुरे हैं दोऊ दिल्ली दल ।
एकै गये भाजि एकै गये रुंधि चाल मैं ॥
बाजी कर दोऊ दगाबाजी करि राख्यो जेहि ।
कैसेहू प्रकार प्रान बचत न काल मैं ॥
हाथी ते उतरि हाड़ा जूझो लोह लंगर दै ।
एती लाज कामैं जेती लाज छत्रसाल मैं ॥
तन तरवारिन मैं मन परमेसुर मै ।
प्रान स्वामि कारज मैं माथो हरमाल मै ॥ २ ॥

छत्रसाल बुँदेला-महेवानरेश विषयक

निकसत म्यान ते मयूखें प्रलै भानु कैसी ।
फारै तम तोम से गयंदन के जाल को ॥

---

[1] एक बूँदी का हाड़ा वंशीय और दूसरा महेवा का चंपतराय बुँदेला का पुत्र छत्रसाल।

लागति लपटि कंठ बैरिन के नागिनी सी ।
रूद्रहि रिझावै दै दै मुंडन के माल को ॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली ।
कहां लौं बखान करौं तेरी करवाल को ॥
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि ।
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को ॥ ३ ॥

भुज भुजगेस की है संगिनी भुजंगिनी सी ।
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के ॥
बखतर पाखरिन[1] बीच धसि जाति मीन ।
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के ॥
रैया राय चंपति को छत्रसाल महाराज ।
भूषन सकत को बखानि यो बलन के ॥
पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने[2] वीर ।
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥ ४ ॥

रैया राय चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह ।
भूषन भनत समसेर जोम जमकैं ॥
भादों की घटा सी उठी गरदैं गगन घेरैं ।
खेलैं समसेरैं फेरैं दामिन सी दमकैं ॥
खान उमरावन के आन राजा रावन के ।
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं ।
नैहर[3] बगारन[4] की अरि के अगारन की ॥
नाँघती पगारन[5] नगारन की धमकैं ॥५॥

अत्र गहि छत्रसाल खिझ्यौ खेत बेतवै के ।
उतते पठाननहू कीन्ही झुकि झपटैं ॥
हिम्मति बड़ी के गबड़ी के खिलवारन लौं ।
देत सै हजारन हजार बार चपटैं ॥
भूषन भनत काली हुलसी असीसन को ।
सीसन को ईस की जमाति जोर जपटैं ॥
समद[6] लौं समद[7] की सेन त्यों बुँदेलन की ।
सेल समसेरैं भई बाड़व की लपटैं ॥

---

[1] घुड़सवारों के कवच । [2] पर अर्थात् हाथ पैर कटे हुए । [3] स्त्रियाँ । [4] दूर के
[5] पैदल । [6] समुद्र । [7] अब्दुस्समद ।

हैवर[1] हरट्ट[2] साजि गैवर[3] गरट्ट[4] सम।
पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की॥
भूषन भनत राय चंपति को छत्रसाल।
रोप्यौ रन ख्याल ह्वै कै ढाल हिंदुवाने की॥
कैयक हजार एकबार बैरी मारि डारे।
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की॥
सैद अफ़गन सेन सगर सुतन लागी।
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की॥ ७॥

चाक चक चमू के, अचाक चक चहूँ ओर।
चाक सी फिरति धाक चंपति के लाल की॥
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं।
काहू उमराव ना करेरी[5] करवाल की॥
सुनि सुनि रीति बिरुदैत के बड़प्पन की।
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की॥
जंग जीति लेवा ते वै ह्वै कै दामदेवा भूप।
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की॥ ८॥

कीबे को समान प्रभु ढूँढ़ि देख्यो आन पै।
निदान दान युद्ध में न कोऊ ठहरात है॥
पंचम प्रचंड भुजदंड को बखान सुनि।
भागिबे को पच्छी लौं पठान थहरात हैं॥
संका मानि सूखत अमीर दिलीवारे जब।
चंपति के नंद के नगारे घहरात हैं॥
चहूँ ओर चकित चकत्ता के दलन पर।
छत्ता के प्रताप के पताके फहरात हैं॥ ९॥

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो।
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को॥
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब[6] होत।
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें।
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को॥
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब।
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥

---

1. अच्छे घोड़े। 2. हष्ट पुष्ट। 3. अच्छे हाथी। 4. समूह। 5. कड़ी 6. सूर्य

श्रीधर

श्रीधर

कवि का परिचय

कवि श्रीधर उपनाम मुरलीधर का बहुत ही संक्षिप्त परिचय हिंदी संसार को प्राप्त है। हिंदी या संस्कृत के अधिकांश कवियों की भाँति इन्होंने भी अपनी रचना में अपना कुछ व्यक्तिगत वृतांत देना ठीक नहीं समझा। यह एक उच्च कोटि के कवि थे इसमें तो किसी को संदेह नहीं हो सकता। जंगनामा के सिवाय इनके और भी कई ग्रंथ मिलते हैं, पर इनकी सब कविताओं को देखने से एक बात स्पष्ट हो जाती है और वह यह कि ये उन कवियों में से थे जो श्रीमानों को प्रशंसा कर अपनी जीविका निर्वाह करते थे। इसलिए इनके वर्णनों में सत्यता या प्रामाणिकता की अधिक आशा नहीं करनी चाहिए। इनके दिए हुए सन् संवत् भी नितांत अशुद्ध हैं। इनकी कविताओं का संग्रह बाबू जगन्नाथ दास "रत्नाकर" ने किया था और उसी संग्रह के आधार पर बाबू राधाकृष्ण दास ने जंगनामा का संपादन किया है। रत्नाकर जी के संग्रह में इनका लिखा हुआ एक संगीत ग्रंथ, एक नायक-नायिका-भेद संबंधी ग्रंथ तथा एक ग्रंथ जैन साधुओं के वर्णन में है। इनकी कुछ स्फुट कविता श्रीकृष्ण चरित्र पर और कुछ चित्रकाव्य भी उक्त संग्रह में है।

इसके अतिरिक्त नवाब मुसल्लेहखाँ की प्रशंसा में इन्होंने बहुत कुछ पद्य रचना की है। उनकी होली का वर्णन तथा उनकी रसिकता और विलासिता की बड़ी प्रशंसा की है। इनकी स्फुट कविता को देखने से यह भी विदित हो जाता है कि ये रईसों के यहां शादी ब्याह आदि विशेष अवसरों पर पहुँच कर कविता सुनाकर द्रव्योपार्जन करते थे।

डा० ग्रियर्सन तथा बाबू शिवसिंह ने इनके बनाए हुए 'कवि-विनोद' की चर्चा करते हुए लिखा है कि ये (श्रीधर) और कवि मुरलीधर मिलकर कविता करते थे परंतु ऐसा नहीं है। जंगनामे से कम से कम इतना आभ्यंतरिक प्रमाण अवश्य मिल जाता है कि श्रीधर का ही प्रसिद्ध नाम "मुरलीधर" था और वह प्रयाग का रहने वाला था।

डा० ग्रियर्सन ने इनका समय सन् १६८३ लिखा है परंतु जंगनामा का रचना काल सं० १७६८ अर्थात् सन् १७१२-१३ है और शायद इसी कारण से विलियम अरविन साहब (Wiliam Irvine) ने, जिन्होंने सन् १९०० में

जंगनामे के कुछ अंशों को बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के तत्वावधान में प्रकाशित कराया था, श्रीधर का समय जंगनामा के रचना काल से तीस बरस पहले अर्थात् सन् १६८३ में माना है। अरविन साहब को जंगनामा की प्रति बा० राधाकृष्ण दास की कृपा से प्राप्त हुई थी। इन्हीं बाबू साहब ने पूरे जंगनामा का संपादन नागरीप्रचारिणी सभा से किया है और यह प्रस्तुत संग्रह भी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण के आधार पर है।

जंगनामा में वर्णित घटनाओं का ऐतिहासिक संदर्भ तथा कथा का कथा सारांश इस प्रकार है:—

औरंगजेब के पुत्र और उत्तराधिकारी बहादुर शाह की मृत्यु सन् १७१२ के फरवरी महीने में हो गई। बहादुर शाह के चार लड़के थे,—मोइजुद्दीन (जहाँदार-शाह) अज़ीमुश्शान, रफ़ीउश्शान और शाहजहाँ। वह अपने द्वितीय पुत्र अज़ीमुश्शान को बहुत चाहता था और मृत्यु के समय लाहोर में वही उसके पास रह गया था। राजगद्दी के लिये बहादुर शाह के अन्य पुत्रों ने मिलकर उस पर चढ़ाई कर दी और चार दिन रावी नदी के तट पर घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अज़ीमुश्शान जिस हाथी पर सवार था वह एक गोला खाकर ऐसा भड़का कि सवार और महावत वगैरह को लिए दिए रावी में डूब मरा। इसके बाद पहले तो अन्य भाइयों में यह सलाह हुई कि राज्य बराबर बाँट लिया जाय पर जहाँदार शाह को यह बात पसंद न आई और उसने आक्रमण कर रफ़ीउश्शान और शाहजहां दोनों भाइयों को मरवा डाला। इसके बाद जहाँदार शाह दिल्ली की ओर बढ़ा पर राह में उसे खबर मिली कि मृत अज़ीमुश्शान का द्वितीय पुत्र फर्रुखसियर जो कि उस समय पटने में था, दिल्ली पर हमला करने की तैयारियां कर रहा है। यह सुन कर उसने पचास हज़ार सैनिकों के साथ अपने बेटे अज़ीजुद्दीन को उसकी राह रोकने के लिए आगरे रवाने कर दिया। इधर फ़र्रुखसियर को भी अब्दुल्ला हुसैन अली और राजा छबीले राम से, जिसके पास देश की मालगुजारी की एक बड़ी रकम थी, पूरी सहायता पाने का वचन मिल चुका था।

इन लोगों की पहली लड़ाई ई० आई० आर० के भरवारी स्टेशन से कुछ दूर उत्तर तरफ आलमचंद नामक एक गाँव में हुई। इस युद्ध में फ़र्रुखसियर के तरफ के दो वीर—शैफुद्दीन अली खाँ और निज़ामुद्दीन अली खाँ, विजयी होकर अब्दुल्ला के पास पहुँचे और इस विजय का समाचार तुरंत पटने में फ़र्रुखसियर के पास भेज दिया गया। फिर दूसरी लड़ाई फ़तेपुर जिले में बिंदकी नामक स्थान पर हुई जिसमें अज़ीजुद्दीन की पूरी हार हुई। अंतिम लड़ाई आगरा प्रांत में सिकंदरे के पास हुई जिसमें फिर जहाँदार शाह पूरी तौर से हारा और उसकी आशाओं पर सदा के लिये पानी फिर गया।

इन्हीं लड़ाइयों का बड़े धूम धाम से वर्णन इस जंगनामा में किया गया है।

श्रीधर की कविता

जंगनामा में वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं में बहुत जगह साधारण उलट फेर रहते हुए भी मुख्यतः वे ठीक हैं। अरविन साहब ने अपने संस्करण की भूमिका में कुछ उदाहरण देकर कवि को इतिहास संबंधी दो चार भूलें दिखलाने की चेष्टा की हैं पर कवि के आवश्यक वर्णनस्वातंत्र्य को ध्यान में रखते हुए उनका समाधान हो सकता है। इनकी वर्णनशैली को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि ग्रंथ में वर्णित घटनाएँ कवि की आँखों देखी घटनाएँ हैं और इस बात से अरविन साहब भो सहमत हैं। वह लिखते हैं--

On the other hand some of the details as to the localities add to our previous knowledge, and the copious use of actual names, shows to my mind that the author either was present in the army or wrote immediately afterwards.[1]

इनकी कविता की भाषा बड़ी मनोहर और साथ हो कहीं कहीं बड़ी ओजस्विनी भी होती थी। वास्तविक युद्ध के वर्णन इनके बड़े सजीव हैं और यह उन स्थलों पर भाषा, भाव, शब्द आदि सभी दृष्टि से वीर रस के निरूपण करने में सफल हुए हैं। इनकी भाषा में प्रसाद गुण की कहीं कहीं बहुत कमी देखी जाती है और इसका प्रधान कारण यह है कि ये समय समय पर दूरूह, प्रांतिक और विदेशी शब्दों का प्रयोग निस्संकोच रूप से कर देते हैं, उदाहरण देने की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी बात, जिसकी वजह से इनकी कविता की रोचकता में कमी आ जाती है, इनकी नामों की बेहद भरमार करने की आदत है। कहीं कहीं तो यह हाल है कि दो दो पृष्ठ तक ये सैनिकों और सेनापतियों के नाम ही गिनाते चले गए हैं। इससे जी ऊब जाता है और शैली में शिथिलता आ जाती है। एक जगह घोड़ों के नाम गिनाने में इन्होंने हद कर दिया है, शायद ही किसी देश के घोड़ों का वर्णन इन्होंने छोड़ा हो। एक दोष इनकी कविता में और यह है कि इनकी भाषा में स्थिरता नहीं है। कहीं तो इनकी भाषा पुराने ढंग की संयुक्ताक्षरों से पूर्ण वीरगाथाओं की भाषा का अनुकरण करती हुई सी जान पड़ती है जैसे—

'परी पक्खरैं झालरा झूल झापै।'
'सजे पक्खरो भक्खरो लक्ख घोरे।' इत्यादि

और कहीं कहीं इनकी भाषा बहुत सरल और साधारण अवधी या प्रयाग के आस पास की भाषा जान पड़ती है जैसे—

---

[1] अर्थात् कवि के दिए हुए बस्तियों और नामों आदि के विस्तृत विवरण से यह ज्ञान पड़ता है कि वह या तो स्वयं सैन्य में उपस्थित था और या लड़ाई के बाद तुरंत ही इसने अपना ग्रंथ लिखा।

'दुहुँ ओर फौजैं साजि यों गल गाजि भट ठाढ़े भए'
'खुर थार भार दुधार सों घटि छार सूरज झंपए' इत्यादि।

कहीं कहीं इन्होंने छंद पूरे करने के लिए व्यर्थ शब्दों की बड़ी भरमार की है जिससे इनकी शैली में और भी शैथिल्य आ गया है जैसे—

"मिले ओपची तोपची यों घनेरे"

यहाँ पर 'ओपची' शब्द हमें निरर्थक जान पड़ता है। इस प्रकार के उदाहरण जंगनामा में पर्याप्त सख्या में मिलेंगे।

पर कहीं कहीं इन्होंने श्लेष (Pun) का प्रयोग बड़ी खूबसूरती से किया है:—

संग केतक खान दौरा, मनहुँ उनको खान दौरा।
जे सूम दान न देत है, जिय देत भागे ठग ठगे।
जे दान निरखे दान में, जिय दानहू में जग मगे॥

इस छंद में 'दान' शब्द को लेकर यमक और श्लेष दोनों की बहार देखिये।

अनुप्रासों की बहार भी कहीं कहीं अच्छी देखने में आती है। दो एक उदाहरण देखिये:—

'अति धार भार खभार फनिपुर फनी सहसौ फन खध्यो।
इत मौजदीं मगरूर मस्त अलस्त अमलैं खाइ के॥ इत्यादि

पर कविता के इन सामान्य गुणों के सिवा एक ही गुण इनकी कविता में ऐसा है जिसके प्रभाव से इनकी गणना उच्चकोटि के कवियों में हो जाती है और वह गुण है प्रबल और सजीव वर्णन शक्ति। कभी कभी ये घटनाओं का जीता जागता चित्र उपस्थित कर देते हैं। यह उद्धरण उस समय के वर्णन का है जब जहाँदार शाह अपने महल में मुसाहबों और नर्तकियों तथा अन्य कलावंतों के साथ संगीत का आनंद ले रहा था और शराब के दौर भी जोरों से चल रहे थे। इस समय इस नाच रंग की मजलिस में मजा किरकिरा कर देने वाली यह खबर पहुँचती है कि उसका लड़का ऐजुद्दीन फर्रुखसियर से हार कर भाग गया और वह कन्नौज तक चढ़ आया है:—

यह सुनत एजुद्दीन भाग्यो फौज संग सबै भगी।
वहँ सकल मजलिस मौज में इक बारगी दुख सौं पगी॥
तब लगो मुख विष सी खिरो अरु गीत गारी सी लगी।
अँग अमल की लाली घटी तदबीर औ डर रिस जगी॥
कहाँ लों लिखिये कथा सब रीति देखि परी नई।
हहरे कलाँवत गिर गए मेहरान को मुरछा भई॥
कहुँ परी ढिनगत ढोलकी सुध ताल घुँघरू की गई।
सब गयो मद छुटि छाक सो रह ऊहि आहि दई दई॥
अति रिस भयो मन मौजदीं बकि उठत बारहिबार है।

श्रीधर ने वीर रस के उपयुक्त प्रायः सभी छंदों का उपयोग किया है जिनमें भुजंगप्रयात, हुलास, गीता, मधुभार अधमा तथा दोहा आदि मुख्य हैं। परंतु छंदों के विषय में इन्हों ने पर्याप्त सावधानी से काम नहीं लिया है। कहीं कहीं एक छंद लिखते २ दूसरा छंद लिखने लग जाते हैं। उदाहरणार्थ बाबू राधाकृष्ण दास के संस्करण में चालीसवें पृष्ठ में हुलास छंदों के बीच में अकारण एक भुजंग-प्रयात घुस पड़ा है।

ऐसी असावधानियों के अतिरिक्त इनकी रचना में छंदोभंग और यतिभ्रष्टतादिक दोष भी प्रायः देखने में आ जाते हैं, उदाहरण के लिए एक पंक्ति हुलास छंद की देखिये—

'अति दल भर 'दबत' पुहुमिस 'पबत' गढ़ मढ़ 'सबत' धकनि सकैं।

इस पंक्ति में छंद के नियमानुसार दबत, पबत और सबत के स्थान पर क्रम से दब्बत, पब्बत और सब्बत, होना चाहिये।

ऊपर कहे हुए दोषों और गुणों को देखते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि अधिक विद्वान् न होते हुए भी इनमें चमत्कार और प्रतिभा की झलक अवश्य दिखाई देती है। और ये स्वांतःसुखाय तो लिखते नहीं थे, इन्होंने जो कुछ लिखा सो अपने आश्रयदाताओं को संतुष्ट करने के लिए, इस लिए ऐसी अवस्था में इनसे प्रथम श्रेणी की कविता की आशा करनी ही व्यर्थ है। यह जंगनामा भी स्पष्टतः उन्होंने फर्रुखसियर के संतोष के लिये ही लिखा था जिससे इस बात का भी अनुमान होता है कि इन पिछले दिनों में भी मुग़ल राजदर्बार में हिंदी कविता को प्रोत्साहन मिलता था।

प्रस्तुत संग्रह में पहला उद्धरण विँदकी के युद्ध वर्णन से लिया गया है और दूसरा सिकंदर के युद्ध से।

जंगनामा

दुहूं ओर साजे महामत्त दंती। सजे पक्खरो लक्ख की पूर पंती॥
गड़ादार घेरें सिरी कट्ट घंटा। गजैं मेघ मानो बजे घोर घंटा॥
घटा श्याम सी दीह ता बिंधिमा पै। परी पक्खरैं झालरा भूल झाँपै॥
सजे पक्खरो भक्खरों लक्ख घोरे। मनो भानुजू के रथी जोर जोरे॥
चले चाह सों चंचले चाल बाँकी। दन्याई तुरुकी तजीले इराँकी॥
करैं पौन सी पौन की पायदारी। अरब्बी गरब्बी खुरीले खँभारी॥
नचै नाटकी से पटी के चन्हावी। कछी पीठ पूठें पले नीर रावी॥
सजे संदली औ, समुंदे सुरंगे। कबूतो बने फूलवारी सुश्रंगे॥
सजे एज संजाफ नीले हरीले। मुसुकी सजे पंच कल्यान पीले॥
बड़े ढील के, कान छोटे नवीने। सुचौरी खुरी चाकरी जासु सीने॥
बड़े चंचले नैन के, मुक्ख साँचे। खुरी पाल भूमै घनी दोष वांचे॥
सजे साजियों चारिहूँ ओर योधा। सजे साज लोहा बँटो कृत्त क्रोधा॥
पिले चारिहूँ ओर सूबे गरूरी। जिन्हों वार के शत्रु की फौज चूरी॥
कहाँ लों कहौं फौज में सूर राजे। कितेको बली लै बँदूखैं गराजे॥
सबै सूरवाँ बीर बाँके बनैते। सजे साज बाजी चढ़े हाँक दैते॥
कढ़े फौज सों डाँकि घोरे धपावै। कितै कूह कै कै सु भाले फिरावै॥
लख्यौ दूसरी ओर गाढ़ो अनी को। चढ़ो कोपि कै पूत दिल्लीधनी को॥
दुहूँ ओर ठाढ़ी चमू वहि रोकैं। दुहूँ ओर की फौज ठाढ़ी बिलोकैं॥
सु फरुकसियर शाहि के जोर सूबे। पिले चारिहूँ ओर साजे अजूबे॥
बजी दीह धौंसानि आवाज अच्छी। चहूँधा लखीजे बरच्छी बरच्छी॥
छुटे त्यों अरावे उठी धूरि भारी। धुवाँ की उठी धंधुरारी अँध्यारी॥
बढ़ैं रोशनी ऊपरी बान छूटै। मनो आसमानी महा लूक टूटै॥
पिले चोट को खोट के चारि फेरे। पिले ओपची तोपची यों घनेरे॥
चहूँ फौज की बीरता की बड़ाई। चमूँ शत्रु की चूर कै कै हटाई॥
बली उत्तरी फौज के गर्व एँठे। महा मोरचा भीड़ि कै पेलि पैठे॥
लख्यो एजुदीं वार छूटो दुवारो। परी भाग भाग्यो तकैं कोह नारो॥
सँभारै न घोरे रथी हेम हाथी। सँभारे न कोऊ कछू संग साथी॥
किहूँ छाँडि घोरैनि डार्यो हथ्यारो। किहूँ भागि सों आगेही पत्थ धारो॥
करै कोऊ हा हा परै कोऊ पैयाँ। चले रामरे गाँव भैझा बकैयाँ॥
घुसे बीहरो भागि केते निकामी। किते को करे बंदि नामी निनामी॥

किते को गुमानी गरूरें निछाए। बड़े हौंसिला कै तिया संग लाए ॥
तिन्हैं छोड़ि भागे छुटी चाल बाँकी। गए फूटि ताले फटी हौंस नाकी ॥
सु रोवै असीले फसीले सहेली। पुकारें खुदा आय दे कौन मेली ॥
गरोढा बरो झाँकि झीकैं सुरोसैं। सबै मौजदीं को भरे नैन कोसैं ॥
कहूँ बैदरा कौ बड़ी धूम धाई। चहूँ बुच्च लुच्चानि लै आग लाई ॥
बरैं छावनी छाँह डेरा सु भारी। महा भीम फैली धुवाँ की अँध्यारी ॥
कहूं आँच के तेज सों लाल फूटैं। कहूँ बैदरा बीर बाजार लूटैं ॥
कहूँ बांस की गाँठ फूटैं पटक्कैं। चटाचट्ट पाषान भारी पटक्कैं ॥
लुटै केसरौ दाख दारयो छुहारो। लुटै चारु कस्तूरिका घन्न सारो ॥
कहूँ होत मोती बरैं चूर चूना। कहूँ लै लुटेरें करैं मोट दूना ॥
जरैं चार आचार चूरी चिरोंजी। कहूँ कौलगट्टे कसेरू करोंजी ॥
जरैं औ लुटैं चीर चीरा जरी के। परे भोट के मोट लूटैं परी के ॥
भए बैदरा जौहरी लूटि लूटैं। छिटे ज्वारिलों मोट मुक्तानि छूटैं ॥
किती ती जरैं हाय हा रट्ट लागी। किती कामिनी दामिनी रूप भागी ॥

हरिगीता छंद

दुहूँ फौजैं साजियों गल गाजि भट ठाढ़े भए।
बाजे नगारे फीलवारे घम्म धुनि धुव कंपए ॥
खुर थार भार दुधार सों छुटि छार सूरज झंपए।
तहँ वहलकी झुकि मेरु हहलत पहलसम भुव बंपए ॥
दुहुँ ओर फौजनि ओज सों रन मौज देखा देख भो।
हथनाल तोपैं बान जाल विशाल गरज अलेख भो ॥
घोरनाल घोर अँदोर दुहुँ दल रहकलास विशेष भो।
फर बजी बहकि बँदूख अगनित तित बनैतनि तेख भो ॥
कड़ कड़ाकड़ सो अरावे छुटत टपकनि टाप की।
चहुँ ओर घोर घटा मढ़ी धुँवधार तोपतराव की ॥
बर बान बगरत बीजुरी सन गोल ओला थाप की।
नहिं पहर एक पिछानि काहू रही पर की आप की ॥
छुटि गयो सो धुँधकार त्यों भिनुसार सों दुहुँ दिसि भयो।
ललकार वीर अमीर सावँत चाँप सर कर वर लयो ॥
दप करत आगें वाजि वागें मौज मोद मने भयो।
बज उठे मारु मारु मारु अंदोर रनमंडल छयो ॥
तहँ तीर तर तर बान सर सर सुभट भर गोला चले।
पग पिलत आगेहिं आगहीं सावंत भूप भले भले ॥

भट लाल मुख सुख भरे पीरे रंग कायर हलहले ।
जिमि देखि जाचक दानि सुख मुख सूम दुख मुख बेकले ॥
इत उत दुहूँ दल के जिजैं जे बीर बीर बिरी बिरे ।
ते करन साके बलिक बाँके हाँकि भट भट सों भिरे ॥
शमशेर सरकि सिरोह वार सँभार सावँत सिर चिरे ।
दीनी झमाझम झमकि झर झर झूमि झूमि किते गिरे ॥
तहँ दौर अगवर ह्वै सिधायो धनी मुशरफ मीर है ।
तिन मीर बुजुरुक मीर अशरफ तासु बीर सुबीर है ॥
तब जुलफिकार गह्यो महाबल जुलफिकार अमीर है ।
झमकी दुधारिन सार सार दुधार धीरैं धीर है ॥
तहँ अली असगर खाँ महाबल मदति पहुँचो जाइकै ।
फिर जैनदीखाँ बीर पहुँचो तेग अंग अँगाइ कै ॥
फत्तह अली, खाँ सफ शिकिन खाँ भए शामिल आइ कै ।
पहुँचो हुसेन् अलीय ख़ाँ धौंसे हिरौल बजाइ कै ॥
सरदार तितहिं हुसेनली खाँ लै अमीरन संग है ।
रन भिर्यो जुलफिकार खाँ हमराह गाढ़े अंग है ॥
फर मैं फकाफक होत तेग कटार कटकतु फंग है ।
तहँ तीर तरकस सबै खाली भए लाख निखंग है ॥
साँवंत सैद हुसेनली खाँ जोर जैतक सत्थ ह्वै ।
तहँ हत्थ हत्थनि मत्थ मत्थनि लरति लत्थनि पत्थ ह्वै ॥
गहि जबर हत्थर करे तत्थर परे बिरथ बितत्थ ह्वै ।
उहि सत्थ चार समत्थ हे एक मत्थगे बिनमत्थ ह्वै ॥
तब सैद अशरफ अहगुरो भाई मुशर्रफ मीर को ।
समसार तासु अँगावतो अँग अंग हो रनधीर को ॥
हेरो सुहूरनि हाथ प्यालो हरखियो हिय बीर को ।
लीनी शहादति साहबी सुरलोक बुद्धि गँभीर को ॥
पेल्यो मुशर्रफ मीर पीलनि पील बान जुझाइ कै ।
तब अली असगर खाँ पिल्यो फरधार अंग अँगाइ कै ॥
सुब जैनदी खाँ गहि जुनब्बी कर कमान चढ़ाइ कै ।
फत्तहअलीखाँ शफशिकन खाँ भए अगहर आइ कै ॥
इन सबनि जाइ अँगाइ घायनि लखि लगाई जूझियो ।
गिरबान गहि गहि जात रहि रहि एक एक अरूझियो ॥
फैली फुलंगैं सार सारनि बजत परत न सूझियो ।
फ़त्तह अली खाँ अफशिकिन खाँ जैनदीखाँ जूझियो ॥
उत जुलफिकारहि खान के सँग के अमीर किते गिरे ।

ठहराइ सकत न पाइ लखि दल आपु आइ किए थिरे ॥
हुस्सेनली खाँ भो उतारू पिले जंगी मुँडघिरे ।
उत भो उतारू जुलफिकार दुधार दोऊ भट भिरे ॥
दोऊ अमीरल उम्मराव भिरे दोऊ तेहा भरे ।
हातिम दोऊ रूस्तम दोऊ कायम दोऊ रन कर करे ॥
शमशेर सरकि सिरोह की सावंत ये दोऊ लरे ।
घन घाइ खाइ अँगाइ अंगनि अटल है दोऊ अरे ॥
मुखत्यारखाँ जाँवाज खाँ जाँनिसार खाँ अटोप कै ।
सादिक सु लुतफुल्लाह खाँ आयो महाबल चोप कै ॥
फिर दिल दिलेर अलीय खाँ उमराव केतक कोप कै ।
जिहिँ ओर आजमखाँ तहाँ फर लियो फौजनि छोप कै ॥
तब मारु मारु सँघारु हाँ हाँ हाँ दुहू दल है रह्यो ।
राजा छबीले राम आजम खाँ वज़ी कर वर गह्यो ॥
सुलताँ कुलीखाँ सैद शेखर सूखियतखाँ रिस मर्यो ।
फिर नेक कदम फतेह कर श्रीधर सुकवि जग जस लह्यो ॥
तहँ पिले बखतर-पोश रोस भरे महा धमकी मही ।
गिरवान गहि गहि जात रहि रहि हहाँ हाँ हँरि है रही ॥
को गनै तरफन तीर की बर बान बरखन भर सही ।
तरवारि ते तहँ वार त्यों अँगवत चलावत हरखही ॥
तहँ कंपत कायर गात कदली पात बात मनोँ लगे ।
जे सूमदान न देत हे जिय देत भागे ठग ठगे ॥
जे दान निरखे दान में जिय दान हूँ मैं जगमगे ।
मुख लाल रंग प्रसन्नता हिँगु लाल रंग मनो रँगे ॥
राजा छबीलेराम को जंगी महावत जूझियो ।
मैं मंत मुख रुख फिरत लखि बर बीर मन मह बूझियो ॥
तब आपु दै कल दै अँगूठा जोर करत असूझियो ।
रनथंभ पीलहि थाँभि पेलि लगाइ राखी लूझियो ॥
राजा छबीलेराम जू को खेश सजि फौजैं भली ।
रन मच्यो रैया राय राव गुलाबराव मही हली ॥
मुखत्यार खाँ बलवान की चतुरंग पृतना दलमली ।
मुखत्यार खान समेति हाथी साथ जूझ्यो तेहि थली ॥
तब राज श्री गिरधर बहादुर सुर बहादुर ओ फबै ।
फब कील हूलि हला कियो दौरे महादल के सबै ॥
दप कियो रैया राय राव गुलाब राव जहाँ जबै ।
सरदार सिगरे हाँक दै दौरे दिलेर तहाँ तबै ॥

भगवंत राय दिवान कायथ बीर बर काकोरिया ।
तसु नंद राय सुवंस गहि किरवान दर बर दैारिया ॥
दप किये देवी रामनागर नौनिहाल अगोरिया ।
फिर शुजा सैद इमाम सेख सुपीर महमद पैारिया ॥
नर सूर सर बानो बली अफगाँ वतन चिहि टैालिया ।
किरवान अहमद खाँ गही वा फैाज फर बागै लिया ॥
फिर सैद सुब शाकिर महम्मद मीर जिहिँ रन लैलिया ।
जसु बतन ओलमगोट रो सफजंग में जस फैलिया ॥
दैार्यो गुलाब मोहैयुदीखाँ बीर आजम खान को ।
दौर्यो बली सुलताँ कुलीखाँ जिनै जस किरवान को ।
रन मड्यो शेख रसूखियत खाँ जाहि सम बलवान को ॥
हरि कदम फत्तेह नेक कदम जु देग तेगहु बान को ।
नव्वाब आजमखाँ तहाँ फर भूमि हाँकि हला कियो ॥
सुलताँ कुली खाँ बाग बीर रसूखियत खाँ हूलियो ।
भनि सुकवि श्रीधर नेक कदम सु फैाज गुर गाढ़ो हियो ॥
तहँ जबर जानी खान पर झर झरनि कै बर बरखियो ।
नव्वाब आजम खाँ महाबल जबर जानी खाँ भिरो ॥
रह सत्य आजम बली खाँ अँग अंग घन घायनि घिरो ।
शमशेर सर सर तीर तर तर मुख न काहू को फिरा ॥
तहँ हसित साथी सरथ हाथी जूझि जानी खाँ गिरो ।
इत के भए सरदार साथी सहित सेर सुघाइ कै ॥
उतके किते जूझे अरूझे रहे लोह अघाइ कै ।
वे लाख, ये न हजार पूरे रहि रहे ठहराइ कै ॥
तब सैद कुतूबुलमुलुक बीर अमीर मनि रेला कियो ।
बंगश महम्मद खान शादा खान कर करबर लियो ॥
रन काजं राजा रतनचंद महाबली हिय हरखियो ।
जै कृष्णदास दिवान निजमुद्दी अली खाँ को बियो ॥
पुनि सैद अनबर खाँ समुद्दर खाँ सँभारी तेग है ।
मंजूर तैयब तरब अरबनि यादगारो बेग है ॥
सरदार बारहेँ बार रुस्तमदस्त सैद अनेग है ।
ये सैद अबदुल्लाह खाँन रिकाब तेग फते गहै ॥
इत कियो हांकि हलाक दूनौ आनि उन आगो लियो ।
बलवान कोकिलताश खाँ तसु बीर आजम खाँ कियो ॥
फिरि सैद राजे खान अबदुल समुदली खाँ हरखियो ।
नौ शेर खान जुझार अबुलगफार हाँक तहाँ दियो ॥

कल लेन देत न रहकले हथनाल घन घुरनाल है।
तूफान कहर तुफंग की फहरान बान विशाल है॥
तहँ तीर सलभ-समूह-सम सुरलोक तर सरजाल है।
असमान भानु बिमान गो रुकि भयो धुंधूकाल है॥
तब बीर बीर बिरीं बिरे मनु गहबरे भट भट भिरे।
बानैत गब्बी है अरब्बी बीर गब्बी कर थिरे॥
तहँ होत हूह फकाफकी फर मुख न काहू के फिरे।
तब गहयो कुतबुलमुलुक के बर उतरि कोकिलताश खाँ॥
बंगश महम्मद खाँ इतै उत बीर आजमखान खाँ।
इत सूर सादीखान उत नौशेरीखाँ उनकीक खाँ॥
भट भिरे एकहिँ एक जे बबिरी बिरे दूहूँ पखा।
उत सैद राजेखान अबदुरसमुअली आगैँ लियो॥
इहिं ओर राजा रतनचंद गयंद चढ़ि रेला कियो।
सरदार इत उत के भिरे रन लत्थ पत्थनि के बियो॥
तरवारि तीर तुफंग साँगि कटार कै बर बरखियो।
जय कृष्णदास दिवान निजमुद्दी अली खाँ को बढ़ो॥
तब सैद अनवर खाँ समुंदर खान अगहर ह्वै कढ़ो।
मंजूर तैयबतरब साहबराय रोस महा मढ़ो॥
लखि पलनि कुतबुलमुलुक की सब पिलत रनरस रुचि चढ़ो।
चहुँ ओर फौजनि फौज सो मन मौज मारु महा परी॥
हथियार भार दुधार भर मनु मघा मेघन की झरी।
झिरि झिलम कुंडि कुरी कुरी किरि गई बखतर की करी॥
करि मारु मारु सँभारु यार सँभारु सुनियत ललकरी।
घन घटा घोर घमंड सो सम घुमड़ि फर फौजैं रही॥
धौंसे धोकारत गाज गहि तरवारि चमक छटा सही।
झर तीर गोलिन वार गोला परत ओला से तही॥
महि मची मेदनि गूद कीच कृपान सैयद जब गही।
मदभरे भ्रमत खरे अघाइ अघाइ करिवर थरि अरै॥
सिर सरत श्रोनित धार मनहुँ पहार सोँ झरना झरै।
बढ़ि चली लोहुन की नदी लहरैं लखेँ कहि को तरै॥
तेहि तीर दलदल मास को बल ठान काहू को परै।

कवित्त

फौजबल भुजबल मन मनसूबा बल,
श्रीधर हरफिन हरषि हहलावतो।

साहेब सरबुलंदखाँ नवाब करि करि ,
पत्थ के से हत्थ महाभारत मचावतो ॥
जहाँ शाह मौजदी रफीउलकदर कूटि ,
जेवर जुलफिकार खाँनै बाँधि ल्यावतो ॥
हो तो हमराह लाहानूर के समर तो ,
अजीम सोँ अजीम पातशाही कौन पावतो ॥
सनमुख साहजू के साजि सेन चारों अँग ,
सैद अबदुल्लह खाँ बीर आयो बल में ॥
बाजि उठ्यो मारु मारु मारु भोअँदोरजोर ,
हाँके फील बाँके पेलि पैठे रेलि पल में ॥
श्रीधर भनत दोसतलीखाँ अँगाह धाइ ,
मुन कै चलाये भट वैसे चलाचल में ॥
वाहवाह कहैं पातशाह औ सिपाह सबै ,
वाह वाह रह्यो है सचत दुहूँ दल में ॥

छप्पय

श्रीधर दलबल प्रबल लखि लोकपाल रह लज्जि ।
महमद सालेह बीर जू चढ़त कटक बर सज्जि ॥
सज्जदल रनकज्ज जनप्पसमज्जज्जयबर ।
वंगग्गहीन मतंगग्गननि उतुंगग्गरिवर ॥
रंगग्गति सुकुरंगाग्गवन तुरंगग्गति गुर ।
पच्छद्भर थिर कच्छकर बसुलच्छभरपुर ॥
लच्छ भट्ट टट्टिया चढ़्यो महमद सालेह ज्वान ।
धुजा बान झलकैं बजैं उद्धद्धुनि घुर ध्वान ॥
उद्धद्धुनि धुर ध्वानद्धुकि सज युद्धज्जै भर ।
लक्खभ्भट रण दुक्खक्खुमसुब्बियक्खक्कैं कर ॥

बारब्बलिय उछारभ्भरिक्खग बाहब्बल किय ।
बानब्बिकट कमान कठिन कृपान दुढ़ुर लिय ॥
कर लिय खग कोप्यो बली महमद साले ज्वान ।
अरि के बढ़ गढ़ मढनि पर कियेउ सुकोपि पयान ॥
कोपप्पकरि पयानप्पथि घन ध्वान द्धलकत ।
लच्छ च्छहरि बरच्छ च्छबिवर स्वच्छ च्छलकत ॥
युद्ध ज्जुरत सकुद्धभ्भट रण उद्ध द्धमकिय ।
बाहक बलिय उछाह भ्भरि खग बाहब्बल किय ॥

खग्ग बाह बलकिय बली महमद सालेह बीर।
दुवन उह कट्टिय भखो ओनन्नद भरि नीर॥

ओनन्नद भरि नीर भ्भरित गँभीर भ्भलकत।
लुत्थत्थिरन उलत्थज्जलजिय जुत्थत्थलकत॥
बीचच्चलननगी चचल हर कीचच्चभकत।
मुंड भ्भरि करि कुम्भभ्भरत सुअ्भभ्भभकत॥
महमद सालेह बीर कोपि भारी रन मड्ड्यो।
अरि की प्रतन प्रचंड खंड खंडन करि खंडेउ॥
गीध गूद बेताल मास हार मुंडमाल लिय।
रुहिरय रुहिर अपार पाइ भैरव गलगज्जिय॥
तकि शुत्रु सूर को ग्रास कर ओनसिंधु गज्जन कियो।
लखि परब कृपान रावरी मनहुँ दान उत्तम दियो॥

कवित्त

फौजनि की घटा की घमंड घोर घेरू करि।
मौजदीन मघवा के मन में उछाह भो॥
तोप गरजत तरवारि बीजु तरजत।
बरषत बाननि अचल चारयो राह भो॥
तब गिरिवर कर धरि गिरिवरधर।
श्रीधर भनत ब्रज मंडल की छाँह भो॥
अब गिरिधर लाल बहादुर बीर।
समसेर गहि कर पातसाही को पनाह भो॥
मच्यो जोर जंग रंग आजम अजीम जू सों।
गालिब गनीम आयो महमद गरूर है॥

श्रीधर सर बुलंद खाँ नवाब दौर कै।
हिरौलही हटायो कीनों चमूँ चकाचूर है॥
मारि खानि खालि में विदारि राउ दलपति।
गंजेउ जुलफिकार खान को गरूर है॥
वाह वाह करे पातशाह औ सिपाह रही।
सही समसेर तेरी शाह के हजूर है॥

जहांदार शाह शमशेर जोरे जेर करि।
जहाँ शाहि रफीसान की ही कौन सो तथा॥
आजम के संगन से जंग महारायो त्यों।
जुलफिकार खाँ को फेर लावतो वहै पथा॥

श्रीधर सर बुलंद खान किरवान धनी।
रुसतम के काम कै बढ़ावतो बड़ी कथा॥
बारबार कहे पातशाह अपसोस करि।
हाय हमराह यो अजीम शाह के न था॥
श्रीधर फरूकसाहि मौजदी भिरे हैं दोऊ।
पूरो नेक कदम कों करम अलाह को॥
कीनो खगवाह मोगलनि के दलनि भो।
हिरोल की पनाह जाके कोप की पनाह को॥
गालिब गनीम गाज गंज मगरूरिन को।
गरब को दलिक गजब गुमराह को॥

देखै पातशाह उतशाह परयो निज दलै।
वाह वाह करत सिपाह पातशाह को॥
भारी पातशाह. दोऊ आगरे अगारी लरैं।
धौंसन की दुहूँ ओर श्रीधर धुकार है॥
बाजै बीर बीर गोला बान तरवारि तीर।
बाजै सार सार होत सोर मार मार हैं॥
शेख खैरुल्लाह अलेख रन कीनो कैई दिनो।
जुगनि के भूखे मसहारिन अहार है॥
घाय खाए बेसुमार पैठि दल अरिकै सु।
मार तें गिराए बीर बाँके बेसुमार है॥

बखतरपोस पखरैत फील स्वारन की।
कारी घटा भारी ज्यों पयोद प्रलै काल को॥
श्रीधर भनत गोला बान सर झर भर।
बरखत थामैं को करैरी तरवाल को॥
दिलाजाक झपटि हलीम खाँ बरग जाइ।
दल मीडि मारयो मौजदीन बिकराल को॥
श्रोनित सलित तट नाचै प्रेत पहपट।
घट घट घूँटे कर खप्पर कपाल को॥
इत गल गाजि चढ़यो फरुकसियर शाहि।
उत मौजदीन करि भारी भट भरती॥

तोप की झकारनि सों बहि हहकारनि सों।
धौंसा की धोकारनि धमकि उठी धरती॥

श्रीधर नवाब फरजंद खाँ सु जंग जुरे।
जोगिनी अघायो जुगजुगनि की बरती ॥
हहर्यौ हिरौल भीर गोल पै परी ही तूँ न।
करतो हिरौली तौ हिरौलै भीर परती ॥
मार्‌यौ मौजदीनै फर बिफरि पलक बीच।
कीनो मौजदीन को कटकु अढ़ अढ़ है ॥
मीडि गड़ आजम अजीम अजमति गढ़।
कूट्यो जटवारे के सकल मढ़ी मढ़ है ॥

श्रीधर भनत महाराज श्री छबीलेराम।
तेरे बैरी बाँची काहू सूर की न सढ़ है ॥
जीत्यो न्यारो और मेरी फिकिर सो कीजे जोर।
ऐसे महाराज सोँ गहति गाढ़ो गढ़ हैं ॥
फिर मंड्यो श्रीधर छबीलेराम राजा।
पातशाहकोँ हिरोल पातशाहत को पाहरू ॥
तोप की तरापैं तोरि गोला के गुलेल गनि।
पेलि दल गार्‌यो मौजदीनै गहि गाहरू ॥
चक्के हरि हर बंभ देषि आतपत्त थंभ।
जैत रनखंभ बीरं विक्रम उछाहरू ॥

सुरुखरू आप भयो आबरू दिलीस पायो।
माहरू रफीक भो मुखालिफ मियाहरू ॥
भालनि सों भाला भिर्‌यो बरछा सों बरछानि।
सरे समसेर समसेरनि सुरबंग मैं ॥
तीरन के कीनो तन तीरन तुनीर तोरु।
तोरादार जोरन न पावत सुफंग मैं ॥
जंग सुलतानी मैं कहानी कैसो कीनो काम।
श्रीधर छबीलेराम राजा रनरंग मैं ॥
साढ़े तीनि हाथ कद दसहथा हाथी चढ्यो।
दोई हाथ होत हैं हजार हाथ जंग मैं ॥

श्रीधर अवाई देषि फरूकसियर जू की।
आयो मत्त मौजदीं अनेक अभिलाख कै ॥
धरिकु घमंड घोर मच्यो गइ मुरि बागैं।
अड़ियो छबीलेराम राजा मन माख कै ॥

मारि पर दल हरखायो जूथ जोगिनी को।
करत बड़ाई सिवासंक रहि साख कै॥
एकै बीर कैयो लाखैं एक के न आन्यो मन।
एक ही गनत कैयो लाख कैयो लाख कै॥
मार्‍यो जोर जंग दुहूँ ओर पातशाहीन सोँ।
उत तेँ उमड़ि दल मौजदीं को धायो है॥

आजम खाँ जू के संग शाहकी नजरि आगेँ।
सैद सुलतान जहाँ जग तेँ जगायो है॥
श्रीधर सुकवि तीर तरल तुफंग सोँ।
सितारा देखो चुनि सरदारनि गिरायो है॥
खाली कीनों पल में अमारी हौदा हाथिन को।
धोखो होत यामें स्वार अयो कै न आयो है॥
फरूकसियर शाहि जहाँदार शाहि दोऊ।
आगरे अगारी अरे पातसाही हेत मैं॥
श्रीधर बजत मारू बाजे बाजे बीरन के।
मुरि गईं बागैं रहे केतक न चेत मैं॥

अंगद सो अड़ो पातशाहति पलटि डारयो।
एवी एतो आजम खाँ सबल बनैत मैं॥
महा हुब भारत की कमनैती पारथ की।
जैसो भीम भुज बल भाख्यो कुरखेत मैं॥
श्रीधर कृपान गहि मुसलेह खान रन।
कीनें घमसान योँ मसान हहरात हैं॥
झुंडनि झँडूले प्रेत लोहू के प्रवाह परे।
लाती लरैं पौरै पेलि पियत अन्हात हैं॥
खोपरा लो खोपरिन फोरैं गलकत गदू।
पोरीलोँ पलासी खाल खैंचि खैंचि खात हैं॥
पाखर से खापरनि चहुवा चुरैलनि के।
चाइ भरे चर चर चपरि चबात हैं॥

छुप्पय

भट्ट ठट्ट डट भट्ट भट्ट हरि आभट्टे हरि।
उद्धत जुद्धत कुद्ध सुद्ध गज्जत जिमि के हरि॥
बरि मुसल्लेह खाँ जलद्द उल्लद दल सज्जिय।
पक्खर पक्खर लक्ख स्याह सन्नाह समज्जिय॥

बल तडित तेग तरपत कड़कि रस वर श्रीधर धर कुरेउ।
तहँ गोलापत्थर वित्थरिय सो अरि मत्थर थत्थर थुरेऊ॥
मीर मुशर्रफ बीर कोपि भारी रन मँडेऊ।
अरि की पतन प्रचंड खंड खंडह करि खंडेउ॥
गीध गूद बेताल मासहर मुंडमाल लिय।
रूहिर प रूहिर अपार पाइ भैरव गल गज्जिय॥
तजि सत्तु सूर की ग्रास फर श्रोत सिंधु मज्जन किएउ।
लखि परत कृपानी रावरी मनहुँ दान उत्तम दिएउ॥

कवित्त

आयो मौजदीन उत इत तें फरूक साहि।
दुहुँ ओर सीर ललकारें बीर बीर की॥
भरा भरी गोलनि की भरा भरी तेग की।
कटारिन की कराकरी तरातरी तीर की॥
श्रीधर बिलोयो दौरि बीरन की भीर रुंड।
मुंडन का मेरु श्रोन सलिता गँभीर की॥

वाह वाह करे पातसाहरु सिपाह सब।
देखो रे दिलेरी यारो मुशरफ मीर की॥
कोऊ ढूँढौ कोऊ वारौ काहू मै न गुन भारो।
कोऊ वारनारी बस मन मैं न आयो है॥
सुन्दर सुजान सुजा सीलवंतु ओजवान।
दान पूरो एकै तोहि बिधि ने बनायो है॥
श्रीधर भनत सानी जलालदीं अकबर।
फरूकसियर पातशाह वर पायो है॥
बाल पातशाहति सोयंबर कर करति।
तोहि देखि रीझि जयमाल पहिरायो है॥

गेडी सोँ अराबो टारि भेडी सोँ बिदारि दल।
खल दल खूँदि कीनो छीन एजदीन को॥
धावा करि पूरब ते डावा डारि फौजनि को।
मीन सोँ पकरि लीनो शाहि मौजदीन को॥
श्रीधर भनत पातशाहनि को पातशाह।
फरूकसियर मो पनाह दूहूँ दीन को॥
मुलुक मुलुक दौरी फरदै फतूहनि को।
काँप्यो डरि गवर हरख बाढ्यो दीन को॥

साजि दल फरूकसियर पातशाहपति।
श्रीधर बढ़त जब सहज शिकार है॥

घुमरू सुभासा में अराम इसफामें कित।
सुनि जलधर धुनि धौंसा की धुकार है॥
हबसाने हहल खँधारिन के खल भल।
बलक बदकसान जान न रूका रहे॥
तारा दे केवारा दे केवारा दे के वारा देहि।
पौरि पौरि लंकपुर परत पुकार है॥
दक्खिन दहेलि पेलि पच्छिम उदीची नीति।
पूरब अपूरब हठीलो हाथु लायो है॥
श्रीधर शहनशाहि फरूकसियर नर।
साते दीप सरहद हिंद की मिलायो है॥

दिन दिन बाढ़ति है बाढ़ि हइ दिन दिन।
दिन दिनं दूनी पातशाहति बढ़ायो है॥
और पातशाह पातशाही पावै जब पाए।
तोसों पातशाह पातशाही जेब पायो है॥
शादी शादियाने के उछाह आतपत्रनि के।
अंग अंग बाढ़े रंग बाढ़े हैं रखत के॥
तेरी पातशाही पातशाही पायो जेब फल।
ठाढ़े नभ सुमन प्रसून बरखत के॥
श्रीधर भनत पातशाहन को पातशाह।
फरूकसियर नर जबर नखत के॥
तिनके बखत जे वै लखत तखत तोहि।
बैठत तखत बाढे बखत तखत के॥

पद्माकर

पद्माकर

पद्माकर के जीवन के संबंध में कवि का निज का दिया हुआ कोई अंतरंग प्रमाण इनके किसी भी ग्रंथ में नहीं मिलता। केवल एक छंद में इन्होंने अपना कुछ व्यक्तिगत परिचय दिया है—

कवि का परिचय

भट्ट तिलँगाने को बुँदेलखंड बासी नृप,
सुजस प्रकासी पदुमाकर सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छंद छप्पय अनेक भाँति,
संसकृत प्राकृत पढ़ो जु गुन ग्रामा हौं॥
हय रथ पालकी गयंद गृह ग्राम चारु,
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगत सिंह,
तेरे जान तेरो वह विप्र मै सुदामा हौं॥

यह कवित्त उनकी फुटकर रचनाओं में से है इस लिये यह बहुत प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, परंतु इसमें कवि के संबंध में जो बातें कही गई हैं उनकी पुष्टि बहिरंग प्रमाणों से भी होती है और इस लिए इसे प्रामाणिक मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है। इस एक कवित्त से उनके जीवन के संबंध की प्रायः सभी मुख्य बातें, जैसे उनका भट्टवंशीय तैलंग ब्राह्मण होना, बुँदेलखंड में रहना, संस्कृत और प्राकृत का विद्वान् और हिंदी का यशस्वी कवि होना, राजा महाराजाओं के साथ राजसी ठाट से रहना और इनके प्रधान आश्रयदाता तत्कालीन जयपुरनरेश जगतसिंह के साथ, जिनके लिये इन्होंने अपना सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ "जगद्विनोद" बनाया था, इनकी कृष्ण और सुदामा की सी मैत्री होना आदि, जानी जा सकती है। इनके सिवा कवि के जीवन के संबंध की अन्य बातों का पता कुछ बाह्य प्रमाणों से चलता है।

इनका जन्म सं० १८१० में सागर में हुआ और सं० १८९० में वे कानपुर में गंगातट पर स्वर्गवासी हुये।[1] इनके पूर्वपुरुषों में से एक मधुकर भट्ट थे जो सं० १६१५ में नर्मदा तट पर गढ़पट्टन नामक स्थान में रहने लगे थे, और फिर वहाँ से ब्रज में आए। इनके कुटुंब का एक भाग गोकुल में और दूसरा मथुरा में बस

---

[1] कुछ विद्वानों, मुख्यतः मिश्रबंधुओं की धारणा है कि पद्माकर का जन्म बाँदा में हुआ।

गया। आगे चल कर मथुरा में जो इनके पूर्वपुरुष रहते थे उनमें से कोई एक बाँदा चले आए। इनके पिता मोहनलाल भी संस्कृत के विद्वान् और हिंदी के कवि थे और इसके अतिरिक्त वे तांत्रिक भी बड़े भारी थे और इसी वजह से राजा रघुनाथ राव उपनाम 'राघोबा' इनको बहुत मानते थे। अस्तु

कहा जाता है कि पद्माकर बहुत थोड़ी अवस्था से ही कविता करने लग गए थे। १६ वर्ष की अवस्था का रचा हुआ उनका एक कवित्त प्रसिद्ध है :—

संपति सुमेरु की कुबेर की जुपावै ताहि,
तुरत जुहावत बिलंब उर धारै ना।
कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितर बिचारै ना॥
गंज गज बकस महीप रघुनाथ राय,
याहि गज धोखे कहूँ काहू दै डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोंद तें उतारै ना॥

कवि के आश्रय-दाता

इससे प्रगट है कि पिता के संसर्ग से पद्माकर भी पहले रघुनाथ राव के दरबार में ही रहे, क्योंकि ये भी अपने पिता की भाँति मंत्रशास्त्र में प्रवीण हो गये थे, और इनकी इसी विद्या पर रीझ कर हमीरपुर जिले के अंतर्गत सुँगरा नामक ग्राम का निवासी नोने अर्जुनसिंह इनका चेला हो गया था। इसके उपरांत रघुनाथ राव से ये दो एक बार रूठ कर अन्य दरबारों में भी चले गए थे और बाद में गुँसाईं हिम्मतबहादुर के यहां भी रहने लगे थे और उन्हीं की प्रशंसा में इन्होंने 'हिम्मतबहादुर-बिरुदावली' की रचना की थी।

इतिहास से पता लगता है कि नोने अर्जुनसिंह सब प्रकार से हिम्मत-बहादुर से अधिक प्रशंसा के पात्र थे और पद्माकर के शिष्य भी थे। पद्माकर ने ही इनकी श्रद्धा भक्ति से संतुष्ट हो कर एक लक्ष चंडीपाठ का अनुष्ठान कराके अर्जुनसिंह के लिये एक तलवार सिद्ध की थी जिस पर वह सदा भरोसा रखते थे। ये पहले चरखारी नरेश खुमानसिंह की सेवा में थे पर बाद में किसी कारण-वश अनबन हो जाने पर यह बाँदानरेश गुमानसिंह के यहाँ चले गए थे। इसी अवसर पर हिम्मतबहादुर और करामात खाँ ने बुँदेलखंड पर चढ़ाई की और तेंदवारी के मैदान में बाँदे वाले गुमानसिंह ने उनका सामना किया। इस युद्ध में अर्जुनसिंह ने बुरी तरह हिम्मतबहादुर और करामत को नीचा दिखाया था। अर्जुनसिंह ने एक दूसरे युद्ध में चरखारी के खुमानसिंह को हराया और उसे मार भी डाला। अर्जुनसिंह की तीसरी विजय 'गद्योरा' की लड़ाई में मिली जिससे पन्ना राज्य का बहुत सा हिस्सा इनके हाथ लगा। यह युद्ध बड़ा भयानक था और

इसमें मध्यप्रांत के प्रायः सब रजवाड़े भीतरी कलह के कारण आपस ही में लड़ मरे; इस युद्ध को बुँदेलखंड का महाभारत कहते हैं। इसमें अर्जुनसिंह को अठारह घाव लगे थे। कहते हैं कि किसी महात्मा ने अर्जुनसिंह से यह भविष्यवाणी की थी कि तुम तीन युद्ध जीतोगे और अंत में अपने ही आत्मीयों के हाथ तुम्हारी मृत्यु होगी। तीन युद्ध तो ये अब तक जीत चुके थे। अंतिम युद्ध में बुँदेलखंड के मुख्य मुख्य वीर काम आ चुके थे और यद्यपि इसमें अर्जुनसिंह की विजय हुई थी पर इनकी सैन्यशक्ति बहुत दुर्बल हो गई थी और इनके सहायक नहीं के बराबर थे। हिम्मतबहादुर बहुत दिन से इस प्रकार के अवसर की ताक में थे, उन्होंने पहले दतिया जीत कर वहाँ से चौथ वसूल की, मोठ का परगना भी दबा लिया पर बाँदे पर अकेले चढ़ाई करने की हिम्मत न पड़ी इस लिए नवाब अली-बहादुर को पत्र लिख कर बुलाया और उसे बाँदा का नवाब बनाने का प्रलोभन दिया। अंत में दोनों की सम्मिलित सेना के सामने अर्जुनसिंह के मुट्ठी भर आदमी क्या कर सकते थे। पर वे अंत तक लड़े और अर्जुनसिंह का भी शरीर-पतन इसी युद्ध में हुआ पर हिम्मतबहादुर के हाथों नहीं जैसा कि पद्माकर ने लिखा है। उनकी मृत्यु उन्हीं के कुछ आत्मीयों के हाथ से हुई जो पहले इनके साथ ही चरखारी नरेश के यहाँ नौकर थे पर जो बाद में उनके साथ ही अर्जुनसिंह के शत्रु हो गए थे और बदला लेने के विचार से हिम्मतबहादुर की फौज में भर्ती हो गए थे। पद्माकर ने हिम्मतबहादुर के हाथों इनकी मृत्यु शायद इस लिए लिख दी होगी कि वही उस सेना के नायक थे।

ऐसी अवस्था में यह बात बड़े आश्चर्य की है कि पद्माकर ने अर्जुनसिंह की बिरुदावली न लिख कर हिम्मतबहादुर की क्यों लिखी जब कि अर्जुनसिंह इनके बड़े प्रिय शिष्य थे। इतिहास या हिम्मतबहादुर-बिरदावली किसी से भी पद्माकर के इस अनुचित पक्षपात का कारण नहीं दृष्टिगोचर होता। इससे एक यही निष्कर्ष अनुमान की सहायता से निकाला जा सकता है कि ये द्रव्यलोलुप अधिक रहे होंगे और जो इन्हें दान और ऐश्वर्य से अधिक संतुष्ट कर देता होगा उसी की प्रशंसा कर देते होंगे।

हिम्मतबहादुर

प्रस्तुत संग्रह जिस ग्रंथ से लिया गया है वह गोसांई हिम्मतबहादुर की प्रशंसा में लिखा गया था इसलिये यहां इनका कुछ विशेष परिचय दे देना आवश्यक है। ये कुलपहाड़ के एक ब्राह्मण के पुत्र थे। जब ये बहुत छोटे थे तभी इनके पिता का देहांत हो गया। इनके एक बड़े भाई भी थे। इनकी माता आर्थिक क्लेश के कारण इनके भरण पोषण में असमर्थ थीं, और इस लिये उसने अपने दोनों पुत्रों को राजेंद्र गिरि नामक एक गोसाँई को सौंप दिया और उसने इन दोनों को अपना चेला बनाया। उसने बड़े का नाम उमराव गिरि तथा छोटे का अनूप गिरि रक्खा। राजेंद्रगिरि को बाल्यकाल से ही लड़ने भिड़ने और सेनापति बनने की प्रबल प्रवृति का परिचय मिला

और तदनुसार उनकी युद्धशिक्षा और उचित भोजनादिक का उत्तम प्रबंध कर दिया गया। इसका फल यह हुआ कि १९ वर्ष की अवस्था तक वह सब प्रकार युद्ध-कला और अश्वारोहण में निपुण हो गए और भोजन का यह हाल था कि दो भैंसों के धारोष्ण दूध की आवश्यकता नित्य इनके जलपान के लिये होती थी। इसी समय के आस पास जब ये बीस साल के हुये तो इनके गुरु की मृत्यु हो गई और ये लखनऊ जाकर नवाब शुजाउद्दौला की फ़ौज में भर्ती हो गए। और उसीने इनके किसी विशेष साहस के काम से संतुष्ट हो इनको 'हिम्मतबहादुर' की पदवी दी थी, और तब से ये इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। सं० १८५० के बक्सर के प्रसिद्ध युद्ध में जो नवाब और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच हुआ था, इन्होंने बड़ी वीरता दिखा कर नवाब की जान बचाई थी और इससे प्रसन्न होकर नवाब ने इन्हें 'सिकद्दरा, और 'बिंद्की, नाम के परगने जागीर में दिए थे।

इसके कुछ ही दिन बाद नवाब ने इनकी और करामत खाँ की मातहती में एक फ़ौज बाँदा जीतने के लिए भेजी। बाँदा के अधिपति उन दिनों गुमानसिंह थे और उनके सेनापति पद्माकर के प्रिय शिष्य नोने अर्जुनसिंह थे। इस युद्ध में हिम्मतबहादुर की गहरी हार हुई जैसा कि आगे कहा जा चुका है। इसके कुछ ही दिन बाद 'गय्योग' के रणक्षेत्र में बुँदेलखंड के रजवाड़ों का महाभारत हुआ और इस युद्ध में नोने अर्जुनसिंह विजयी होते हुये भी किस प्रकार शक्तिहीन हो गये थे यह भी कहा जा चुका है। इसके बाद अवसर देख कर हिम्मतबहादुर ने अली बहादुर को बुला कर अपनी और उसकी कुल मिला कर लगभग ४०,००० सेना की सहायता से बड़ी कायरता पूर्वक अर्जुनसिंह का वध करवाया। यह लड़ाई अजय-गढ़ और बनगाँव के बीच वाले मैदान में हुई थी। कहा जाता है कि अर्जुनसिंह के दीक्षागुरु पद्माकर ने भी इस अवसर पर हिम्मतबहादुर के साथ रह कर यह लड़ाई अपनी आँखों देखी थी। इसका विस्तृत विवरण उन्होंने अपने ग्रंथ में दिया, और इसी का कुछ अंश प्रस्तुत संग्रह में दिया गया है।

इस घटना के बाद हिम्मतबहादुर अधिक दिन जीवित न रह सके। अली-बहादुर ने अपने वचनानुसार विजित देश का कुछ अंश इनको दे दिया था पर यह बात अलीबहादुर के पुत्र शमशेर बहादुर को बुरी लगी और इसने उनसे वह दी हुई जागीर लेनी चाही। इस पर हिम्मतबहादुर इन सबसे बिगड़ खड़ा हुआ। शुजाउद्दौला का साथ वह बहुत दिन पहले ही से छोड़ चुका था। अब उसने ईस्ट इण्डिया कंपनी से सहायता की प्रार्थना की और विजित देश का कुछ भाग कंपनी को देने का वचन दिया। अंग्रेजों ने तुरंत हिम्मतबहादुर की सहायता से शमशेर बहादुर को अपनी अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया और बाद में हिम्मत-बहादुर को भी अयोग्य बताकर विजित देश की रक्षा का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया।

हिम्मतबहादुर की मृत्यु कालिंजर दुर्ग के अवरोध के समय हुई। अली-बहादुर के साथ हिम्मतबहादुर तीन वर्ष तक इस किले को घेरे रहा पर विजय प्राप्त न कर सका और अंत में इसी घेरे में उसके प्राण गए। कहते हैं शेष दिनों इनका पतन भी हो गया था। गुसाईं लोग विवाह नहीं करते, अखंड ब्रह्मचर्य इनका प्रण रहता है। पर इन दोनों ही भाइयों ने वेश्याएँ रख ली थीं और उनसे इनके बहुत से वंशधर भी हुए।

हिम्मतबहादुर विरुदावली

पद्माकर ने जितने ग्रंथ लिखे हैं उनमें वीररस-प्रधान यही एक हिम्मत-बहादुर। विरुदावली है। इसके रचनाकाल का ठीक पता अभी तक नहीं लग सका है। इस ग्रंथ में उन्होंने हिम्मतबहादुर और अर्जुनसिंह के बनगाँव वाले युद्ध की तिथि दी है;—

संवत अठारह सै सुनौ, उनचास अधिक हिये गुनौ।
बैसाख बदि तिथि द्वादसी, बुधवार जुत यह चादरी॥

रचना काल

अर्थात् सं० १८४९ के वैसाख मास में यह युद्ध आरंभ हुआ था और उस समय पद्माकर भी उनके साथ थे और सं० १८५६ तक उन्हीं के साथ रहे। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस ग्रंथ की रचना सं०१८४९ और सं० १८५६ के बीच में हुई होगी।

इस ग्रंथ में क्या है इसके संबंध में पर्याप्त सूचना ऊपर के वर्णनों से मिल सकती है। यहां केवल दो एक बातें और कहनी हैं। इस ग्रंथ में शुजाउद्दौला और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच बक्सर के युद्ध का भी वर्णन है, और इस लिए इसका कुछ ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इसमें दो सौ बारह पद हैं और पाँच सर्गों में बँटा हुआ है। प्रत्येक के अंत में एक हरिगीतिका छंद है जिसकी अंतिम दो पंक्तियां सब में एक समान हैं, यथा—

पृथुरिति नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये बिरुदावली, हिम्मतबहादुर भूप की॥

पहले सर्ग में केवल मंगलाचरण के दो पद हैं, जिनमें 'यदुवंशमणि' श्री कृष्ण की वंदना करते हुए उनसे अपने आश्रयदाता हिम्मतबहादुर को विजय देने के लिये प्रार्थना की गई है। दूसरे सर्ग में चरितनायक की बहुत बढ़ा चढ़ा कर प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि इन्होंने गूजरों को परास्त कर बुँदेलखंड पर चढ़ाई की और दतिया और महाराज छत्रसाल के राज्यों पर अधिकार कर लिया। इसके अनंतर पद्माकर का कहना है कि हिम्मतबहादुर ने अर्जुनसिंह को घेर लिया जिसने अनेक राजों को परास्त किया था और जिससे बादशाह तक डरते थे। परंतु कवि इसके पहले के युद्ध के प्रसंग को, जिसमें हिम्मतबहादुर अर्जुनसिंह से बुरी तरह हार कर भाग गये थे, बिलकुल साफ उड़ा गया है, और

साथ ही साथ मरहठों के सूबेदार अली बहादुर का भी उल्लेख कहीं कहीं किया गया है। यह वही अली बहादुर हैं जिनके विषय में ऊपर कहा जा चुका है और जिनकी सहायता से हिम्मतबहादुर अर्जुनसिंह से लड़ने की हिम्मत कर सके थे। इस युद्ध का वर्णन कवि ने बड़ा सजीव किया है और युद्धारंभ का काल भी दे दिया है (सं० १८४९) जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। वर्णन शैली देखने से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि कवि अपनी आँखों देखी घटना का वर्णन कर रहा है। दोनों पक्षों की सेनाओं का बड़ा हृदयग्राही वर्णन है। सबसे बड़ा इस ग्रंथ का चौथा सर्ग है जिसमें दोनों दल के वीरों के घोर युद्ध का वर्णन है। पाँचवे में हिम्मत-बहादुर के हाथ अर्जुनसिंह की वीरगति के प्राप्त होने का वर्णन है।

ग्रंथ की भाषा

इस ग्रंथ की भाषा मिश्रबंधुओं के अनुसार प्राकृतमिश्रित ब्रजभाषा है, पर प्राकृतमिश्रित न कह कर हम उसे पुरानी हिंदीमिश्रित कहना अधिक ठीक समझते हैं। कहीं कहीं अप्रचलित शब्दों और मुहाविरों का प्रयोग करने का पद्माकर को रोग सा था। शब्दों को कभी कभी ऐसी बुरी तरह तोड़ मरोड़ कर रखते थे कि उनके पूर्व रूप या शुद्ध रूप का अनुमान करना कठिन हो जाता है। इनका यह दोष हिम्मतबहादुर बिरुदावली में विशेषरूप से विद्यमान है।

कवि पद्माकर के अन्य ग्रंथों की रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि यह अच्छी भाषा लिखना जानते थे, भाषा और भाव के सामंजस्य को समझते थे और चेष्टा करने पर प्रथम श्रेणी की रचना करने की प्रतिभा रखते थे। उनमें सरल, मधुर और प्रचलित शब्दों के चुनने की क्षमता थी, जिन शब्दों का सर्वसाधारण में परिचय है, जिनका प्रचार अधिक है, जिनमें कवि के यथार्थ भाव को श्रोता के हृदय में जगाने की शक्ति है तथा साथ ही जिनमें संगीत की मात्रा भी पर्याप्त हो, ऐसे शब्दों की पद्माकर की रचना में कमी नहीं है। पर साथ ही इसके पद्माकर की ऐसी रचना भी पर्याप्त परिमाण में मिलती है जिसको कि बिलकुल साधारण श्रेणी की कविता कह सकते हैं। हिम्मतबहादुर बिरुदावली में इसी प्रकार की रचना का प्राधान्य है।

पद्माकर का अनुप्रास प्रेम

प्रत्येक कवि में एक विशेषता होती है। पद्माकर की विशेषता है उनका अत्यधिक अनुप्रास प्रेम। इनको भाव पर पूर्ण अधिकार अवश्य था परंतु इस अधिकार का इन्होंने स्थान स्थान पर बड़ा दुरुपयोग किया है। प्रायः इनकी अनुप्रास के बोझ से लदी हुई रचना देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानों भाव उनके बोझ से मरणासन्न हो कर कराह रहा है। तात्पर्य यह कि वहां अनुप्रास ही अनुप्रास रह जाता है और सब बातें उसी नादसाम्य में लुप्त हो जाती हैं—दो एक उदाहरण देखिये--

"धम धम धमाधम झम झमाझम धम धमाधम ह्वै ठई।
चम चम चमाचम तम तमातम छम छमाछम छिति छई" ॥ १३ ॥

"तहँ हरषि हर हर हरषि हर हर हरषि हर हर कर पिल्यौ।
वह कहनि हर हर की सुधुनि सुनि जिगर सत्रुन को हिल्यौ" ॥ १२० ॥

इसी को भाषा के साथ खिलवाड़ या शाब्दिक इंद्रजाल (verbal juggelary) कहते हैं। शब्दों के चुनाव तथा उनके रूप को यथाशक्ति विकृत और कहीं कहीं ग्रामीण बनाने में भी पद्माकर ने पूर्ण निरंकुशता से काम लिया है। इसका कारण भी अनुचित अनुप्रास प्रेम ही कहा जा सकता है। नादसाम्य के लिये ही उनको शब्दों के रूप को बहुत कुछ विकृत करने की आवश्यकता होती थी। यह दोष उनके अन्य ग्रंथों की अपेक्षा हिम्मतबहादुर-बिरुदावली में अधिक परिमाण में मिलता है। यह ग्रंथ वीररस प्रधान है और इस लिए उन्होंने शब्दाडंबर के प्रभाव से उसमें ओज लाने का प्रबल प्रयास किया है परंतु इसमें वे सफल नहीं हो सके हैं। केवल शब्दशक्ति या नादशक्ति से ओज गुण का समुचित सन्निवेश नहीं हो सकता, इसके लिये ओजस्विनी भावना तथा कल्पना की भी उसी परिमाण में आवश्यकता होती है। भावों के चित्रण में पद्माकर को अधिक सफलता नहीं मिली है पर इतना अवश्य हुआ है कि जिस प्रकार के भावों को उन्होंने उठाया है उनका निर्वाह किसी प्रकार कर ही दिया है। कुछ ऐसे उच्च कोटि के छंद भी पद्माकर की रचना में मिलते हैं जो अंतस्तल को भली भाँति स्पर्श करते हैं, परंतु इस प्रकार की रचना हिम्मतबहादुर-बिरुदावली में बहुत कम देखने को मिलती है। ये वास्तव में शृंगार रस के कवि थे और अलंकृत काल के आचार्य कवियों के अंतिम प्रतिनिधि माने जाते हैं। शृंगार रस के इनके कुछ छंद ऐसे भी मिलते हैं जो हिंदी साहित्य के सर्वोच्च शृंगारी कवियों की रचना से प्रतियोगिता कर सकते हैं पर साथ ही यह भी है कि इनके बहुत से छंद बहुत साधारण ढंग के हैं। इन्हीं कारणों से कुछ लोगों की यह धारणा है कि पद्माकर में सर्वत्र परस्पर-विरोधिनी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। कहीं तो वह अत्यन्त उत्कृष्ट भाषा लिखते हैं और कहीं बहुत भद्दी, कहीं तो उनका भाव-चित्रण बहुत सजीव और उच्च कोटि का होता है और कहीं नितांत साधारण ढंग का। इनका विचार-क्षेत्र परिमित है और भावों में गांभीर्य की मात्रा कम है। इनके पास भावों की कमी भी है क्योंकि जिन भावों या चित्रों का समावेश इन्होंने अपनी रचना में किया है वे प्रायः उसी रूप में पूर्ववर्ती कवियों द्वारा व्यवहृत हो चुके हैं।

कवि की अन्य विशेषताएँ

हिम्मतबहादुर-बिरदावली

छप्पय

आन फिरत चहुँ चक्क धाक थक्कन गढ़ धुक्कहि ।
लुक्कहिं दुवन दिगंत जाइ जहँ तहँ तन मुक्कहिं ॥
दुंदुभि धुनि सुनि धरि जलद मन मद तजि लज्जहिं ।
भज्जहिं खल दल बिकल सोक सागर महँ मज्जहिं ॥
धनि राज इंद्रगिरि नृप सुवन उथपन थप्पन जग जयउ ।
बर नृप अनूप गिरि भूप जब सुभट सेन सज्जत भयउ ॥ ४५ ॥

हरिगीतिका ।

नृप धीर बीर बली चढ़्यो, सजि सेन समर सुखेल की ।
सुनि बंब बीरन के बढ़ी, लिय हौस बर बगमेल की ॥
पृथु रित्ति नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की ।
बर बरनियैं बिरदावली, हिम्मत बहादुर भूप की ॥ ४६ ॥

डिल्ला छंद ।

समर प्रबल दल दिग्घ उमंडिय । दुंदुभि धुनि दिगमंडल मंडिय ।
घरघरात घन में अति धुक्कनि । भर्भरात अरि भजत सुलुक्कनि ॥ ४७ ॥
उनमद दुरद घटनि छबि छज्जिय । जौन जलद पटलनि तकि तज्जिय ॥
उच्च निसान गगन महं डुल्लहिं । सुर बिमान झकझोरन झुल्लहिं ॥ ४८ ॥
झलमलात झूलन छबि ठानिय । बिज्जुल मनहु मेघ लपटानिय ॥
अडत फेर अँडात उमंडत । झूमत झुकत गजत घुमि मंडत ॥ ४९ ॥
उललत मदन समुद मद गारत । गिरिवर गरद मरद करि डारत ॥
सिंदूरनि सिर सुभग उमंडिय । उदयाचल रवि छबि छिति खंडिय ॥५०॥
घनघनात गजघंट उमंगनि । सनसनात सुर श्रुति सुभ अंगनि ॥
घुमड़ि चलत घुम्मत घन घोरत । सुंडन नषत झुंड झकझोरत ॥ ५१ ॥
चलतं मतंगनि तकि तमंकिय । पष्परैत हय हुडक हुमंकिय ॥
सिर झारत न सहत मृग सोभनि । कहुं कहुं चलत छुवत छिति छोभनि ॥५२॥
उड़त अमित गति करि करि ताछन । जीतत जनु कुलटान कटाछन ॥
थिरकत थिरकि चलत अग अंगनि । जीतत जुमकि पौन मग संगनि ॥ ५३ ॥
पच्छ रहित जीतत उड़ि पच्छिय । अंतरिच्छ गति जिन अबलच्छिय ॥
दिनन अमोल लोल गति चल्लहिं । बिदित अमोल गोल दल मल्लहिं ॥५४॥

बाग लेत अति लेत फलंगनि । जिमि हनुमत किय समुद उलंघनि ॥
जिन पर चढ़त सिंधु ढिग लग्गहिं । मंडल फिरि फिरि उठत उमग्गहिं ॥ ५५ ॥
पवन प्रचंड चंड अति धावहिं । तदपि न तिनहिं नेक छ्वै पावहिं ॥
तिन चढ़ि भट छबि छटन छलक्किय । रन उमंग अँग अंग झलक्किय ॥ ५६ ॥
उमड़ि अग्रवर पैदर दिन्नयउ । जिन हठि प्रथम जुद्ध व्रत लिन्नयउ ॥
बंदी जन बिरदावलि बुल्लहिं । सुनत सुभट दृग कमल प्रफुल्लहिं ॥५७॥
मानव सुरन अलापत ढढ्ढिय । वीर उरनि रस वीर सुबढ्ढिय ॥
सार झलकि झलमल छवि उग्गिय । मानहु अमित भानु भुव उग्गिय ॥५८॥
उमड़त दल छिति डग डग डुल्लत । कल्लोलनि बढ़ि समुद उछल्लत ॥
गढ़ धुक्कहिं गढ़पति उर कंपहिं । शत्रु सोक सागर महँ झंपहिं ॥ ५९ ॥
धूरि धुंध मंडित रवि मंडल । अकवकात अलकेस अखंडल ॥
थंभि न सकत भूमि धर दिक्करि । टुट्टत रद्द फटत नभ चिक्करि ॥ ६० ॥

छप्पय

चिक्करि चिक्करि उठहिं दिक्क दिक्करि करनिन जुत ।
खल दल भज्जत लजि तजि हय गय दारा सुत ॥
संकत लंक अतंक बंक हंकनि हुडकारत ।
डग डग डुल्लत गब्वि सब्ब पब्बयन सिधारत ॥
तँह पदमाकर कविवरन इमि नृप अनूप गिरि जब चढ्यउ ।
तब अमित अरावो अखिल दल इक बार छुट्टन भयउ ॥ ६१ ॥

हरिगीतिका

छुट्टत भयउ इक बार जब, सब तोपखानौ तड़कि कै ।
टुट्टत भयउ गढ़ वृंद गढ़पति, भाजि गे सब सड़कि कै ॥
पृथुरित्ति नित्त सुवित्त दै जग, जित्ति कित्ति अनूप की ।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मत बहादुर भूप की ॥ ६२ ॥

भुजंगप्रयात छंद

तुमक्कैं तड़क्कैं धड़क्कैं महा हैं । प्रलै चिल्लिका सी भड़क्कैं जहाँ हैं ॥
खड़क्कैं खरी वैरि छाती भड़क्कैं । सड़क्कैं गये सिंधु मज्जै गड़क्कैं ॥ ६३ ॥
चलै गोल गोली अतोली सनंकैं । मनौ भौंर मीरैं उड़ातीं भनंकैं ॥
चढ़ी आसमानै छई वे प्रमानैं । मनौ मेघमाला मिलै भासमानैं ॥ ६४ ॥
गिरै ते मही में जहीं भर्भराकैं । मनौ स्याम ओरे परैं झरझराकैं ॥
चलैं रामचंगी धरामे धमंकैं । सुने ते अवाजैं बली वैरि संकैं ॥ ६५ ॥
तमंचे तहां वीर सच्चे छुड़ावैं । कसे वंक वानै निसानै उड़ावैं ॥
छुटी एक कालैं बिसालैं जँजालैं । जगी जामगीं त्यौं चलैं ऊंटनालैं ॥ ६६ ॥

गजै नाजसीं छूटतीं त्यों गनालैं। सुनैं लजतीं गजती मेघमालैं ॥
चलीं मूंगरी उच्च है आसमानै। मनौ फेरि स्वर्गै चढे दिग्घ दानै ॥६७॥
परी एक वारै धमाधम धरा हैं। मनौ यह गिरी इंद्रहू की गदा है ॥
किधौं ये विमानन्न की चक्र भ्रुंडैं। परी टूटि लै कै विराजै भसुंडैं ॥ ६८॥
छुटी है अचाका महाबानवाली। उड़ी लै मनौ कोपि कै पन्नगाली ॥
खरी कुहकुहाती जुड़ाती नहीं हैं। चली हैं अनंतैं दिगंतैं दही हैं ॥ ६९ ॥
चली चद्दरैं त्यों मचे हैं धड़ा के। छड़ाके फड़ाके सड़ाके खड़ाके ॥
छुटे सेर बच्चे भजे बीर कच्चे। तजैं बालबच्चे फिरैं खात दच्चे ॥७० ॥
छुटे सब्ब सिप्पे करैं दिग्घ टिप्पे। सबै शत्रु छिप्पे कहूं हैं न दिप्पे ॥
करावीन छुट्टैं करैं वीर चुट्टैं। करी कंध टुट्टैं इतै उत्त बुट्टैं ॥७१॥
चली तोप धाँ धाँ धधाँ धाँइ जग्गी। धड़ाधड़ धड़ाधड़ धड़ा होन लग्गी ॥
झड़ाझड़ झड़ा वीर बांके छुड़ावैं। भड़ाभड़ भड़ाभड़ भड़ा त्यौं मचावैं ॥७२॥
दगो यों अराबो, सबै एक बारै। किधौं इंद्र कोप्यौ महाबज्र डारै ॥
किधौं सिंधु सातौ सबै भर्भराने। प्रलै काल के मेघ कै घर्घराने ॥७३॥
सुनीं जो अवाजैं सबै बैरि भाजैं। न लाजैं गहैं छोड़ि दीन्हीं समाजैं ॥
तजै पुज दारैं सम्हारैं न देहैं। गिरैं दौरि उठैं भजैं फेरि जेहैं ॥७४॥
उलथ्थैं पलथ्थैं कलथ्थैं कराहैं। न पावैं कहूँ सोक सिंधून थाहै ॥
तजैं सुंदरी त्यों दरी में धसे हैं। तहाँ सिंह बघ्घानहू ने ग्रसे हैं ॥७५॥

छप्पय

छिति अति छज्जिय अत्र छत्र छाहन छवि छक्किय।
चहुव चक्र धक पक्क अरिन अकवक्क धरक्किय ॥
इक्क दुवन तजि धरनि सरन तुव चरन सु तक्किय।
हय गय पयदल छोड़ि छोड़ि सुख सागर नक्किय ॥
जय मग प्रताप जग्गव उमगि उथल पथल जल थल गयउ।
नृपमनि अनूप गिरि भूप जब निज दल बल हंकत भयउ ॥७६॥

छंद त्रिभंगी

तहँ दुहुँ दल उमड़े घन सम घुमड़े झुकि झुकि झुमड़े जोर भरे।
ताकि तबल तमंके हिम्मत हंके बीर बमंके रन उभरे ॥
बोलत रन करखा बाढ़त हर्षा बानन वर्षा होन लगी।
उलछारत सेलैं अरिगन ठेलैं सीनन पेलैं रारि जगी ॥

बन्दी जन बुल्ले रोसन खुल्ले डग डग डुल्ले कादर हैं।
धौंसा धुन गज्जै दुहुँ दिसि बज्जे सुनि धुनि लज्जै बादर हैं ॥
निसान सु फहरैं इत उत छहरैं पावक लहरैं सी लगतीं।
छुवती नकि नाका मनहु सलाका धुजा पताका नभ जगतीं ॥

कढ़ि कोटन वारे बीर हँकारे न्यारे न्यारे अभिर परे।
किरवानन झारैं सुभट विदारैं नेकु न हारैं रोस भरे॥
कानन लौं तानैं गहि कमानैं अरिन निसानैं सिर घालैं।
सूधे अति पैठैं मुच्छन ऐठैं भुजन उमैठैं गहि ढालैं॥

अत्रनि की मूकैं घालि न चूकैं दै दै कूकैं कूदि परे।
गहि गरदन पटकैं नेकु न भटकैं झुकि झुकि झटकैं उमँग भरे॥
रन करत अड़ंगे सुभट उमंगे बैरिन वंगे करि झपटैं।
सीसन की टक्कर लेट उटक्कर घालत छक्कर लरि लपटैं॥

तहँ हथ्था हथ्थी मथ्था मथ्थी लथ्था लथ्थी माचि रही।
काटैं कर कट कट विकट सुभट भट कासो खट पट जात कही॥
गहि कठिन कटारी पेलत न्यारी रुधिर पनारी बमकि बहैं।
खंजर खिल खनकै ठेलत ठनकै तन सन सनि कै हिलगि रहैं॥

गहि गहि पिसकब्जैं मरमन गब्जैं तकि तकि 'नब्जै' काटत हैं।
कंमर ते छूरे काटत पूरे रिपु तन रूरे काटत हैं॥
करि धक्का धक्की हक्का हक्की ठक्का ठक्की मुदित मची।
घन घोर घुमंडी रारि उमंडी किलकत चंडी निरखि नची॥

एकै गहि भाले करि मुख लाले सुभट उताले घालत हैं।
तोरत रिपु ताले आले आले रुधिर पनाले चालत हैं॥
झारत असि जुरि जे वीरन उरजे पुरजे पुरजे काटि करैं।
हथियारन सूटैं नेकु न छूटैं खल दल कूटैं लपटि लरैं॥

तहँ ढुक्का ढुक्की मुक्का मुक्की डुक्का डुक्की होन लगी।
रन इक्का इक्की भिक्का भिक्की फिक्का फिक्की जोर जगी॥
काटत चिलता हैं इमि असि बाहैं तिनहिं सराहैं वीर बड़े।
टूटैं कटि भिल मैं रिपु रन विलमै सोचत दिल में खड़े खड़े॥

ढालन के ढक्के लागत पक्के इत उत थक्के परकत हैं।
इक इक्कन टक्के बँधे झमक्के तननि तमक्के तरकत हैं॥
ललकत फिर लपटे छत्तिन चपटे करि अरि चवटे पेरत हैं।
भट भुजन उखारत छिति पर डारत हँसि हुड़कारत हेरत हैं॥

ठोकत भुंज दंडन उमड़ि उदंडन प्रबल प्रचंडन चाउ भरे।
करि खल दल खंडन बैरि विहंडन नौऊ खंडन सुजस करे॥
दस्ताने करि करि धीरज धरि धरि जुद्ध उभरि भरि हंकत हैं।
पैठत दुरदन में रोषित रन में नेकु न मन में संकत हैं॥

निकसी तहँ खग्गैं उमड़ि उमग्गैं जग मग जग्गैं दहु दल मैं।
भाँतिन भाँतिन की बहु जातिन की अरि पांतिन की करि कल में ॥
तह कढ़ीं मगरवी अरगिन चरवी चापट करवी सी काटैं।
जगि जोर जुनब्बैं फहरत फब्बैं सुंडन गब्बै फर पाटैं ॥

बिज्जुल सी चमकै घाइन घमकैं तीखन तमकैं बंदर कीं।
बंदुरी सी खग्गैं जगमग जग्गैं लपकत लग्गैं नहिं वर की ॥
सोहैं सुभ सुरती घलत न मुरतीं रन में फुरती वीरन कों।
लीलम तरवारैं झुकि झुकि झारैं तकि तकि मारैं धीरन कों ॥

गजकुंभ विदारैं सु लहरदारैं लहरनि धारैं बिधि बिधि की।
लखि लालूवारैं रिपुगन हारैं मोल विचारैं नव निधि की ॥
तहँ षुरोसानी जग की जानी घलैं कृपानी चख चौंधैं।
निव्वाजहु खानी दल निधि खानी बिज्जु समायी रन कौंधैं ॥

असिवर नादोटैं घलत न लौटैं मुंडन मोटैं काटि करैं।
वर मानासाही भटन दुवाहीं झिलमनि बाहीं नहीं झरैं ॥
सुभ समर सिरोही जगमग जोही निकसत सोही नागिन सी।
करकरी सुकत्ती तीखन तत्ती हनि रिपु छत्ती नहिं विनसी ॥

गंजत गज दुरदा सहित बगुरदा गालिब गुरदा देखि परे।
तुरकन के तेगा तोरन तेगा सकल सुवेगा रुधिर भरे ॥
जग जगी जिहाजी मंजुल माजी सूरन साजी सोभि रही।
दिपती दहयाई दोनौ धाई भटनि चलाई अति उमहीं ॥

तहँ सु अलेमानी अवर न सानी सहित निसानी घलन लगीं।
सु जुनेदहु खानी पूरित पानी दिपति दिखानी जगा जगी ॥
दोनौं दिसी निसरी लखत न विसरी मंजुल मिसरी तरवारैं।
तन तोरन रुपती गालिब गुपती झक झक झुकती झुकि झारैं ॥

हेरी जु हलब्बी सुंडन गब्बी सीस हलब्बी सीं चमकैं।
तह करत झपट्टे वीर सुभट्टे चहुँ दिसि पट्टे घम घमकैं ॥
घालत अति चांड़े गहि गहि गाड़े रिपु सिर भांड़े से जु हरैं।
करि करि चित चोपैं रन पग रोपैं धरि धरि धोपैं धूम करैं ॥

जिनके अति भारे बखतर फारे दलनि दुधारे बहु निकसे।
तहँ सु बरदमानी खड़ग पिहानी हर वरदानी हेरि हँसे ॥
चरबी जिन चाबी दबहिं न दाबी दिपति दुतावी देखि परैं।
सुरि मुरत कहूँ ना उत्तम ऊना सब तैं दूना काट करैं ॥

छीलत जे कांचै रन में नाचै सुदम तमाचैं ओप धरैं ।
रंजित रन भूमी सु षड़ग रूमी रिपु सिर तूमी सी कतरैं ॥
असिवर अँगरेजैं घलि घलि तेजैं अरि गन मेजैं सुर पुर को ।
लखि फरूँकसाही बीरन बाही खल भजि जाही दुर दुर को ॥

रिपुभलन भकोरैं मुख नहि मोरैं बखतर तोरैं तकब्बरी ।
इक एकन मारैं धरि ललकारै गहि तलवारैं अकब्बरी ॥
इमि बहु तरवारैं काढ़ि अपारैं सुचित विचारैं नहि आवैं ।
तिनके बहु खनके भिलमन भनके ठनकत ठनके तन तावैं ॥

बक चकैं चलावैं दुहु दिसि धावैं हयन कुदावैं फूल भरें ।
गजदंत उपाटैं हौदा काटैं बांधि सपाटैं अति उभरे ॥
हथ्थिन सों हथ्थी मथ्था मथ्थी रारि अकथ्थी करन लगे ।
जंजीरन घालैं सुंड उछालैं वांधत फालैं फर उमगे ॥

गहि गहि हय भटकैं दिशि दिशि फटकैं भू पर पटकैं नहिं लटकैं ।
पाइन सों पीसैं अरिगन मीसैं जब से दीसैं नहिं भटकैं ॥
प्रति गजनि उठेलैं दंतन ठेलैं है भट भेलैं जोर करैं ।
जुध्थन सों जूटैं नेकु न हूटैं फिर फिर छूटैं फेर लरैं ॥

करि करि इन टक्कर हटत न थक्कर तन तकि तक्कर तोरत हैं ।
मारे रन मुंडन भाले भुंडन तऊ न सुंडन मोरत हैं ॥
इमि कुंजर लपटैं दुहु दल दपटैं झुकि झुकि झपटैं झूमत हैं ।
अरि पटल पटा से फारत खासे सुघन घटा से घूमत हैं ॥

तहं अर्जुन बंका करि करि हंका दुरद निसंका हूलत हैं ।
बैठो जु किलाएं मुच्छन ताएं रन छबि छाए फूलत हैं ॥
झारत हथियारन मारत वारन तन तरवारन लगत हँसें ।
पैरत भालन को सर जालन को असि घालन को धमकि धसें ॥

तहँ मची हकाहक भई जकाजक छिनक थकाथक होइ रही ।
तब नृप अनूप गिरि सुभट सिंधु तिरि अर्जुन सों भिरि खड़ग गही ॥
हय दाबि कन्हैया सुमिरि कँधैया सुगज कँधैया पर पहुँचो ।
झारत तरवारै तकि तकि मारै प्रबल पमारै गहि कहुँचो ॥

पटक्यो गज पर तें उमड़ि उमरतें अरि सिर धर तें काटि लियो ।
रिपु रुंड धरा को अरपत ताको हरहिं हरा को मुंड दियो ॥
लहि अर्जुन मथ्था गिरिजा नथ्था अमित अकथ्था नचत भयो ।
डम डमरू बजावै विरदनि गावै भूत नचावै छबिन छयो ॥

किल किलकत चंडी लहि निज खंडी उमड़ि उमंडी हरषति हैं ।
संग लै बैतालनि दै दै तालनि मज्जा जालनि करषति हैं ॥
जुग्गिननि जमातीं हिय हरषातीं षद षद खातीं मासन को ।
रूधिरन सों भरि भरि खप्पर धरि धरि नचती करि करि हासन को ॥

बज्जत जय डंका गज्जत बंका भज्जत लंका लों अरिगे ।
मन मानि अतंका करि सतसंका सिंधु सपंका तरि तरिगे ॥
नृप करि इमि रारनि लरि तरवारनि मारि पमारनि फते लई ।
लूटे बहु हय गय देत खलनि भय जग में जय जय सुधुनि भई ॥

छप्पय

जय जय जय धुनि धन्य धन्य गज्जिय छिति छज्जिय ।
फहरत सुजस निसान सान जय दुंदुभि बज्जिय ॥
सोभहिं सुभट सपूत खाइ तन धाइ अतुल्ले ।
बिमलि बसंतहिं पाइ मनहुं कल किंसुक फुल्ले ॥
तहँ पदमाकर कवि बरनि इमि रन उमंग सफजंग किय ।
नृप मनि अनूप गिरि भूप जहँ सुख समूह सुफतूह लिय ॥

सुभ सुख समूह फतूह लिय हिय मंजु मोदन सों भरै ।
काली कपाली निस दिना नित नृपति की रच्छा करै ॥
पृथुरित नित्त सुवित्त दै जग जित्ति कित्ति अनूप की ।
वर वरनिये विरदावली हिम्मतबहादुर भूप की ॥

सूदन

सूदन

सूदन कवि की गणना हिंदी के वीर रस के अग्रगण्य कवियों के साथ तो होती ही है, पर कोई कोई तो चंद के बाद इन्हीं को वीर रस का सर्वोच्च कवि मानते हैं, और कदाचित् उनका कथन अतिशयोक्ति पूर्ण भी नहीं है। पर यह सब होते हुए भी खेद के साथ कहना पड़ता है कि इनकी जीवनी के संबंध में हिंदी संसार को बहुत थोड़ी सूचना मिल सकी है। इन्होंने अपने ग्रंथ में अपने विषय में एक सोरठे में जो कुछ कहा है उससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ये मथुरा निवासी माथुर ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम बसंत और इनका सूदन था। वह सोरठा इस प्रकार है :—

कवि परिचय

मथुरापुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति बर।
पिता बसंत सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि ॥

इनके जन्म और मृत्यु-काल का कुछ ठीक पता नहीं है। इनके ग्रंथ 'सुजान-चरित' में इनके आश्रयदाता सूरजमल उपनाम सुजानसिंह की सं० १८०२ से लेकर १८१० तक की लड़ाइयों का वर्णन है और इनकी रचना या वर्णनशैली देखने से यह अनुमान करना स्वाभाविक हो जाता है कि इन्होंने अपनी आंखों देखी घटनाओं का ही वर्णन किया है। इससे कम से कम यह निष्कर्ष तो निर्भय होकर निकाला जा सकता है कि यह महाशय सं० १८१० तक अवश्य ही जीवित थे। ग्रंथ की समाप्ति इस प्रकार यकायक हो जाती है जिससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि कवि की इच्छा उस समय तक के वृत्तांत को लिख कर कुछ आगे लिखने की थी, जो किसी कारण से पूरी न हो सकी और ग्रंथ अपूर्ण रह गया। सुजानसिंह की मृत्यु सं० १८२१ में शाहदरा में मुग़लों के हाथ हुई। सुजानचरित के अंतिम अंक (सप्तम जंग) में सुजान सिंह के साथ मरहठों की लड़ाई के आरंभ होने के पहले का, अर्थात् लड़ाई की तैयारी का वृत्तांत दिया गया है और कवि के ईश्वर से चरितनायक की जय की प्रार्थना करने के बाद ही ग्रंथ समाप्त हो गया है। यह वृत्तांत सं० १८१० के लगभग का है। पर समाप्त होने पर भी कवि ने ग्रंथ की 'इति' नहीं की है क्योंकि प्रत्येक अंक के अंत में इन्होंने "भूपाल-पालक भूमिपति बदनेस नंद सुजान हैं" यह छंद लगाया है; परंतु अंत में न तो यह छंद ही लगाया गया है और न 'इति श्री' ही लगाई गई है। इतिहास से ज्ञात होता है कि इस लड़ाई में भी सुजानसिंह विजयी होकर लौटे थे, और यदि कोई घटना ऐसी न हो गई होती जिससे सूदन का आगे लिखना असंभव न हो जाता तो वह अवश्य ही लिखते। इससे एक यही निष्कर्ष निकलता है कि यदि सं० १८१० में सूदन के जीवन का नहीं तो कम से कम इनके रचनाकाल का अंत अवश्य ही हो गया होगा।

उपर्युक्त वृत्तांत के अतिरिक्त कवि के वैयक्तिक जीवन के संबंध में कुछ भी नहीं ज्ञात हो सका है। यह तो सभी जानते हैं कि सूदन सूरजमल के आश्रय में भरतपुर दरबार के बहुत दिन तक राजकवि थे और ऐसी अवस्था में यह आशा की जा सकती थी कि भरतपुर रियासत के अधिकारियों से या कवि के वर्तमान वंशधरों से लिखा पढ़ी करने पर उनके संबंध में कुछ और बातें मालूम हों। इसी आशा से लाला सीताराम जी ने भरतपुर के आयव्यय निरीक्षक (Controller of accounts) पं० मायाशंकर जी से लिखा पढ़ी की थी परंतु उन्होंने एक बड़ा ही निराशाजनक उत्तर भेजा जो इस प्रकार था:—

'Unfortunately nothing is now known about this poet except that his descendants are living in Muttra and they get Rs. 25/- per month from this state. There are only two widows and two young boys in the family. They know nothing about the poet or his works. I found not even one chit there.'

अर्थात् अभाग्य वश कवि के सबंध में इसके सिवा और कुछ नहीं मालूम है कि उसके वंशधर इस समय मथुरा में रहते हैं और उन्हें इस रियासत से २५) माहवारी मिलता है। इस समय कवि के वश में केवल दो विधवाएँ और दो छोटे लड़के हैं। उन्हें कवि या उसके ग्रथों के संबंध में कुछ भी जानकारी नहीं है, मझे वहाँ काग़ज़ का एक टुकड़ा भी नहीं मिला। ऐसी अवस्था में कवि के संबंध में कहीं से भी कुछ अधिक जानने की आशा करना व्यर्थ है।

सुजानचरित के अतिरिक्त सूदन के किसी और ग्रंथ का पता नहीं चला है। जहाँ तक मालूम होता है इसके सिवा उन्होंने और किसी ग्रंथ की रचना की भी नहीं थी। भरतपुर के स्टेट पुस्तकालय में सुजानचरित के सिवा सूदन का अन्य कोई ग्रंथ नहीं है।

मिश्रबंधुओं के अनुसार सूदन काल सं० १८११-१८३० तक है, और वे इनका कविताकाल सं० १८०२ सं० १८१० तक मानते हैं। सूदन ने अपने ग्रंथ के आरंभ में छै छंदों में १७५ कवियों के नाम लिखकर उन्हें प्रणाम किया है। इससे यह स्पष्ट है कि ये कवि या तो सूदन के समकालीन या पूर्ववर्ती थे। इस तालिका से भी इनके रचनाकाल का कुछ अनुमान हो सकता है। इस तालिका में प्रसिद्ध कवियों में चंद से लेकर भूषण और मतिराम तक के नाम आए हैं।

सुजान चरित

सूदन कवि के एकमात्र ग्रंथ सुजानचरित में भरतपुर नरेश सूरजमल उपनाम सुजानसिंह की मुख्य सात लड़ाइयों का वर्णन है। ये सातों लड़ाइयाँ सं० १८०२ सं० १८१० के अंदर हुई थीं। इस ग्रंथ को नागरी प्रचारिणी सभा ने सं० १९८० में प्रकाशित किया था। इसके पहले संस्करण का संपादन बाबू राधाकृष्णदास ने किया था और दूसरे

संशोधित संस्करण का संपादन बाबू ब्रजरत्नदास ने किया है। इस संस्करण की विशेषता यह है कि इस में बाबू ब्रजरत्नदास जी ने कवि-परिचय, सुजानसिंह का जीवनचरित्र और एक परिशिष्ट, जिसमें ग्रंथ में आए हुए विकृत फ़ारसी और अरबी के शुद्ध रूप तथा अर्थ दिए गए हैं, बढ़ा दिया गया है।

यह ग्रंथ छपे २३४ पृष्ठों का है और जैसा कि पहले कहा गया है अपूर्ण जान पड़ता है।

इस ग्रंथ में सूदन ने प्रत्येक अंक की समाप्ति पर निम्नलिखित छंद लिखा है जिस में तीन पद वही रहते हैं, परंतु चतुर्थ पद अध्याय में वर्णित कथा के अनुसार बदलता रहता है—

> भुवपाल पालक भूमिपति बदनेस नंद सुजान है;
> जानै दिलीदल दक्खिनी कीन्हें महा कलिकान है।
> ताको चरित्र कछूक सूदन कह्यो छंद बनाय कै;
> कहि देव ध्यान कवीश नृप कुल प्रथम अंक सुनाय कै।

पूरे ग्रंथ में सात जंग, (जिनको सुविधा के लिये अध्याय कह सकते हैं।) और प्रत्येक जंग में कई अंक हैं। अंकों की संख्या का कोई नियम नहीं रखा गया है, किसी में दो ही अंक हैं तो किसी में सात तक हैं।

ग्रंथारंभ में कवि ने मंगलाचरण के अनंतर पहले संस्कृत के कवियों तथा महर्षियों का गुण गान करके तब हिंदी के १७५ कवियों का नामोल्लेख करके उनको प्रणाम किया है। इसके बाद एक सोरठे में अपना परिचय देकर कवि ने नृपवंश वर्णन आरंभ किया है। सूदन के अनुसार सुजान सिंह की उत्पत्ति यदुवंश[1] में हुई और इनके पूर्व पुरुष 'भूरे' नाम के कोई 'भूप' थे:—

> 'जग उदित उद्धत जदुकुलन में भयौ भूरे भूप।
> ताकौ भयौ सुत रौरिया सो रौरि ही के रूप॥'

भूरे से लेकर बदनेस तक सुजानसिंह के पूर्व-पुरुषों का नामोल्लेख किया गया है। यही बदनेस या बदनसिंह सुजानसिंह के पिता थे और इनके पितामह

---

[1] भरतपुर के राजवंश की जाति के विषय में बड़ा मतभेद है। भारतवर्ष की प्रसिद्ध जातियों में जाटों की भी गणना है, जो पंजाब, सिंध, राजपुताने तथा संयुक्त प्रांत के कुछ भागों में बसे हुए हैं। भिन्न भिन्न प्रांतों में इनके भिन्न-भिन्न नाम पाए जाते हैं। भरतपुर के राजवंश के लोग भी जाट कहे जाते हैं पर सूदन ने कहीं भी इस राजवंश के संबंध में इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है। यथार्थ में जाट राजपूतों के अंतर्गत हैं या नहीं इस संबंध में बहुत मतभेद हैं। इनके रस्म रिवाज़ या आचार विचार आदि तो राजपूतों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं और कर्नल टाड इन्हें राजपूतों के ३६ वंशों के अंतर्गत मानते हैं।

का नाम भावसिंह (भज्जा) था। सूदन ने बहुत से अन्य कवियों की भांति वंशावली, राज्याभिषेक, या राजधानी आदि के वर्णन में अधिक कालक्षेप नहीं किया है। नृपवंश वर्णन से लेकर सुजानसिंह के पहले जंग की तैयारी के आरंभ तक का वृत्तांत सूदन ने केवल तीन या चार पृष्ठों में निपटा दिया है। इससे प्रतीत होता है कि इन्हें सुजानसिंह का पूरा जीवन चरित्र लिखना, जैसा कि ग्रंथ के नाम से विदित होता है, अभीष्ट नहीं था; इन्हें केवल अपने चरित्रनायक के युद्धों का वर्णन कर इनके शौर्य का गुणगान से मतलब था, और ऐसी अवस्था में ग्रंथ का नाम 'सुजानचरित' न होकर यदि 'सुजान-विरदावली' होता तो अच्छा रहता।

सूदन ने अपने ग्रंथ के आरंभ में भरतपुर के राजवंश का पूर्व इतिहास कुछ भी नहीं दिया है, इसलिये सूदन की कविता को समझने के लिये अन्य इतिहासों से जाटों का थोड़ा सा पूर्व वृत्तान्त दे देना अनुचित न होगा। इस जाति का उल्लेख पहले पहल शाहजहाँ के समय मिलता है जब मथुरा महाबन तथा कामों का फ़ौजदार मुर्शिद कुली तुर्कमान इस जाति की बस्तियों पर आक्रमण करते समय मारा गया था। धीरे-धीरे जाट लोग लूट-मार बहुत करने लगे, इनकी हिम्मत बढ़ती गई और क्रमशः अवस्था यहां तक पहुँची कि ये लोग जहां लूट मार करते वहां के पूरे मालिक बन बैठते थे। लड़ने में ये मुग़ल, राजपूत, सिख, या मराठे किसी से भी कम न थे। औरंगजेब के समय में जब चारों ओर अशांति और युद्ध का साम्राज्य हो रहा था लोग इन्हें भाड़े पर लड़ने के लिए बुलाते थे। औरंगजेब के ही समय एक गोकुल जाट ने बहुत लूट मार मचाई और मथुरा के पास सैदाबाद को जलाकर नष्ट कर दिया। इन लोगों ने वहाँ के फौजदार अब्दुन्नबी खां को लड़ाई में मार डाला और यह सुन औरंगजेब ने हसन अली खाँ की आधीनता में एक बड़ी फ़ौज गोकुल और उसके साथियों के दमन के लिए भेजी। फल यह हुआ कि गोकुल अपने एक मित्र के साथ पकड़ा गया और बादशाह ने दोनों को प्राण दंड दे दिया[१]। परंतु इनके मारे जाने के बाद जाटों का उपद्रव और भी बहुत बढ़ गया, सिख, राजपूत और मराठे ही मानों औरंगजेब को परेशान करने के लिए काफ़ी न थे। बादशाह के दक्षिण जाने पर मौजा सिनसिन

बहुत जगह राजपूतों और जाटों में विवाहादिक संबंध भी होते हैं पर कुछ स्थलों के जाटों में विधवा-विवाह और सगाई की भी रसम है। दूसरे कुछ लोग इन्हें एक प्रकार के अहीर भी कहते हैं। किसी किसी का यह भी कहना है कि इनकी उत्पत्ति शिव जी की जटा से हुई, इसलिए ये 'जाट' कहलाए और कुछ लोगों का यह भी मत है कि ये यदुवंशी थे तथा 'जाट' शब्द जदु या 'जादव' शब्द का ही अपभ्रंश है और सूदन का भी यही विश्वास जान पड़ता है।

१ मआसिर-उल-उमरा पृष्ठ ५४०।

के भज्जा (जिन्हें सूदन भाव सिंह कहते हैं) नामक जाट ने लूट मार आरंभ कर दिया। उसका आतंक इतना छा गया कि इधर उसका सामना करने को कोई तैयार न होता था। इसके तीन लड़के थे—चूड़ामणि, बदन सिंह और राजाराम। बादशाह को यह डर सवार हुआ कि उसकी अनुपस्थिति में जाट लोग कहीं दिल्ली पर अधिकार न कर लें। इसी भय से उसने दक्षिण से शाहज़ादा बेदार बख़्त तथा ख़ानजहाँ बहादुर ज़फरजंग को एक बड़ी सेना के साथ भेजा। सं० १७४५ में भज्जा का तृतीय पुत्र राजाराम मारा गया और जाटों का कुछ काल के लिए दमन हो गया। इसके कुछ ही समय बाद भज्जा की भी मृत्यु हुई और इसकी मृत्यु के उपरांत इसके दूसरे पुत्र चूड़ामणि ने फिर लूट मार का बाज़ार गर्म किया। इनके दमन के लिए भी कई बार सेना भेजी गई (सं० १७६२-६४) पर कुछ फल न हुआ। इनकी शक्ति बढ़ती ही गई। इधर औरंगजेब की भी मृत्यु हो गई और उत्तराधिकार संबंधी युद्ध जो कि मुग़लों के समय में एक अनिवार्य घटना सी हो गई थी प्रारंभ हुआ। चूड़ामणि ने इस युद्ध से अच्छा लाभ उठाया। ये पहले तो अपनी सेना कुछ हटा कर रखते थे पर बाद में हारी हुई सेना को बुरी तरह लूटते थे। इनके उपद्रवों से घबड़ा कर बहादुर शाह को दक्षिण से लौटने पर इन्हें मनसबदार बनाना पड़ा। परंतु इस घटना के थोड़े ही दिन बाद चूड़ामणि ने बारहा के सैयदों की ओर से मुहम्मद शाह तथा कुतूबुल मुल्क के युद्ध में शाही फौज पर हमला किया और यमुना के किनारे का बहुत सा प्रांत अपने अधिकार में कर लिया। पर इतने ही से इन्हें संतोष न हुआ। भागती हुई पराजित सेना को इन्होंने रास्ते में अचानक छापा मार कर बुरी तरह लूटा और लड़ाई के सब सामान आदि हड़प कर चंपत हो गए। यह सब देखकर बादशाह के क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा और उसने इन्हें दंड देने के लिए कई सरदारों के साथ सवाई जयसिंह को भेजा। चूड़ामणि ने इस बार अपनी पराजय निश्चित देख कर बारूदघर में आग लगा दी और उसी में जल मरे। परंतु इंपीरियल गजेटियर में इनकी मृत्यु का वृत्तांत और ही ढंग का लिखा हुआ है। उसके अनुसार सं० १७७९ में चूड़ामणि ने अपने पुत्र से झगड़ कर हीरा खाकर आत्महत्या कर ली। मुहकम सिंह ने राजा होते ही बदन सिंह (सुजान सिंह के पिता) को क़ैद कर लिया पर जाटों के कहने पर उन्हें छोड़ देना पड़ा। तब बदन सिंह ने जयसिंह को चढ़ाई करने के लिए उभाड़ा। और यह बात सूदन ने भी स्वीकार की है कि जयसिंह की कृपा से ही जाटों का राज्य बदन सिंह को मिला।—

"ज्यों जै साहि नरेस, करत कृपा तुव देस पै।
त्यों ब्रजेस बदनेस करत रहौ हम पर कृपा॥"

बदन सिंह ने अधिकार पाते ही भरतपुर के दुर्ग को इतना सुदृढ़ और सुसज्जित कराना आरंभ किया कि कुछ दिन के लिए वह प्रायः अजेय सा हो गया। परंतु किले की मरम्मत के कुछ ही दिन बाद इनकी आँख ख़राब हो चली और

इन्हें राज्य भार अपने योग्य पुत्र सूरजमल उपनाम सुजान सिंह को सौंप देना पड़ा, और शेष दिन एकांतवास करते हुए सं० १८१२ में स्वर्ग सिधारे।

ग्रंथ का संक्षिप्त विवरण

सूदन के ग्रंथ का वास्तविक कथाभाग सुजान सिंह के राज्यभार पाने के बाद से आरंभ होता है। इनके समूचे ग्रंथ में सुजान सिंह की सात मुख्य लड़ाइयों के कारण, दोनों पक्ष की सेनाओं की तैयारी, प्रकृत युद्ध की आँखों देखी घटनाएँ, तथा फलों का विशद वर्णन है।

पहले जंग में सं० १८०२ में इनके द्वारा असद खां का पराजय तथा मृत्यु का वर्णन है। यह इन्होंने स्वयं अपने निमित्त नहीं किया था वरन् नवाब फ़तेह अली की प्रार्थना से उनकी सहायता के लिए।

दूसरा जंग (सं० १८०४) में इनके और तत्कालीन मरहठा सरदार मल्हार राव के बीच हुआ था, इसमें भी इन्होंने आमेर नरेश माधोसिंह की सहायता के लिए (जब उन पर दक्षिणिओं ने चढ़ाई की थी) ही भाग लिया था। इसमें भी सुजान सिंह की विजय रही।

तीसरे जंग में इन्होंने सलाबत खाँ बख्शी को परास्त किया। सं० १८०५ में यह युद्ध इन्हें अपनी रक्षा के लिए करना पड़ा था। सलाबत खां ने एक बड़ी सैन्य के साथ भरतपुर पर चढ़ाई की थी।

चौथे जंग (सं० १८०६) में इन्होंने पठानों के परास्त करने में सफदर जंग की सहायता की थी।

पांचवें जंग (सं० १८०९) में इन्होंने राय बहादुर सिंह बड़गूजर को परास्त किया था।

छठवें जंग (सं० १८१०) में इन्होंने दिल्ली लूटने में सफ़दर जंग की सहायता की। इस जंग में प्रसंगवश कवि ने अहमद शाह के समय तक का दिल्ली का संक्षिप्त इतिहास भी दिया है। इनका दिल्ली के राजवंशों के वर्णन का प्रसंग राजा शांतनु से आरंभ होता है। राजा शांतनु से लेकर जनमेजय तक का वृतांत देकर फिर इन्होंने चौहान वंशीय पृथ्वीराज तथा शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के युद्धों का वर्णन किया है। इसके अनंतर पठानों के दो सौ वर्ष राज्य करने का उल्लेख करते हुए उन्होंने चग़त्ताई वंश के तैमूरलंग से लेकर अहमद शाह तक के बादशाहों के नाम तथा राज्यकाल आदि दिए हैं।

सुजान सिंह के इस युद्ध में भाग लेने का कारण यों था। अहमद शाह वज़ीर मनसूर जंग और बख्शी ग़ाज़ी उद्दीन खां में झगड़ा हो गया और इसका फल यह हुआ कि मनसूर को दिल्ली छोड़ कर चला जाना पड़ा। मनसूर ने बदले की नीयत से सुजान सिंह से सहायता मांगी। सुजान सिंह ने उत्तर में यह कहा कि मैं दिल्ली के बादशाह के अधीन हूँ और इस अवस्था में दिल्ली पर चढ़ाई करने में मैं तब तक सहायता नहीं दे सकता जब तक कि दिल्ली के सिंहासन का कोई दूसरा

अधिकारी न खड़ा किया जाय। मनसूर ने यह बात मान कर कामबख्श के पोते अकबर को दिल्ली का सम्राट् घोषित किया। इसके बाद सुजान सिंह ने दिल्ली का अवरोध किया। और इनकी सेना ग़ाज़ीउद्दीन को हराकर लाल दरवाजे से दिल्ली शहर में घुसी और लूटमार आरंभ हुई। दिल्ली के लूट के वर्णन में कवि ने अपनी वर्णनकुशलता की पराकाष्ठा कर दी है। बाज़ार की चीज़ों तथा और साधारण विषयों के सजीव वर्णन से कवि के ज्ञानगांभीर्य तथा पैनी दृष्टि का परिचय भली भाँति मिलता है। लूट के थोड़े ही समय के उपरांत कोटरा में फिर लड़ाई हुई जिस में शाही फौज को नीचा देखना पड़ा। दिल्ली से आठ कोस पर एक और युद्ध हुआ और इसमें सुजान सिंह की विजय हुई। अंत में हारकर ग़ाज़ी उद्दीन को मरहठों की शरण लेनी पड़ी, और सहायता होते हुए भी उसे फिर परास्त होना पड़ा। अंत में आमेर के राजा माधो सिंह के बीच में पड़ने से दोनों में संधि हुई और मनसूरजंग अवध का नवाब बना कर भेज दिया गया।

इस जंग के बाद सप्तम जंग (सं० १८१०) में आरंभ होता है पर यह अपूर्ण रह गया है। यह युद्ध मरहठा सरदार मल्हार राव से हुआ था पर कवि ने दोनों ओर की फ़ौजों की तैयारी के वर्णन के बाद ही रचना समाप्त कर दी है। इतिहास से पता लगता है कि इस युद्ध में सुजान सिंह को मरहठों से संधि कर लेनी पड़ी थी। सं० १८१४ में अहमद शाह अबदाली ने इनके दुर्ग को घेर लिया था पर दैवात् उस की सैन्य में ऐसी महामारी फैली कि उसे वहां से चला जाना पड़ा। अंत में सं० १८२१ में शाह आलम द्वितीय के समय में सुजान सिंह ने दिल्ली विजय करने की इच्छा से उस पर चढ़ाई की और इसी चढ़ाई में धोखे से अचानक ये वीरगति को प्राप्त हुए।

प्रस्तुत संग्रह में दो जंग (छठवां और सातवां) दिए गए हैं और इसी कारण उनके सारांश भी ऊपर कुछ विस्तार से दे दिए गए हैं।

यह निर्णय करना कठिन है कि सूदन ने हिंदी की किस उपभाषा में अपनी कविता की। क्योंकि सुजानचरित में समय-समय पर ब्रजभाषा,

सूदन की कविता खड़ी बोली, माड़वारी, राजस्थानी, पूरबी, तथा पंजाबी आदि कई बोलियां अपनी छटा दिखला जाती हैं। दो एक उदाहरण देखिये।

(क) उस समय की दक्खिनी हिंदी या उर्दू तथा पंजाबी मिश्रित खड़ी बोली—

दोहा

साह जहानाबाद मैं, जद सैं यह आया।
तद सैं हुकुम हजूर दा नहिं एक बजाया॥

(ख) मारवाड़ी और राजस्थानी मिश्रित —

कौठे रह्या ठाकरां कि ठाकरां पधारया बीरा।
चाकराँ लारैं म्हें उभारे पग धाँवाँ छाँ॥

काकाजी कागला का अगार ओ जी बाईजी थे।
ल्यावँछाँ जी ल्यावाँ कोई आवाँ छाँ जी आवाँ छाँ ॥

(ग) विशुद्ध उर्दू

दोहा

रब की रजा है हमैं सहना बजा है बख्त।
हिंदू का गजा है आया ओर तुरकानी का ॥

(घ) पूरबी (प्रताप गढ़ी)

बबुआ न आवा मोर भैयन न पावा याक।
तुपक की न लावा गांठि डीबू आन चावा है ॥
चाकरी की लकरी की फकरी बिहानी कीन्ह।
मनई न कनई दिहाँन या बतावा है ॥

इस प्रकार के अनेक उदाहरण इस ग्रंथ में देखने में आते हैं। जहां जिस प्रांत या जातिविशेष के मनुष्यों के विषय में सूदन को कुछ कहना होता वहाँ उसी प्रांत की बोली का व्यवहार करना ये उत्तम समझते थे, परंतु कहना न होगा ग्रंथ में प्राधान्य ब्रजभाषा ही का है। यह स्वयं मथुरा के रहने वाले थे और इस दृष्टि से इनकी कविता में विशुद्ध ब्रजभाषा के प्रयोग की आशा की जा सकती थी, पर ऐसा न होने का कारण शायद इनके ग्रंथ का विषय था। आद्योपांत इसमें लड़ाई, लूट, मार, रोना, चिल्लाना, नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का आघात-प्रतिघात आदि के वर्णन भरे पड़े हैं और इस प्रकार के वर्णन के लिए केवल विशुद्ध ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली से ही काम चलाना कठिन और असुविधा-जनक था। इस कथन का यह तात्पर्य न निकालना चाहिये कि ब्रजभाषा में वीर रस की उत्तम कविता हो ही नहीं सकती या किसी को ब्रजभाषा में वीर काव्य रचना में सफलता मिली ही नहीं, उदाहरण के लिए महाकवि भूषण की कविता है ही। कवि अपने विषय के अनुसार भाषा पसंद कर लेता है। भाषा के चुनाव में कवि की रुचि ही सर्वोपरि हुआ करती है।

विविध प्रकार की बोलियों के साथ साथ सूदन के ग्रंथ में केशव की भाँति छंद भी अनेक प्रकार के व्यवहृत हुए हैं, जिनमें छप्पय, पद्धरी, तोमर कवित्त, भुजंगी, हरगीत, दुपई, मुक्तादाम, नाराच, अनुगीत, अरिल्ल, निसानी, तोटक, पावकुलक, संजुता, दोहा तथा सोरठा आदि मुख्य हैं। छंदों के संबंध में इन्होंने यथासंभव असावधानी कहीं नहीं की है। जिस वर्णन में जिस छंद से इन्होंने काम लिया है वहाँ उसके वर्ण, मात्रा, तथा छंद से संबंध रखने वाले सभी विषयों का पूरा ध्यान रखा है। छंद संबंधी दोष इनकी रचना में बहुत कम मिलते हैं। यह कहना कि किसी विशेष प्रकार के रस के लिये किसी विशेष प्रकार के छंद ही उपयुक्त होते हैं, ज्यादती है, पर तो भी यह कदाचित् अतिशयोक्ति न होगी कि सूदन ने, विषय, रस, पात्र, देश, काल, तथा अवसर के अनुसार छंदों के

चुनाव में सूक्ष्मदर्शिता से काम लिया है और इसके फलस्वरूप इनकी कविता की रोचकता बढ़ गई है।

जान पड़ता है सूदन काव्य में नाद के प्रभाव को रस के उद्रेक के संबंध में आवश्यकता से अधिक महत्त्व देते थे। जहाँ वे वास्तविक युद्ध का वर्णन करने लगते थे वहाँ प्राय: आधे आधे महत्व पृष्ठ तक धाँयँ, धाँयँ, कड़ड़ड़, धड़ड़ड़, आदि अर्थशून्य शब्दों का ही प्राधान्य सा हो जाता है। वीर रस का उद्रेक केवल बीहड़ और कर्णकटु शब्दों की भरमार से ही नहीं हुआ करता, और यह भी कुछ आवश्यक नहीं कि कविता में ओज लाने के लिये विकट संयुक्ताक्षरों से जर्जरित और नादसाम्य या शब्दसाम्य से परिपूर्ण रचना अनिवार्य हो। उदाहरण के लिये हम गोरेलाल या जोधराज का उल्लेख कर सकते हैं। क्या इनकी कविता में ओज नहीं है, क्या इनके छंदों से वीर रस का उद्रेक नहीं होता ? अवश्य होता है, पर इन्होंने नादशक्ति को ही सर्वस्व नहीं माना क्योंकि ऐसा करने से बहुधा भाव की हत्या हो जाती है और भाव ही कविता का प्राण है चाहे वह वीररसप्रधान हो या शृङ्गाररसप्रधान। अब सूदन के इस प्रकार नादशक्ति के आधार पर स्थित कुछ छंदों के नमूने देखिये :—

स नँ नँ नँ नँ नँ नँ छुट्टियं सर जुट्टियं नहिं हट्टियं।
फ नँ नँ नँ नँ नँ नँ तन फुट्टियं उर हुट्टियं भुव लुट्टियं।
ख नँ नँ नँ नँ नँ नँ घुट्टियं लगि बान सौं असि मुट्टियं।
धँ नँ नँ नँ नँ नँ नँ चुट्टियं भट मुट्टियं गर छुट्टियं।
ध द्ध द्धर भ भ्भ भ्भर झ झझ झझर ह्वैरही।
कक्कर पप्पप्पर तत्तत्तर ह्वै रही।

इस प्रकार के उदाहरण सुजान चरित में भरे पड़े हैं। इन छंदों की भाषा से चारणों की डिंगल कविता का स्मरण तो अवश्य हो जाता है और युद्धस्थल में वास्तविक लड़ाई के समय नाना भाँति के विचित्र और वीरों के उत्साह को बढ़ने वाले शब्दों का चित्र अवश्य ही कल्पना क्षेत्र में उपस्थित हो जाता है, परंतु वीर रस की कविता के लिए यही पर्याप्त नहीं है। कोई कोई इसे घोर शैथिल्य भी कह सकते हैं। अस्तु,

जो हो यह सब को मानना पड़ेगा कि सूदन ने वर्णन में सजीवता लाने में कोई बात उठा नहीं रखी है। इसी के लिए उन्होंने भिन्न भिन्न बोलियों, छंदों, अनुकरणिक शब्दों आदि का इतना अधिक प्रयोग किया है। लड़ाई की तैयारी, फौजों की सजावट, घुड़सवार, पैदल और तोपखाने आदि के युद्ध क्षेत्र में आगे बढ़ने, हारी हुई सेना के तितर बितर होकर भागने और विजयी सेना के उसके पीछा करने तथा लूट मार आदि के इनके द्वारा खींचे हुए दृश्य वास्तव में हिंदी साहित्य में अद्वितीय कहे जा सकते हैं। इनकी वर्णन शैली सचमुच विचित्र है। दिल्ली की लूट के समय का वर्णन वास्तव में बड़ा हृदयग्राही हुआ है। इनके इस प्रकार के

वर्णनों में यदि कोई खटकने वाली बात है तो यही कि ये जब किसी वस्तु के नाम गिनाने लगते हैं तो पढ़ने वालों का जी ऊब जाता है। दिल्ली के बाजार की शायद ही कोई चीज ऐसी हो जिसका नाम इन्होंने न गिनाया हो। लूट के समय दिल्ली की भिन्न जातियों के नर नारियों की घबड़ाहट और उनके उनके रोने कलपने का वर्णन इन्होंने उन्हीं की भाषा में किया है। इससे इनके विभिन्न प्रांतों के नर नारियों के रहन सहन, स्वभाव, तथा उनकी बोल चाल की भाषा के विस्तृत ज्ञान का पता चलता है। किसी किसी अंक में इन्होंने योद्धाओं में जो जोशीली और गंभीर उक्तियाँ कहलवाई हैं वे वास्तव में बड़ी सारगर्भित हुई हैं। उदाहरण की कमी नहीं है।

इनके वर्णन के संबंध में दो बातें और कह देनी हैं। इनके किए हुए प्रायः सभी वर्णनों में प्रायः सर्वत्र सत्यप्रियता और निरकुशता, जो कहीं कहीं उद्दंडता का रूप भी धारण कर लेती है, प्रचुर परिमाण में देखने में आती हैं। इन्होंने अपने चरितनायक के शत्रुओं के भी गुणगान मुक्तकंठ से किए हैं। उनमें यदि कोई प्रशंसनीय बातें होती थीं तो उनकी अवहेलना कर जाना या जान बूझ कर उनके महत्व को संकुचित करना या उनमें व्यर्थ के दोष ढूँढ़ना सूदन के स्वभाव के विरुद्ध था। इन बातों के अतिरिक्त हास्य रस के उदाहरण भी प्रायः देखने में आ जाते हैं। कहीं कहीं इन्होंने रूपक भी अच्छे कहे हैं।

प्रायः सभी समालोचक सूदन को वीरकाव्य का एक बहुत उच्चकोटि का कवि मानते हैं। मिश्रबन्धु इन्हे बहुत ही 'बढ़िया' कवि समझते हैं और इनकी गणना दास की श्रेणी में करते हुए कहते हैं, "युद्ध की तैयारी में सूदन, युद्ध वर्णन में लाल और आतंक एवं भागने के वर्णन में भूषण प्रायः सर्वश्रेष्ठ हैं। इन तीनों महाशयों की कविता युद्ध काव्य का शृंगार है।" लाला सीताराम जी बी० ए० इनके संबंध में कहते हैं, "Sudan was master of all the vernaculars of Upper India, and his graphic discription of the battles are-rivalled only by the immortal auother of the Prithviraj Rasou," अर्थात् सूदन उत्तरभारत की सभी बोलियों के आचार्य थे और युद्धों के सजीव वर्णन में पृथ्वीराज रासो के अमर कवि चंद ही इनसे प्रतिद्वंद्विता कर सकते थे।

सुजान चरित्र

षष्ठ जंग

छप्पय

धरि सत रज तम रूप सृजति पालति संघारति।
आरत लखि सुरराज बिपति असुरन कौं पारति॥
धूम चंड अरु मुंड महिष रकता रज भंजति।
सिंभु निसुंभु चबाइ चारु दस लोकन रंजति॥
जाकी बिभूति पर ब्रह्म हू निरगुन तैं गुनमय बरनि।
मुनि देव मनुज सूदन रटत जयति जयति शंकर-घरनि॥

दोहा

गत पुरान सत बरष दस, मधुरितु माधव मास।
सूरज हित मंसूर कैं गह्यौ दिली पै गाँस॥

छप्पय

सप्त दीप कौ दीप दीप जंबू अति आगर।
नव खंडनु बर खंड भर्थ नृप खंड उजागर॥
तासु मद्धि मधिदेस बेस देसनु की मनि गनि।
मथुरा मंडल निकट पाँच पथ महि अनूप भनि॥
हैं द्वीप खंड अरु देव बहु तन मैं ज्यौं तन सीस लहि।
भाभोग नीति नर प्रीति जुत नाग नगर सुरबेस कहि॥

तासु मद्धि परसिद्ध नागपुर संतन राजा।
तनय तीन भए तासु भीष्म भुमि भारत काजा।
तिहिं बिमात तें अनुज चित्र बपु बिय बिचित्र रज॥
जिहिं बालनु तैं भए अंध पांडुव सुबिदुर अज॥
त एक एक सुत अंध कै पंडव कै पाँचै भए।
पूत भीम अर्जुन नकुल सहदेव देवनु दए॥

दोहा

ंडु मरयो मुनि श्राप तैं रहे पाँच हू पूत।
अंध नृपति तिनकौं दए पंच पथ्थ मजबूत॥
ानीपथ सुनि पथ दुओ बागीपथ्थ तिलपथ्थ।
ंद्र पथ्थ पुर थप्पियौ पंडु पूत समरथ्थ॥

देव लोक ज्यौं गगन मैं बलिपुर ज्यौं पाताल।
इंद्रप्रस्थ त्यौं भूमि पै रच्यौ धर्म नरपाल ॥
स्वारथ कौं भारत रच्यौ पारथ कृष्ण सहाइ।
अंध बंस निरबंस करि गए हिमालय धाइ॥
अर्जुन सुत अभिमन्यु की पतनी गर्भ मझार।
कृष्ण कृपा तैं सो बच्यौ भयौ भूमि भरतार॥
सो नृप तच्छक ने डस्यो श्री शुक किया उधार।
जन्मेजय ताकौ तनय बैर बहोरन हार॥
इद्रपथ्थ यौं पंडुकुल भुगतीं बरस अनेक।
फिरि आई चौहान कैं बिलसी धरैं बिबेक॥

छंद पद्धरी

चहुँवान करयौ बहु बरष राज। अथिराज जुद्ध कीने दराज॥
लिय सात बार गोरी सुबंध। पुनि भयौ भूप तिय नेह अंध॥
बारह से संबत अंत आइ। लीनी सहाब दिल्ली दबाइ॥
रन पकरि प्रथीराजै सहाब। गज नई दुग्ग लै गौ सिताब॥
तहँ गयौ भट्ट बरदाइ चंद। नृप सहित साहि कीनौ निकंद।
तब सैं सु बढ़्यौ तुरकान घोर। रोजा निवाज भुव भई गोर॥
पुनि भयौ साहि अल्लावदीन। दिल्ली भतार कर्तार कीन॥
सत दोइ बरष भुगती पठान। पुनि भयौ चकत्ता साह आन॥
तूरान भूमि तैं षग्ग जोर। तेमूर साहि आयौ कठोर॥
ताकौ किरान पद भयौ साहि। मीराँ जु साहि ताको सराहि॥
सुलतान मुहम्मद पुनि दिलीस। तिहिं अबूसैद बलबंड ईस॥
हुव उमर सेख पुनि साहि चंड। बब्बर जु साहि ताकौ उदंड॥
ताकौ जु हिमाऊँ साहि हूअ। तासौं पठान सौं भयौ जूह॥
लीनी पठान दिल्ली छिड़ाइ। वह साहि हिमाऊं गौ पलाइ॥
पुनि भए दिलीपति सो पठान। दो सेर सलेमहु शाहि जान॥

दोहा

प्रगट हिमाऊँ कैं भयौ, अकबर साह उदंड।
तिन पठान मारे सबै, राज करयो अति चंड॥

छंद पद्धरी

वह भयौ चकत्ता अति अमान। जिन जीती बसुधा निज कृवान॥
ईरान और तूरान लीन। अरु फिरंगान सरहद्द कीन॥

हवसान और खुरसान जीति । तिलँगान आपनी करी नीति ॥
किलवाँक साहि की आन मान । इसफाँह बजे जाके निसान ॥
बुगदाद जीतियौ बदकसान । अरबान और इरान जान ॥
किय रूम साम आसाम जेर । डारथौ कुसावहू कौं बखेर ॥
कसमीर जीति बहु नीर देस । दिय कोह काफहू में कलेस ॥
कहकह दिवाल दहदह प्रतापु । मरहट्ट ठट्ठ लिय साहि आपु ॥
मारू मलार सोरठ दबाइ । दच्छिन दिसाहि जीत्यौ बजाइ ॥
अंग बंग तिरलंग दाहि । अरु द्रविड़ देश लीनौ उमाहि ॥
वह आठ काठ अरु घोर घाट । बंगाल गौड़ मगधीस डाट ॥
करनाटक और लीनी बराट । नद ब्रह्मपुत्र मारथौ उचाट ॥
परवती भूप करि आप हथ्थ । बरफान देश लीन्यौ समथ्थ ॥
चौदह हजार भुव कौ समान । किय आन चकत्ता निज भुजान ॥
यौं करथौ राज़ अकबर उदंड । पंचास और द्वै बरसु चंड ॥
पुनि जहाँगीर हुव तासु पूत । दिल्ली जु साह उद्धत अभूत ॥
बाईस बरस बसुधाहि भोग । पंचत्तु पाइ हुव भूमि जोग ॥
सुत साहिजहाँ ताकौ दिलीस । तिन कियौ राज बरसै बतीस ॥
पुनि भयौ साहि औरंग साहि । जिन तुरक रीति कानी उमाहि ॥
पंचास बरष किय राज घोर । दिसि दच्छिन जाकी भई गोर ॥
पुनि भयौ बहादुर साह उद्ध । जिनिगहि कृपान किय बहुत जुद्ध ॥
किय पाँच बरस बसुधा सुभोग । लाहौर तख़्त हुव भूमि जोग ॥
सुत भयौ मौजदी पातसाहि । एक बरस भूमि करि भोग ताहि ॥
पुनि भयौ साहि फर्रुक जु सेर । छह बरस राज कीनो सुबेर ॥
पुनि भयौ रफीदरजाति साहि । किय मास तीन प्रभुता धराहि ॥
पुनि साहजहाँ पतिसाह जान । वह चार मास भुव भोग मान ॥
पुनि भयौ साहि महमंद साहि । तिहिं तीस बरस किय राज चाहि ॥
जब साहि महम्मद तजे प्रान । सुत साहि अहम्मद भौ जवान ॥

दोहा

पातसाहि अहमंद कें, भौ वजीर मनसूर ।
पोता मलिक निजाम कौ बकसी भौ मगरूर ॥
तूरानी बकसी भयौ इरानी सुवजीर ।
नाचाखी दोऊन मैं दिल्ली पति के तीर ॥

छंद नीसानी

एक रोज पतसाह दी बंकसी लै मरजी ।
बिन वजीर दीवान मैं कीनी यह अरजी ॥

हजरत सफदर जंग मैं क्या अदब बजाया ।
नाजर फ़िदवी साहि का दै दगा खिपाया ॥
हो वजीर हिंदुवान दा यह इसम बढ़ाया ।
नाहक उरझि पठान सैं भगना ठहराया ॥
दौ मलाइ दुखनीन कौं सब मुलक लुटाया ।
साहिजिहानाबाद मैं जद सैं यह आया ॥

तद सैं हुकुम हजूर दा नहिं एक बजाया ।
पोता मलिक निजाम दा जब यौं बतराया ॥
सो सुनि के पातसाहि भी दिल में सब ल्याया ।
तिसी वख्त मंसूर सैं यों कहि भिजवाया ॥
जाना अपने मुलक कौं हजरत फुरमाया ।
जद यौं सुना वजीर ने दिल में खुनसाया ॥

तौ भी दिन दस बीस लौं दिल में नहिं लाया ।
फेरि साहि मंसूर कौं अहदी लगवाया ॥
साहिजिहानाबाद तें तदही कढ़वाया ।
तूरानी मिलि साहि सैं यौं बैर बढ़ाया ॥
ईरानी मनसूर कौं पुर सैं कढ़वाया ।
बड़ा कुँवर अरु काइदा मनसूर गँवाया ॥

स्वासा लेत भुजंग ज्यौं उस रूप लखाया ।
करि आपुस के बैर नूँ कहि कौन सिराया ॥
जेहा खेलखेल नूँ तेहा फल पाया ।
दिल्ली सैं बाहर हुवैं मनसूर रिसाया ॥
जुजबी फौज निहारि कैं पुर में मडराया ।
अहंकार दिल में चढ्या तद ब्यौंत उपाया ॥
जे रफ़ीक थे आपने तिनकौं बुलवाया ।
पूरब सैं निज फौज नूँ जल्दी फुरमाया ॥

चाकर मेरा है वही जो आवै धाया ।
धाय हरै कौ कुँवर भी फरचा करि आया ॥
खबर पाइ मनसूर भी खुसियौं से छाया ।
तिसी वख्त मनसूर ने फरमान लिखाया ॥
रहमति दै कहि आफरीं इलकाब बधाया ।
कुँवर बहादुर आवना करि मेरा साया ॥
तूरानी गलबा दिया मुझकौं अकुलाया ।
इसी बख्त के वास्तैं इखलास बधाया ॥

चाहौ मैंड़ी जिंदगी तौ आवै धाया ।
यौं लिख सफ़दर जंग ने फ़रमान पठाया ॥
घास हरैं था कुँवर जी रनरंग अठाया ।
तिस काग़ज़ के बाँचतै सूरज मुसिक्याया ॥
अपना बिरद सँभारिया दिल और न लाया ।
अच्छी साइत देखि कै डंका लगवाया ॥
सिंह जवाहर संग लै तदही चढ़ि धाया ।
पंद्रह सहस सवार लै पैदल बहु भाया ॥
आनि फ़रीदाबाद मैं डेरा करवाया ।
फेरि कूँच करि दूसरा रविजा तट आया ॥
तहँ फ़रजंद वजीर कैं मिलना ठहराया ॥

सोरठा

पुनि मिलि सिंह सुजान सफदरजंग वजीर सौं ।
डेरा किंए अमान खिदरबाग रविजा तटहिं ॥

कलहंस छंद

दिन दूसरैं मनसूर सूरज पास कौं ।
दरबार है असवार सो इखलास कौं ॥
लखिकैं वजीर सुजान हू सनमान कौं ।
बहु भाइ अदबु बजाइ दै बहुमान कौं ॥
ढिग देखि सफदर जंग सिंह सुजान कौं ।
सब पूछियौ बिरतंत आवन जान कौं ॥
फिरि आपनो सुहबाल भाखि वजीर हू ।
मुगलान जे कलकान की चहुँ वीर हू ॥
भरि स्वास लेत उसास देखि अकास कौं ।
बिसवास कै इक आस है तुव पास कौं ॥
यह मैं मुकर्रर है किया तुम सैं कही ।
अब तौ दिली दहबट्ट करनी है सही ॥
इस वास्तैं तुम कौं बुलाइय मैं बली ।
करनी न देर सुजान मो दिल कौं भली ॥
जब यौं कही मनसूर सूरज सौं सबै ।
समुझाइयौ सु वजीर कौं बहुधा तबै ॥
तुम हो पनाह सनाह या हिंदुवान के ।
नहिं आपु लाइक बात ये गुन आन के ॥

गहि एक कैं सुबिगारि त्रासत देस कौ।
रहिहै यहै सुकलंक पेस हमेस कौं॥
अब तौ यही जु सलाह है मिलि साहि सौं।
करिकैं दिलीपति हाथ जंग जुताहि सौं॥
सुनियैं जु सफदरजंग बैन सुजान के।
मुरझाइ आनन नैन बैन बयान के॥

महलच्छिमी छंद

फेरि मनसूर बोल्यो यही। सिंह सुजा कहा तैं कही॥
टेक तुरानियौं की रही। आब मेरी जिन्होंने लही॥
साहि भी है उन्हौं का सही। होइगा क्यौं हमारा वही॥
आस मैं एक तेरी गही। आप उम्मेद मेरी दही॥
एक फरजंद जलाल दीं। दौम बीबी उसैं, पालदीं॥
आपने संग लीजै इन्हैं। जिंदगी चाहिए है जिन्हैं॥
गोद ए होय तेरो बली। सीख दीजै मुझै जो भली॥
जंग कैहौं दिलीसैं करौं। नेस नाबूद बैरी करौं॥
नाहि तौ सीस टोपी धरौं। हाल ही जाइ मक्कैं मरौं॥

छंद मधुभार

मनसूर बैन सुनकै सैचन, कहियौ सुजान करि सावधान।
कहि है नवाब करिहौं सिताब, पुर सहित साहि हनिहौं जुवाहि॥
अब कै दिलीस रहि हैं न ईस, मुगलान सब्ब तजिहैं गरब्ब।
पुर इंद्र जोर करिहौं निजोर, तुव सत्रु मारि बकसी बिगारि॥
यह पातिसाहि रहि है न चाहि, मुदई जितेक तितने अनेक।
सबतें मिटाई पुर कौं लुटाइ, लहि तौ प्रतापु करिहौं सु आपु॥
तजियै सुछोहु गहियै सुलोहु, मत एक एहु धरि चित्त लेहु।
चकते सबंस नहिं और अंस, इकु पातसाहि करियै सु चाहि॥
तख्तै चढ़ाइ धरि छत्र ताहि, तब दै निसान चढ़ियौ अमान।

दोहा

हम चाकर हैं तखत के सकती करी न जाइ।
यह उपाइ करिहौ अपुन तौ बलु सबै बसाइ॥
चार लाख बदनेस कैं हैदल पैदल त्यार।
ते नवाब के जानियौ हुकुम-बजावन हार॥
अब दिन द्वै मैं राम दलु आयौ जानौ पास।
श्री हरि देव भली करैं क्यों तुम होत उदास॥

सोरठा

यह सुनिकै मनसूर दोऊ कर ऊँचे करे ।
फिर मुख आयौ नूर कह्यौ बहादुर आफरीं ॥
इस डाढ़ी की लाज कुँवर बहादुर है तुमैं ।
है यह काज दराज होवैगा तुझ हाथ सैं ॥
अब सवार तुम होउ जाइ माँदगी कटक की ।
काल्हि बजावैं लोहु साहि तख्त बैठारिकैं ॥
लख्यो सुदीन वजीर सूरज सबै कबूल किय ।
ह्वै सवार रनधीर दिल्ली के सनमुष भयो ॥

सवंगा छंद

सूरज सफदरजंग जवाहर संगलै ।
दै दै दिघ्घ निसान सैन बहु रंग लै ॥
प्रथम दिना पुरइंद्र दिखायौ साथ कौ ।
ज्यौं किसान लइ सगुन करै कृषि हाथ कौं ॥

हरगीत छंद

भूपालपालक भूमिपति बदनेसनंद सुजान हैं ।
जानै दिली दल दक्खिनी कीने महाकलिकान हैं ॥
ताकौ चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइ कैं ।
मनसूर सूरज मिलन दिल्ली प्रथम अंक सुनाइ कैं ॥

इति प्रथम अंक

दोहा

फेरि आइ मनसूर ने कीनौ भेद उपाइ ।
पोता काम जु बकस कौं लीनौ बेग मँगाइ ॥

छप्पय

ताहि तख्त बैठारि धारि सिर छत्र जटित जर ।
चँवर मोरछल ढारि कियउ इतमाम आम घर ॥
अरुन बरन नीसान तानियौ अरुन बितानहिं ।
सहदाने घन घोरि दियौ उमरावन मानहिं ॥
उद्धत हयंद सुगयंद नर बहु सुभट्ट हाजिर प्रबल ।
सूरज सहाइ मनसूर मैं थप्यौ साहि अकबर अदल ॥

छंद पावकुलक

अकबर अदल साहि धरि आगैं । सफदरजंग जंग अनुरागैं ॥
अपनी चमू साजि गज चढ़्यो । तूरानिन पै अति रिस बढ़्यौ ॥
इसमाइल राजेंद्र गुसाँई । सफदरगंज भए अगवाँई ॥
द्वादस सहस हयंद हँकारे । हे वजीर के संग तयारे ॥
तबही सूरजहू ने डंका । सब तैं आइ चढ्यौ रनबंका ॥
तातैं अग्ग जवाहर धायौ । सजि कै सैन दिली समुहायौ ॥
पंद्रह सहस तुरंगन बारे । व्रजबासी चढ्ढे रन रारे ॥
अनगिनती पाइक ललकारे । दिल्ली के लूटन पग धारे ॥
सफदरजंग जोरि दल एतौ । चढ्यौ इंद्रपुर कौं भय देतौ ॥
जिते हयंद गयंदन वाले । ते सब रेथी के पथ चाले ॥
पाइक लगी राह मन भाई । जो जाके सनमुख ही आई ॥
एक ओर तैं लूट मचाई । करत किसान खेत ज्यौं लाई ॥
पुर बाहर जे हे पुर छोटे । ते सब भए उही दिन खोटे ॥
किसन दास सरवर दै पाछैं । बारह पुरा लूटियौ आछैं ॥
लियौ तोपखानौ करि हल्ला । अरबसराइ मचाई अल्ला ॥
इतनौ देखि वजीर सिहानौ । फिर डेरनु कौं कियौ पयानौ ॥

मलाती छंद

अहमद साहि सुनै अकुलाइ रह्यो दग चाहि कछू न बसाहि ।
सबै उमराइ लए सु बुलाइ कह्यौ समुझाइ करौ सु उपाइ ॥
गजद्दियखान तबै ढिग आन करी जु सलाम भर्‌यो जहँ आम ।
कह्यो जु निहोर दुहूँ कर जोर हुवा मनसूर वजीर गरूर ॥
जथा उस नाम किया वह काम हुवा बदराह जु खातरखाह ।
जिसैं फुरमाइ करौ सु बिदाइ वहै अब धाइ गहै उस जाइ ॥
कहौ अब रास जुहै मुझ पास सु हाजर हाल सु जानहु माल ।

दोहा

जान माल सैं साहि का फिदवी हाजर हाल ।
रजा होइ सु गुलाम कौं मनसूरा क्या माल ॥

छंद कुंडलिया

अरजी बकसी की सुनत साहि अहम्मद साहि ।
पोता मलिक निजाम कौ कियौ वजीर सराहि ॥
कियौ वजीर सराहि और यह मतौ उपायौ ।
समसामुद्दौलाहि मीर बकसी ठहरायौ ॥

ठहरायौ सबैदन तोपखानौ रन गरजी।
सुनी अहंमद साहि गाजदीखाँ की अरजी॥
तबही उन दोऊन कौं सरोपाव समसेर।
सादलखाँ सु नजीमखाँ जान पठान रुहेल॥
जान पठान रुहेल साहि तब यौं फुरमायौ।
रेती के मैदान मोरचो तुम्हें बतायौ॥
तुम्हें बतायौ सबै अराबौ लै कैं अबही।
उस हरीफ कौं लेउ जंग कौं आवै तबहीं॥

छंद संखजारी

सुनै साहि बानी सबै मीरमानी करी सावधानी चमू साजि आनी।
लयैं तोपखाने मनो देव दाने रुपे जाइ रेती हुती तोप जेती॥
किती हाथ बाहैं.सुकोऊ अठाहैं कछू बीस हथ्थी धरी एक सथ्थी।
सहस दोइ ऐसी भुजा भीचु कैसी किती अष्टधाती किती लोह जाती॥
कछू बाघ मुक्खी किती मुक्ख रुक्खी धरी एक मोटी तहाँ दोइ छोटी।
करैयौं जजीरा बढ़े धीर धीरा सुतरनाल मंडी सुहथनाल चंडी॥
तहाँ बानवारे हजारौ सँभारे कढैं गोल गोला करै तोल तोला।
भरैं एक दारू ररें मारु मारू नकीबों सुनाई चलौ अग्ग भाई॥
यहै सद्द छायौ नहीं पारु पायौ सजे बीर बानौं चढ़े लै निसानैं।

छंद तिलक

तब सादलखाँ सु नजीम जहाँ सु हरौल भए तन तेह छए।
अरु सैनपती इनकौ मदती पुठवार रह्यौ बहु जोर गह्यौ॥
सु अमीर जिते सब संगति से बहु तोपन कौं अरि लोपन कौं।
धरि अग्ग धुके महि जात रुके बहु स्याम धुजा बहु रंग कुजा॥
सित स्याम घनो बहु नील बनी इक जोजन लौं भुव छाइ दलौं।
सजि सैन चले सब बीर भले रिस बैन कहे,रस बीर गहे॥
मनसूर जहाँ गहि लेइँ तहाँ

दोहा

'निकट अहम्मद साहि के रह्यौ गाजदीखान।
बकसी तें जु वजीर भौ जुद्ध हेत बलवान॥

छंद लीलावती

सुनि सफदरजंग उमंग अंग धरि जंग हेत तदबीर करी।
राजेंद्र गुसाईं इसमाइलखाँ दुहुनि संग भटभीर भरी॥

बेकरि हरौल सनमुष्ष हँकारिय जितहिं अराबौ घोरि धरयौ।
गहि जमुना तीर बीर धरि धारैं हय हंकिय नहिं बिलम करयौ॥
पुनि श्री सुजान अरू सिंह जवाहर करि सिलाह धरि आइ बढ़े।
लै मसलत अकबर अदल वजीरहिं सहर पुराने चाहि चढ़े॥
है दल सब संग अग्ग धरि पैदल तिनहि बीर यह हुकुम कियौ।
अब लेउ ईंट करि देउ ईंट सौं दिली सहर हम तुमहि दियौ॥

छप्पय

जब सुजान नर कहिय तनय जाहर सु जवाहर।
तब सुनि सब ब्रजबीर हरखि हुंकिय ज्यौं नाहर॥
करिय हल्ल बहुमल्ल रल्ल पुर मद्दि मचाइय।
कहत देव हरिदेव देव पति की जु दुहाइय॥
चहुँ ओर सोर अति घोर हुव तोंरि फोरि भवननु भरिय।
दिल्ली दरयाव बहु आब जुत सूरजदल दलदल करिय॥

छंद त्रिभंगी

करि करि ललकारे गली गल्यारे तोरि किवारे पुरवारे।
गहि करनि पनारे लहि उपरारे उच्च अटारें पग धारे॥
बजंत कुठारे लत्त लठारे पौरि दुआरे भुव पारे।
तारिनु झनकारे कहूँ कुसारे तिष्ष छुरारे पटतारे॥
पटतारे तारे खुटे दुआरे फुटे तिबारे चौबारे।
भज्जे घर-वारे ज्यों पषवारे बहु हटबारे भौभारे॥
केते हथियारे सीस फिकारे डारि झगारे डर डारे।
अटके लरिटारे भटके न्यारे होत अगारे हकारे॥
हक्कारे पारे जाटौं मारे मुगल महारे मनहारे।
आरें के आरे बारह द्वारे कछु न सम्हारे गहि डारे॥
ऊँचे घर वारे खड़े पुकारे हुवा कहारे करतारे।
रव हाहाकारे घोर महा रे बूढे बारे चिक्कारे॥
चिक्कारनु पारे धावत रारे आरे जारे ले जारे।
लै कै तरवारे देत धवारे दिल्ली वारे बेजारे॥
गए हकाबकारे लगत धकारे है बिकरारे गहि नारे।
ब्रजबासी प्यारे भरत सरारे साँझ सकारे असरारे॥

छंद ललितपद

रारे लेह लेह करि धाए गेह गेह चढ़ि साजे॥
सूरज सुभट कटकि पुर कटकनु थँभे लाल दरवाजे॥

कवित्त

लाल दरवाजे पर सूरज सुभट गाजे।
ताजे ताजे बीर हथ्थ आयुध दराजे हैं॥
भाजे पुर लोगन कपाट दरवाजे दीने।
ऊरध भुसंडिनु कै उद्धत अवाजे हैं॥
कहूँ सर बाजे छुर बाजे लमछुर बाजे।
बाजे बाजे भाठिनु सौं भोरे सिर साजे हैं॥
जग के लराजे उभराजे लहि छाजे ओट।
केते लोट पोट मिले आजे पर आजे हैं॥

पावत पराजे दरवाजे वारे भाजे देखि।
केते लोट पोट कोट चोटन सुमार में॥
टूटत किवार हाहाकार ता बजार परी।
बार बार बिकल बिलंद भीर भार में॥
आए ओए कहत बगाए माल भौंहरेनु।
जायहू गँवाए नारि सहित अगार में॥
माए कहूँ बाए बाल रटनि बुवाए ताए।
लेहरी ददाए तो चचाए आए खार में॥

खारौं खतरानी कतरानी सतरानी फिरैं।
बाँभनी बिन्यानी तुरकानी थररानी हैं॥
काइथी अरोरी थोरी बैसनि तमोरी गोरी।
काछिनी किरानी औ भट्यानी महरानी हैं॥
हीरी बहु कीरी नर नीरी तीरी पीरी भई।
सूरज के तेज चंद कला ज्यौं परानी हैं॥
नूपुर वलय वलयानु रसनानु धुनि।
मानहुँ प्रभात पंछी बानी मडरानी हैं॥

डोलती डरानी खतरानी बतरानी बेवे।
कुडिए न वेखी अणी मी गुरुन पावाँ हाँ॥
किथ्थे जला पेउ कित्थे उज्जले भिड़ाउ असी।
तुसी कोलग्रीवाँ असी जिंदगी बचावाँ हाँ॥
भट्ठ ररा सहि हुवा चंदला वजीर वेखो।
एहा हाल कीता वाह गुरू नूँ मनावाँहाँ॥
जाँवाँ किथ्थे जाँवाँ अम्मा बाबे के ही पाँवाँ जली।
एही गल्ल अप्पैं लष्पैं लघ्यौं गली जाँवाँ हाँ॥

आव्या तमें आगल न ल्याव्या माटी कागलने।
डागला नड़ीटू कौ कठामरून लीध्यूँ छै॥
डीकरो न छैया साथैं मोकल्या न मामी हाथैं।
घरणू न आथै भूड़ा पौतियौं न दीध्यूँ छै॥

हालरू हम्हारू बाट माहें जारे आवी जोयूं।
हहरू हमारू पूठी पेला माहँ वीध्यूँ छै॥
चीधू छै न पाहे सीधू खावानै नहाहे हवै।
सिव जी सहाहै जिनै एवूँ हाल कीध्यूँ छै॥

के कराँ सभागी भीसू भाई भाग्यो टापरे से।
आपुरे बटाऊ ए लुटाऊ घर घाले हैं॥
पापरी नवापरी मुगीरी भाड़ घाली पड़ी।
लोड़िये न के के लेके आए सासू लाले हैं॥

काके पैर पाके मूनै आके लेन जाके भागे।
तागे हून छूटे फूटे ऐसे आनि ताले हैं॥
केबे हुवा केवे लेवे देवे देवे देखि।
वे वे ज्याले माई अब तेरे हम बाले हैं॥

कौठे ग्या ठाकराँ कि ठाकराँ पधार्‌या बीरा।
चाकरा न लारैं म्हें उभारै पग धाँवाँ छाँ॥
जाया कास्या जाटराँ जनायो छै जुलम ऐठैं।
जेठैं टेठैं म्होंवीतो सवाई रा कहाँवाँ छाँ॥
जिसी भालि बाजी तिसी गलो चली बाजी।
म्होतो टारडा न टारडी अवार कोढ्यां पांवां छां॥
काका जी कागला का अगार ओ जौ बाई जी थे।
ल्याँ वाँ छाँ जी ल्यवाँ कोई आँवाँछाँ जी आँवाँछाँ॥
महलसराइ सैरवाने बूआ बूबू करौ।
मुझै अपसोस बड़ा बड़ी बीबी जानी का॥
आलम में मालुम चकत्ता का घराना यारों।
जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का॥
खने खानै बीच सैं अमाने लोग जाने लगे।
आफत ही जानो हुवा ओज दहकानी का॥
रब की रजा है हमैं सहना बजा है बहुत।
हिंदु का गजा है आया ओर तुरकानी का॥
बबुआ न आवा मोर भैयन न पावा याक।
तुपक की न लावा गाढि डीबू आन घावा है॥

चाकरी की लकरी की फकरी बिहानी कीन्ह ।
मनई न कनई दिहाँन यौं बतावा है ॥
अस कस कीन्ह म्वार दिल्ली का नवाब ख्वार ।
चीन्हत न सार मनसूर जट्ट ल्यावा है ॥
तुहिकाँ न महिकाँ कर्पी लुहिकाँ रही न जाग ।
भाग कुल और तोपखान बाघ ब्यावा है ॥
ईधैं चालि ईधैं ऊधैं ऊधैं के धर्यौ छै थारो ।
टालौ भी न चाल्यौ छै चरैया घनौ पाला कौ ॥
बेटौ थाँभि बेटौ भौंड़ी लागिसै चपेटौ कर्णे ।
कूणके लपेटो फेटो लाग्यौ घरघाला कौ ॥
गाड़ी एक पाड़ी दोइ नाड़ी तीन पीज नीन ।
नागला, तुलावाचारि मूने सोच जाला कौ ॥
आला कौ रह्यौ सै आला जाला कौन जाला चौंध्यौ ।
ताला न लाध्यौ सै, भरोसौ कर्यौ माला कौ ॥
कैहाँ जैहौं कैहाँ जैहों तेहाँ तैं न ऐहाँ आओ ।
देखन न वैहों क्यौं ललाजू उभराने हौ ॥
अैयाँ बैयाँ गैयाँ लै लुगैयाँ लैयाँ पैयाँ चलौ ।
वारौ न अथैयाँ कहूँ जाट खुभरानै हौ ॥
कैसी करो भैयाँ मोड़ा मोड़ी न कन्हैयाँ घरे ।
खात हैं लुचैयाँ कभू पेट न भराने हौ ॥
चैंयाँ चैंयाँ गहौं चैयाँ नैयाँ नैयाँ ऐसे बोलो ।
बढ़ि दैया करी दैया हमै काहै छुभरानै हौ ॥
बरनौं कहां लौं भुवलोक में जहां लौं भई ।
दिल्ली में तहां लौं बानी सूरज प्रताप ते ॥
मुगल मलूकजादे सेख बेसलूक प्यादे ।
सेयद पठान अवसान भूले लापते ॥
आया रोज क्यामत मलामत सैं पाक हुवे ।
रहैगा सलामत खदाई आप आपते ।
जार जार रोती क्यौं बजार मीरजादी यारों ॥
जिनका छिपाउ महताब आफताब ते ॥

छंद पद्धरी

यौं पर्यौ सोर दिल्ली अपार । पुरलोग पुकारत बार बार ॥
ब्रजबीर हँकारत डार डार । फटकार खग्ग सेलनु उसार ॥

कलबल गलीनु खलभल बजार। छलभल सँभार भज्जत अगार ॥
इक तज्जत आयुध छोर छोर। इक लज्जत आनन मार मोर ॥
इक गज्जत दामन फोरि फोरि। पुरगली गल्यारे तोरि तोरि ॥
महरात फिरत नर खोरि खोरि। हाहा रटंत कर जोरि जोरि ॥
इक कहत धिक्क अहमंद साहि। नहिं देखतु या पुर की दसाहि ॥
जिहिं जियत इंद्रपुर यौं कुटंत। गजबाज ऊँट बृषभा लुटंत ॥
महिषी महिष्य गो लच्छ लच्छ। पडरादि बच्छ लूटें समच्छ ॥
अज अजा भेड़ मेढ़ा कुरंग। खचर मु गोरखर खर दुरंग ॥
बहुमोल खान पाले लवंग। बिल्ली बिलाव नहिं तजत अंग ॥
चीते सुरोझ सावर दबंग। गैंडा गलीनु डोलत अभंग ॥
अरु स्याह गोस बिश्रंग श्रंग। रिच्छादि खौरिहा छुटे अंग ॥
लुटियौ सुबाज जुर्रा बिहंग। जिनको सिकार कौवा कुलंग ॥
बहरी सुबेसरा कुही संग। जे गहत नीर चर बहुत खंग ॥
बहु लगर झगर पुनि चगर तंग। जे हनत सुसा बुज्जर उतंग ॥
बाँसा बटेर लव औ सिचान। धूती रु चिप्पका चटक भान ॥
दहियर सुतुरमति बगुलहान। सुर खाब आब के जीव आन ॥
जल मृगनि सहस रव कहनहार। तूती सूतीतरा बहु प्रकार ॥
बहु रंग देस के कीर बेस। जो सुनत बैन बोलत हमेस ॥
मैना मलूक कोइल कपोत। बगहंस और कलहंस गोत ॥
सारस चकोर खंजन अछोर। तम चोर लाल बुलबुल सुमोर ॥
चकई हरील पिद्दी अपार। खुमरी सु परेवा बहु प्रकार ॥

छंद रोला

तुपक तीर तरवार तमंचा तेगा तीछन।
तोमर तुबल तुफंग दाव लुट्टियौ तिहीं छन ॥
पट्टा पट्टी परस पासि बिछुआ बर बाँके।
बल्लभ बरछा बरछि धनुष लिय लूटि निसाँके ॥
बुगदा गुपती गुरज डाढ़ जमकील बतारी।
सूल अंकुसा छुरी सुधारी तिष्ष कुठारी ॥
सिप्पर सिरी सनाह सहसमेखी दस्तानैं।
झिलम टोप जंजीर जिरह लुट्टिय मस्तानैं ॥
पक्खर गक्खर लक्ख राग बागे रु निषंगा।
आयुध और अनेक और चिलतह बहु अंगा ॥
पुनि बासन भर लुटिय देग देगचा रकाबा।
चमचा चमची जाम तवा तंदूर गुलाबा ॥

चपनी लोटा चिलम पोस सरपोस जमावा ।
हुक्का हुक्की कली सुराही अरु अफतावा ॥
तँबिया कलसा कुंडि ततहरा बटली बटला ।
दुकरा और परात डिब्बा पीतर के चकला ॥
बेला बेली लुटैं तमहड़ी लुटिया झारी ।
अमृतबान अमृती रु थार रकेबी बहु थारी ॥
प्याली गंगाजली टोकनी गंगासागर ।
कुंजा जंबू डब्बा और ताँबे की गागर ॥
छलनी चलनी डोही और करछी बहु करछा ।
पौंना झाँझर तई बिलाई परछी परछा ॥
करवा कौंपर पानदान चौघरा तबेला ।
अरघा संपुट धूप आरती लेत सकेला ॥
त्रम्रा अरु आधार भर्त के बहुत खिलौना ।
परिया टमटी अतरदान रूपे कै सौना ॥
पीलसोज फानूस. कुपी तिखटी सुमसालैं ।
सँडसी सुवादराँत डंढ़ारे कुसा सँभालैं ॥
झाड़ दुसाखे जाम बसूला बरम हथौरा ।
टाँको नहनी घनी आरा अरी सुमथौरा ॥
कुदरा खुरपा बेल गुलसफ़ा छुरा कतरनी ।
नहनी सौंहन परी डरी बहु भरना भरनी ॥
पीढ़ा पलँग मचान दुसेजा तखत सरौटी ।
खरसल स्यंदन बहल बहुत गाड़ी सुनबौटी ॥
डोला अरु चंडोल घने म्याने सुपालकी ।
कंचन रंजित सुभग टुटीं अरु लुटीं नालकी ॥

छप्पय

दुँदुभि पटह मृदंग ढोलकी डफला टामक ।
मँदरा तब्बल सुमेरु खंजरी तबला धामक ॥
जल तरँग कानून अमृतगुंडली सुबीना ।
सारंगी रु रबाब सितारा महुवरि कीना ॥
सहनाइ भेरि तुरही दरक बंसी गोमुख बाँकिया ।
अलगोय ताल कठताल तर झालरि झाँझ निसाँकिया ॥

दोहा

मदन भेरि अरु घुँघरा घंटा घनै मतीस ।
मुहचंगी कौं आदि दै आवज लुटे छतीस ॥

सोरठा

तंबू पाल कनात साएबान सिरआइचे।
रावटिहु बहु भाँति पुनि कुदंरा कलंदश ॥
मसनद गद्दी उसीस सतरंजी जाजम जबर।
परदा चँदनी ईस कालीचा दुलिचा घने ॥
सीतलपाटी हाट लोई कंबल ऊन के।
बची न एकौ हाट खेस निवारहिं आदि है ॥

छंद त्रिभंगी

रूमाल दुसाला पट्टू आला चूँनी जाला सोभ बनी।
मखमल बन्नातैं अरु सकलातैं भाँतिनु भातैं छींट घनी ॥
बहु रंग पटंबर पसमी कंबर धवल सुअंबर कौन गनै।
जरदोज मुकेसी दाना केसी मसरू बेसी लेत बनैं ॥
बादला दर्याई नौरंग साई जरकस काई झिलमिल है।
ताफता कलंदर बाफतबंदर मुसजर सुंदर गिलमिल है ॥
श्रीसकर बिलंदी दूरि घरंदी मानिकचंदी चौखानै।
किमरवाब सुसालू खादी खालू चोलैं चालू जगजानै ॥

छप्पय

नीमा जामा तिलक लबादा कुरती दगला।
दुतही नीमास्तीन कादरी चोला झगला ॥
तंबा सूथन सरी जाँघिया तनियाँ धवला।
पगरी चीरा ताजगोस बंदा सिर अगला ॥
दुपटा सु दुलाई चादरैं इकलाई कटिबंद बर।
कंचुकी कुल्हैया ओढ़नी अंग बस्त्र धोती अबर ॥

अरिल्ल

चोटी चुटिला सीस फूल बर। बैना बंदी बँदनी सुबर ॥
बेसर नथ्य बुलाक सु लटकन। जाट जूह लागे सब झटकन ॥
पीयर पर्न झुलमुली तरिवन। बहुखलेल झूमिका सुभरमन ॥
करनफूल खुटिला अरु खुँभिय। लोलक सौनसीकहुँ चुंभिय ॥
गुलीबंद पञ्चमनिया चौसर। तीन लरी पचलरी सतौसर ॥
चंपकली सु हुमेल हाँसवर। बीजनि बौरी उरबसीनु भर ॥
विद्रुम मुक्तमाल मनिमालहु। कंचन रजत रतन के जालहु ॥
रसना छुद्रघंटिका लिक्खिय। बटुवा कुथरी जान न दिक्खिय ॥

बाजूबंद बराकर छिन्निय। बँगुरी चूरा लेत न गिन्निय ॥
टाड पछेली छिन्न छिनाइय। चूरे चूरि चुरी चटकाइय ॥
कंकन गुजरी पहुँची अनगन। दुहिरी तिहरी जटित रतनगन ॥
छल्ला घनी अँगूठीं कंचन। आरसी रु जंजीर भँमकन ॥
पाइल औ पगपान सु नूपुर। चुटकी फूल अनौट सु भू पर ॥
तेहरि भाँभन गुजरी टुट्टिय। बहु भूषन मैं एक न छुट्टिय ॥

छप्पय

कलगी तुर्रा भौर जग सिरपेच सु कुंडल।
मोती गुरदा और गोखरू रुद्राछ भल ॥
तोरा कंठी माल रतन चौकी बहु साँकर।
वेढ़ा पहुँची कटक सुमरनी छाप सुभाकर ॥
किंकिनी कौंधनी पैजनी हथ संकर भंकर खुटे।
आभरन नरन बहु भांति के फुटे बुटे टूटे लुटे ॥

पावकुलक छंद

कसतूरी केसर कसमीरी। हैं कपूर कचरी सुकरीरी ॥
कुटकी किरी कपूर कलाये। कूडकूठ कासिनी कवाये ॥
कैंछक चूरकटोर करंजा। किसमिस कैथ कुलींजन कजा ॥
काथ करौंजी कारी जीरी। काइफरो कुचिला कनकीरी ॥
कुकरौंदा करहरी कतीरा। कनक कटाई कारी जीरा ॥
कुलथी कमलगटा सुकबेला। ककरासिंगी कंद सुकेला ॥
कमल मूल किरवार कसेरू। काचनून कर मूल कनेरू ॥
खिरनी बीजखरी खसजूरा। खार खोपरा बीस सुखीरा ॥
खूबानी खसखस के दानैं। खंडखार खुंभी खस जानैं ॥
गेरोचन गेरू गोगोली। गौंद गिलोइ गोखरू ओली ॥
गंधक गुंजाफल गंगोला। गोपीचंदन लुख्यौ अतोला ॥
गुलगुलाल अरु गोरखमुंडी। घास घोमसा घाइल घुंडी ॥
नौजा नरियर नेतर बाला। नीम निसौत निर्बिसी नाला ॥
नीला थोथा नील निरमली। नागरमोथा नगद चिलमिली ॥
चव चिराइता चित्रक चीता। चोक चोबचीनी चरलीता ॥
चंदन चूक चिरौंजी चपरा। चोख चाँवरी चंद्रकलपरा ॥
छारछबीलै छिकनि छुहारी। जावित्री जंगाल जुरारी ॥
जाइफलौ सु जवाइन जीरा। जंडीजरी जलाँजरर तीरा ॥
भकभोरी टकटोरी टोरी। ढौर ढौर डोरी गहि ढोरी ॥

तेजपत्र तज तालमखानैं । तिब्री तमाखू तुखमतरानैं ॥
तुलसी बीज तुरंत तुरंजन । देवदारु दंती दुखभंजन ॥
ढुड्ढीदल दाड़िम के बकला । दूब दालचीनी द्रगदकला ॥
धना धमासा धूम सुधुंधी । धौर धौह की छाल धुरंधी ॥
पित्तपापरा पाह पतंगी । पत्रजंपनी पीपर पंगी ॥
पथरसगा पचरंग पमारौ । पाडर फूल पापराखारौ ॥
पोलपखान भेद पन पारा । परवरपाती पतर पचारा ॥
फली फिटकरी फूल हु फैना । बादामी बूझी व चबैना ॥
बाइबिरंग बेल बालंगा । बीजबंद बालेसुर बंगा ॥
बेरजरी सुबिलैया बूटी । बरू बहेर बाबची लूटी ॥
बासौं बंसलोचनौ बंदा । बेलगिरी सुबहेर बिलंदा ॥
बिही बूझंदडी विसबेरा । भारंगी भिंडी सुभँगेरा ॥
भैंसा गूगल भंगे भिलाए । भोडरभाह सुभेंटू भाए ॥
मिरच्च मोचरस मैदा लकरी । मुर्दासन मनसिल मिस मकरी ॥
मलयागरि मर्हदी मुहलैठी । मस्तंगी मुँहमूंदी मैंठी ॥
मेनफरौ मुंडी मधुमोथा । मूढ़मूसली दोऊ चौथा ॥
मौख मुनक्का मूत मुलतानी । मैंथी मालकांगुनी सानी ॥
मैद मैंडुकी मोध मिमाई । मदन मखाने मिसरी भाई ॥
मोम महावर मूली-बीजा । अकरकरा अजमोद अलीजा ॥
आलूचा अमिली अँबहलदी । आल आँवरा साल अफलदी ॥
असगँद अगर आविली अंडी । अर्क अतीस आँवला ढंडी ॥
इसबगोल इंदरजौ जानौ । इंद्रांनी इलइची आनौ ॥
ऊँटकटेरा एलुआ एला । रेवतचीनी राई रेला ॥
रूमी रतनजोति रसवंती । रारे रँगमाटी रुदवंती ॥
लौंग लौंगचूरौ लगलाही । लोद लछमना लहसन काही ॥
लॉफ लेखनी लोचन बाला । इसबंद सीतल चीनी आला ॥
सोंठ सौंफ सालिम जु सुपारी । सौंध सनाइ सिलखरी सारी ॥
सज्जौ सौंचर सैंवर सोरा । सांखाहूली सीप सिकोरा ॥
समुद फैन साबुनौ सुपैदा । सिंगरफ सैंदुर सारसमैदा ॥
सौनमक्खि संखिया सुहागा । सूल सम्हॉलू सबरस सागा ॥
हरद हींग हरतार हरीती । हरडा हाल्यौं हिरमिच हीती ॥
हुलहुल हिल्ल हिमामहुदस्ता । फूल मूल कागाद के दस्ता ॥

दोहा

अमल अफीमहिं आदि दै, चोवा अतर फुलेल ।
सीसी चीनी मीन के, मुहरदराबी रेल ॥

छंद त्रोटक

लुटियौ लडुआ बहु भाँतिन के । नुकती अरु मोदक पाँतिन के ॥
कलकंद सुमैंथिय मूँगदला । सिमई सतसूत मगद्द भला ॥
सुठि सेव सु औरिहु गौंदगिरी । खुरमा मठरी भरि ली गठरी ॥
गुपचुप्प गुना गुलपापरियाँ । खजला सु खजूरि खड़ापरियाँ ॥
अमृती रु जलेबिनु पुंज लुटे । खिरसादर भिस्ति चुटे सुफुटे ॥
गुझिया गुलकंद गुलाबकरी । तिरकौंनु सुहारिन मोट भरी ॥
बहु घेवर बाबर मालपुवा । अरु सेव कचौरिन लेत हुवा ॥
हलुआ हिसमी बहु फेननु की । कतरी रसनासुख चैननु की ॥
कहुँ लेत निवात बतासन कौं । सु गिंदौरन ए रनवासिन कौं ॥
अरु खोवन ढेर बखेर दए । बहु खाँड़ खिलौनन लेत भए ॥
अरु लाइचदानन गोद भरैं । दधि दूधन के परसाद करैं ॥
कुजतीतिल सक्कर रेवरियाँ । बहु पाक पुडार जु सेवरियाँ ॥
पकवान जथा रुचि और घना । बुहरी परमल्ल सुखोल चना ॥

छप्पय

गेहूँ चावर चना उरद जव मूँग मौठ तिल ।
चौरा मटर मसूर तुवर सरसों मडुवा मिल ॥
सँवाँ पसाई मका काँगुनी कोदौं मकरा ।
चैना कूरीवटी सिंघारे कुलथी सकरा ॥

घृत तेल नौन गुड़ तूलरस मिले विरस मौटन खुटे ।
पुर इंद्र अन्न कौ कूट ज्यौं सब रस कोटिन मन लुटे ॥
साम यजुर रिग निगम अथर्बन धर्म पतंजल ।
मीमांसा वेदांत न्याय साहित्य तर्क भल ॥

विष्णु वायु शिव अग्नि गरुड़ नारद बलिरच्छक ।
मच्छ कच्छ बाराह पद्म हरनच्छक तच्छक ॥
पुनि स्कंद मारकंडे भविष ब्रह्मबॅत ब्रह्मंडबर ।
भागवत मेघ मधु रघु कुँवर पुनि किरात नैसध अवर ॥

छंद कीस ब्याकर्न कर्म जोतिष निरुक्त रस ।
मंत्र जोग धनु गान वैद्य स्रोदय गनती जस ॥
सानुद्रिक पुनि कोक सर्पबानी अरु भारथ ।
नाटक मासादेस यमनबानी ग्रन्थारथ ॥

लखिकैं अधर्म सु अनीति अति सब विद्यनु चलनौ रिढ़य ।
पुर इंद्र छाड़ि ब्रजवास कौं ब्रजवासिनु के कर चढ़िय ॥

दोहा

देस देस तजि लच्छिमी, दिल्ली कियौ निवास।
अति अधर्म लखि लूट मिस, चली करन व्रजवास ॥

छंद भुजंगी

लुटै द्यौस दिल्ली निसाँ ज्वाल जारै। मनो सूर कौ तेज पावै पजारै ॥
जरैं रंग रंगे घने काठ खंभा। हलै ज्वाल की झाल ज्यौं पात रंभा ॥
टुटैं गोल मरगोल टोडा सुहाटी। मनो स्वर्न की खान तैं सोठ काटी ॥
जरैं बंगला बंगली चित्रसाला। मनौ पेखने कौं रूप्यौ ख्याल आला ॥
जरैं दारु की पुत्रिका यौं दती सी। मनौ धाम कौ बाम ठाढ़ी सती सी ॥
कहूँ आँच सौ काँच के मौन फूटैं। महा तेज सौं ज्यौं बृथा तेज बूटैं ॥
जरी यौं दरीची तिबारी अटारी। सतौं मेरु की श्रृंग जैसी निहारी ॥
बरंगा बरंगी करी यौं जरी हैं। मनो ज्वाल जैं बाहु लच्छौ करी है ॥
जरी सीटि प्रासाद ते भू परी है। सिला मेरु के सीस तैं ज्यौं ढरी है ॥
जरैं बाँस यौं काँस उड्डै फुलंगा। नवै भूमि कौं पूत कै कोटि अंगा ॥
कहूँ जाल के जाल मैं ज्वाल झोरैं। किधौं धाम धारा धरौ बिज्जु दोरैं ॥
सिखा की सिखातैं धुवाँ ब्यौम धायौ। भजै तामसी राजसी ज्यौं सतायौ ॥
किवारी विवारे उसारे पनारे। जरैं जालि पानैं करे भौन न्यारे ॥
उड़ैं खास सींगी धनैवान भारे। फिरैं आग लेती मनौ दै हँकारे ॥
फिरैं वायु के बेग सौं बाइमीता। सुरेसा पुरै आपुनै रूप कीता ॥
चहूँ ओर यौं ज्वालमाला निहारी। दुलहैया दिली बादला ज्यौं सिगारी ॥

कवित्त

धर्मसुत धाम जान जमुना निकट मान,
सर्ब सेद जइ कौ बनायौ ब्यौंत पूर है।
पत्र फल फूल सब औषध समूल रस,
पट अनतूल धात धान धन भूर है ॥
अंडज जरायुज औ स्वदेज उद्भिज हब्बि,
करयौ पूरनाहुति चकत्ता कुल मूर है।
ओज की अगिन इंद्र पुर सों अगिनकुंड,
होता श्री सुजान जजमान मनसूर है।

दुपई छद

कलिका आदि कूर मघवा ने व्रज पै कीपु जतायो है।
वही अकस धरि श्री व्रजेस-सुत इंद्र पुरहिं लुटवायो है ॥

हरिगीत छंद

भूपाल पालक भूमि-पति बदनेस नंद सुजान हैं।
जानै दिली दल दक्खिनी कीने महाकलिकान हैं॥
ताको चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइकैं।
दिल्ली लुटाइय पुनि दहाइय दुतिय अंक सुनाइकै॥

छंद त्रिभंगी

सत सहसौं धावत अयुतौं आवत लच्छौं पावत भाल धर्यौ।
सूरज गुन गावत बिरद बुलावत जग ललचावत चाल पर्यौ॥
सबही बिधि ताजा सकल समाजा छिन मैं राजा रंक किए।
ज्यौं धनपति धावै सुरग नापावै हाथ लड़्यावै हरष हिए॥
हिय संकत नाहीं आवत जाहीं खाली नाहीं मोद भरे।
जैसी गति लंका करी अतंका रघुकुल बंका आनि अरे॥
ज्यौं रच्छस खंडे यमन बिहंडे जदुकुल चंडे सुखरासी।
जलधर जिमि गज्जत बारिद बज्जत यौं धुनि सज्जत व्रजबासी॥
व्रजबासी सगरे करि करि दगरे दिल्ली बगरे लूटि करैं।
मनसूर बिचारै अबको रारै याहि सँभारै संक भरैं॥
सूरजहि बुलायौ कहि समझायौ सो दलु हायौ समुहायौ।
अब लूटहि थंभौ जंगहि रंभौ कर्यौ अचंभौ मन भायौ॥

दोहा

मन भायौ ह्वै है सबै सूरज कही नवाब।
अब मैं लूटहिं बंद करि लैहौं जंग सिताब॥

छंद अनुगीत

यौं कहि सिताब सुजान उट्ठिय मनहुँ तुट्ठिय ईस।
ढिग बोलि सिंह जवाहरै किय हुकुम बिस्वा बीस॥
अब फौज राखहु एकठी अरु करहु लूटहिं बंद।
सुत तो बिना यह को करै नहिं आन कौं परबंद॥
यह सुनत जाहर सत जवाहर तात हुकुम बजाइ।
तिहि बार ह्वै असवार धाइय दई लूट मिटाइ॥
ज्यौं वायु कै बस बारि बाहक मंत्र के उतपात।
त्यौं सलब साबर के प्रयोगहिं छिनक में उड़ि जात॥
लखि ऊर्ज नाभी बदन तें है तार कौ बिस्तार।
त्यौं भी जवाहर ने कियो सब लूट कौ परिहार॥

पुनि सैन सज्जिय पटह बज्जिय गज गरज्जि हयंद ।
यौं सुनत ही मनसूर चढ्यिय दैन दिल्लिय दंड ॥
दुहूँ दल उमंडिय रज घुमंडिय भानुजा के तीर ।
सुत सहित सूरज सरपटथ्या सजि सुभट संग वजीर ॥
उत सादुला सु नजीमखाँ अरु खानदौराँ पूत ।
धरकैं 'अराबौ अग्ग रूप्पिय कोठरा मजबूत ॥
इति सहर दिल्ली उतहिं जमुना मद्धि बढ्ढिय भीर ।
कुरखेत ज्यौं सुत अंध पंडव रचिय जुद्ध गँभीर ॥
तहँ तुमल नद्द गरद्द उड्डिय रूट्ठ बुट्ठिय काल ।
हरष्यौ कपाली देत तालो हेत माल कपाल ॥
गंधर्व किन्नर अपछरा भइ गगन में अति भीर ।
रसमसी चंडी कसमसी जग जुग्गिनी जुत बीर ॥
मसहार छाये नभ पुराये धरनि धाये स्यार ।
भुव भरभगानी भय दबानी खरखरानी ब्यार ॥
लगे कूर धरषन सूर हरषन दुहूँ परखन बार ।
दल प्रबल घोर घटा जुरी रस सार बरसन हार ॥
उत साहि अहमद सुभट रुप्पिय इतहि सफदर जंग ।
तिहिं सग सूरज अरु जवाहर ठढिय जंग अभंग ॥
तहँ छुटत बान भयान सहसन रहकला हथनाल ।
जज्जाल पुनि घुरनाल अयुतन जबर जंग कराल ॥
अगगगग अगग अगगगं सगग सग गगसंन ।
धगगग धगगगग धगगगं धंमाक धुंकर धंन ॥
धधकार धधधधधधध धंधू धाइ धूमक धाइ ।
भभकंत भक्क भड़ाइ भंकत भडडडडभं भाइ ॥
भंनात भद्द भड़ाक भड़ भड़ भभक भूरि भयान ।
भड़कंत भभकत भभभभंभट भेष भासत भान ॥
अति घोर घोष घुरयौ जहाँ धरधरत जमुना नीर ।
झरझरत गोली गोल ओला इंद्रपुर के तीर ॥

सारंग छंद

छायौ महाधूम धूली घटाघोर । उट्ठै जहाँ रंजकै बिज्जु सी जोर ॥
पज्जैं घनी तोप गज्जैं निरद्धार । देखैं दुहूँ सैन के जात आकार ॥
धुंधी धरा धूसली धूम गुब्बार । मानौ प्रलय कालको घोर अँधियार ॥
ओलानु के मेस गोलानु के मेह । फोरै घनै मुंड ढोरैं कहूँ देह ॥
बौछारि गालीनु की चारिहूँ ओर । बानौंन की घोर मानौ उड़ैं मोर ॥

छुट्टें कहूँ बाजि फुट्टें कहूँ भाल । गोलानु की गैंद खेलैं मनौं काल ॥
सन्नात घन्नात फन्नात नासाँस । भासै नहीं भान और आस आकास ॥
तामैं घुरयौं घोष ज्यौं गाज कै पात । कै सेल के सीस पै बज्र को घात ॥
सद्दैं सुन्यौ कै गरद्दैं लखी नैन । भैचक्क के सूर ठाढ़े दुहूँ सैन ॥
नीचैं तपै भूमि ऊपर तपै भान । भारी भयद्दान जारैं जगत प्रान ॥
या हाल कौं देखि सूजा भर्यौ तेह । बौल्यौ तज्यौ बीर हो संक संदेह ॥
है है लिख्यौ हाल गोपाल जी भाल । एतौ भयजाल है भूत के ख्याल ॥
हौ भाग पूरे सुदिल्ली लह्यौ खेत । है स्वामि कौ काम कालिंदरी रेत ॥
यातैं गहौ खेत अग्गैं पगा देत । या तोपखाने घरी चार मैं लेत ॥
यौं भाखि सूज्या लख्यौ पूत की ओर । ठाढ़ौ हुतौ पास ज्यों भान है भोर ॥
भारथ्थ मैं भीम पारथ्थ के मान । कंसारि ज्यौं काम बैरीन कै जान ॥
दोऊ महाबीर दिल्ली रुपे धीर । लंका खगे राम ज्यौं लछमना बीर ॥
सूजा कहैं बान सुन्ने सबै सैन । मुच्छौं धरैं हथ्थ रत्त किए नैन ॥
हथ्थैं गहे सेल लत्तों तुरी हंकि । जैसैं कपी जूह लंका परैं दंकि ॥
संका तजैं दोह डंकानु कौं देत । डंका करैं बीर बंका दिली हेत ॥

दोहा

सेल साँग समसेर सर गहे भुसंडी हथ्थ ।
मसकि मसकि बानीनु कौं हल्ल करी इक सथ्थ ॥

छंद हनूफाल

सबते अग्ग गोकुल राम । कुंभानी प्रताप उदाम ॥
सिंह भरथ्थ सूरतिराम । धरि हिय स्वामि काम उदाम ॥
ब्रजसिंह बंस कौ चहुँवान । स्यौसिंह है गदाल अमान ॥
तिरसा जादवाँ सुलतान । भीखाराम सिंह गुमान ॥
मोहन राम द्विज बलधाम । राजाराम दौलति राम ॥
बल्लू और बाला बीर । हरि बलराम कृष्ण गँभीर ॥
तिहिं की पुट्ठि धाइय छिप्र । हरि नागर जमूपति बिप्र ॥
किरपा राम दानी राम । दुरजन सिंह मुहकम नाम ॥
दबट्यौ जोर सुभट समूह । वह बलराम लेत फतूह ॥
रनसिंह उदयसिंह खुस्याल । हरिबलिराम छत्तरसाल ॥
मैदा जैतसिंह संतोष । पहोपा रतनसिंह सरोष ॥
किरपा बिप्र लछमन दास । अरु जैकृष्ण मनसा पास ॥
तोफा स्याम सिंह सुजोध । धीरज सिंह भीम अरोध ॥
सकता और दाता दौर । पाखरमल्ल पारी रौर ॥

उदभट सुभट लै इक सथ्थ । हरनाराइनौ समरथ्थ ॥
तोमर रामचंद तिलोक । ठाकुर दास सँगर थोक ॥
धनसिंह गौर गंगाराम । फत्ते ऊधमासुत स्याम ॥
हरसुख रतीराम अजीत । प्रोहित है घमंड अभीत ॥
सेखावत उमेद प्रचंड । वल्लभ सिंह कमधुज चंड ॥
स्यामहु सिंह थानापूत । हर जी राम जी मजबूत ॥
पैमा प्रथी सिंह पमार । अंगू सदा राम अपार ॥
मंत्री सदा राम सुक्रुद्ध । राजू रतनसिंह अरुद्ध ॥
नाथूराम खैमा विप्र । बाला और गिरिधर छिप्र ॥
हरि सिंह हठी सिंह अजीत । बकसीराम जंग अभीत ॥
जै सिंह तुला हट्टी जोर । पलका अमर सिंह कठोर ॥
साहिबराम जालिम जीत । रंगू सदाराम सुनीति ॥
दल्लामेव साकिर खान । गुलखाँ किते और पठान ॥
है पुरषोत्तमौ श्रीराम । मेदा बिजै राम उदाम ॥
बहादुर सिंह औ औधूत । कन्हई राम बैदा पूत ॥
साजैं सूर वह सावंत । श्री गुरू रामकृष्ण महंत ॥
सुत सुकलेस सूरतिराम । मुहकमसिंह उद्धत नाम ॥
है सुखराम मातुल उद्ध । स्यौसिंह उदैभान समुद्ध ॥
देवी सिंह औ अस्यौसिंह । सूरज अनुज धाइयधिंग ॥
तिनके मद्धि सिंह सुजान । नवग्रह जूह जैसैं भान ॥
सिंह दलेल सिंह खुस्याल । मेदहु सिंह ब्रजपतलाल ॥
उदभट सुभटसिंह भवान । वीरनराइनौ बलवान ॥
बंके मानसिंह गुमान । उद्धतराम बलमँतवान ॥
बुधिबल सभाराम बिलंद । ए वदनेस भूपतिनंद ॥
एने श्री जवाहिर · संग । षटमुख-सहित गन ज्यौं जंग ॥

दोहा

सेर सिंह रनजीत अरु जैत सिंह हठिसिंग ।
सिंह अनूप चँदौल किय भूप अवरि अरिंग ॥
उतहि अहम्मदसाहि-दल इत मनसूर-सुजान ।
इंद्रप्रस्थ जमुना निकट कर्‌यौ घोर घमसान ॥

छंद समुना

घमसान घोर जहाँ घुस्यौ । तिहिं जुद्ध तैं भट ना मूर्‌यौ ॥
गति मंद मंद हयंद की । सुभदाति और गयंद की ॥

सुधि धारि दिल्ली-काट की । इत दिष्टि सूरज जोट की ॥
अति घोर मार जहाँ घुरी । दसहू दिसा भइ धुधरी ॥
धरधद्धरं धरधद्धरं । भड़भम्भरं भड़भम्भरं ॥
तड़ तत्तरं तड़ तत्तरं । कड़ कक्करं कड़ कक्करं ॥
घड़ घध्घरं घड़ घध्घरं । झरझम्झरं झरभझरं ॥
अर रर्रं अर रर्रं । सर रर्रं सर रर्रं ॥
खर रर्रं खर रर्रं । फर रर्रं फर रर्रं ॥
कड़ डड्डुड़ं कड़ डड्डुड़ं । सड़ डड्डुड़ं सड़ डड्डुड़ं ॥
बहु सद्द कौं इक सद्द है । तम घोर धूम गरद्द है ॥
जग अंत को अँधियार सौ । रितु सीत कौ नीहार सौ ॥
छुटि बान भासत भासते । ग्रह पात जिमि आकास ते ॥
मघ सर्व धूम महाल सी । मनु काल राति कराल सी ॥
सर सैकरौं सर राहटे । लखि ब्याल ज्वाल उछाहटे ॥
नर बाजि कुंजर खाहटे । बिल पाइ मानहुँ चाहटे ॥
लगि गोल गोल घराहटे । लखि काइरौं थरराहटे ॥
मुख मर्द कैं मरराहटे । भुज दंड होत फराहटे ॥
चहुँ ओर गोलिनु की झरी । छुटि सार की मनु फुलझरी ॥
करिधार कुंभकरी फिरैं । फिलवान अंकुस दै भिरैं ॥
लगियौ तुरंगनि थरथरा । नथुनान लग्गिय फरफरा ॥
इहिं भाँति दुहु दल साँकरी । फर भूमि घोर निसाकरी ॥
भुजदंड खडित उड्डियं । कहुँ जंघ ऊरू गुड्डियं ॥
कहुँ रुंड मुंडनु झुंड है । कहुँ कुंड है कहुँ डुंड है ॥
लगि गोल फूटत पेट हैं । मनु देत काल चपेट हैं ॥
महि होत श्रोनित यौं झरैं । दुति ढाक फूलन की धरैं ॥
तिहिं बार राम सुचंद नै । हय हंकि जुद्ध बिलंद नै ॥
धनु बान हथ्थ सँभारि कै । हित स्वामि कौ उरधारि कै ॥
निज खेत जान हरष्षयौं । सर सार धार बरष्षियौ ॥
तबही सु गोली लग्गियौ । उर फोरि श्रोनित जग्गियौ ॥
ग्रह धीर बीरहि रंगतै । नहिं बागनोरिय जंग तैं ॥
सत दौरि सूरतिराम नैं । किय हल्ल जुद्ध मचावनै ॥
गुल तासु गोली सौं फुटी । करकी न बाग तऊ छुटी ॥
तुलसी फुटयौ परहेरिया । तिहिं जाय सुरपुर हेरिया ॥
बहुतै सुभट्ट जहाँ फुटे । गोली चुटे धरनी लुटे ॥
बहु होत लोटक पीटही । तउ जट्ट ठट्ट हटे नहीं ॥

कवित्त

श्रोनित अरघ ढारि लुत्थि जुत्थि पाँवड़े दे।
दारू धूम धूप दीप रंजक की जालिका॥
चरबी कौ चंदन पुहुप पल टूकनु के।
अच्छत अखंड गोला गोलिनु की चालिका॥
नैबेद नीकौ साहि सहित दिली कौ दल।
कामना बिचारी मनसूर पन-पालिका॥
कोटरा के निकट बिकट जंग जोरि सूजा।
भली बिधि पूजा कै प्रसन्न कीनी कालिका॥

छंद त्रोटक

तिहि औसर सिंह सुजान तनं। अति सिंह जवाहिर रोस मनं॥
हय हंकि धमंकि उठाइ रनं। जिमि सिंहछवा कढ़ि सैन बनं॥
बरषा जँ गोलिय गोलनु की। गरजै बहु बानन बोलनु की॥
चमकै बरछा जिमि बिज्जु छटा। उमड़े पुर इंद्र सुभट्ट घटा॥
बरसा सरसार अचूकन की। बहुतोप जंजाल बँदूकन की॥
तित जाहर सिंह जवाहर भो। तिहिं ठाहर जुद्ध अठाहर भौ॥
इत्त उत्त धमाधम खूब भई। कछु साहि चमू हहराइ गई॥
फुटमुंड अनेकनु रुंड गिरे। गहु गोलनु स्यौं गज बाजि खिरे॥
कहुँ अंग उड़े गति चंगनु की। लखि दाबहि देह पतंगन की॥
कहुँ अंतन दंतन पाँति परी। मनु रेसम रंगनि सूकि धरी॥
बहु लुथ्यनि श्रोनित धार झरै। मनु भारथ रूप अपार धरैं॥
अति उद्धत जुद्धत रुद्ध रयौ। दुहुँ आकुल व्याकुल जोग भयौ॥

कवित्त

तूरा तैं दरेर दैं दरेरनु सौं दिल्ली दाबि।
प्रबल पठान ना उड़ायौ पौन पत्ता सौं॥
कूरम रठौर हाड़ा खीची औ पँवार रामा।
बना डारि छूटे बाँधि कीनौ एक बत्ता सौं॥
सूदन सपूत ससिबंस अवतंस बीर।
साही दिल्लीपति कौ लपेटि राख्यौ गत्ता सौ॥
जाहर जगत्ता है जवाहर प्रताप तत्ता।
जाके कर कत्ता सों चकत्ता जार्‌यौ लत्ता सौ॥

दोहा

प्रबल अराबौ साहि कौ बिकट सहर पुठवार।
बृथा जुद्ध करिबौ इहाँ होत सुभट संहार॥

यौं समझाइ सुजान नैं आइ जवाहर पास।
घरी चारि दिन के रहत डेरनु कियौ निवास ॥
जे सच्छत आये सुभट तिनकौ कियौ उपाय।
जिन पायौ पचत्तु कौं ते जमुना पहुँचाय ॥

हरगीत छंद

भूपाल पालक भूम पति बदनेस नंद सुजान हैं।
जाने दिल्ली दल दक्खिनी कीने महाकलिकान है ॥
ताकौ चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छन बनाइ कै।
रन कौटरा तट करिय सूरज अंक तृतीय अधाइ कै ॥

इति तृतीय अंक

छंद मंथान

सुजारु मंसूर मेले भए 'सूर। बोल्यौं भरे ताप मंसूर यौं आप ॥
मेरा तुही अब्ब कै दूसरा रब्ब। कीना जुतैं काम पाया बड़ा नाम ॥
लीनी घनी जंग दिल्ली करि दंद। लूटा इता लोग छूटा नहीं रोग ॥
दै तोप की ओट टूटा नहीं कोट। हैगी मुझै चोट कीया जिन्हैं खोट ॥
लीयै तुझै जोट मारौं दिली कोट। करना कछू तोहि से भाषियै मोहि ॥
मंसूर के बैन सूजा सुने ऐन। कीनौ यहीं तंत, दीनौ तबै मंत ॥
रेती तजौ आपु औरुयौ घनौ तापु। लीजै अबै झील कीजै नहीं ढील ॥
ह्याँ आइ हैं घोर कालिंदरी तोर। तसौ कहा जोर डारै दलै बोर ॥
यातैं उतै मारु कीबौ हमै सारु ॥

दोहा

इतमैं लूटि चुके दिली उतमें रही अदग्ग।
ह्याँ वे बाहर आइ हैं तब ही बाजे खग्ग ॥

छंद हंद

सूरज' बानी सो सब मानी। कूँच करायौ देर न लायौ ॥
दुंदुभि डंके देत असंके। ढोल दमामैं बाजत आमैं ॥
गोमुष गज्जै तूर गरज्जै। हथ्थिय घोरैं पैदल थोरैं ॥
उच्च पताका पार न ताका। यौं दल उम्यौ ज्यौं घन तुम्यौ ॥
देत हरेरैं झीलहि नेरैं। देरनु देकैं चौकस कै कैं ॥
फेरि उम्माह्यौ जुद्धहि चाह्यौ। सूरज बंका देत अतंका ॥

घत्ता छंद

इस्माइल राजेंद्र गुसाँई हे नवाब के हरवल चंड।
दे सवार है जुटे दिली सौं सहस सहस हयलै बलवंड ॥
सिहं सुजान सुभट सैनापति सूरत गौर दयौ तिहिं सथ्थ।
हर सुख नाम द्विजन मैं दीरघ लिपैं भुसंडी सेलनु हथ्थ ॥
उत तैं आइ साहि अहमद भट रुप्पिय कुप्पि अराबो तथ्थ।
लागनि लगी परस्पर बीतनि गोलो मोल गथ्थ लथपथ्थ ॥
हय हंकत संकत नहिं हंकत चार्‌यौं करत दिली तट दौर।
आयुध सजैं बजैं बहुडंका सुरपतिपुर पारी अति रौर ॥

छद उद्धत

दुहूँ ओर बंदूक जहँ चलत बेचूक रव होत धुंधूक किलकार कहुँ कूक ॥
कहुँ धनुष टंकार जिहि बाना झंकार भट देत हुँकार संकार मुँह सूक ॥
कहुँ देखि दपटंत गज बाजि झपटंत अरिव्यूह लपटंत रपटंत कहुँ चूक ॥
समसेर सटकंत सर सेल फटकंत कहुँ जात हटकंत लटकंत लगि झूक ॥
हुव जाम जब दोइ दुहुँ रुद्र रस मोइ इमि जुद्ध जहँ होइ उहि कोइ अहुटंत ॥
उत साहि दल जोर किय सस्त्र झर घोर दिय रत्त रस ओर ॥
चहुँ ओर अहुटंत ॥
तब गौर समरथ्थ सूरत्ति इक सथ्थ राजेंद्र गिरि गिरि तथ्थ बड़ हथ्थ जुहटंत ॥
लिय जंग गहि संग बहु अंग रन अंग जह होत भट भंग उतमंग लुहटंत ॥

छप्पय

तिहिं फरमंडल बीच परिय गोलिय झर झरझर।
तहँ फुट्टिय कर गौर श्रौन छुट्टिय छत छर छर ॥
तऊ न चल्लिय धीर बीर अग्गहि हय हंकिय।
तथ्थहि हरसुख विप्र छिप्र धाइय अनसंकिय ॥
तबही अचान राजेंद्र गिरि लगि गोली तन तैं छुट्यौ।
वह सूर समर मधि स्वामि हित परम हंस गति कौ बुझ्यौ ॥

दोहा

मर्‌यौ सुन्यौ राजेंद्रगिरि मन वजीर दुख पाइ।
जुद्ध भूमि तैं सुभट सब डेरनु लए बुलाइ ॥

बंसत-तिलका

अत्यंत शोक मनसूरहिं चित्त छायौ। राजेंद्र आजु फरमंडल काम आयौ ॥
त्यौं ही नवाब उमराउगिरै बुलायौ। दै कै गयंद सिरपाउ गदी लसायौ ॥

दोहा

थपि गद्दी राजेंद्र की गिरि उमराउ अनूप।
विदा किए फिरि जुद्ध कौं इक तैं दोइ सरूप ॥

छंद तोमर

तब सूर सिंह सुजान। बकसी महा बलवान ॥
कुल गौर गोकुल राम। चित चाहि कैं संग्राम ॥
लखि भ्रात घाइल हथ्थ। हुव क्रोध के बस तथ्थ ॥
चढियौ अनीक सजाइ। गहरौ निसान बजाइ ॥
लहि हुकुम सिंहसुजान। रन कौ चल्यौ बलवान ॥
पहुँच्यौ दिल्ली तट धाइ। दिय धूम धाम मचाइ ॥
उत साहि सैन संघट्ट। गहि ओट तोप गरट्ट ॥
इति जट्ट ठट्ट अघट्ट। किय घोर सैन झपट्ट ॥
पर हेत देत धवानं। करि लावदार दवान ॥
कहुँ सिंधिवान कमान। धरि मुट्ठि हथ्थ कृपान ॥
इत उत्त चाहि अभीत। हित स्वामि प्रीत प्रतीत ॥
तहँ आइयो भट साहि। भुव बाढ़िकै समुहाहि ॥
धरि अग्र स्याम निसान। कबची कितेक जवान ॥
कितने की भालन बंद। करहीं हयंद निछंद ॥
बरछी अनेकन साँन। सम्सेर खिप्पर आँग ॥
बढियो सुखेत सुरोप। चढियो कुमेत निवोज ॥
लखियै सु बक्सी बीर। हुव रोस कै बस धीर ॥
कहियौ सुभट्टनु टेर। रन लेउ होहि न भेर ॥

छंद गंगोदक

यौं कही गोकुला दौकुला सुद्ध सो।
मोकला सूर सामंत सौं ता घरी ॥
देखि दिल्ली दलै दीह डंकानु दै।
दौर कीनी बली देत खस्यौं झरी ॥
आपने आपने बाज ताते किए।
नैंन राते मनौ भाग की भाभरी ॥
टाप ठन्नाहटे होत फन्नाहटे।
गोलियौं आहटे रंजुकौं की झरी ॥
चंड कौ दंड सौं बान संधै किते।
सेल सम्हारिकैं साँग ओजैं भटा ॥

काढ़ि समसेर कौं बीर धाए घने ।
धूम धारा धरैं बिज्जु की सी छटा ॥
धद्धरा धद्धरी बद्दरा से गजै ।
लेउ रे लेउ दात्यूर के कीरटा ॥
मास आसाढ़ की आपगा सी बढ़ी ।
सूर सैना धई तोरि दिल्ली तटा ॥
धाइ जुट्टे बली देह फुट्टे किए ।
कोइ लुट्टे मही बाज लुट्टे जहीं ॥
गौर की दौर की रौर भारी परी ।
मारि गो लीनु सों साहि सेना दही ॥
बान कम्मान दम्मान देते भए ।
सेल समसेर की चोट नाहीं वही ॥
जट्ट ठ्ठठौं सही जित्ति कित्ती लही ।
दिट्ठि दिल्ली दलौं यह दिल्ली गही ॥
फेरि पाछैं लग्यौ देखि बैरी भग्यौ ।
सेल साँगौं खग्यौ गौर नै झौर की ॥
हंकि बाजी धयौ छोह कै उग्यौ ।
सिंह रूपै भयौ मृग्ग पै दौर की ॥
चाहि वेऊ मुरे दै दवानौ जुरे ।
धम्म धम्मा धुरे चोर ज्यों रौर की ॥
लग्गि गोली गिरयौ गोकुला ज्यों खिस्यौ ।
प्रान नाहीं घिस्यौ स्वर्ग मै ठौर की ॥

दोहा

लगत भुसंडी मर्म छत गौर कही यह बात ।
ह्यॉं तौ भाँडौ फूटि गौ थँभै न बैरी जात ॥
बकसी कौ ऐसौ बचन मेघराज रनधीर ।
गैार उठाइ हयंद तैं धर्यौ गयंद सरीर ॥

छंद गीतिका

इहि छे उपाइ दिलीस सैनहिं जात वार न लग्गहीं ।
गज बाजि पैदल छोड़ि कैं थल जुद्ध तैं भल भग्गहीं ॥
पुनि आइ सूरज के सुभट्टनु दिक्खि गोकुलराम कौं ।
रनभूमि तैं धरि लै चले गज पाइ दुःख उदाम कौं ॥
सुनि सिंह सूरज ता घरी रन जित्ति बकसी जुम्भिझयौ ।
मन लै उसास उदास दूतहिं फेरि बात न बुम्भिझयौ ॥

पुनि गौर कौं वर ठौर भेजिय सब्ब सूरन सथ्थ दै ।
गति थाइ कैं परलोक की रविलोक की विधि हथ्थ दै ।।
ढिग आय सूरज मल्ल के मनसूर ने तब यौं कही ।
अब कूँच ही करना सही इस खेत सैं न वफ़ा लही ।।
नहिं चून घीव सवोल ही तसदीह सबही की सही ।
न हरीफ़ बाहर आवते जिस वासतैं तुमने गही ।।
मन मानिकैं मनसूर कौ बदनेसनंद कबूल कैं ।
तिहिं बार कूँच कराइयौ सुचिराक दिल्ली कूल कैं ।।
करि एक दोइ मुकाम दोउनि फेरिकैं तिल पत्तिलो ।
तहँ ईत बढ्ढिय मेघ चढ्ढिय फेरि जंग सुमत्तिली ।।

छंद उल्लाला

यह खबर गाजदीखान पै साहि जहानाबाद हुव ।
मनसूर सहित सूरज बली उलटि गए तिलपत्ति धुव ।।

छंद नीसानी

पोता मलिक निजामदा सुनि एही गल्लाँ ।
हुकुम माँगिया साहि सैं हुए अग्गैं चल्लाँ ।।
फरमाया पतिसाहि भी अच्छी दिलजोई ।
अग्ग अरावा ले चढ़ौ हरवल कार कोई ।।
करि सलाम रूखसद हुआ गाजुद्दी आया ।
संग पठान रूहेल लै पुर ही टत छाया ।।
तद गाजद्दी खानजी दंती मति ल्याया ।
अग्गैं गढ़ी मिदान दी रूहेल पठाया ।।
हुकुम गाजदीखान दा रूहेलौं पाया ।
हैदल पैदल सथ्थ लै तदही चढ़ि धाया ।।
एही फौज रूहैल दी फर रूप लखाया ।
काल जमन करि कोह नूँ काबिल सैं धाया ।।
यह संदेस सूरज बली तिलपति मैं सुन्ना ।
हरषि उगा सब अंग मैं रन काजैं दुन्ना ।।
अद्धीनिसा गई जबै बलिराम बुलाया ।
बल्लू वाला दुरजनैं आगैं भिजवाया ।।
कूरम सिंह प्रताप भी अरु गोकुल सैना ।
सैंगर ठाकुर दास और हरनागर पैना ।।
मोहन हरसुख स्यामसिंह हरिवल स्यौंसिंगा ।
सूरतिराम कटारिया अरु धैंकल धिंगा ।।

हरनाराइन पाखरा सुखराम असंका।
राज गूजर भरतसिंह चढिया भट बंका ॥
सबै जवाहर सिंह दै भट सूरज भेजे।
सेल साँग बंदूक सर हथ्यौं धरि नेजे ॥
हम्मैा सुभट चढ़ाइया सूरज बिन डंका।
घरी चारि पीछू चढ़्यौ आपुन अनसंका ॥
देखि गढ़ी मैदान दी बैरी दल दिट्ठा।
जंग बिचारन लग्गिये चढ़ि बाजिनु पिट्ठा ॥
तिस बेलाँ सूरज बली करिकै धकपेला।
उथ्थैां ही बहु सूर लै हुवा भट भेला ॥

दोहा

निरखि रुहेले की चमू श्री सुजान भे क्रुद्ध।
दुष्ट दिष्ट आए भलैं ,कह्यौ चाहि चिंत जुद्ध ॥
देव देव हरिदेव की जाइ दुहाई लच्छ।
जो बिपच्छ नहिं तच्छ है गंच्छत सच्छत अच्छ ॥

छंद त्रिभंगी

सुनि सूरज बानी रिस लपटानी धरनि सिहानी भूख भरी।
पलके आहारी ललके भारी अंबरचारी भीर करी ॥
गिरि धूरिजटी के जुद्ध जुटी के मद्ध कुटी के रैार परी।
मारू सुर लीना आवज बीना नृत्यहिं कीना तेह घरी ॥

दोहा

तेह घरी असि कर करी सूरज परगन चाहि।
कही सूर सेनाधिपनु सत्रु न जीवत जाहि ॥

छंद भुजंगप्रयात

जहीं सूर के सूर लै सेल साँगै, चहूँ ओर तैं घोर यैां सोर साजा।
सतैां संधि कैं तीर को दंड तानै, सहस्रौं सरोही लिये हांकि बाजा ॥
किते तेग तेगा जु नव्बी नुत्रारे, भुसंडीनु कौं छुडिकैं फेरि गाजा।
धरा लेहु रे लेहु रे लेहु छायौ, कहूँ देहु रे देहु रे देहु बाजा ॥
गलामेल ह्वैकै चला सेल साँगै, ढलामेल दीनौ नला बीच भाजा।
अलाकै हुँकारे रुहेला संभारे, झलाबोल सारे डला श्रौन ताजा ॥
तरातर तरातर यहै सद्द सुन्यौ, धराधर धराधर परे स्वामि काजा।
झमाझम झमाझम बजैं सारधारा, लखैं जुद्ध कौं देवता दैत्य लाजा ॥

वृद्धिनाराच छंद

जुटे रुहेले जट्टहीं । न कोइ बीर हट्टहीं ॥
सुएक एक डट्टहीं । झपट्टहीं लपट्टहीं ॥
अनेक अग्ग वाहहीं । कितेक मार छाँहहीं ॥
किते परे कराहहीं । हकार सैं रपट्टहीं ॥
कहूँक हंथ हथ्थहीं । भरैं कहूँक बथ्थहीं ॥
परे सु लथ्थ पथ्थहीं । सपट्टिकैं चपट्टहीं ॥
उताल चाल हाल सौं । धवंत कोहज्वालसौं ॥
गहैं कृवाल ढाल सौं । अरीनु कौं कपट्टहीं ॥
धमंकि धिंग धावहीं । तमंकि तेग आवहीं ॥
झमंकिकैं चलावहीं । बुलावहीं बलक्किकैं ॥
कटंत कंध कुंडला । छटंत बाहु डुंडला ॥
फटंत पेट रुंडला । ढुलावहीं दलक्कि कैं ॥
लरैं कहूँ, छुराछुरी । परैं कबध रातुरी ॥
कितेक टूटि जावुरी । हुलावहीं हलक्कि कैं ॥
भलक्किभाल भालहीं । झलक्कि झाल झालहीं ॥
रलक्कि धाव घालहीं । बुलावहीं घलक्कि कै ॥

छंद निसानी

उथ्थौं ठाकुर दास भी सैंगर समुहाया ।
हथ्थों सक्ति सँभालिया बैरी बहु पाया ॥
फैंकि साँग रूहेल दे उर अंदर घत्ती ।
देखि दूजैं आँख दी झारी कर कर कत्ती ॥
जिसी हथ्थ दे सैंहथी छुट्टी हवा डट्टी ।
तिसी हथ्थ दे उप्परों रूहेले सट्टी ॥
करकट्टा जिस डुंड सैं सैंगर यौं सोहा ।
मनौ दंड लै काल भी रन-मंडल कोहा ॥
मार करी उस सथ्थ यौं मथ्थी पर सैना ।
हुवा तत्थ समसेर दा लैना कै दैना ॥
स्यामसिंह गहि सेल नूँ धसि जंग अखारे ।
तन धत्ते रत्ते अरी फरमंडल पारे ॥
इक्क घाव तिस जंघ में रूहेलौं कीता ।
तौ भी बीर न हट्टिया अग्गैं पग दीता ॥
हरिनराइन तिस घड़ी बाजी करि तत्ता ।

धसा कुरंगौं जूह मैं पंचानन मत्ता ॥
किते रुहेले तिन किए कत्तौं सौं जत्ता ।
घनैं मुंडं फर पाड़िये धर थर परकता ॥
हम्मौं बीरौं दी अनी कित्ती रंग लोही ।
हिक्क हिक्क दे हीय तूँ सर साँगौ फोड़ा ।
हिक्क सीस भुज पाइ भी तरवारौं तोड़ा ॥
कोई कर्न बिहूनिया नासा बिन कोई ।
फौंद फटे कोई पड़े स्वासा बिनु होई ॥
कोई अस्यौं फिराँवते हूवे रन रूते ।
कोई प्रान गँवाइयाँ सुख सेजौं सूते ॥
कहीं अंत छुट्टे पड़े कहिं दंत उघारे ।
कहूँ बिना हूँ मूंड़ ले सीने गहि फारे ॥
मारु मारु मुख अक्खदे दे दे हकारे ।
सेख रुहेले भागिए छुट्टा छक्का रे ॥
गिरते पड़ते धत्तिये करि कत्ते कत्ते ।
सूरज सूर पुकार दे सूरज दी फत्ते ॥

दोहा अमृतधुनि

कढ़ि कढ़ि अति श्रोनित उमगि गढ़ि गढ़ि अरिनु उदंड ।
चढ़ि धाइय बदनेस सुत खग्गग्गहिं रन मंड ॥
खग्गग्गहि रनमंड समर उद्दंडद्दलानि ।
लंडक्करि नित खंडत खलिन विमुंडद्धनि ॥
भुंड भटिय समुंड फफ्टिय चमुंड ज्जय रढ़ि ।
तंडव करत उमंडत धरनि वितुंड कढ़ि कढ़ि ॥

कवित्त

हेला देत आए बगमेला ज्यौं रुहेला बीर ।
मैदाँ गढ़ी के तीर सुभट महारथी ॥
तेई काटि डारे रुंड मुंड भुंड दारे दै ।
चमुंडनु अहारे भौ प्रसंग जुद्ध पारथी ॥
रुधिर के थारे परे बीच असरारे पारे ।
रविजा मिलाप कौं सुरेस भयौ सारथी ॥
सूदन सुजानसिंह बिक्रम निधान महि ।
जान बान गंगा कौं करी क्रवान भारथी ॥

छंद मालिनी

सुभट सिमिट आए। सूर के पास धाए।
हरषनु हिय छाए। जंग की जैति पाए॥
धन धन रव लाए। कंठ सौं लै लगाए।
समर-श्रम मिटाए। मात सनमान पाए॥

छंद हरगीत

भूपाल पालक भूनिपति वदनेस नंद सुजान हैं।
जानैं दिलीदल दक्खिनी कीने महाकलिकान हैं॥
ताकौं चरित्र कछूक कह्यौ छंद बनाइकैं।
रन मैं गढ़ी मैदान पाइय अंक चौथैं आइकैं॥

इति चतुर्थ अंक

——::०:०::——

छंद सादरा

दिन बीत दस बीस पुनि धारि मन रीस।
सजि सैन भयदैन चढ़ि नंद ब्रज ईस॥
लिय साहि तुकलान गढ़ भूमि बलवान।
जहँ कालिका थान रन देखि मरदान॥

छंद निशिपालिका

सूर दल देखि उत साहि बल सज्जियौ।
बाजि गजराज गजि तूर बहु बज्जियौ॥
केतु फहरात घहरान घन दुदुंभी।
सस्त्र खहरान ठहरान चकचुंधुभी॥
बान किरवान तनत्रान धरि कढ्ढिये॥
जान भरि सान मरदान बहु बढ्ढिये।
होइ असवार तिहिं बार इक ओर तैं॥
गोल करि गोल बहु मोल हय सोर तैं।

छंद रुचिरा

साहि-अनीक बिलोकि बदन सुत चरहिं बुलाइ कह्यौ तबही।
है इन मैं को को सेनापति कहु दूत दुहूँ कर जोरि कही॥

छंद पावकुलक

ए जहँ स्याम निसाननुवारे। ते पठान ठाढ़े रन रारे।
है जित धुजा नील सित चंडी। सो रुहेल की सैन घुमंडी॥
जहाँ भगोही उड़े पताका। तहाँ दक्खिनी जंग चलाका॥

लाल सेत जहँ ए धुज ठाढ़ी । यहै सैन बकसी की बाढ़ी ॥
जहाँ सेल साँगैं बहु भाले । सो अंबरी रिसाले वाले ॥
जिनके बाजि करत बहु छंदा । ते बाला साही मतिमंदा ॥
जिनके निकट गरूर सिपाही । वे जानौ सब आला साही ॥
लिए चारु बाजी बल पूरे । नीम बास ए है रन रूरे ॥
जौ यह गोल अग्ग बढ़ि ठाढ़ौ । सो सरदार बदकसी गाढ़ौ ॥
जो यह चमू फिरति है दौरी । सो सवार पाइक पेसौरी ॥
जहां सद्द ढक्का धर धरबी । ब्रजपति-नंद जानिए अरबी ॥
जो भुव स्याम घटा रहि दबसी । ठाढ़े तहाँ सुभट रन हबसी ॥
जहाँ भुसंडिनु कौ भर भारी । ते इतबारी निपट हजारी ॥
है जहँ लाल लाल खल कारे । नादिरसाही टोपीवारे ॥
आस पास इनके भय दानौ । रूप्यौ तोपखानौ समसानौ ॥
सबकी पुट्ठि छाइ दल चंडौ । दे रन दाखिल है बलवंडौ ॥
नाम गाजदीखाँ बलबंडौ । विक्रम बलित बुद्धि पर चंडौ ॥
श्री सुजान सुनिकै चर बानी । जुद्ध-बुद्धि निहचै मन ठानी ॥
अपने सेनापती बुलाए । जंग हेत आगैं रुपवाए ॥
जोजन अर्ध अर्ज पर सैना । निरखि सूर बल थप्पि सचैंना ॥

छंद मुक्तादाम

करे इक ओर बलू बलिराम । रूपाइय वीर दुहूँ भुज बाम ॥
हरवल बैरि चमूपति तथ्थ । थप्यौं तिनके तटही समरथ्थ ॥
रूप्यो तिहि पुट्ठ लियैं बल घोर । चमूपति है हरि नागर जोर ॥
थप्यौ भुज दच्छिन ओर सुनाम । सुकूरमसिंह प्रताप उदाम ॥
जुहीं सिवसिंह कियौ बलवान । बली ब्रजसिंह रूप्यौ तिहिं थान ॥
लियै किरपा सब नाहर सैन । ठढ़ौ तिनके तट हहिर लैन ॥
सहस सवार लिये मनसूर । किये सुचँदौल सुजान गरूर ॥
कियौ हिय अग्ग सुभट्ट समाज । घमंडिय प्रोहित राज सलाज ॥
रह्यो सबकी पुठवार सुजान । दिली दल दाबहि कान्ह प्रमान ॥
रच्यौ अध जोजन व्यूह अनीक । बजाइय दुंदभि मारुव ढीक ॥

छंद घनानंद

यौं थपि सिंह सुजान व्यूह अमान सकल सूर सेनाधिपति ।
सद्दिय पटह निसान तूर भयान समर हेत चलि मद गति ॥
फहरत पीत निसान तड़ित समान कै प्रताप ज्वाला लपट ।
परगन इंधन जान लखि ललचान लगि उछाह मारुत झपट ॥

देत कवाद कमान भरत दवान जग हेत रस बीर लहि।
करत हयंदन छंद सुभट बिलंद सेल साँग नेजान गहि॥

छप्पय

इहि विधि दहुँ भट पिलिय खिलिय लखि संभ-सँघारनि।
झटपट मनमथ-दहन गोसु तहँ लग्गिय झारनि॥
स्नान-सवार सपट्टि एक-रद तथ्थ मनाइय।
बाम पुट्टि-सुखदानि अग्नि फरमंडल छाइय॥
पल-भषन हार पुलके गगन प्रेत पूत कुद्दिय किलकि।
सज्जिव विमान देवांगना हरषि बदन उड्डिय चिलकि॥

दोहा

वासर के तीजे पहर, साहि सुभट करि रल्ल।
जुटे आइ स्योसिंह सह लै मरहट भुज भल्ल॥

छंद पद्धरी

उत साहि सुभट मरहट सजोर। धाए भुज भल्लनु दै झकोर॥
हर हर हकार धर धर धवान। भर भर भराक इततैं दवान॥
मुख जयति देव हरि देव सद्द। झपटे ब्रजेस बीरहु मरद्द॥
कड़कंत धनुष्ष कररी कवाद। सटकंत तीर छुट्टत जवाद॥
गटकंत गड़ागड़ होत सेल। भड़कंत भुसंडी घाल मेल॥
अड़कंत दुहूँ मिस स्वामि काम। फड़कंत तुरंगम हू महाम॥
भडकंत झरत आयुध अनेक। खड़कंत अंग अस्तनि कितेक॥
रड़कंत इक्क लगि हय चपेट। फड़कंत फरहिं भर पिट्ठि पेट॥
ढलकंत देखि परके हयंद। धड़कंत नहीं जुट्टत सुछंद॥
तड़कंत तेग सिप्परनु लागि। चड़कंत अस्ति हय टापि भागि॥
पड़कंत पड़े सेलनु अरक्कि। धड़कंत घाव श्रोनित सरक्कि॥
तिहि औसर गूजर सारदूल। नेजा उठाइ धाइय सफूल॥
दिय सत्रु हिये मैं घाव घोर। पुनि काढ़ि तेग झारिय सजोर॥
इक दबटि दक्खिनी ने उताल। किय गुलफ घाव नेजा दुसाल॥
तहँ सेनपती स्योसिंह धाइ। हय हंक सेल मेलिय घुमाइ॥
ज्यौं छुधित बाज लखि गन कुलंग। चुंगल चपेट कर देत भंग॥
छुर इक्क दोइ हाथर लचाइ। पर लत्थ पत्थ दीने गिराइ॥
तहं एक दक्खिनी दग बचाइ। दिय जंघ माँझ भाला घुमाइ॥
स्योसिंह भयौ सौ सिंह रूप। हनि साहि सुभट मृग से अनूप॥
हुव लाल लाल बसुधा कराल। श्रोनित्त जाल ज्यौं कोह ज्वाल॥

जहँ सेल साँग समसेर ढाल। बंदूक बान जंजाल जाल॥
गहि गहि सुजान भट चंड चाल। दिय घोर मार दिय लोह झाल॥
मुख मारु मारु कै झरत सार। बिकरार भगे दखिनी अपार॥
रव बिजय पाइ स्यौसिंह बीर। घाइल सुमार फर रुपिय धीर॥

दोहा

बिचल पाइ दखिनी निरषि, कर्‍यौ सुदखनिनु जोर।
नीव बाँस सब संग लै, परे घमंडी ओर॥

छंद भुजंगी

बजी चारिहू ओर तैं टापबाजी। मनौ मेह आसाढ़ की बुँद गाजी॥
पुकारैं दुहूँ ओर के बीर हाँ हाँ। करी भौंह बाँकी चढ़ाई सु बाँहाँ॥
छुटी बान कम्मान दम्मान भारी। किहूँ भाल भाले बरच्छी सँभारी॥
इतै जट्ट जुट्टे उतै साहि सैना। मिले जुद्ध कौं उद्ध कैं कुद्ध नैना॥
कहूँ चाप टंकार हंकार पारी। कहूँ धूक बंदूक मैं ज्वाल झारी॥
कहूँ लैस कत्ती धरत्ती घुमाई। कहूँ सैल की रेल हथ्थौं चलाई॥
तहाँ आपने आपने हथ्थ किन्ने। तिन्है देखिकैं अंबरी मोद भिन्ने॥
टुटे सार सन्नाह झन्नाहटे सैं। परैं छूटिकैं भूमि खन्नाहटे सैं॥
भुसंडीनु फुट्टेमही पिट्टि लुट्टे। छुरौं खाइ हुट्टे सरौं फेरि जुट्टे॥
किते रत्त मत्ते उमत्ते घुमत्ते। तुरत्ते उठे फेरि लै हथ्थ कत्ते॥
लरत्ते परत्ते बदक्सी उमंडे। दिसा पुब्ब के से जलद्दा घुमंडे॥
लखैं यौं बदक्सी चमू माहि पैठे। भए सूर सूरज्ज सब्बै इकैठे॥
तहाँ यौं घमंडी गहैं सैल धायौ। मनौ द्रौन को पुत्त है छोह छायौ॥
किधौं पूत जमदग्नि कौ जंग रूठ्यौ। बदक्सी सहसबाहु पै धाउ बुठ्यौ॥
हनैं सैल सौं जाहि भू मैं पटक्कै। सहसबाहु की सी भुजालै कटक्कै॥
लखैं त्यौं बदक्सी भरे जी अचंमे। लिखे चित्र के से रहे घान थंमे॥
हुती एक पैं त्यार बंदूक त्यौंही। दई फूँक कै धूक सुठमेर ज्यौं ही॥
लगी आन नैंजाब औ जीभ खंडी। धुक्यौं बाजि तैं त्यौं धरा पै घमंडी॥
गिर्‍यौ देखि कै शत्रु सब्बै सपट्टे। लिए आपने आपने सस्त्र फट्टे॥
पलक लागतैं बाजि चढ्ढ्यौ घमंडी। ललक्कारिकैं तेग की जंग मंडी॥
रंग्यो रत्त सूं हथ्थ समसेर सोहै। मनौ देह धारैं रसैं जान कोहै॥
फुटैं जावकैं जीभ यौं कढ्ढि आई। तहाँ देव नरसिंह की मोह पाई॥
गहे तेग नंगी करी जंग चंगी। हनी साहि की सैन यौं श्रौन रंगी॥
तहाँ नंद बदनेस कै द्दष्टि दीनी। उदैभान की सी प्रभा अंग भीनी॥

तुरी तेज कैसैं इथी हथ्थ लिन्नी। हियै देख हरिदेव की याद किन्नी ॥
मृगाधीस जैसे करी जूह दट्टै। षगाधीस ज्यौं ब्याल जालै झपट्टे ॥

छंद त्रिभंगी

झपट्यौ करि हल्लनि लै मट्ट भल्लनि अरि दल मल्लनि समुहायौ।
जित प्रोहित जुट्टयौ गोली फुट्यौ श्रौनित छुट्यौ दरसायौ ॥
सर साँगनु बुठ्यौ सेलनु तुट्यौ घन सम उठ्यौ बरसायौ।
धुनि धीर धमंकनि तेग झमंकनि बिज्जु चमंकनि सरसायौ ॥
सरसायौ जुद्धै बढ़ि्ढ बिरुद्धै अहिधर कुद्धै ज्यौं रन मैं।
तिरसूल सकत्ती रत्तनि रत्ती ज्वाल झरत्ती अरिगन मैं ॥
करि खंडनि खंडे यमनि उदंडे धरनि बिहंडे परचंडे।
बहु रुंडनि मुडनि डुंडनि झुंडनि श्रोनित कुंडनि फरमडे ॥
फरमंडे हथ्थौं लथ्थक पथ्थौं लुथ्थिनु जुथ्थौं काटि करे।
घन धाइ भभक्कत सेलह बक्कत कोइ दबक्कत जात टरे ॥
बहु सस्त्रन बाहनु कोह कराहत फिर फिर चाहत भूमि परे।
दे दे रव रट्टिय झट्टकपट्टिय डट्टिय कट्टिय भूमि भरे ॥
भरि बथ्थनि पटके दै दै झटके हय तैं पटके श्रौन झरे।
अस्तिनु के चटके टापनु बटके अंतनि अटके जाइ परे ॥
केते घट घटके आयुध कटके देते सटके संक भरे।
तिहिं सूरज बंका दै रन हंका करि अरि फंका दूरि करे ॥

दोहा

कटे फटे निबटे हटे लखे साहि दल जंग।
फते पाइ सूरजबली लख्यौ सुप्रोहित अंग ॥

कवित्त

द्रोन अघवाई द्रोनी कृप अँचवाई ख्वाई।
सोई तैं जगाइकैं बुझाई प्यास चंडी की ॥
ताही खेत प्रेतनु पलाकें भट पीठिनु के।
मुंडनु के बाट हाट आमिष उदंडी की ॥
सूदन दिलीस दल चाहिके समर गाहि।
साहि की प्रतापानल खग्ग जल ठंडी की ॥
लागिक भुसुंडी जीभ जाव जुग खंडी तऊ।
छंडी है न जंग भंडी कित्ति यों घमंडी की ॥

सोरठा

प्रोहित लख्यौ सुमारु हय पै सिंह सुजान नैं।
ज्यौं तनु लहै करारु त्यौं तुमकौं मैं लै चलौं ॥

कछू भूमि चढ़ि बाजि कछू खाट कछु पालकी।
लै प्रोहित ब्रजराज दाखिल निज डेरनु भयौ ॥

कवित्त

पाई गगनाइक सौं तौं ही गननाइकता।
त्यों ही दिगपाल दिगपालता प्रतीति की ॥
तेज पायौ रवि तैं मजेज सतमष पास।
अवनी कौ भोगिबौ अधिक नाथ नीति की ॥
सीतलताई ससि तैं पवित्रताई पावक तैं।
लाज पाई सिंधु तैं सुनीति वेद रीति की ॥
सूदन अभीत सर्वज्ञता सुबुद्धि सूजा।
दीनी जगदीस बिधि तोही जंग जीति की ॥

छंद समानिका

बीति गे कछू दिना। जंग के किए बिना ॥
एक द्योस भोरहीं। दै निसान घोरहीं ॥
ह्वै सवार तथ्थ ही। लै अभीर सथ्थ ही ॥
सो वजीर आइयौ। मंत्र कौं उपाइयौ ॥
श्री सुजान पास कौं। कूच के प्रकास कौं ॥
थापि मंत्रता धरी। कूच की हियैं धरी ॥
तब्ब ही पयान कै। ईति भीति मान कै ॥

तुंग छंद

उठत प्रबल सैना। कहत सुथल लैना ॥
मनहुँ जलद धाए। उमड़ि घुमड़ि आए।
हय गय रथ प्यादे। सुतर सुभर लादे ॥
गगन घन पताका। बहु बरन बलाका ॥
घम घमत दमामैं। पटह बजत आमैं ॥

छंद मनहरण

पयान कर्यो मनसूर सुजान निसान धुजाननु पैयतु पार।
बिचार हियैं यह खेतहिं देत कढ़े मुदई कहुँ भूमि अगार ॥
तजी तिलपत्ति बजी तुरही सुरजी सब सैन बजावत सार।
दियैं गढ़ बल्लम कौ पुठवार किए भट भीरनु थान अपार ॥

छंद मदनहरा

सो खबरि पाइ पोता निजाम कौ।
अब वजीर मनसूर टर्यो।
उत कूच कर्यो ॥

तबही सजाइ सादल नजीबखाँ।
सकल अराबौ अग्ग धर्यो।
यह हुक्म कर्यौ॥
तुम हरवल चलौ भीर बकसी लै।
आज बदरपुर जाइ परौ।
रन फजर करौ॥
मुझकौं भी पास जानियौं अपने।
निमक साह का दिलहिं धरौ।
खतरा न डरौ॥
वे आइमु पाइ गाजदीखां कौं।
सब अमीर भलभलहिं रढ़े
हिय हरषि बढ़े।
सादल न जीब महमूद आखबत
जैता' गूजर सहित कढ़े
रव जुद्ध पढ़े॥
सब नीमवास दखिनी पेसौरी
संग मरी बकसीहिं चढ़े
तन तेह उढ़े।
दै दिग्घ निसान बान बहु गोमुष
तूर बाँकिया सद्द बढ़े
भुव गगन मढ़े॥

दोहा

हुकुम गाजदींखान कौ सब अमीर धरि सीस।
बढ़ौ अराबौ अग्ग धरि हय सहस्र चढ़ि बीस॥
साह जहानाबाद तैं द्वै जोजन भुव बढ्ढि।
सब डेरनु चौकस करिय फेरि जुद्ध कौं चढ्ढि॥

छंद चर्चरी

सो सुनै मनसूर सूरज सूर बीरनु सज्जियं।
बज्जियं बहु दीह दुंदुभि व्यौम भूमहिं गज्जियं॥
है सवार न बार लग्गि रग्गि बग्गिय सायुधं।
दै धवान जवान धाइय धुंध छाइय वायुधं॥
बाजि कै गजराज पाइक संधि साइक चल्लियं।
कोस चारि धरा लई भट जुद्ध कुद्धहि रल्लियं॥

हु हरौल सुजान बढ्ढिय सब्ब सूरन संग लै ।
आस पास वजीर रुप्पिय जंग हेतु उमंग लै ॥
तत्थ ही छुन हत्थ अयुध सथ्थि सो बलिराम है ।
गथ्थ सौं सुखराम सिंह प्रताप कूरम नामु है ॥
जथ्थ जोर बलू बली बलवंड सूर कटारिया ।
हत्थ साँग सम्हारि लछुमनदास पाखर रारिया ॥
बिप्र मोहन रुप्पियौ हरिनागरौ भट जूह लै ।
मेघसिंह सिधावतो हरिबल्ल बैरि समूह लै ॥
है बली ब्रजसिंह किरपाराम नाहर को ममाँ ॥
दब्बि भूमि खड़े भए लगि हौन जंग झमीझमाँ ।

छप्पय

तावल तैं कढ्ढिय अमान चढ्ढिय. हयंद बर ।
बढ्ढिय रस रढ्ढिय सुबीर हरिदेव नामगर ॥
पढ्ढिय रन मढ्ढिय सुलोह उढ्ढिय अनीक पर ।
डढ्ढिय हग गढ्ढिय भुजान लढ्ढिय कमान कर ॥
धरि मुच्छ हथ्थ बड़ हथ्थ नर सथ्थ सहिय सनमुष धइय ।
अरिसाल सु बैरीसालसुत मुहकमपन मुहकम भइय ॥

छंद कंद

कढ्यौ सूर सैन तैं सूर ता बार ।
अभिमन्यु ज्यौं जुद्ध कौं कुद्ध लै सार ॥
मति गान के जुद्ध तैं बढ्ढि मातंग ।
गनै नाहिं काहू घनै कै हनै अंग ॥
रुक्यौ नाहिं रोक्यौ धुक्यौ साम है जुद्ध ।
चमू कंदरा तैं भृगाधीस ज्यौं क्रुद्ध ॥
कियौ तेज वाजी उमंगै भर्यौ अंग ।
महासूर के लच्छनै अच्छ लै रंग ॥
गहे सेल समसेर समसेर है बीर ।
लखी साहि सेना झखी ना लही धीर ॥
लख्यौ दीह दिल्ली दलौं ने बढ्यौ खेत ।
कह्यौ कौन है कौन है रेफ ते लेत ॥
सावधान ह्वै कै सतौं बीर दै हाँक ।
कढ़े साहि की बाहनी तैं भरे साँक ॥

रटै लेउ रे लेउ पावै नहीं जान ।
हटे फेर सकै करैगौ धनौ धान ॥
बिलोकैं बकैं आपुसों मैं भरे भीर ।
नहीं जाउ रे या बलौ कैं कहूँ तीर ॥
तबै तीरु गोलीनु की चोट संभारि ।
सबै ठौर ठाढ़े रहे रोपियौ रारि ॥
जबै सत्रु देखे बढ़े आपनी ओर ।
तबै रोस कै रंग मैं आप कौं बोर ॥
मुहक्कम्महू हू मुहक्कम्म ता बार ।
तहीं चित्त चिंत्यौ यही साह संसार ॥
हियैं स्वामि के काम की बानिकौं आन ।
मुखै देव हरदेव हरिदेव को गान ॥
घुमाए. सहथ्थी चल्यौ गोलपै धाइ ।
उदंडी भुसंडी छुरी बीच ही काइ ॥
लगैं मर्म गोली गिरयौ भूमि गन्नाइ ।
तिहीं बार सथ्थी गए भाज ज्यौं बाइ ॥
निहारयौ महीपै कही सत्रु ता बेर ।
मरयौ रे मरयौ रे लहौ सीस कौं घेर ॥
सुनै सद्द कौं धाइयौं सूर के सूर ।
उतै साहि-सैना सपट्टी मनौ हूर ॥
हुते दूरि ए वे सुनीरे गए आइ ।
परे पै करैं सींग समसेर के घाइ ॥
लटक्कैं धरा तैं कटक्कैं लयौ सीस ।
परयौ इस के हार मैं सो बिसे बीस ॥
तहाँ बीर बलिराम आयौ गहे रीस ।
महा छोह सौं ओठ दंतौ गए पीस ॥
चले सीस सो काटि तेई लए दीस ।
गही सेल साँगैं दई बीस कैं तीस ॥
कुटे हू फुटे हू बुटे साहि के लोग ।
लियें सीस पैठें चमू आपनी जोग ॥
लख्यो खेन खाली सुबलि रामहू चाहि ।
नहीं या चमूँ सौं चमू में धर्यो जाहि ।
बिचारयौ सही जुद्ध कौं चित्त के माँझ ।
हटी साहि की सैन भू पै भई साँझ ॥

मुहकम्म की ल्हास लै आइयौ तब्ब ।
धंस्यौ आपगी फौज में सो बिना गब्ब ॥

कवित्त

एक दस सौक मैं न सहस अयुत बीच ।
लच्छ दस कोट मैं न काहू नर दम है ॥
साहस सगूह सूरबीरन कौ साहीदारा ।
सनमुख धायौ कहा कलिहू में कम हैं ॥
सूदन समर साहि सैन तून तूल गनी ।
हनी देह गोंलिन न खाई खेत खम है ॥
तन मन पन रन ऐसे मुहकम होइ ।
जैसी बैरी साल सुत जुझ्यौ मुहकम है ॥

सोरठा

यह सुनि सिंह सुजान निरखि साँझ मन मौन गहि ।
सहित वजीर अमान दाखिल निजु डेरनु भए ॥

हरिगीत छंद

भूपाल पालक भूमिपति बदनेस नंद सुजान हैं ।
जाने दिली दल दक्खिनी कीने महा कलिकान हैं ॥
ताकौ चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइकैं ।
रन जित्ति एक सुवित्ति मुहकम अंक पंचम पाइकैं ॥

इति पंचम अंक

छंद पावकुलक

पुनि गाजद्दीं खान चिंतियौ चित्त मैं ।
माधौसिंह बुलाइ करौं निज हित्त मैं ॥
आया और मलार बेग बुलवाइयै ।
आपुन हो पुठवार इन्हैं उरझाइयै ॥
तब फरमान लिखाइ बहुत इलकाब दै ।
भाईपनो जताइ तेग सिरपाव दै ॥
अकबर मान समान आप दिल मानियौ ।
इसू वख्त सैं सख्त और नहिं जानियौ ॥
हस्त रोज के बीच दस्त करि आवना ।
दस्त आप के पस्त हरीफ करावना ॥

यौं फरमान लिखाइ डाक चलवाइकैं ।
माधौसिंहहिं पास दयौ पठवाइकैं ॥

दोहा

फेरि दक्खिनिनु कौं लियौ आपु गाजदीं खांन ।
सूरज औ मनसूर मिलि किया तख्त कलकान ॥
जद सैं खिलेगाह कौं संग लै गए आप ।
तद सै इन्हौं मुखलफी हम सैं रक्खी थाप ॥
अवधि आगरा साहि नै तुमकौं दियौ बताइ ।
नगद खर्च जो फौज का चामिल लैना आइ ॥
एक चाँद के अंदरौं तुमैं आवना रास ।
यह लिखि सुतर सवार कौं भेज्यौ दक्खिनिनु पास ॥

छंद सुमुखी

पुनि दल सज्जिय घोर घनौं । पटह गरज्जिय मेघ मनौं ॥
फहरत हैं सित्त स्याम धुजा । अरुन हरीत सुनील दुजा ॥
चढ़त चमू चतुरंग महा । उड़ि रज अंबर भान गहा ॥
सहित अराबहिं कूच कियौ । तबहिं फरीदहिबाद लियौ ॥

छंद खंधा

साहि सुभट धरि अग्ग अराबौ, आनि फरीदाबादहिं छाए ।
सूरज सफदरजंग तुरंगन, भेजि सवार अधिक अकुलाए ॥
या विधि बीति गए बहु बासर, हय गय सुतुर घने हनि लाए ।
वेऊ जबरजंग गहि ओटनु, चोटनु देत कोस भुव आए ॥
तौ लौं अंतरबेद जब्त करि, गंगा न्हाइ हुकुम पितु पायौ ।
रविजा दरस परसु वृन्दाबन, सूरज पास जवाहर आयौ ॥
सो सुनि कैं मनसूर मुदित ह्वै, फेरि समर कौ मत ठहरायौ ।
हिम्मति बढ़ति सुभट कौं रन मैं, ज्यौं हुकमी आयुध कर आयौ ॥

छंद मोदक

सूरजहू अपने मन सोचत । जंग बिनाचित सोचन मोचत ॥
माधव औ दखिनी जब आवहिं । तौ इन सौं नहिं जंग रचावहिं ॥
जौ लग वे नहिं आवन पावत । तौ लौं साहस एक उपावत ॥
एक झपट्ट करौं बिनु संकहि । लै मनसूर हजूर सुबंकहिं ॥
तोपनु ओट करैं बहु चोटनु । ते असि साँग हनौं अरि मोटनु ॥
यौं निहचौ करि कैं अपने मन । बोलि नवा बकरयौ रन कौ पन ॥

छंद बैतवै

सजे सब सैन कौं यारौ तहां मनसूर आया है।
कहौ क्या है बहादुर दिल सुजाने यौं सुनाया है॥
नहीं बदनेक कौं जानौं मुझे तौ दस्त साया है।
भला जो होइ सो करना खुदा नै तौ बताया है॥
तबै मनसूर सों सूजा दुहूँ कर जोरिकैं भाखी।
हुकुम जो आपकौं पाऊं सही करि जंग मैं राखी॥
रहौ पुठवार पै ठाढ़े सु मुदई को डराबे कौं।
उठायें आज मैं बागैं निहारूंगा अराबे कौं॥
भए षट मास संगर कौं घने भट फेरियौ याने।
बिलोकैं ताहि क्यौं रहियै हियौ उनमान ना मानै॥
सुनी मनसूर ए बातैं कही तौ देह क्या करना।
कहां जिस वोर सैं मुझको नहीं टरना सही लरना॥
यही ठहराइकैं दोऊ जवाहिर सौं जताया है।
रहौ पुठवार सैं मुहकम तुमैं हम यौं बुलाया है॥
रहौ चंदौल तुम गाढ़े करैं हम जंग नो आगैं।
तुमारे चारिहू बकसी इठावैं संग ही बागैं॥
निसा इस ठौर सैं खातर वजीरै यौं सुनाया है।
तुमारे लोग बागौं सैं हमैं इतकाद आया है॥

छंद आभीर

यह सुनि सूरज पूत। अति रन पन मजबूत॥
बोल्यौं बुद्धिनिधान। हाथ जोरि मख बानि॥
आपु करी बहु जंग। मैं जब न्हायौ गंग॥
अब रहिये पुठवार। मोहि बतैयै रार॥
कीजै अरज कबूल। जो चित चाहत फूल॥

कवित्त

पूत मजबूत बानी सुनिकैं सुजान मानी,
सोई बात जानी जासौं उर मैं छमा रहै।
जुद्ध-रीति जानौ मत भारत को मानौ,
जैसौ होइ पुठवार तातें ऊन अगमा रहै॥
बाम और दच्छिन समान बलवान जान,
कहत पुरान लोक रीति यौं रमा रहै।
लाल जू समर घर दोउन की एकै विधि,
घर मैं जमा रहै तौ खातर जमा रहै॥

दोहा

मरजी पाय सुजान की सिंह जवाहर बीर ।
हुकुम मानिकैं बाप कौ भयौ चँदौल गँभीर ॥
भर्त सिंह अरु लाल जी राजा गूजर तत्थ ।
सूरति सेना जुत करे सदा राम के सत्थ ॥

छंद तोमर

तबही सुजान अमान । उठि जुद्ध कौं बलवान ॥
किय बाम ओर बजीर । तिहि संग सैन गँभीर ॥
पठयौ सुदच्छिन ओर । करि सदा राम सजोर ॥
पुनि बोलि सिंहप्रतापु । यह कह्यौ सूरज आपु ॥
धसि सामुहैं बड़हथ्थ । तुव निकट सिंह भरथ्थ ॥
तिहिं पुब्ब बल्लू बीर । थपियौ सुजान सुधीर ॥
बलिराम सूरति राम । सुखराम तोफाराम ॥
पुनि जैत सेवा पूत । अरु पाखरा मजबूत ॥
जै कृष्ण मनसाराम । वह स्यामसिंह सुनाम ॥
किसनेस पुहपा बीर । सजि सैन चड्ढिय धीर ॥
किरपा सु लछमन दास । हरि सुक्ख मोहन पास ॥
हरि नागरौ द्विज जोर । हरिबल कियौ इक ओर ॥
फतेसिंह ऊधम नंद । ब्रजसिंह बुद्धि बिलंद ॥
बहु और सूर समूह । रन काज चढ्ढिय जूह ॥

छप्पय

अखैसिंह अमनैत बीर बर हरिनाराइन ।
कुसल पूत मजबूत तत्थ सूरति रन चाइन ॥
देवीसिंह कुँवार और बहु जट्ट ठट्ट गनि ।
चारि बर्न असिधर्म सबै सरदार सार भनि ॥
दिन भाग चतुर्थम से समैं उर उल्लास सुभटन बढ़िय ।
सूरज समान सूरज बली समय काज हय पर चढ़िय ॥

गगनंगन. छंद

ठंडन दुविन विहंडन मंडन किय बलवंड है ।
दंडन धरिय उदंडन सक्ति डंड पर चंड है ॥
खंडन चहत त्रितुंडन कटि बंधिय किरवान हैं ।
संकर मनहुँ भयंकर चढिढय सिंह सजान है ॥

कुंडलिया

चढ्ढिय जब सूरज बली बढ्ढिय भूरि गरद्द।
मढ्ढिय अवनि अकास उड़ि रढ्ढिय निज मख सद्द॥
रढ्ढिय निज मुख सद्द आजु सब मो मत किज्जिय।
अनहौनी नहिं होइ तोपखानो अस दिज्जिय॥
दिज्जिय अरिहिं न जान मास षट की रिस कढ्ढिय।
यौं कहिकैं तिहि बार जंग हित सूरज चढ्ढिय॥

कवित्त

भूतनु सहित भूतनाथ मजबूत भये,
पूतनु जगायौ सुनि चंडिका अवास मैं।
चरबी चरैयनु कैं षरबी रह्यो न कोई,
घरवी अघरवी घुनानै भूष प्यास मैं॥
बीर बाम बिहँसि बिहँसि कैं बिमान चढ़ीं,
हरिमन हरषि बजायौ बीन हास मैं।
जा समै-समर काज पास में सुनायौ सूर,
वा समैं अनंत मोद बाढ़्यौ भूअकास में॥

छंद पद्धरी

जब्बै सुजान किन्नो पयान। सब्बै सुभट्ट दै दै निसान॥
ज्यौं भीम भीम भारथ रिसान। तुरकान कौरवन करन धान॥
आवज अनेक बज्जैं भयान। अति उद्ध पताका फरहरान॥
हहनंत हुब्ब हंकत किक्यान। ठहनंत टाप लग्गत पषान॥
ठहनंत ढाल ढक्कनि ढलान। खहनंत कवच धावत धवान॥
छहनंत जंग हय घूघरान। भहनंत जिरह लग्गइ पमान॥
ठहनंद सिप्परनु लगि कृपान। भहनंत भूरि भेरी भयान॥
सहनंत सेल सर सर सरान। फहनंत प्रबल पाइक अमान॥
ढहनंत छोनि छूवत छवांन। घहनंत घंट गजगति गरान॥
दहनंत दाव जिमि दिष्टि आन। धहनंत धिंग धूमनु धवान॥
करि लावदार दीरघ दवान। गहि सेल साँग हुव सावधान॥
केतेक धीर संधी कमान। केतेन तेग राखी भुजान॥
गुन गाइक किय वीरनु बखान। सैंधू सुर पूरिय तिहीं थान॥
सुनि सूर बदन जिम उअौ भान। हुव मुच्छ केस मुख सिंहमान॥
मुख देव देव हरदेव आन। हिय स्वामि कामपन किय जवान॥
तहँ सदाराम सब सहित पान। बिय भर्तसिंह अरि दुःखदान॥

कूरम प्रताप बलिराम जान। सूरत कटारिया उर छुहान ॥
हरनाराइन रन चंडवान। लछिमन पाखरिया किय उठान॥
ए सब सुभट्ट झपटे हलान। समुहान दिष्टि करि तोपखान ॥
घमसान हेत बड्ढ़े गुमान। आयुध अनेक अवसान आन ॥
यह घोर कुलाहल तुरक कान। परियो अचान रिस झलझलान ॥
जे तोपखान . के पासबान। बहु मुगल सेख सैयद पठान ॥
जे रुपे तोपखाने सयान। तिन लोह जंत्र झारिय कसान॥
जंजाल भुसंडी रहकलान। हथनाल घोर घुरनाल तान ॥
लँबछर अनेक पल भष बचान। जहँ अप्रमान कुहके सुबान ॥
तहँ जबरजंग गज्जिय गरान। ते लगि कसान झरझर झरान ॥
कहुँ सरसरान कहुँ फरफरान। इमि सलक होत धरधरधरान ॥
वन अचल अचानक अरअरान। वह प्रबल धूम चढ़ि आसमान ॥
तिहँ कौन और उपमान आन। मनु विंध्य अचल पाइय पषान ॥
मुनि भीति चलिय उठि रतनसान। कैके सस्वास पावक प्रमान ॥
गल के समान 'गोला बगान। फुंकार सद्द कलकान कान ॥
इति जट्ट ठट्ट झपटे भिलान। हुव गोल गोल बीचहिं मिलान ॥
तिन कियौ सुभट बहु कचर घान। तउ सूर सूर नहिं बिलबिलान ॥

छंद नाराच

कितेक टुट्टि सीस चुट्टि ग्रीव फुट्टि टुट्टियं।
कितेक खुट्टि पीठ पेट खेत माहि लुट्टियं ॥
कहूंक रुंड मुंड डुंड झुंड पाइ उड्डियं।
समेत बाहु डंड ढाल उड्डि जेम गुड्डियं ॥
कहूँ कवाल अंतजाल लोह जाल बुड्डियं।
कहूँ कपाल बाल जाल ब्याल रूप छुड्डियं ॥
कितेक बच्छ फूटि अच्छ कच्छ तच्छ गच्छियं।
कितेक लच्छ टूक ह्वै उड़ेत जेम पच्छियं ॥
कितेक ख्याल ख्याल ही कराल काल भच्छियं।
कितेक फरफरंत रत्त नीर जेमि मच्छियं ॥
बरष्षि गोल गोलियं हरष्षि साहि के भटं।
धरष्षि सूर सैन कौं करयौ ति भेष ज्यौं नटं ॥
तहाँ उदाम काम कौं सदासुराम रुट्टियं।
महा उताल उट्ठियं गहैं कवाल मुट्ठियं ॥
छुटी दवान अंधधुंध धुंधमाक धुंकरं।
मनौ मलिंदया चलै फनिंद ब्रंद फुंकरं ॥

इतै उतै धमाधमी भई जु सार छार की।
बृषादि माति की समीर छार अंधकार की॥
तहाँ सदा सदासुराम कै दवान घोर लग्गियं।
फुटी सुबाख पिट्ठिहू तऊ न बीर बग्गियं॥
सुमार चोट खाइकै दिवान खेत खग्गियं।
अपार गोल चाल मैं चमूं बिहाल दग्गियं॥
छुते फटे बटे कटे हटे कितेक तारनं।
बिलोकि श्री सुजान नै थप्यौ सँघार कारनं॥
हथैं सँभारि सैं हथी पसारि दिष्टि कोह की।
जहाँ खरी परै झरी असार गोल लोह की॥
हयंद हक्कि अग्गियं भयंद मेष धारियं।
मनौ षड़ाननै चल्यौ कवच पै सम्हारियं॥
धमंकिं धिंग धाइयौ खमंकि बाजि उद्ध कौं।
मनौं दवागि पान कौं करथौं सुकान्ह कुद्ध कौं॥
उठाय बाग उप्परथौ सुबिप्फरयौ फराक मैं।
महा अराक अड्डियौ धमाँक धुंधराक मैं॥
तहाँ धरा धरी करी भरा भरी भरब्भरं।
झराझरी झराझरी खराखरी खरब्भरं॥
धरयौ असारु मारु मैं कुमार श्री ब्रजेस कौ।
घटा गुबार में भयौ प्रवेस ज्यौं दिनेस कौ॥

छप्पय

उहिं औसर सुखराम मान दीवान तनय बर।
हय झपट्टिहुअ अग्गसिंह सम जहँ सुजान नर॥
कह्यौ तत्थ यह बचन महाराजा कुँवार सुनि।
उग्ग दुग्ग रचि चाह कहा यों ही मरियै भुनि॥
उत काठ लोह कै अगनि झर इत मनुष्य-संहार हुव।
बिनि दिष्ट सत्रु आए करत नहिं साहस यह कुमति तुव॥
लखि बोल्यौ नृप कुँवर झलझलत झाल सुसाँगहि।
कै मुहि दै रन जान नाहिं अब हनतु तोहि रहि॥
पुनि भाखिय सुषराम काम लाइक मल किज्जहि।
मोहि मारि जब भग्ग पग्ग अग्गौं जर दिज्जहि॥
सब देस दुग्ग दीरघ पिता सुत सोदर तुम मुख चहत।
दौ दाव कीट ज्यौं परत क्यौं निजु स्वारथ हमहूँ कहत॥

छंद भुजंगी

तहाँ बोलियौ रोसकैं फेरि सूजा। अरे सामुहैं त परै क्यौं न तू जा ॥
जुरैं जुद्ध के दुग्ग औ देस कैसौ। कहा बाप बेटा सु भैया अनैसौ ॥
जुहै दार सों कोस सों देह नातौ। बँध्यौ नेह मनसूर सौं सो कहाँ तौ ॥
बिना ताहि देखें नहीं बाग मोरौं। कितौ तोपखानै तजौं देह तोरौं ॥
तिहीं काल बेहाल उत्ताल आयौ। हट्यौ खेत इसमाइलौ संक छायौ ॥
लखै जाई सूजा खरौई रिसायौ। कह्यौ धिक्कु रे धिक्कु तू भाजि आयौ॥
गहैं संग मनसूर तोसे कपूतैं। लहै जित्ति कैसे सबै साथ धूतैं ॥
भर्यौ भीति सौ वाँ कछूवैं सुन्यौ ना। गयो भाजि कैं नैन पाछैं कर्यौ ना ॥
तही खेत मैं पाखरौ मल्ल आयौ। लख्यो सिंह सूजा महा छोह छायौ ॥
तबै पाषरा बुद्धि जी मैं विचारी। अड़यौ जंग सूजा तहाँ यो उचारी ॥
चलौ साथ मेरे बजीरै दिखाऊँ। कितौ तोपखानै फते लै कराऊँ ॥
इती बानि सूजा सुनै बाजि हंक्यौ। चल्यौ पाखरा संग ही है असंक्यौ ॥
दई घोर अंध्यार मैं घोर धाई। कभूँ सामुहैं दाहिने बाम धाई ॥
घरी अद्ध मै लै वजीरै दिखायौ। लिखै सूर मनसूर हू जीव पायौ ॥
कही आफरीं आफरीं सिंह सूजा। नहीं हिंदू हिंदू सरी तोहि दूजा ॥
तहाँ नंद बदनेस कै फेरि भाषी। लखौ जंग मेरी रहौ पुट्ठि साषी ॥

छंद पद्धरी

सुनकैं सुजान बचननु वजीर। कहियौ हजार रहमति सुबीर ॥
तुझकौं न दोस मेरा कलाम। नहिं जंग काम हुई निसा साम ॥
इस बख़्त सख़्त तैं की जु मार। सब ही सिपाह हुई सुमार ॥
तितका सुमार करना जरूर। अब अवंस जंग करना गरूर ॥
नहिं आफताब की रही जोत। अपना न गैर मालूम होत ॥
खुसबख़्त मुझे करना जु तोहि। तौ डेरनु दाखिल करौ मोहि ॥
अब बड़ी फजर जो होनहार। रब की रजा सु करना विचार ॥
सूरज समझायौ यौं वजीर। पुनि डेरनु लायो धीर धीर ॥

दोहा

यौ तोपनु की जंग मैं सूरज कियौ अवाद।
ज्यौं होरी झर बीच तैं हरि राख्यो प्रहलाद ॥

छंद त्रोटक

पुनि भोर भयैं बहु तोप दगीं। इत उत्त धमाधम हौंन लगीं ॥
छिपि भान भयौ निस फेल भई। दुहुँ ओर झरी झर लोहमई ॥

पुनि ऊगत सूर मरथ्थ गयौ । उनि साहि कही रहि जाय लयौ ॥
गज ग्यारह ऊँट तुरंग घनै । हनि लावत भौ मजबूत मनै ॥
पुनि कीनिय दौर दिलीस दलं । गढ़ बल्लम पूरब ओर भलं ॥
दस खेत प्रमान रहे जबही । बलिरामहिं सूर कह्यौ तबही ॥
चढ़ि जाइ इन्हैं दबटाई अरे । बढ़ि आवतु हैं चहुँ ओर खरे ॥
यह आयसु सिंह सुजान दियं । उठियौ बलिराम हरष्षि हियं ॥
असवार भयौ गढ़तैं कढ़ियं । जिमी सिंह छवावन तैं बढ़िय ॥
तब छतर साल संतोष हुवौ । अरु राम बली अस्वार हुवौ ॥
पुनि जोधहु सिंह सवार हुवं । गढ़ बैरि रहा तिहिं अग्ग हुवं ॥
अरु पाषरहू लछिमन्न महा । हय हंक धमंकिय जोर गहा ॥
सत अर्ध सवारनु लै दबट्यौ । झपट्यौ अति साहि दलै लवठ्यौ ॥
बस पाँच बँदूक तहाँ धमकीं । पुनि साँग कि सेल असै झमकीं ॥
उतहू सरदार महा मनकौ । किय आनि असीलनु कौ झनकौ ॥
इततैं बलिराम उठाइ हयं । कर सेल घुमाइ हरीफ हयं ॥
उनहूँ अति झारिय रोस सनं । बिच ही गहि काटिय सेल रनं ॥
लखि जोधहुसिंह उठाइ परं । हिय सेल हबक्किय मीर मरं ॥
हय तैं सुगिर्‌यौ वह भुम्मि भरं । बलिराम दई एक तेग गरं ॥
हनि तासु सिरै बलिराम बली । तिहिं सैनहिं धाइय देतु झली ॥
सब ही भट चोटनु देत भए । अपने अपने अरि बाँट लए ॥
मरते परते भट साहि भजे । रन पाइ विजय भट सूर गजे ॥
बलिराम फिर्‌यौ ढिग सूरज कौं । सुबजाय विजय रन तूरज कौं ॥

दोहा

कछुक द्यौस बीते तहाँ आयौ माधव भूप ।
दस हजार असवार की साजे सैन अनूप ॥
प्रथम गाजदीखाँ मिल्यौ पुनि मनसूर सुजान ।
मधुकर ने समझाइकैं मनौं संधि कौ ठान ॥
तुम हम सेवक साहि के हुकुम बजावन हार ।
आपुस के अहँकार सों होत दिली संहार ॥
या कहिकैं आमेरपति सबकौं दियौ मिलाइ ।
साहि अहम्मद सौ दुहुँ दीने बिदा कराइ ॥
चल्यौ अवध के मुलक कौ दर कूचंन मनसूर ।
सूरज हूँ कौं सीख दै पठयौ ब्रजहि जरूर ॥
सिंह जवाहर सों कह्यौ होडिल करहु मुकाम ।
संग तुमारे हम लखैं श्री ब्रजेस यह काम ॥

कवित्त

मदन के जोरही सौं मदन कौं साध्यौ जिनि ।
थलन सभाँर्‍यौ केलि जल के प्रवाह तैं ॥
घन के समान बड़े बन कौं बिहारी सब ।
जन की बिसारी सुधि तन के निबाह तैं ॥
सूदन उछाह तै कहतु कवि राह तैं ।
सुचांहतैंई चाह तैं प्रवट बैरी थाह तैं ॥
दिल्ली नरनाह-गज ग्राह मनसूर गह्यौ ।
माधव वै आइ ज्यौं छुड़ायौ गज-ग्राह तैं ॥

छंद पवंगा

सिंह जवाहर संग चल्यौ कमठेसहू ।
आए कामाँ तहाँ मिले बदनेसहू ॥
लै आए पुर दीघ कियौ सनमान हैं ।
मधुकर नेह जताई गयौ निज थान हैं ॥

हंरगीत छंद

भूपाल पालक भूमपति बदनेस नंद सुजान हैं ।
जानै दिलीदल दक्खिनी कीने महा कलिकान हैं ॥
ताकौ चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइकै ।
किय संधि कूरम दुहुन की रचि अंक सप्तम आइकैं ॥

गोकुलनाथ, गोंपीनाथ, मणिदेव

गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव

गोकुलनाथ का कविता-काल संवत् १८४० से १८७० तक माना जाता है। इनके जन्म संवत् आदि का कुछ ठीक पता नहीं है। यह हिंदी के कुछ उन श्रेष्ठ कवियों में से हैं जिनका यथोचित परिचय हिंदी जगत् को आज तक नहीं प्राप्त हो सका है। इनके पिता रघुनाथ बंदीजन भी एक प्रसिद्ध कवि थे और काशिराज महाराज बरिबंड सिंह के दरबारी कवि थे। महाराज से इन्हें चौरा नाम का ग्राम दक्षिण में मिला था। इनके रचे हुए भी चार ग्रंथों के नाम शिव सिंह सरोज में दिए गए हैं। वह ग्रंथ ये हैं—काव्यकलाधर, रसिकमोहन, जगतमोहन और इश्क महोत्सव।

गोकुलनाथ जी यद्यपि महाभारत ही के लिए प्रसिद्ध हैं, इनके लिखे हुए निम्नलिखित ग्रंथ और भी हैं—

चेत-चंद्रिका
गोविंद-सुखद विहार
राधाकृष्ण-विलास (सं० १८५८)
राधा नखसिख
नाम रत्नमाला (कोश-सं० १८७०)
सीताराम गुणार्णव
अमरकोष भाषा (सं० १८७०)
कविमुख-मंडन

इन में 'चेत चंद्रिका' एक रीति ग्रंथ है जिसमें काशिराज की वंशावली भी दी गई है। 'राधाकृष्ण-विलास' एक रस संबंधी ग्रंथ है और पद्माकर के 'जगत-विनोद' के टक्कर का है। 'सीताराम गुणार्णव' अध्यात्म रामायण का अनुवाद है और रामायण की प्रायः पूरी कथा इसमें आ गई है। 'कविमुखमंडन' भी एक अलंकार और रीति विषयक ग्रंथ हैं। इनके रचे हुए इतने एक ग्रंथों का परिमाण और विषय मात्र देखने से ही यह स्पष्ट है कि यह एक असाधारण प्रतिभा और सच्ची लगन से काम करने वाले कवि थे जो अपनी यशस्वी लेखनी को विश्राम देना नहीं जानते थे। प्रबंधकाव्य और अलंकारसाहित्य दोनों ही में आप की गति समान थी इनकी मुख्य रचना महाभारत और हरिवंश का छंदोबद्ध अनुवाद है। यह एक तथ्य है कि कथाप्रबंध का इतना विशाल ग्रंथ हिंदी साहित्य में दूसरा नहीं बन सका। यह लगभग दो सहस्र पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इसकी रचना में ये अपने आश्रयदाता तत्कालीन काशीनरेश महाराज उदितनारायण सिंह की

प्रेरणा से प्रवत्त हुए थे। पहले पहल यह महान् ग्रंथ सं० १८८६ में कलकत्ते के शास्त्र प्रकाश मद्रणालय में छपा। फिर सं० १९३१ (सन् १८७४ ई०) में अमेठी के राजा माधव सिंह जी की अनुमति और सहायता से लखनऊ के स्व० मुंशी नवल-किशोर जी के प्रेस से पंडित प्यारेलाल तथा पंडित रामरत्न नामक दो विद्वानों द्वारा यथासम्भव शुद्ध करवा कर दुबारा प्रकाशित हुआ।

परंतु यह महाभारत का अविकल अनुवाद नहीं है। सारांश को लेते हुए स्वतंत्र रीति से अनुवाद किया गया है और मार्के की बात यह है कि इतना बड़ा ग्रंथ होते हुए भी शिथिलता कदाचित् ही कहीं देखने में आती है। समयानुकूल विविध छंदों का विधान भी बहुत सुखद बन पड़ा है। केशव की भाँति छंदों की प्रदर्शिनी नहीं सजाई गई है बल्कि उनके चुनाव और उपयोग में पर्याप्त विचार से काम लिया गया है। घनाक्षरी, रूपमाला और सवैया इनके सर्वप्रिय छंद जान पड़ते हैं पर कथा का अधिकांश दोहे चौपाइयों में है और भाषा यद्यपि परिमार्जित अवधी है, पर कहीं कहीं खड़ी बोली का पुट लिए हुए है। अलंकारों की छटा अधिक न होते हुए भी स्थान स्थान पर अनुप्रासों आदि का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। समग्र रचना उच्च कोटि के साहित्य में आती है और युद्ध वर्णन तथा वीर रस के उद्रेक में तो इन कवियों को मानों कमाल हासिल था। महाभारत युद्ध-प्रधान ग्रंथ है और इसके कवि को वीर और रौद्र रस में सिद्धहस्त होना अनिवार्य है, और सौभाग्य से ये तीनों ही कवि इस रस की रचना में सफल हुए हैं। इन में से दूसरे—गोपीनाथ जी तो गोकुलनाथ के पुत्र ही थे और मणिदेव बंदीजन गोकुलनाथ के प्रधान शिष्य थे। ये भरतपुर राज्य के जहानपुर नामक गाँव के रहने वाले थे और अपनी विमाता के अत्याचार से क्षुब्ध हो काशी चले आए थे। ये देश में और भी बहुत जगह घूमे फिरे और सर्वत्र इनका यथोचित सम्मान हुआ। कहा जाता है जीवन के अंतिम दिनों में ये कभी कभी विक्षिप्त भी हो जाया करते थे। इनका स्वर्गवास सं० १९२० में हुआ था।

इन तीनों कवियों ने मिलकर इस अनुवाद को पूरा किया। इस संग्रह में हमें केवल इनकी वीररस की कविता के कुछ नमूने दिखाने हैं, इसलिए कुछ चुने हुए पद्य प्रकृत युद्ध वर्णन से दिए जाते हैं। संग्रह का आकार अधिक बढ़ जाने के भय से बहुत थोड़ा सा अंश ही उद्धृत किया जा सका इसका हमें खेद है पर आशा है कवियों की प्रतिभा और शैली को स्पष्ट करने के लिए इतना ही पर्याप्त होगा।

संगृहीत पद्य नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित संस्करण से ही लिए गए हैं। विराट और कर्ण पर्व की कुछ रचना हमें बहुत उच्च कोटि की जान पड़ी और उसी को हमने लिया है।

———

महाभारत

(विराट पर्व से-)

वैशम्पायन उवाच

रोला छंद:—देखि एसे सज्ज सेना कौरवन्ह की बीर ।
बेगि आयो जिष्णु रथ को भरत घोष गँभीर ॥
लखी कर्णादिकन ताकी ध्वजा अति रथघोष ।
सुनी ध्वनि गाँडीव धनु की भरी दारुन रोष ॥
कहन लागे द्रोण ऐसे देखि सब की ओर ।
भयो प्राप्त सो महारथ लखु जिष्णु को अति घोर ॥

द्रोण उवाच

ध्वजा लक्षित होति है यह बानरी अति मान ।
गर्जत कपीवर होत रथ को चक्र जन्य महान ॥
चढ़ो रथ पर चलो आवत धनुष खैंचत घोर ।
गाँडीव धनु ज्याघात धुनि सौं भरत चारौं ओर ॥
बाण ए द्वै चरण ऊपर परे मेरे आय ।
छुवत मेरे कर्ण को शर गए द्वै अनुभाय ॥
बहुत दिन में लखो हम यह बंधुप्रिय मतिमान ।
ज्वलित जाकी लसित लक्ष्मी पांडु पुत्र सुजान ॥

अर्जुन उवाच

मत्स्य पति सुत हाँकि कै रथ जाहु सेना पास ।
जहाँ ते लखि पैर कुरुकुल अधम दुरमति रास ॥
जाय नीरे छोड़ि सब को लखो अर्जुन बीर ।
नहीं देखो तहँ सुयोधन भरो क्रोध गँभीर ॥
लखो दक्षिण ओर गोधन लए सेना साथ ।
कर्ण भीषम द्रोण को तजि जात है कुरुनाथ ॥
रथानीक विहाय कै यह चलहु उत्तर तत्र ।
लए गोधन जात भाजो है सुयोधन यत्र ॥
तहाँ करिहैं युद्ध लाभ न इहाँ के संग्राम ।
जीति ताको फिरैं अपने लेय गोधन माम ॥

वैशम्पायन उवाच

एहि भाँति सुनि कै किए उत्तर अर्व आतुर रूप ।
हाँकि कै रथ चलो जेहाँ रहो कौरव भूप ॥
छोड़ि भीषमादिकन को तहँ रहे जे रणधीर ।
जानि आशय कृपाचारज लगे कहन गँभीर ॥

बिना राजा नहीं हमसों लरैगो बलवान ।
छोड़ि पीछे जात ताके भरो क्रोध महान ॥
जिष्णु सों को एक लरि है पाय रण में क्रुद्ध ।
कृष्ण बिन मघवान यासों सकै को करि युद्ध ॥

कितौ बारण करै द्रोण सपुत्र ताको जाय ।
नाव सों नृप लखो बूडन जिष्णु बारिध पाय ॥
हाँक दै कहि नाम अपनों जाय अर्जुन बीर ।
शरन्ह सों भरि दियो सलभ समान सैन गँभीर ॥

भूमि नभ नहिं लखत सैनिक सघन बर्षत बान ।
शंख धुनि तब कियो अर्जुन अशनिपात समान ॥
तानि कै धनु शरन्ह सों तब ध्वजा काटी सर्व ।
शंख धनु रथ घोष सों भो भूमिकंप अखर्व ॥

बोलि हंभा शब्द ग्रीवा पुच्छ उद्ध उठाय ।
शंख धुनि सुनि नगर की दिशि भजीं सिगरी गाय ॥
गाय सकल छुड़ाय दीन्हीं मथित करिकै सैन ।
चलो सोहैं नृप सुयोधन के महाबल ऐन ॥

सैन व्यूह बिलोकि अर्जुन गाढ़ अति बल ऐन ।
कहो उत्तर कुँवर सों एहि भाँति सो बर बैन ॥
बेग सों ए हाँकि उत्तर श्वेत मेरे अर्ब ।
चलहु सेना मध्य जहँ कुरुबीर बृंद अखर्व ॥

कर्ण मों सो लरो चाहत नाग सों ज्यों नाग ।
देहु मोहिं भिराय तासों मत्स्यपुत्र सुभाग ॥
बाल जब रथ हाँकि उत्तर भेदि व्यूह महान ।
लगो सेना मध्य विहरण जिष्णु अति बलवान ॥

शत्रु सह संग्राम जिय जय चित्रसेन सुबीर ।
लरन लागे चाहि जीवन कर्ण को रणधीर ॥
तिन्हैं तब धनुषाग्नि सों तकि बाँण ज्वाल समान ।
गहन सों रथ वृन्द तिनको कियो भस्म महान ॥

तुमुल युद्ध प्रवृत्त भो तब ह्वै विकर्ण सुक्रुद्ध ।
लरन लागो जिष्णु सों शर बर्षिकै अति उद्ध ।
क्रोध करि ध्वज काटि डारो तासु अर्जुन बीर ॥
ध्वजा कटत विकर्ण भाजो भरो भीति गँभीर ।

बीर शत्रुंजय भिरो वीभत्स सों अतिमान ॥
जगत जेता जिष्णु ऊपर लगो वर्षन बान ।
पंच शरसों हनो ताको धनंजय बलवान ॥
गिरो शत्रुंजय स्वर्ग तें वृक्ष सो गत प्रान ।

भूप भट योधार अगनित हने अर्जुन वीर ॥
कंप सेना लगी ज्यौं बश वायु बन गंभीर ।
हने अर्जुन सुभट तिनते भरी भू अभिराम ॥
जिष्णु के भय भरे भाजे वीर जे बलधाम ।

धरे बनँ उदार अर्जुन मत्त वारण रूप ॥
करण सेना नाश लागो क्रोध सों भरि भूप ।
फिरत सेना माँह अर्जुन अग्नि सों चहुँ ओर ॥
दहत वन सो वर्षि कै सम ज्वाल शर बर घोर ।

शोणाख रथ के प्रथम चारों शरन सों संहारि ॥
काटि शिर संग्राम जित को दियो भूपर डारि ।
हतो भ्रातहिँ देखि दौरो कर्ण क्रुद्ध महान ॥
आय अर्जुन को हने तेहिँ निसित बारह बान ।

हने चारों हयन को शर सहित उत्तर सूत ॥
देखि आवत कर्ण को अति बेग धारे दूत ।
चलो आतुर हँांकि कै रथ वीर अर्जुन उद्ध ॥
दोउ अतिरथ धनुर्द्धर अरिवृन्द दमन सुक्रुद्ध ।

लगे कौरव लखन तिन्ह को युद्ध आय अमान ॥
मूदि लीन्हीं कर्ण को रथ बर्षि अर्जुन बान ।
बाणविद्ध सनाग रथ भट करन लागे सोर ॥
छन्न भीष्मादिकन्ह को किय वर्षि कै शर घोर ।

कर्ण काटे शरन सों सब जिष्णु प्रेरित बान ॥
रह्यो ठाढ़ो तहाँ सहित फुलिंग अग्नि समान ।
भयो तहँ तब शब्द भोरी शंख ज्यातल ताल ॥
कर्ण को कौरव प्रशंसा लगे करन विशाल ।

लाँगूल अंकित ध्वजा जाकी महा भयकर घोर ॥
गांडीव ज्याधुनि शब्द सों अति भरत चारों ओर।
देखि गरजत कर्ण ऊपर बर्षि कै बरबान ॥
साश्वरथ सह सूत अर्दित कियो जिष्णु महान।

पितामह कृप द्रोण पर वह जिष्णु बर्षैं बान ॥
कर्ण सह तिन जिष्णु पर किय बाण बृष्टि महान।
तथा लीन्हों छाय शर सों कर्ण को कुरुबीर ॥
चन्द्रार्क से घनमध्य ते शरवृष्टि माँह गँभीर।

शरन सो तब कर्ण बेधे जिष्णु के रथ अर्व ॥
तीनि तीनि सु शरन्ह बेधे सूत केतु अखर्व।
देखि कै शर बिंद्ध यह रथ सूत को बर बीर ॥
सुप्त सिंह समान जागो भरो क्रोध गँभीर।

शरास्त्र वर्षा कर्ण ऊपर करि अमानुष कर्म ॥
निसित भल्लन्ह डारि बेधो सूत सुत को मर्म।
बाहु शीस ललाट ग्रीवा हृदय तासु महान ॥
मुक्त करि गाँडीव सों शर अशनि से अतिमान।

जिष्णु के शर बिद्ध ह्वै कै भयो ब्याकुल बर्ण ॥
छोड़ि कै रणभूमि भागों सूत को सुत कर्ण ॥

बैशम्पायन उवाच

कर्ण भाजे तब सुयोधन के पुरौगम जौन।
सैन अपनी आपनी ले तहाँ आए तौन ॥
बहुत भाँतिन्ह लगे वर्षण कोप करि ते बान।
सिंधुबेला सदृश थामें तिन्हैं जिष्णु महान ॥
दिव्य अस्त्रन्ह सों लिए तब तिन्हैं अर्जुन छाय।
किरन्ह सो जिमि दिशन्ह को सब उदित दिन कर आय ॥
शरन्ह सों दश दिशा अर्जुन मूँदि लीन्ही सर्ब।
देखि परत न कहूँ कोऊ सुभट गज रथ अर्ब ॥
रहे नहीं बिन बिंध तिनके अंग अंगुल मान।
जिष्णु प्रेरित धनुष ते छुटि निसित लागे बान ॥
हस्तलाघव जिष्णु को लखि कै प्रशंसत बीर।
कालाग्नि के सम जरत विभत्सु भस्म भठन्ह गँभीर ॥
सकत सहि नहिँ शत्रु ताको ज्वलित अग्नि समान।
सघन अर्जुन शरन सों सो लसी सैन महान ॥

भानु रस्मि समेत गिरि पर यथा जलद अखर्ब ।
सैन किंसुक बिपिनि सी भइ कौरवन्ह की सर्ब ॥
परे रथन्ह समेत अगणित मरे मारे अर्ब ।
परे छिति पर मरे गज मनु गिरे अर्ब अखर्ब ॥

प्रलय में ज्यों जगत दाहत महापावक भूप ।
अरिन्ह को त्यों नाश कीन्हो जिष्णु काल स्वरूप ॥
भजी सेन चहूँदिशि को कौरवन्ह की सर्ब ।
महाभय सोँ भरी देखत नाश काल अखर्ब ॥

तेजसोँ अत्यस्त्र गण के धनुष ध्वनि सों चंड ।
महा बानर शब्द सोँ भरि भूरिणो ब्रम्हंड ॥
देवारिहँता जिष्णु भय सोँ भरी कौरव सैन ।
देत शक्ति जो रही लखतहि हरी सो बल ऐन ॥

शोणितासन शरन्ह सोँ भरि लयो गगन महान ।
तिग्मते जनु भानुकर जिमि दिशन कोँ अभिमान॥
अहित तेहि छण जिष्णु को रथ सके रोकि न भूप ।
वायु बेगी अर्ब जामें लगे अतिबल रूप ॥

शत्रुतन में जिष्णु के शर लगत ज्यों कटि जात ।
तथा अरिदल भेदि कै रथ जात कटिसम बात ॥
करी शोभित शत्रु सेना बेगसोँ बरबीर ।
सहस फणसोँ सर्प जैसे मथत सिंधु गँभीर ॥

तजत शर अत्यन्त चहुँ दिशि हाँकि रथ अतिमान ।
धनुषधुनि रथ घोष अद्भुत सुनत अरि हर प्रान ॥
भ्रमत दच्छिण बाम सब दिशि जिष्णु बरषत बान ।
धनु निरंतर सदृश कुंडल देखि परत महान ॥

परत है न कुरूप में जिमि चतुर के चष लाय ।
तथा लगत अलच्छमें नहिं जिष्णु के शर धाय ॥
चलत ज्यों गज वृंद बन में होत पथ नरनाह ।
मार्ग तैसेँ लहत रथ को जिष्णु परदल माह ॥

हनत रण में कहत ऐसेँ शत्रु सुभट उदार ।
काल अर्जुन रूप है यह नाश को कर्तार ॥
सैन भागी कुरुन की करि सोर ब्यकुल महान ।
शरन्ह सोँ बिनु शीश कीन्हो जिष्णु खेत समान ॥

करीशोणित धार सों सब भूमि लोहित रंग।
भानु के कर भए लोहित पाय शोणित संग ॥
भयो संध्या सदृश नभ सह सूर शोणित रूप।
भयो जिष्णु निवर्तनहिं गो अस्त को रवि भूप ॥

रहे ठाढ़े समर में जे महारथ रणधीर।
दिव्यास्त्र तिन पर लगो बर्षन महा अर्जुन बीर ॥
हने सत्तर द्रोण को शरदुदःस है दशवान।
आठ शरवर द्रोण सुत कों हने बीर महान ॥

शर दुशासन कों हने तीनि कृपहिं समान।
भीष्म को षट शिलीमुख सो भूप को शतबान ॥
कर्ण बेधित शरन्ह सों किय कर्ण के बर बीर।
महाधनुधर कर्ण को लखि बिद्ध बिरथ अधीर ॥

भजी सेना कुरुन्ह की चहुँ ओर को गहि ऐन।
जिष्णु को लखि युद्ध उर्दित कहो उत्तर बैन ॥
चलैं कौन अनीक पैं हम हाँकि रथ अति गौन।
कहहु सो हम कीजिए अब जिष्णु अतिबल भौन ॥

अर्जुन उवाच

व्याघ्र चर्म सों रचित रथ है लगे लोहित अर्ब।
सह कमंडल चिन्ह जाकी ध्वजा नील अखर्ब ॥
द्रोण सों अचार्य हमको मान्य है अतिमान।
धनुर्वेद बिधान वेत्ता जासु समको आन ॥

शीघ्र ताके निकट ह्वै कै हे धनुर्धर बीर।
हाँकि रथ कीजै प्रदक्षिण ताहि उत्तर धीर ॥
द्रोण मोपै डारिहै जौ प्रथम आयुध उद्ध।
सज्ज ह्वै कै चलहु हमसों होयगो फिर युद्ध ॥

निकट ताके धनुष चिन्हित ध्वजा जाकी माम।
द्रोण को सुत महारथ है सोई अश्वत्थाम ॥
सर्बथा है मान्य हमको महा धनुधर वीर।
खड़ो यह रथ व्यूह में जो धरे बर्म गँभीर ॥

तीसरी सेनाग्र आगे सो सुयोधन भूप।
नाग चिन्हित ध्वजा जाकी कनकमय अतिरूप ॥
तास सन्मुख चलहु मेरो हाँकि कै रथ बीर।
द्रोण को यह शिष्य आतुर शस्त्रशिक्षित धीर ॥

याहि मोहि देखाइवे शीघ्रास्त्र बिपुल अमान ।
नाग कत्ता चिन्ह ध्वज के करण बिदित सुजान ॥
नील जाकी ध्वजा धारे छत्रपांडुर जैान ।
भरे सुवरण बर्म रथ पर भानु से बल भैान ॥
हैं सुयोधन सहअनुग ए पितामह अति बीर ।
पश्चात इन पै चलौगे ए बिघनकरण गँभीर ॥
चलहु तातें वेगि इन पै हाँकि कै रथ आर्य्य ।
खरे आगे द्रोण के रण चहत कृप आचार्य्य ॥

वैशम्पायन उवाच

कौरवन की लखत सेना चली ऐसे भूप ।
ग्रीष्मांत में जयों उग्र मारुत लगे जलद अनूप ॥
तुरग नाना भाँति गति सो चढ़े सादी बीर ।
द्विरद प्रेरित करे योधा धरे कवच गँभीर ॥
इंद्र चढ़ि गजराज पै सँग लए सुरगण सर्ब ।
यत्त किन्नर प्रजापति बसु रुद्रसह गंधर्ब ॥
भयो शोभित गगनगण ग्रह यथा मंडलवान ।
लखो चाहत अस्त्र को बल मनुज में अतिमान ॥
भयो चाहत युद्ध भैरव जिष्णु कृप सों जैान ।
चढ़ि बिमानन्ह देव आए तहाँ देखत तौन ॥
पितर राज्ञस महारिषि नृत स्वर्ग बासी जौन ।
नहुष और ययाति आदिक तहाँ आए तौन ॥
अग्नि ईश सधर्म पासी सोम बिधि सधनेश ।
लखन आए युद्ध कौरव जिष्णु कौन भदेश ॥
दिव्य माल सुगंध सोँ भरि भई सेना सर्ब ।
यथा पाय बसँत सुरभित होत बिपिन अखर्ब ॥
देवभूप नत्तत्र मणि सों पाय कै सहवास ।
रही नभगत धूरि धुंधुरि भई तौन प्रकाश ॥
धरे माला पंकजन की चढ़े विमल विमान ।
सहित सुरगण भए शोभित गगन में मघवान ॥
बँधो सेना व्युह दृढ़ लखि कहो अर्जुन बीर ।
सहित आदर मत्स्यपति के पुत्र सों रणधीर ॥
लसति कांचनमयी देवी मध्य ध्वज के जास ।
चलहु दत्तिण देय ताको कृपाचारज पास ॥

वैशम्पायन उवाच

जिष्णु के सुनि बचन उत्तर रजत से रथ अर्ब ।
चलो हाँके महगति सों यथा पवन अखर्ब ॥
जाय कौरव सैन नीरे हांकि रथ अतिमान ।
दे प्रदिच्छण तहाँ द्रोणाचार्य कों बलवान ॥

कृपाचारयकों प्रदच्छिण देय रथ गंभीर ।
कियो आगे तासु ठाढो सहित अर्जुन बीर ॥
बीर अर्जुन देवदत्त उठाय शंख महान ।
ध्वनित कीन्हों नाम अपनो पूरि कै बलवान ॥

सुनत शब्द महान ताको बज्रपात समान ।
लगे कौरव करन बिस्मय भरे भूरि बखान ॥
जिष्णु को सुनि शंखध्वनि महा घोर गँभीर ।
शंख अपनो धमित कीन्हों महा गौतम बीर ॥

शंख धुनि सोँ कृपाजारज पूरि चारो ओर ।
धनुष लेकै कियो ज्याको शब्द अतिशय घोर ॥
युद्ध कांच्छी दुहुन के रथ लसे सूर्य समान ।
शरद ऋतु के धरा धावत बात बश जलदान ॥

कृपाचारज मर्मबेधी तानि धनु दशबान ।
बिद्ध कीन्हों जिष्णु को करि छिप्रता अतिमान ॥
पार्थ शर समुदायसों कृप को दियो रथ पाटि ।
कृपाचारज शरन्ह सोँ ते सकल डारे काटि ॥

कोप करिकै शरन सोँ कृपको महारथ जौन ।
छाय लीन्हों शरनसोँ बीभत्स अति बल मौन ॥
शरन्ह सों कृप होय अर्दित क्रोध करि अतिमान ।
गर्जि कै दश सहस डारे जिष्णु ऊपर बान ॥

चारि शरसों हने कृप के जिष्णु चारों अर्ब ।
गिरत तुरगन्ह गिरे रथ तें कृपाचार्य्य अखर्ब ॥
क्रोध करि उठि हने कृप दशबान करि संधान ।
निशित शर सोँ काटि कृप को दियो धनुष महान ॥

शरन्ह सोँ फिरि कवच ताको काटि अर्जुन बीर ।
कियो तिलतिल मान शरन्हन छुयो तासु शरीर ॥
मुक्त कंचुक सर्प सोँ तब लसो कृप आचार्य्य ।
और हय धनु सज्ज कीन्हें झटित गौतम आर्य्य ॥

यहि भाँति काटे बहुत धनु जब जिष्णु धनुवीर ।
लियो कृप तब शक्ति कर में भरे क्रोध गँभीर ॥
शक्ति फेंकी पार्थ पै सो अशनि सी मतिमान ।
कियो दशधा जिष्णु सो हनि शरन सों बलवान ॥
फेरि कीन्हों सज्ज धनु कृप जिष्णु काटो तौन ।
पार्थ डारे निसित शर दश तीनि तेजसभौन ॥
युवा काटो एक तें हनि चारि चारों अर्व ।
एक शर तें सारथी को हरो शीश अखर्ब ॥
तीनि ते रथ बेणु काटे अत्त है ते बीर ।
एक शर ते दई कृप की ध्वजा कटि गँभीर ॥
कृपाचारज के हृदय में एक मारो बान ।
धनुष सारथि हनित लखि करि कोप कृप अतिमान ॥
कूदि रथ ते गदा फेंकी जिष्णु पै अतिभार ।
मारि अर्जुन शरन्ह सोँ दइ गदा फेरि उदार ॥
लगे योधा लखन कृप को बाण जाल मझार ।
सब्य मंडल कियो तब रथ हाँकि मत्स्यकुमार ॥
बिरथ लखि कै कृपा चार्य्यहिं सुभट जे बलवान ।
कियो रक्षित आय कै तिन बेग सोँ अतिमान ॥

(कर्णपर्व से)

दोहा

यह सुनि कै चुप है रहो द्रोणतनय मतिशुद्ध ।
होत भयौ तेहि क्षण महा कर्णार्जुन को युद्ध ॥

चौपाई

एहि बिधि लरत भये तै भिरि कै । लरत मनो युग वारिद थिरि कै ॥
दोऊ शक्र सरिस तहँ हरषे । बज्र समान घने शर बरषे ॥
मंडल सरिस शरासन लीन्हे । दोऊ नभशर छाजित कीन्हे ॥
पक्षी जूह कृक्ष पहँ जैसे । बास हेत निपतत हैं तैसे ॥
दोउन के शर दोउन ऊपर । परैं परै जिमि पाहन भूपर ॥
दोऊ दोउन के शर रूरे । बाणन काटि युद्ध महि पूरे ॥
दश दश बाण दुहुन के तन में । दोऊ हनत भए तेहि क्षण में ॥
पार्थ तहाँ अति अमरष पाग्यौ । अस्त्राग्नेय कर्ण पहँ त्याग्यौ ॥
तेहि क्षण सुरथ कर्ण को राजित । भो अति ज्वाल जाल सो छाजित ॥
सब के बसन बरण तहँ लागे । है अति बिकल सुभट सब भागे ॥
सो लखि कर्ण धनुषधर दारुण । छाड़त भयो अस्त्रबर वारुण ॥
तासोँ ज्वाल जाल भो लोपित । भयो जलद सोँ महि नभ गोपित ॥

तब वाइव्य अस्त्र तजि पारथ। ताहिं बिदारि करत भो स्वारथ ॥
दाइत अस्त्र कियो बिस्तारा। तासों कढ़ी शरन की धारा ॥
हयन सहित सूतज के गातहि। ते बेधे कंटक जिमि पातहि ॥
तब अति रिसि करि कर्ण अमाना। छाँड़्यौ भार्गव अस्त्र महाना ॥

दोहा

अस्त्र अस्त्र सोँ समित करि बर्षि बाण पग धारि।
बधि अगणित पांचालभट दयो भूमि पै डारि ॥

भुजंगप्रयात छंद

बली कर्ण वैबर्ण के शत्रु सेना।
गुन्यो तो सुतै आशि जै जीति देना ॥
कियौ पार्थ पै बाण की वृष्टि कैसे।
तजै शैल पैं बारि में घालि जैसे ॥
करै पार्थ के अस्त्र कौं व्यर्थ तैसें।
यथा ईति की भीति को भूप नैसे ॥
किये चंड को दंड को दंड भारी।
लसो काल जैसो प्रलय काल कारी ॥

दोहा

तेहि क्षण इत के भट गुणे कर्ण पारथहि मारि।
देन चहत कुरुपतिहि जय धनु बिधि सिधि निरधारि ॥
तथा पार्थ गांडीवधनु किए मंडलाकार।
बर्षौ सूतज पै निशिख यथा मेघ जलधार ॥
बारि पार्थ को बाण सब बाण पार्थ तँह छाय।
कर्ण बधत भो शरन सोँ हय गज भट समुदाय ॥

सोरठा

सोलखि पवन कुमार विक्रम निधि अमरष भरो।
करि निज सुपण विचार पाणि पाणि सोँ मलत भो ॥

जयकरी छंद

भीमसेन अति रिसि बिस्तारी।
पारथ सों इमि कह्यो बिचारी ॥
तुम गन्धर्बन जीत्यो पूर्व।
कियो शंभु सोँ संगर गूर्ब ॥

इंद्रहि जीति कियो बनदाह ।
असुरन सों जय लह्यो सचाह ॥
अब कत सिथिल भये हौ तात ।
सहत कर्ण को आयुध पात ॥
सुधि करि पूर्ब कियो अपकर्म ।
शीघ्र बधौ एहि गुणि निज धर्म ॥
यह सुनि कै केशव हितमान ।
पारथ सों बोले अनुमानि ॥
सूतज प्रबल परो यहि काल ।
तुम कत गहत सिथिलता चाल ॥
एहि बिधि लहौ जीति यहियाम ।
भोगौ भूरि भूमि अभिराम ॥
यह सुनि पार्थ क्रोध बिस्तारी ।
त्यग्यौ ब्रह्म अस्त्र पण धारी ॥
तजि ' तेहि प्रतिम अस्त्र करि गौर ।
कीन्हों व्यर्थ कर्ण तेहि ठौर ॥
सो लखि कह्यौ भीम अनखाय ।
अस्त्रभेद तुम दए भुलाय ॥
शायक बर्षि बधौ एहि तात ।
सिथिल भए दिन बीतो जात ॥
तब पारथ अमरख सों पूरि ।
सूतज पँह बर्ष्यो शर भूरि ॥
मम सेना मधि शयक छाय ।
बध्यौ असंख्यन भट समुदाय ॥
शर गाँडीव धनुष सों मुक्त ।
भे जिमि किरिणि प्रलय के उक्त ॥
तपि सह सौंशु सरिस जगजैन ।
भस्मित करत भयो मम सैन ॥

दोहा

तेहि बिधि सूतज प्रबल भट बर्षि बाण उरदंड ।
भीम कृष्ण पार्थहि हन्यौ तीनि तीनि शर चंड ॥
कृष्णहि शर ताड़ित निरखि पार्थ क्रोध बिस्तारि ।
शल्य भूप के गात मैं मारयौ शायक चारि ॥
मारि केतु मैं एक शर करि अद्भुत संधान ।
तीनि चारि बसु दश हन्यौ सूतज के तन बान ॥

तीनि आठ द्वै चारि दश तीक्षण सायक भूप ।
फिरि क्रम सों कर्णहिं हन्यौ करि शर वृष्टि अनूप ॥

सोरठा

जलद झरत जिमि बारि तेहि विधि शायक बरषि तँह ।
बधे द्विर्द शत चारि रथी आठ शत बधत भो ॥
सहस तुरग असवार पैदर आठ हजार बधि ।
वरषि घनो शरधार कर्णहि दयो अदृश्य करि ॥

चौपाई

भूपति सुनो कर्ण तेहि क्षण में । मंडल सम धनु करि गुण मन में ॥
करि करि अगणित परस्पर छेदन । बध्यो असंख्यन भट अरि खेदन ॥
सुवन अश्वनी के मन भाये । तेहि क्षण धर्म भूप पँह आए ॥
औषध करि शर व्यथा दुराए । धर्म भूप अति आनंद पाए ॥
रथ चढ़ि कै आयौ निज दल मैं । सुभटन मुदित कियो तेहि पल मैं ॥
कर्ण सिंह तेहि क्षण रन बन मैं । शत शर हन्यौ पार्थ के तन मैं ॥
साठि सुबाण केशवहिं मारयौ । अनिल नन्द नहि अयुत प्रहारयौ ॥
छको बीर रस प्रबल प्रमादित । अरिदल कियो शरन सों छादित ॥
तिमि पारथ धनु कर्षण करि कै । रथ पर चपल चक्र सम चरि कै ॥
बाणन अंधकार करि दीन्हों । जाते परो न हय गज चीन्हों ॥
तीक्षण दश शर शल्यहि हनि कै । कर्णहि मारयौ द्वादश गनि कै ॥
फेरि सात शायक अति चोखे । मारत भयो तेज सों पोखे ॥
शायक बर्षि कर्ण धनुधारी । हन्यो ताहि शर तीनि प्रचारी ॥
कृष्णहिं हन्यौ पाँच बरशायक । कर्ण सुवीर विदित भटकायन ॥
पार्थ केशवहिं बेधित देखी । बर्षो विशिख नाश अवरेखी ॥
दोय सहस सूतज के अंगी । बधि कीन्हें यमपुर गत संगी ॥

दोहा

तजि कर्णहि तेहि क्षण भगे तो सुत भट समुदाय ।
जिमि व्यालहि लखि सुतरु तजि भगत विहग भय पाय ॥
पार्थ अधरथी के बधन को पड़ पूरन धारि ।
पार्थ लसो जिमि त्रिपुरदल मध्य लसो त्रिपुरारि ॥

सोरठा

तिमि सूतज रणधीर प्रलय भरयौ पर सैन मधि ।
दोऊ तुल बल बीर कीन्हे अद्भुत युद्ध तहँ ॥

भुजंगप्रयात छंद

महाबीर दोऊ धनुर्वेद चारी ।
दुहूँ ओर कै बाण की वृष्टि भारी ॥
किए घोर संग्राम ताठौर दोऊ ।
नहीं सामुहे भे दुहूँ ओर कोऊ ॥
गए दूरि जेते भए मौन ऐसे ।
गए सामने ते भए नाभ ऐसे ॥
दुहूँ ओर के यों कहे जाँचिबे को ।
नहीं आजु तो योग है बाचिबे को ॥

दोहा

कर्णहि बधि दल कौरवी बधिहि पार्थ बल ऐन ।
कै पार्थहि बधि कै कारण बधत पांडवी सैन ॥

चौपाई

दोऊ गगन शरन भरि दीन्हें । अंधकार आरोपित कीन्हें ॥
दोउन के अति बिक्रम देखी । बिस्मित भए सुमन अवरेखी ॥
दोऊ क्षात्र धर्म अवतंसे । इमि कहि कहि सुर दुहुन प्रशंसे ॥
दोउन के कर करि कर भारी । रहे जात लखि कानन चारी ॥
कबहुँ पार्थ बढ़ि बिक्रम कीन्हो । कबहुँ सूत सुत मुरता लीन्हो ॥
रह्यो न थिरि घटि बढ़ पद कोऊ । अतिशै प्रबल धनुषधर दोऊ ॥
भूप किए तहँ तुमुल लराई । पृथक पृथक सब कही न जाई ॥
नृप तेहि समय भई कछु लीला । सो हम कहैं सुनौ श्रुति शीला ॥
नागराज को सुत रिसि पागो । जो खांडव सु विपिन ते भागो ॥
मात बधन को अब गहि हीरे । सो तेहि समौ समय लहि नीरे ॥
पार्थहि बधन हेत अति धरकस । प्रविशत भयो कर्ण के तरकस ॥
गहि शर रूप रहो छवि सानो । काल कराल पार्थ को मानो ॥
अइरावत सुत मुख सो शायक । योजित कियो कर्ण भटनायक ॥
लखि सों बाण काल सम नाचत । शक्र कह्यो नहिं मम सुत बाचत ॥
कहे बिरंचि शोच मति करहू । मरिहि न तोसुत साहस धरहू ॥
चाहि पार्थ को शीश अनोखो । कर्ण तज्यो सो शायक चोखो ॥

दोहा

निरखि तासु ऊरधसु गति केशव रथहि दबाय ।
कछु महि मधि प्रविशित कियो चारु चक्र गहि चाय ॥

भूमि चक्र प्रविशित भए चारौं हय तेहि मान ।
जानु मोरि महि पहँ धरे हरि इच्छा बलवान ॥
इंद्रदत्त शुचि मुकुट मधि लगो बाण करि गौन ।
कटि किरीट महि मधि गिरो ब्यर्थ भयो शर तौन ॥

श्लोक

गोकर्णासुमुखीकृतेन इषुना गोपुत्र संप्रेषिता ।
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं सुव्यक्त गोसुभ्रमं ॥
दृष्ट्वा गोगत कंजहारमुकुटं गोशब्द गापूरिवै ।
गोकर्णाशनमर्दनाश्वनतया न प्राप मृत्योर्वशं ॥

दोहा

उग्र बाण बपु नाग वह बहुरि कर्ण पहँ जाय ।
कह्यो कृष्ण की कृपा ते बचो पार्थ को काय ॥
फेरि तजौ मोहि पार्थ पहँ अब कै बचै न तौन ।
शक्रहु के रक्षण करे करिहि कालपुर गौन ॥

सोरठा

सूतज सुनि यह बैन कह्यो नाग सों कौन तुम ।
सो सुनि नाग सचैन पूर्व कथा सब कहत मे ॥

तोमर छंद

सुनि सूतसुत बलवान । इमि कह्यो करि अनुमान ॥
हम और को बल पाय । नहिं चहत जय सुखदाय ॥
तुम जाहु अब निज स्थान । हम बधब हनि निज बान ॥
फिरि चलो सो अहि एक । गहि पार्थ बध को टेक ॥
तेहि देखि हरि गहि खेद । कहि दए पारथहि भेद ॥
तेहि पार्थ हनि षट पत्र । करि दयो षटधा तत्र ॥
फिरि बर्षि शायक धार । शत रथिन को संहार ॥
भो करत पारथ बीर । भट बिदित अति रणधीर ॥
भट कर्ण तेहि क्षण भूप । है दुसह सूर स्वरूप ॥
बर शरन की झरि लाय । दश हन्यो ताके काय ॥
तब पार्थ रिसि करि चाहि । शर हन्यो द्वादश घेरि ॥
तकि गरजि गरजि सहास । शर हनत भो गुणिनास ॥
शर बर्षि पारथ आसु । नहिं सह्यौ गरजनि तासु ॥
तकि कर्ण भट को गात । भो करत बहु शरपात ॥

दोहा

करलाघव करि वर्षि शर टेरि टेरि गहि टेक ।
चारु कर्ण के कर्ण को कुँडल काट्यौ एक ॥
अति रिसि करि तेहि तीनि शर मारयौ कर्ण कराल ।
परित्रिदोष वश पुरुषसम पार्थ भयो तेहि काल ॥
धनु गांडीव ही कर्षि तेहि पार्थ हन्यो बहु बान ।
लसो कर्ण वर्षा समय गैरिक अंग समान ॥

सोरठा

सुनो भूत देहि ठौर दोऊ बरणो धनुष धर ।
किए युद्ध एहि ठौर जो लखि विस्मित सुमन भे ॥

चौपाई

महाराज सुनिए तेहि क्षण में । कर्ण गह्यो अति गौरव मन में ॥
अति तीक्षण वर बाण अधीरे । मारत भयो पार्थ के हीरे ॥
तासों भिदि मोहित ह्वै पारथ । नहिं करि सक्यौ धनुष चरितारथ ॥
सो लखि कर्ण धर्म बिद आरज । थिर ह्वै रहो न्यायि धनुकारज ॥
कृष्ण पारथहि मोहित ज्वैकै । कहत भए अति दोचित ह्वै कै ॥
पार्थ धीर धरि शायक बरषौ । प्रबल शत्रु को बध करि हरषौ ॥
पार्थ कृष्ण की वाणी सुन कै । लगो विशिख वर्षण धनु धुनि कै ॥
तथा कर्ण अति अमरष पागो । करि लाघव शर वर्षण लागो ॥
दोऊ धनुधर गौरव लीन्हो । अतिशै कठिन युद्ध तहँ कीन्हो ॥
नृप तेहि समय समुझि निज बानो । काल कर्ण के ढिग नगिचानो ॥
परशुराम को शाप सोहायौ । अरु द्विज शाप समय लखि आयो ॥
रथ को बाम चक्र बरबरणी । माढे ग्रसत भई तब धरणी ॥
शल्य यतन करि विस्मय भारे । बली तुरग सब बल करि हारे ॥
यह अनरथ लखि कर्ण बिचारयौ । महि केहि हेत सुरथ मम धारयौ ॥
मैं न कियो अधरम निज जानत । दान मान दायक सब मानत ॥
धर्म धर्म करतांहि निति स्वच्छत । अब मम धर्म भयो कित मच्छत ॥

दोहा

इमि कहि सुमिरत निज धरमधरम धुरंधर धीर ।
पारथ के बाणनि भयो विकल कर्ण रणधीर ॥
कर्षि धनुष कृष्णहि हन्यौ तीक्षण तीनि सुबान ।
हन्यौ अर्जुनहि सात शर करि अद्भुत संधान ॥

अति तीक्ष्ण सत्रह बिशिख कर्णहि मार्‍यौ पार्थ ।
गात बेधि ते कढ़ि गए भूपति सुनो यथार्थ ॥

सोरठा

कर्ण साहसी धीर तजत भयो ब्रम्हास्त्र तब ।
सो लखि पारथ बीर ऐंद्र अस्त्र छाड़त भयो ॥
ऐंद्र अस्त्र बर तासु ब्यर्थ भयो ब्रह्मास्त्र सों ।
सो लखि पारथ आसु तजत भयो ब्रह्मास्त्र तँह ॥

चौपाई

तुल्य प्रभाव अस्त्र ते मरिकै । नृप सुनु समित भयो तहँ थिरिक ॥
तहाँ कर्ण अति तुरता गहि कै । पारथ अब न बचत इमि कहिकै ॥
कर्ण बीर अति धनु बिधि बाढ़्यौ । ता धनु को सुप्रत्यंचा काट्यौ ॥
पार्थ प्रत्यंचा और चढ़ायो । काट्यौ सोउ कर्ण भट भायो ॥
तीसरि चउथि पाँचई छठई । ज्या काटत भो सतई अठई ॥
कटत प्रत्यंचा पार्थ चढ़ावै । कर्ण काटि तेहि ओज बढावै ॥
पार्थ धनुष को ज्यागुण अगरी । कीन्हो कर्ण भाँड की पगरी ॥
क्रमसों पारथ के धनुकेरी । शतज्या काटि ढयो शत बेरी ॥
तँह पारथ अति गौरव लीन्हो । नृप अचरज कर लाघव कीन्हो ॥
कटत चढ़ावत वर्षत बाणहि । नेकु न भेद परो लखि आनहिं ॥
रथ बिनु चले कर्ण तेहि क्षण में । समय देखि है व्याकुल मन में ॥
धनु रथ पै धरि बीर उतरि कै । चारु चक्र युग करसों धरि कै ॥
लगो उठावन सुनु महिं साईं । अचरज कियो कर्ण तेहि ठाईं ॥
गिरि सागर कानन सह धरणी । रथ के संग तेहि पूरण परणी ॥
अंगुल चारि प्रमाण उठायो । सुरगण के मन बिस्मय छायो ॥
छुटो न रथ तब कर्ण बिलखि कै । सजल नयन भो इत उत लखि कै ॥
करि शर वृष्टि पार्थ तेहि क्षण में । बहु शर हन्यौ कर्ण के तन में ॥
तिनसों कर्ण महा दुःख पायो । पारथ को इमि टेर सुनायो ॥
है है पार्थ कहा अवधारो । बाण वृष्टि क्षण एक निवारो ॥
ग्रसत चक्र धरणी ते जब लों । मैं काढ़ों तूँ थिर रह अब लों ॥
बिना शस्त्र पहँ तजिबो शायक । उचित न तुम्हैं बिदित भटनायक ॥

दोहा

नहिं कृष्णहि नहिं तुम्हहिं हम भीति कहत मे बैन ।
तुमसे क्षत्रिहि धरम को तजिबो सोहत हैन ॥

जौं लगि चक्र छोड़ाइ हम नहिं पकरैं धनु बान।
पारथ तौं लगि करि छमा बहुरि लगौ मन मान॥

जयकरी छंद

तहाँ कर्ण सुनि ए बैन। कहत भए केशव मति ऐन॥
तुम दुर्योधन शकुनि कराल। कब कीन्हें सुधरम प्रतिपाल॥
भीमसेन कहँ जहर खवाय। साँपन सों दीन्हे कटवाय॥
करिकै मंत्र नाश अभिलाषि। इन कहँ लाक्षागृह में राखि॥
निशि में दाह करायो पूर्व। तब कित रहो धर्मव्रत गूर्व॥
किए सभा में कुक्रम जौन। अब नहिं कहत बनत सब तौन॥
तेरहे वर्ष बाँटि महि लेत। किए करार न चाहे देत॥
तब कित गयो धरम को काम। अब लखि परो धरम अभिराम॥
विरथ विधनुष अकेलो बार। पार्थ सुतहि बधि षट धनुवार॥
अति आनँद लहि भए अभर्म। अब चाहत करवावो धर्म॥
अब तो बध करिबो एहि आम। है पारथ को धर्म ललाम॥
केशव के ए बचन अनूप। सुनि सूतज है लज्जित भूप॥
फिरि रथ पहँ चढ़ि गहि कोदंड। बर्षण लागो बाण उदंड॥
भरो क्रोध लाघव सरसाय। दयो पार्थ पहँ शायक छाय॥
सो लखि कै केशव अनुमानि। कहे पार्थसों औसर जानि॥
दिव्य शरण सों बेधि सडौर। अब एहि शीघ्र बधौ करि गौर॥

दोहा

केशव के ए बचन सुनि पारथ धनु टंकारि।
बर्षण लागो कर्ण पहँ दिव्य अस्त्र पण धारि॥
करत भयो ब्रम्हास्त्र को तेहि छण कर्ण प्रयोग।
पारथ तजि ब्रम्हास्त्र तेहि छमित कियो करि योग॥
ताहि समित करि तजित भो दहत अस्त्र सो बीर।
बारुणास्त्रसों तेहि समित कियो कर्ण रणधीर॥
घनतम सों छादित दिशा देखि पार्थी करि कोप।
कियो अस्त्र बायव्य सों बारुणास्त्र को कोप॥

सोरठा

सो लखि कर्ण अमान परम दिव्यशर गहत भो।
करि अद्भुत सन्धान तज्यौ देखि डरपे सुमन॥
बज्र सरिस सो बाण तासु भुजा तर मधि लगो।
भिदि तासों बलवान मोहित भो अर्जुन सुभट॥

चौपाई

महाराज सुनिए तेहि छण में । रथ ते उतरि कर्ण गुणि मन में ।
हर्ष बिषाद क्रोध सें पागो । बल करि सुरथ उठावन लागो ॥
कृष्णचंद्र सो समय निरेखी । पारथ सो बोले अवरेखी ।
रथ चढ़ि गहै धनुष शर जौ लौं । कर्णहि पार्थ बधौ तुम तौ लौं ॥
कृष्णचंद्र की बाणी सुनि कै । पारथ मंत्र यथारथ गुणि कै ।
तीक्षण शर क्षुरप्र कर लीन्ही । तासों केतु काटि द्वै कीन्ही ॥
फिरि अमोघ आंजलिक सुशायक । गह्यो पार्थ भट धनुधर नायक ।
चक्र त्रिशूल वज्र सम घोरा । कालदंड सम कठिन कठोरा ॥
प्रलय काल के भानु समाना । वायु अग्नि सम दुसह महाना ।
भरि आंगिरस मंत्र के पुरता । करि अति अगणित गौरव गुरता ॥
सब दिशि हेरि क्रोध सों रातो । बोले पार्थ वीर रस मातो ।
अब हनि यह शर गौरव मेखो । कर्णहि बधि डारति देखो ॥
इमि कहि पारथ तेहि शर बरसों । काड्यो शीश करण के धर सों ।
मारतंड सम परम प्रभा के । महि' पै गिरो शीश कटि ताको ॥
तदनु गिरो धर तजि बलगारो । सरस सुखोचित सुषमा भारो ।
मणि मैं भूरि भूषणनि छाजित । महि पर मयो कर्ण भट राजित ॥

चंद्रशेखर

चंद्रशेखर

'हम्मीरहठ' के रचयिता चंद्रशेखर वाजपेयी वीरकाव्य के एक प्रथम श्रेणी के कवि माने गए हैं। इन के वंश और पिता माता आदि के विषय में निर्भ्रांत रूप से अधिक ज्ञात नहीं हो सका है। कुछ लोग इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण (वाजपेयी) बतलाते हैं। जो हो, पर इतना मालूम है कि इनका जन्म फतहपूर जिले के मुअज्जमाबाद नामक स्थान में मिती पौष शुक्ल १० सं० १८५५ में हुआ था। इतिहासकार इन के पिता का नाम मनीराम वाजपेयी बतलाते हैं और कहा जाता है कि यह भी एक अच्छे कवि थे।

जीवनी

चंद्रशेखर जी राज दरबारों में बहुत घूमा करते थे। पहले यह महाराज दरभंगा के दरबार में गए और लग-भग सात वर्ष वहाँ रहे। कहा जाता है कि सं० १८७७ में ये पहले पहल यह देशाटन के लिये निकले थे। उस समय इनकी अवस्था २२ के लग-भग थी और इन के पिता भी उस समय जीवित थे। फिर सं० १८८४ में ये जोधपूर दरबार में पधारे। वहां उस समय महाराज मानसिंह सिंहासन पर थे। ये कवि और कविता के बड़े प्रेमी और आश्रयदाता थे और इनके दरबार में प्रायः कुछ अच्छे कवि उपस्थित रहा करते थे। बाँकीदान चारण नाम के एक सज्जन ने इनको दरबार में प्रवेश कराया और वहां पहुँच महाराज मानसिंह की प्रशंसा में एक ऐसा कवित्त पढ़ा जिससे इनकी धाक बंध गई और दरबार ने सौ रुपया महीने की वृति देकर ६ वर्ष तक इनको बड़े सम्मान से वहाँ रक्खा। वह कवित्त प्रसिद्ध हो गया है और अवलोकनार्थ नीचे दिया जाता है—

द्वादश कला सौं मारतंड ये उवैंगे चंड।
सेसवारी साँसनि समस्त सत्रु जलि है।
छुटि जैहै अचल अवास अमरेस-वारो,
कूट जैहै कहति कली सी भूमि हलि है॥
शेषर कहत अलिका में कलापात ह्वै है,
पावक पिनाकी के त्रिशूल सौं निकलि है।
तून तानि भौंहैं भानुबंसी भूपमान ना तौ॥
जानि लै हैं प्रलय पयोधि फूटि चलि है॥

महाराज मानसिंह के उतराधिकारी महाराज तख्त सिंह जी कवियों के वैसे प्रेमी न थे। उन्होंने सिंहासनारूढ़ होते ही इनकी तनख्वाह आधी कर दी, पर यह इन्हें स्वीकार नहीं था। वे तुरंत जोधपुर छोड़ कर चल पड़े।

मारवाड़ छोड़ कर इन्हें पंजाब घूमने की सूझी और ये लाहौर होते हुए अंत में पटियाले पहुँचे। वहाँ उस समय महाराज कर्मसिंह जी तख्त पर थे और उन्होंने इनका अच्छा स्वागत किया और बहुत अच्छी वृत्ति दी। कहा जाता है कि पटियाले के स्वागत और आतिथ्य ने इन्हें जोधपुर भूलने पर विवश किया। यहाँ तक कि इनको मना कर लिवा लाने के लिए महाराज तख्तसिंह ने मुंशी लाँडलीदास जी को भेजा था और अपनी भूल भी स्वीकार की थी पर इनके आत्मसम्मान ने फिर इन्हें जोधपुर नहीं जाने दिया और फिर ये आजीवन पटियाले में ही रह गए। कभी कभी छुट्टी लेकर बृंदावन चले जाया करते थे। कृष्ण इन के इष्टदेव थे और बृंदावन शतक' नाम का काव्य ग्रंथ आप ने बृंदावन में ही रचा था।

इनकी मृत्यु सं० १९३२ में हुई। उस समय इनकी अवस्था ७७ वर्ष की थी।

महाराज कर्मसिंह की आज्ञा से इन्हों ने कई ग्रंथ रचे थे जिन में एक राजनीति का बड़ा ग्रंथ लग-भग ६००० श्लोकों का भी है।

महाराज कर्मसिंह जी के देहावसान पर कवि जी को महान शोक हुआ और इनका जी टूट गया पर स्वर्गीय उन महाराज के सुयोग्य उत्तराधिकारी महाराज नरेंद्रसिंह ने इनको बहुत ढाढ़स दिया और पूर्ववत सत्कार और सम्मान के साथ ही इन्हें दरबार में रक्खा रहे। इन्हीं महाराज के आग्रह से इन्हों ने 'हम्मीर हठ' की रचना की थी।

चंद्रशेखर जी के रचे हुए इतने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं —

इनका ग्रंथ

(१) नख शिख
(२) रसिक विनोद
(३) बृंदावन शतक
(४) गुरु पंचाशिका
(५) ज्योतिष का जातक
(६) माधवी वसंत
(७) हरि भक्तविलास
(८) राजनीति
(९) हम्मीर हठ

उक्त ग्रंथों में से नख-शिख और रसिक विनोद स्वर्गीय बाबू जगन्नाथ दास जी रत्नाकर भारत जीवन प्रेस से प्रकाशित करा चुके हैं। यह हम्मीर हठ भी पहले साहित्य सुधानिधि में प्रकाशित हो चुका है पर इसका संपादन कुछ नहीं हुआ है और पाठ बहुत भ्रष्ट रह गया है। फिर से नागरी प्रचारिणी सभा ने

उक्त 'रत्नाकर' जी द्वारा संपादित करा इस का एक उत्तम संस्करण प्रकाशित किया है इसी संस्करण से मैंने सग्रह किया है और इस के लिए में सभा और रत्नाकर जी का कृतज्ञ हूँ।

चंद्रशेखर जी की कविता के संबंध में अधिक लिखना व्यर्थ है। इन को हम आसानी से लाल और सूदन की श्रेणी में ले सकते हैं। यों तो किसी भी सुकवि को 'श्रेणीबद्ध' करना या उसे किसी विशेष ख्यात नामा कवि की श्रेणी में रखना उस के साथ अन्याय करना होगा क्योंकि प्रत्येक कवि के ढंग, शैली, तथा तर्जे बयान जुदा जुदा होते हैं। लाल को श्रेणी में कहने से मेरा तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि एक मात्र महत्त्व की दृष्टि से हम इन्हें लाल आदि के समकक्ष रख सकते हैं। चंद्रशेखर जी दुर्भाग्य से कुछ ऐसे सुकवियों में से एक हैं जिनकी पर्याप्त सूचना हिंदी संसार अभी तक नहीं ले सका है। इसके कारणों का निरूपण करने का यह स्थान नहीं है पर इतना निश्चय है कि इन के साथ दुर्योग से न्याय नहीं हुआ है। हिंदी संसार का कर्तव्य है कि इन की रचनाओं को ज़रा गवेषण के साथ अनुशीलन करे और इन के वास्तविक महत्त्व को पहचाने।

कविता

प्रत्येक कवि की विशेषताएं अलग अलग होती हैं। हम्मीर हठ के संपादक स्वर्गीय 'रत्नाकर' जी स्वयं एक लब्धप्रतिष्ठ सर्वजनसमादृत कवि हो गए हैं। वे चंद्रशेखरजी की कविता के क़ायल थे। आप अधिकार के साथ इन की कविता के संबंध में कहते हैं—"इस ग्रंथ (हम्मीर हठ) की कविता बड़ी मनोहर और उमंग-वर्द्धिनी है। ओज, माधर्य और प्रसाद तीनों गुण अपने अपने स्थान पर सुशोभित हैं। कवि की प्रौढ़ता अक्षरों से प्रगट होती है। बहुधा कवियों के काव्य में भोंड़ापन आजाता है, इस दूषण से भी यह ग्रंथ रहित है। किस अवसर पर कैसे अर्थ का साधन किन शब्दों द्वारा करना उचित है इस बात पर कवि जी ने ध्यान रक्खा है और इसमें वे कृतकार्य भी हुए हैं।"

उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि एक श्रेष्ठ और समर्थ कवि की रचना में जितने मुख्य गुण वांछनीय होते हैं वह सब यहाँ एकत्र रक्खे हुए हैं।

यह तो स्पष्ट ही है कि यह भूषण और लाल या सूदन आदि की भाँति वीर रस की रचना के लिये ही प्रसिद्ध हैं। पर इन के वीर रस के निरूपण और व्यक्तकरण में क्या ख़ास बात है यह भी ज़रा देख लेना होगा। ऊपर कहे हुए कवि बल्कि प्रायः सभी कवि इस की व्यंजना के लिए अक्षरों या शब्दों की ध्वनि का ही सब से बड़ा भरोसा रखते थे। शायद इन लोगों की ऐसी धारणा थी कि अनगढ़ और लड़ाई में होने वाले विविध प्रकार के उग्र शब्दों की सी ध्वनि वाले शब्दों को लाए बिना कविता में वीररस का परिपाक हो नहीं सकेगा।

कुछ अंशो तक यह सही भी है। पर एक मात्र यही भर सब कुछ नहीं है और चंद्रशेखर जी इस बात को कदाचित औरों से अधिक पहचानते थे। युद्धक्षेत्र का पूरा चित्र खींचने के लिए यह अलंकार, ध्वनि, भावना, चमत्कार और गुण इन सभों के एक ऐसे मनोरम अनुपात से काम लेते थे जैसा कि बहुत थोड़े से कवि करने में समर्थ हुए हैं।

हम्मीर हठ

छप्पय

करौं जुद्ध करि क्रुद्ध आज अवरुद्ध सुद्ध मन ।
अरि बिहंड करि खंड खंड डारौं गनीम गन ॥
परे सोर चहुँ ओर घोर दिन राति न सुज्झै ।
गज तुरंग रन रंग अंग भरि भूत अरुज्झै ॥
बिन मुंड रुंड धावै धरनि बचन बोलि चूकै नहीं ॥
मोरौं न बाग रनभूमि तैं मानु मातु मेरी कही ॥

दोहा

जो ईश्वर कारन कहूं उलटै मुरैं निसान ।
तब तुम जौहर देखियौ मेरो बचन प्रमान ॥
पुनि सीता के पग परसि प्रमुदित राम हमीर ।
हरषि तुरंग मँगाइ कै चल्यौ बीर रनधीर ॥
चढ़त राह हम्मीर के गह गह बजे निसान ।
चढ़े सूर सामंत सब रूपवान जसवान ॥

मोतीदाम छंद

चढ़े चहुँआन धनी महराज । चल्यौ खल दाबि दिगंत राज ॥
बजैं बहु बंब निसान आवाज । उठे घनघोर घटा जनु गाज ॥
सजोम जकंदत जात तुरंग । चढ़े रन सूरनि रंग उमंग ॥
लसैं सब अंग कसे तनत्रान । गहे बरछी करवाल कमान ॥
झुकी कलँगी सिर सोहत टोप । रही चढ़ि आनन औरह ओप ॥
चढ़ी भृकुटी दरसैं दृग लाल । भरे रन रोस मनौ रिपु काल ॥
चले जुरि जुत्थ बरुत्थ अनेक । लगे बलगै बिलि एकनि एक ॥
सज्यौ मद मत्त मतंग अनूप । हमीर बिराजत तापर भूप ॥
मनौ गिरि कज्जल को मग जात । मढ़े मनि कंचन सों सब गात ॥
मनौ मन मंदिर तापर मंड । उदै रवि आप भयो परचंड ॥

दोहा

चल्यौ कटक को कहि सकै ताकी बिहद बिवाद ।
चल्यौ मनौ परलय करन सागर तजि मरजाद ॥

ग्रीशम गहर गनीम की गारन गरब झुकारि ।
चढ्यौ प्रबल पावत नृपति दल बद्दल बल धारि ॥

छप्पय

उठी धूरि धुरवानि धरनि जलधर दल जुट्टै ।
धवल धजा बकपाँति अस्त्र छनदाछवि छुट्टै ॥
घुरैं बंच घनघोर बिरद वंदी पिक बोलैं ।
गज तुरंग रथ वेग बिहद हद मारुत डोलैं ॥
छिति अंधकार छायौ सघन दृग बसारि लूकै न कर ।
दीसै न पंथ पावस नृपति चढ्यौ साजि दल जलद वर ॥

चौपाई

बाजे बिहद जुझाऊ बाजैं । निरतैं मग तुरंग गज गाजैं ॥
पढैं बिरद बंदी बर जौर । मढ्यौ राग मारू सब ठौर ॥
धौसनि धमक घूम छिति छाई । सुनै कौन निज बात पराई ॥
चलत कटक डोलते इमि धरनी । प्रबल पवन हत जिमि लघु सरनी ॥
सहमि सुरेस संक मन माने । घनाधीस तजि धीर पराने ॥
मंदर मेरु कली सम कावै । फाटत फन फनसी फन झँपै ॥
करत बाजि खुर छार पहारनि । धीजत कहि कतंग मदधारनि ॥
महाराज चहुँआन हमीर । राजत मनु सुरेस रन धीर ॥

दोहा

महि कंपै चंपै चरनि रविरथ झँपै धूरि ।
चढ्यौ राह हम्मीर इमि जुद्ध हरष भरि पूर ॥

छप्पय

उतै साह अल्लाउदीन हम्मीर देव इत ।
सजै जुद्धहित कुद्ध बरनि को सकै सौभ तित ॥
दुहुँ दिस खुलै निसान बंध मारी बहु बज्जैं ।
पढैं बिरद बंदो बिलोकि सुरनायक लज्जैं ॥
गज तुरंग पायक प्रबल दल बिलोकि दुहुं दिसि घने ।
कुरुखेत करन अरजुन मनौ जुद्ध हेत बहु बिधि बने ॥

भुजंगप्रयात छंद

दुहूँ ओर तैं सूरसेना सिधाई । महा मेघ कीसी घटा घेरि आई ॥
महा अस्त्र औ सस्त्र सारे चमक्कैं । प्रलै काल की दायिनी सी दमक्कैं ॥
गहे खग्ग खंडा प्रचंडा दुधारे । छुरा सक्तिसूलं सरं चाप धारे ॥
लसैं बीर बंके निसंके जुझारे । महा मोद बाढ़े दुहूँ ओर सारे ॥

सुने बीर बाजे बली बीर बाजैं । करैं सिंहनादं मनो मेघ गाजैं ॥
उमंगैं भरे रंग जंगे उमाहैं । दुहूँ ओर सौं आपनी जीति चाहैं ॥
लसैं मत्त मातंग पै दोउ ऐसे । लरैं स्वर्ग में संभु औ सक्र जैसे ॥

सोरठा

आनन औरै ओप भुज फरकत हरषै हियौ ।
भए अरुन दृग कोप देखी देखा दुहूनि सौं ॥
ताते करे तुरंग अंग अंग उमगै सुभट ।
चढ्यौ चौगुनी रंग सुरन के तन बदन में ॥

कवित्त

आनि जुरे कटक दुहूँ दिसि तैं कोपि मुख ।
औपि रन सूरन कै सेखी बरसत हैं ॥
छाई छबि छूटै छटा निनद निसाननि को ।
बाजै बीर बंब राग मारू सरसत हैं ॥
आगैं बढ़ि सुभट सुनावै सिंहनादै एक ।
एकै हाँकि हरषि कृपान करसत हैं ॥
भारत के पारथु औ भीषम समान ये ।
हमीर औ अलाउदीन दोऊ दरसत हैं ॥

दोहा

दल दीरघ दोऊ सजे आए निकट निदान ।
दुहूँ ओरि सूरनि हरषि गहे सरासन बान ॥
बंदूकैं बीरनि सजी द्वै द्वै गोली डारि ।
रंजक दै छाती धरीं जलद जामि की बारि ॥
हाँकि हाँकि मारन लगे डाँटि डाँटि रनसूर ।
मारु मारु दल दुहुन में सबद रह्यो भर पूर ॥

कवित्त

गहर गराव नक थहरत भूमि मढ़ी ।
गगन गरद्द मै न भानु सरकत हैं ॥
बरषत गोली बरषा में ज्यों जलद ज्वान ।
मारैं बान तानत कमान मरकत हैं ॥
केते लोट पोट भए समर सचोट केते ।
बाहन पैं बिकल बिहाल लरकत हैं ॥
फाटे परे लेजा सों करेजा टूक टूक कढ़े ।
छाती छेद बिसिष बिसारे करकत हैं ॥

उतै साहि आलम अलाउदीन गाजी हते ।
महाबीर नृपति हमीर रन रंग मैं ॥
दुहूँ देति दलन दिलासी दुहूँ ओर देखि ।
चढै चोप चौगुनी उमंग अंग अंग में ॥
मारे तीर गोलिनि के धीर न धरत छिति ।
गगन समीर न सकत चलि संग में ॥
दारु बिन सिंग बान रहित निखंग भयो ।
जंग भयौ दारुन दुहूँ के परसंग में ॥

बढ़ि बढ़ि करैं सूर सब वारि । परी बारि गोलिनि की मार ॥
लगी दुहूँ दिसि दारुन चोटैं । घायल परे भूमि में लोटैं ॥
अंग भंग रन फिरैं तुरंग । लगैं दाव जिमि बिपिन बिहंग ॥
जरजर गात जात मग भागे । बिकल बितुंड बान बहु लागे ॥
ढीले धनुष भए जिह टूटे । भे खाली निखंग सर खूटे ॥
दुहूँ ओर पिलि चले तुरंग । परा मारि नेजनि के संग ॥
हाँकि हाँकि रिपु हनै सजोर । बरषैं अस्त्र सस्त्र अति घोर ॥
खुलीं खग्ग को करै सुमार । रन मैं परी भयंकर मार ॥

कवित्त

चले सूर सर सेल। दल पेलि बगमेल परे ।
गोलनि पै गोल बोलि बचन प्रमान ॥
भयौ घोर घमासान धूरि धाई आसमान तहाँ ।
आपनौं परायौ न परत पहचान ॥

मारु मारु धरु तोरु सिर फोरु मुख मोरु ।
मच्यो सोर ठौर ठौर सुनि परत न आन ॥
जहाँ पारथ समान रच्यौ भारत हमीर करै ।
वीर रनधीर पुरुषारथ अमान ॥

खुले काल तैं कराल करवालनि के जालजाल ।
लाल मुख सुभट उमंग सरसाइ ॥
परी मारि तरवारिनि को करन सुमार कटे ।
टोप तनत्रान परे भूमि भहराइ ॥

परे बाजि बिन कंठ बिन सुंडनि बितुंड उठे ।
मुंडनि बिहीन रन रुंड रहे धाइ ॥
तहां पारथ समान पुरुषारथ निधान ।
चहुंआन सिर मुकट हमीर दरसाइ ॥

जुरे बाजिनि सों बाजी औ गजनि गजराज पिले ।
पायक प्रबल रनरोस सरसाइ ॥
डटी ढालनि सों ढाल करवाल करबमाल वीर ।
खंजर कटारनि हनत हरषाइ ॥

परे लुत्थनि पै लुत्थ कटे बिहद बरुत्थ ।
कस्कत सरसूल भभकत भार धाइ ॥
तहां पारथ समान पुरुषारथ करत ।
चहुंआन सिर मुकुट हमीर दरसाइ ॥

कटी कूंडी टोप कवच सनाह टूक टूक पेरी ।
भूमि भूमि भूमि मैं झिलिमि फहराइ ॥
परे झुंडनि के झुंड कटे बीर बरवंड कहूँ ।
रुंड कहूँ मुंड कहूँ तुंड तलफाइ ॥
गिरैं भूत भीम भैरव भ्रमत रन रुद्र जुरि ।
जोगिनीं जगावत मसान जस गाइ ॥
होत जंग मन मुदित उमंग सरसाइ हेर ।
हनत बिपच्छिनि हमीर हरषाइ ॥

चली खेत रनथंभ के विषम तरवारि मारी ।
मारि मुख कढत मढत तन घाइ ॥
परें अंग काटि सुभट तुरंग न चलत ।
चरबी के चहले मै चलि सकत न पाइ ॥
मरे कूडनि रुधिर रन रुडंनि की रासि भयें ।
मास खग जंबुक पिसाच समुदाइ ॥
तहाँ बीर बलवान बहुआन रनधीर खग्ग ।
बाहत हमीर हठधारी हरषाइ ॥

खेत रनथंभ के हमीर रन धीर बली ।
सेना पातसाह की कृपान मुख मारी है ॥
लुत्थन पै लुत्थ परे घायल बरुत्थ परे ।
हत्थ कहूं मत्थ खात आमिष अहारी है ॥
लोहू के अलेल में गलेल देत भूत भिरैं ।
रुंडनि को प्रेत और पिसाच सहचारी है ॥
तारि देत कालिका किलकि किलकारी दै के ।
भारी मुंडमालिका महेस उर डारी है ॥

लरे पातसाह और हमीर रनथंम खेत ।
बीरता बखाने कान सुभट अरे जे हैं ।।
हाँकि हाँकि दलन दबाइ दहपट्टि हते ।
बाजी और बितुंड झुंड झूमत खरे जे हैं ।।
मारे रन मुगल पछारे पीर जाते ।
अधफारे फर लोटत पठान वे लरे जे हैं ।।
पार भए नेजे घूमि भूमि में परे जे करे ।
टूक टूक रेजे सरे के करेजे हैं ।।

सवैया

बीर हमीर हते रनधीर लरै उत सौं सुलतान सो हेलैं ।
मार परी तरवारिनि की बरसै सर सूल भयंकर सेलैं ।।
टोप कटे केलही तन त्रान माची घमसान भए दल मेलैं ।
लोहू अघायल ह्वै रहे घायल फाग सी खेलैं ।।

छप्पय

बिषम चलीं तरवारि मारु धुनि मारु मारु धुनि ।
मछ्यो सोर यह धीर परत नहिं और बात रुनि ।।
जुत्थ जुत्थ कटि परैं लुत्थ पर लुत्थ उलत्थिय ।
कुंडनि श्रोनित भरे सुंड सब डोलत हत्थिय ।।
असवार डिगत बाहन फिरैं फिरैं भूत भैरव बिकट ।
नाचैं गिरीस गिरिजा सहित रंगभूमि रुंडनि निकट ।।
भयौ घोर घमसान रोर दसहूं दिसि मची ।
डहडह बज्जे डमरु जूह जुग्गिनि जुरि नाची ।।
प्रमत्त भूत जमदूत बीर बेताल बहकैं ।
ताल देत भैरव पिसाच मिलि प्रेत डहकैं ।।
कर गहि कपाल पीवै रुधिर कंकाली कौतुक करै ।
गन सहित रुद्र जाग्यौ समर लाग्यौ घर मुंडनि भरै ।।
चुंचनि चुथैं गृद्ध मांसिजंबुक मिलि भच्छैं ।
चाटैं चरबि पिसाच प्रेत गहि हाड़ प्रतच्छैं ।।
भषैं मोद भरि भूत रुंड भैरव लै भज्जैं ।
गहि कपाल रत पान करत चंडी गलगज्जैं ।।
नाचैं निहारि जेरि जोगिनी सुभट अच्छ कन्या बरें ।
रनभुम्मि भए कायर बिमुख सूर समर साका करें ।।

दोहा

भयो जुद्ध दिन सात लौं रात दिवस इक सार ।
रुंड मुंड परि खेत मैं परगट भयो पहार ॥
कढ़ीं कुटिल गति कोटि वत श्रोनित सरित अपार ।
मज्जन करत पिसाच घन रुद्र सहित परिवार ॥

भुजंगप्रयात छंद

परे मत्त दंती मरे सुंड खंडे । उभै ओर ते कूल राजैं प्रचंडे ॥
वहे लाल लोहू लसै बारिधारा । मनौ कौल फूलै कलंगी अपारा ॥
परे अंग भंगं तुरंगं अनेकं । तिरैं ग्राह मानों गहे एक एकं ॥
फटे रुंड मुंडं कटे केस छूटे । मनौ पाज कौ पाह सेवाल जूटे ॥
परे खग्गखंडा प्रचंडा देधारे । फिरैं धार में ज्यों महा ब्याल कारे ॥
तनं त्रान फूटे फटे टोप ढालं । परे नीर में ज्यों महा जंत्र जालं ॥
बहे वस्त्र फेनं फँसे अस्त्र मीनं । महा मक्र से सूर सावंत पीनं ॥
चली जोर बेगं महा घोर धारा । गिरे गर्ववृच्छं प्रतच्छं अपारा ॥
लसैं भौंर से मीम र्हैं चक्र भ्रमें । कलत्थंत सूरं तरंग ललामैं ॥
करैं केलि काली कपाली समेतं । करैं पान केते तृषावंत प्रेतं ॥
भिरैं भूत भैरव भरे गात घावैं । कलोलैं तिरैं जोगिनी ताप खोवैं ॥
परै गीध आकास तैं आनि टूटै । बिना सोक कोकावली हंस जूटे ॥
महा भीम भारी नदीयों गंभीरं । करी युद्ध मैं वीर हम्मीर धीरं ॥
तहाँ कोप कै साह अल्लाउद्दीनं । गही हाथ कम्मान औ वान लीने ॥

छप्पय

गहि कमान करि तान साह अल्लाउदीन हमि ।
करे बान बरषा अपार सर बारि धार जिमि ॥
गिरे बीर रनबीर भिरैं सनमुख दल दोऊ ।
पीछैं देत न पाँव फेरि फिरि सकत न कोऊ ॥
मीड़ैं न बाग छोड़ैं न छिति अड़ि घोड़े जड़ गति रहे ।
श्रोनित अन्हाइ घायल सुभट तन घायल जकि थकि रहे ॥

दोहा

भूर सूर करनी करैं टरैं न तजि रन खेत ।
सात दिवस सँगरे भयौ निसिदिन रहा न चेत ॥

सोरठा

बरषत सर सुलतान बिकल देखि दल आपनी ।
गहि कृपान चहुँ आन पर्यौ मृगनि में सिंह ज्यौं ॥

नागनि कौं मृगराज बाज बटेरनि ज्यौं हने ।
त्यौं हमीर गलगाज हन्यौं साह दल आपही ॥

मोतीदाम छंद

गही करवाल हमीर कारि । दलं दहपट्टि दियो महि डारि ॥
करे जुग खंड विहंडि विहंडि । दिए जमदूतनि कौं धनु बंडि ॥
करै नररंग तुरंगनि भंग । चरै मनु केहरि कोप कुरंग ॥
परैं रनसूर कलत्थ कलत्थ । कहूँ धड़ मत्थ कहूँ पग हत्थ ॥
फिरैं रन घूमत घायल सूर । अघायल घोनित चायल चूर ॥
कटे तन त्रान फटे सिर टोप । लटे रिपुरंग मिटी मुख ओप ॥
लगे रन धावन रुंड अपार । बही पुनि दारुन ओनितधार ॥
उठे अति कोपि कबंध उदार । भई यह भूमि भयंकर मार ॥
जहाँ चहुँआन गही समसेर । दिये सब सत्रुनि के मुख फेरि ॥
चढ्यौ गज भाजत फौज निहारि । तहाँ सुलतान गयौ हिय हारि ॥

दोहा

भाग्यौ दल सुलतान कौ जोर पर्‌यौ चहुँआन ।
हाँकि हाँकि मारन लगे धीर बीर बलवान ॥

छप्पय

भयो क्रुद्ध अति घोर राम रावन रन जुज्झे ।
पुनि पारथ अरु करन कोपि कुरुखेत अरुज्झे ॥
लर्‌यो भीम गहि गदा गाजि दुरजोधन मार्‌यो ।
सुलतान गरब गंज्यौ समर तिमि हमीर सूरनि सजे ।
निरतंत रुद्र नारद निरखि डिमि डिमि डिमि डमरू बजे ॥

सोरठा

भयौ घोर घमसान परे खेत सिगरे सुभट ।
दल सब आयौ काम रहे नषत ज्यौं भोर के ॥
दल बल सान गँवाइ दै हमीर कौं सुजस बर ।
भग्यौ साह सिर नाइ पील चढ्यौ जित तित लता ॥